# मेरी जीवन यात्रा

## ४

राहुल सांकृत्यायन

राजकमल प्रकाशन

# दो शब्द

प्रस्तुत ग्रन्थ स्वर्गीय महापण्डित राहुलजी की बहुचर्चित 'जीवन-यात्रा' का शेष भाग है, जिसे तीन खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम तथा द्वितीय खण्ड को पढ़ने वाले राहुलजी के पाठक शेष खण्डों के लिए भी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु लेखक की लेखनी से वर्षों पहले लिखे जाने के बाद भी यह खण्ड किन्हीं कारणों से अप्रकाशित रहा। लेखक ने अपने जीवन-काल में उसे प्रकाशित करवाने की ओर उतनी तत्परता भी नहीं दिखलाई क्योंकि वे अपने जीवन-काल में इसे प्रकाशित देखने के इच्छुक नहीं थे।

राहुलजी के देहावसान के बाद हिन्दी प्रेमियों तथा राहुल-साहित्य के पाठकों ने जीवनी के शेष खण्डों के लिए बहुत उत्कण्ठा व्यक्त की है। आज यह आपके हाथों में आ रहा है। पाठक इस ग्रन्थ की नरम और गरम दोनों प्रकार की शैली का रसास्वादन करेंगे जो राहुलजी की चुस्त लेखनी की विशेषता रही है।

ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को आद्योपांत पढ़कर उसके प्रकाशन को सम्भव बनाने के लिए हमें राहुलजी के अनन्य मित्र श्रद्धेय भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी का कृतज्ञ होना चाहिए। ग्रन्थ को इतने सुन्दर रूप में प्रकाशित कर देने के लिए हम राजकमल प्रकाशन के आभारी हैं।

कमला सांकृत्यायन

राहुल निवास
२१, कचहरी रोड,
दार्जिलिंग

# क्रम

१

# रूस से लौटा

बम्बई—१७ अगस्त, १९४७ को मैं "स्ट्रेथमोर" जहाज से बम्बई उतरा। दो सप्ताह से अधिक बम्बई मे ही रहा। १५ अगस्त को अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए। उस दिन भारत के और भागो की तरह बम्बई मे भी स्वतन्त्रता का उत्सव मनाया गया। हमे इस बात का अफसोस था, कि हम उस पुण्य पर्व के दो दिन बाद बम्बई उतरे। ढाई साल के हुए परिवर्तन को ही हमे देखना नही था, बल्कि अंग्रेजो के शासन की कालरात्रि के अन्त के रूप मे देश म जो ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ था, उसे भी देखना था। बम्बई मे पार्टी केन्द्र म देश-भर के अखबार आते थे। हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ की बाढ़ सी आ गई थी, लेकिन सब जीने के लिए निकल रहे थे। भाग्य-भरोसे निस्तार कैसे हो सकता है? जानकर दुःख हुआ, कि जिस वामपक्ष के ऊपर देश का भविष्य निर्भर है, वह आपस मे बुरी तरह से उलझ रहा है। कम्युनिस्ट चाहते थे, कि सब मे एकता स्थापित है, लेकिन सोशलिस्ट, फारवर्ड ब्लाक, क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टिएँ इसके लिए तैयार नही थी।

सबसे दिल हिलाने वाली बात यह थी कि १५ अगस्त के महोत्सव के साथ ही बँटे हुए भारत मे आग लग गई। पंजाब मे मानव मानव को घास-मूली की तरह काट रहा था—बच्चा, बूढा, स्त्री किसी की जान सुरक्षित

नही थी। सीमात कमीशन ने पूव और पश्चिम की सीमाओ के बारे मे निणय दे दिया था। जहाज पर मेरे साथ आने वाले सिक्ख भाई ने बडे विश्वास के साथ कहा था—लाहौर जरूर भारत को मिलेगा, नही तो खून की नदिया बह जाएँगी। लाहौर हिदुस्तान को कैसे मिल सकता था, जब कि वह मुस्लिम बहुमत समुद्र के बीच एक द्वीप सा था? हाँ, खून की नदियाँ इस वक्त बह रही थी। सीमा निर्धारण के पहले यदि दोनो ओर के अनिच्छुक निवासियो को बदलने का प्रबन्ध कर दिया गया होता, तो शायद इन दिनो को देखने की नौबत नही आती। राजनीतिज्ञो को यह पहले ही से सोच लेना चाहिए था, कि देश के बटवारे के समय ऐसी स्थिति का पैदा होना बिल्कुल सम्भव है। बम्बई मे बैठा-बैठा इन खबरो को सुनकर मैं केवल चुपचाप मार्मिक वेदनाओ को सह सकता था।

अगस्त का महीना वर्षा का ही महीना है। लगातार वर्षा हो रही थी, अब के साल वह देर से शुरू हुई थी। वर्षा के होते भी पसीना तग कर रहा था। सडके और गलिया कीचड से भरी थी। तो भी जहाँ-तहाँ व्याख्यान देने के लिए जाना पडता था। २१ अगस्त को ही महादेव भाई (माहा) २८ सितम्बर तक साथ रहने के लिए आ गए। एकाकी तपस्या ही की जा सकती है दूसरे कामो के लिए दो रहने से मन लगता है। २३ अगस्त को मुझे "बहुजन विहार" मे जाना पडा। आचार्य धर्मानन्द कोशाम्बी का बनवाया यह पुनीत विहार था। कितनी ही बार मैंने उनसे यहाँ पर मुलाकात की थी। सफेद दाढी से ढका उनका सौम्य मुख कभी भूला नही जा सकता। उनकी किसी से पटती नही थी। क्यो, यह मुझे समझ मे नही आता था। वह सरलता की साकार मूर्ति थे, और व्यवहार म अति मधुर। जब कभी जाने पर चाय बनाकर पिलाने का उनका आग्रह होता, और पीये बिना पिंड नही छूटता था, जिन भावो के साथ बनती थी, उसके कारण वह सौगुनी मधुर हो जाती थी। लका जा पर मैंने उनकी जीवन-यात्रा गुजराती मे पढी थी। मराठी और गुजराती मे बौद्ध साहित्य के निर्माण का उन्होने भारी काम किया। पालि का गम्भीर ज्ञान उनकी कृतियो मे झलकता

है। वह विद्वान् और साथ ही घुमक्कड भी थे। शायद यह घुमक्कडी प्रवृत्ति ही उन्हें स्थान और व्यक्ति से रुष्ट कर देती थी। वह व्यवस्था के अत्यन्त प्रेमी थे और जरा भी अव्यवस्था देखने पर अपने को सम्भाल नही सकते थे। यही कारण था जो वह कही भी टिक नही सकते थे। लेकिन क्या, इस एक दोष के कारण उनके सैकडो गुण भुलाए जा सकते है? मुझे यह आशा नही थी कि मेरे प्रवास के समय वह सदा के लिए चल बसेंगे, और सो भी अपनी इच्छा से। शरीर व्याधि से जर्जर हो रहा था। जिसे देखकर उनके मन मे भारी निराशा पैदा हो गई। वह अपने जीवन को भार समझने लगे। नही चाहते थे कि उस भार को दूसरे भी उठाने के लिए मजबूर हो। अनशन शुरू कर दिया जिसका अन्त जीवन के साथ हुआ। यह आत्महत्या थी। आचार्य कौशाम्बी बौद्ध थे और जानते थे, आत्महत्या को बुद्ध ने बुरा बतलाया है। उस दिन उस स्थान मे बोलते समय आचार्य का ख्याल आना जरूरी था। हृदय विचलित हो गया, गला रुँध गया और बोलना समाप्त करना पडा था। लेकिन, प्रिय हो या अप्रिय सबका महाप्रस्थान एक दिन होना ही है।

२५ अगस्त को चेक का पैसा भुनाने के लिए टामस कूक के ऑफिस हम जा रहे थे। भिंडी बाजार मे ट्राम की प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुत भीड नही थी, लेकिन वह इतनी जरूर थी कि पाकेटमार अपना काम बना सके। चुपके से मेरे पाकेट मे से उसने कोई चीज निकाल ली। उसने समझा, जिस चमडे की थैली को वह निकाल रहा है, उसमे नोट भरे होगे। लेकिन उसे कितना निराश होना पडा होगा, जब उस थैली मे नोट की जगह मेरा पासपोर्ट मिला होगा। पासपोर्ट के खो जाने की सूचना मैंने पुलिस को दे दी, भले मानुस पाकेटमार ने पासपोर्ट को किसी तरह पुलिस के पास पहुँचाने मे जरूर सहायता की, तभी तो कुछ समय बाद वह मेरे पास चला आया। चोर के पास गया पासपोर्ट लौट सकता है, लेकिन पासपोर्ट के दूसरी प्रकार के भी चोर होते हैं, जिनके हाथ मे पडा वह फिर लौट नही आता। मैं नही जानता कि पासपोर्ट की चोरी करना खुफिया पुलिस

के कर्त्तव्यो मे से है, लेकिन खुफिया के एक चर ने लडाई के दिना म ऐसा किया था। पाकेटमार के पास से लौटा यह पासपोर्ट भी उसी तरह एक दिन कलिम्पोग मे गायब हो गया। पासपोर्ट न होने से एक का यात्रा का चेक भुनने मे दिक्कत हा सकती थी, लेकिन वहा के आदमी भलेमानुस निकले उन्होने विश्वास करके रुपये दे दिए।

व्याख्यान राज ही कही न कही देने होते थे। कभी-कभी एक बार दादर मे मराठीभाषी नर नारियो के सामने भाषण देने मे कुछ अडचन सी मालूम हुई। लेकिन, मैं जानता था, ऐसे समय यदि सस्कृत शब्दो से लदी भाषा हिन्दी का उपयोग किया जाए तो श्राताओ के सुनने मे आसानी होती है। बगाल मे भी यह तजर्बा सफल देखा। असल बात यह है कि उर्दू छोड हमारे देश की सभी साहित्यिक भाषाओ म सस्कृत के एक ही तरह के शब्द प्रयुक्त होते है, जिनके कारण हम एक दूसरे की भाषा का बहुत कुछ समझ लेते हैं।

अग्रेजो क शासन-काल मे ही भारतीय करोडपतियो न अखबारो को हाथ म लेने का काम शुरू कर दिया था। वह एसा करके जोखम नही उठा रहे थे क्योकि अग्रेजो के खिलाफ कलम की लडाई लडना उनका काम नही था। बहुत हुआ, तो दबी जबान मे राष्ट्रीय आन्दोलन का समय समय पर कुछ समर्थन कर दिया। जब अग्रेज अपने पत्रो को बेचन लगे तो भारतीय पूजीपति उन्ह सम्भालने के लिए सामने आए। बिडला, डालमिया, गोयनका अब पत्रो के राजा बन गए थे। खैरियत यही है कि अभी पुस्तक-प्रकाशन के मैदान म वह खुलकर नहीं आए, नही तो लेखको का भी आसानी से खरीद सकते थे। यह सब प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए हो रहा था, इसे निरा भोला आदमी मान सकता है। मुद्रण पर आधिपत्य दूसरे पूजीवादी देशो मे भी है जिसे लाकतन्त्रता कहकर ढोल पीटा जाता है।

२६ अगस्त का दादर के वनमाली हाल म "बुद्ध और मार्क्स" पर मुझे बोलने के लिए कहा गया। मेरी रुचि का विषय था। आर्य समाज के स्वतत्र विचारो के बाद मैं बुद्ध के पास पहुचा, और उनके अनीश्वरवाद, विचार-

स्वातन्त्र्यवाद आर्थिक समतावाद से बहुत प्रभावित हुआ। उसके बाद मार्क्स के विचारों को अपनाना मुझे बिलकुल स्वाभाविक सा मालूम हुआ। बुद्ध का दर्शन इसमें और भी सहायक सिद्ध हुआ। बुद्ध विश्व की हरेक वस्तु को अनित्य मानते हैं। हरेक चीज क्षण क्षण बदल रही है, बल्कि यह कहना चाहिए, कि जो चीज क्षण क्षण बदल नहीं रही है, वह दुनिया में है ही नहीं वह केवल कल्पना मात्र मिथ्याभ्रम है। अनात्मवाद, अनीश्वरवाद, अथ अप्रामाण्यवाद ये सभी आदमी के मानसिक बंधन को काट देते हैं। यह सब होते हुए भी बौद्ध-धर्म या दर्शन वह काम नहीं कर सकता था, जिसे मार्क्स की शिक्षा कर सकती है। मार्क्स को दुनिया और उसकी वस्तुओं की व्याख्या ही नहीं करनी थी, बल्कि उन्हें बदलना था। बदलना या क्षणिक-वाद को बौद्ध भी मानते हैं, पर मनुष्य अपनी इच्छा से वस्तुस्थिति को अपने अनुकूल बदलने में समय मार्क्स के बतलाए रास्ते से ही हो सका। कितने ही पैगम्बरों ने अपने को अन्तिम पैगम्बर होने का दावा किया। मार्क्स ने अपने को न पैगम्बर कहा न अन्तिम पैगम्बर होने का दावा किया। पैगम्बर का सामान्य अर्थ है, सदेशवाहक। सन्देश से मतलब भगवान् के सन्देश से है। बुद्ध और मार्क्स ईश्वर को नहीं मानते थे, इसलिए वह भगवान् के सन्देशवाहक नहीं हो सकते थे। पर उन्होंने दुनिया को महान् सन्देश दिया, इससे कौन इन्कार कर सकता है। बुद्ध ने अपने शान्तिमय उपदेशों से मानवता के एक बहुत बड़े भाग को सहस्राब्दियों तक लाभान्वित किया, और मार्क्स तो अभी अधूरी यात्रा में ही मानवता के इतने बड़े भाग को अपने विचारों के सुफल से लाभान्वित कर चुके हैं, जितना कभी किसी एक महापुरुष ने नहीं किया।

बम्बई या कोई भी महानगर संघर्ष, अशान्ति, दौड़ धूप और भगदड़ का स्थान है। अधिक परिचितों के होने पर वहाँ अधिक समय बातचीत और शिष्टाचार निबाहने में लग जाता है। ऐसी जगह रहकर लिखने-पढ़ने जैसा कोई काम करना संभव नहीं, पर अभी तो मैं वैसा करने भी नहीं जा रहा था। सबसे पहले देश के काफी भाग को देखना और नई परिस्थिति को

समझना आवश्यक है। यह काम १ सितम्बर को बम्बई से प्रस्थान कर हमने किया। उस समय रेलों की अवस्था बहुत अनिश्चित थी, टिकट मिलना आसान नहीं था। फिर मेरे साथ साढे तीन मन पुस्तकें भी चल रही थी, जिन्हें मैं रूस से खास तौर से अपनी पुस्तको के लिखने के लिए लाया था। उस दिन साढे ८ बजे रात को मैं प्रयाग के लिए रवाना हुआ। रात बीती। सवेरे के वक्त देखा चारो तरफ धरती हरियाली से ढँकी हुई है। बम्बई नगर म मुक्त प्रकृति का देखना सभव नही था। यहा वह बडी मनोहर मालूम होती थी। खाने की चीजे दुलभ, और चौगुन दाम पर बिक रही थीं। दोपहर का खाना डेढ रुपये फी आदमी मिला। शाम को रेस्तरा कार मे यूरोपीय भोजन करन गये। चाज तीन रुपये दो आने, लेकिन, सभी चीजें नीरस और अस्त-व्यस्त मालूम होती थी। बैरो को परोसन की न कोई पर्वाह थी और न सफाई की। वह अग्रेजो को ही बडा आदमी समझत थे, जो अब भारत से चले गए थे। काले आदमियो के लिए उनके दिल म जो पहिले भाव था वही अब भी काम कर रहा था।

**प्रयाग**—२ सितम्बर को १० बजे हम प्रयाग पहुँचे। बहुत स मित्र स्टेशन पर आये थे। डा० बदरीनाथप्रसाद के साथ हम उनके बँगले पर गये। डा० बदरीनाथ प्रसाद प्रयाग मे मेरे लिए वसे ही थे, जसे पटना मे किसी समय डा० काशीप्रसाद जायसवाल। उनके यहा मैं बिल्कुल अकृत्रिम आत्मीयता अनुभव करता था। कितन ही समय तक घर और बाहर वालो से रूस की यात्रा पर बाते होती रही। शायद सद मुल्क से आना कारण हो, पसीने की चिपचिपाहट से तबीयत बडी परेशान रहती, जिसका निवारण *पखा ही कर सकता था लेकिन उसे साथ लेकर तो घूमा नही जा सकता था।*

प्रयाग म प्रगतिशील लेखक सघ का सम्मेलन होन जा रहा था, जिसका सभापति मुझे बनाया गया था। सम्मेलन ६ से ८ सितम्बर तक होता रहा। उद्घाटन डा० अमरनाथ झा ने किया था। भाषा और साहित्य के बारे म डा० झा के विचार बडे सुधरे हुए थे। वह मात भाषाओ के महत्व का सम-

झते थे। उनकी अपनी मातृभाषा मैथिली उपेक्षित-सी थी, जिसका उन्हे दर्द था, इसीलिए वह अवधी, ब्रज आदि मातृभाषाओं की स्थिति के बारे मे भी ठीक तरह विचार कर सकते थे। हिन्दी-उर्दू का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ। प्रश्न वस्तुत युक्तप्रान्त और पूर्वी पजाब का ही था। मेरा विचार था, उर्दू का हिन्दी लिपि म लिखे जाने पर इस सवाल का बहुत कुछ हल हो सकता है। इसका यह अर्थ नही कि उर्दू को अरबी लिपि मे प्रकाशित न किया जाये। हाँ, अरबी लिपि तक सीमित रख कर बहुसख्यक पाठको को वचित नही करना चाहिए।

इधर सम्मेलन हो रहा था, उधर पजाब की मार काट के छींटे प्रयाग पर भी पड़ने लगे। ५ सितम्बर को छुरे से किसी आदमी के मारे जाने की खबर मिली। अगले दिन रात को कर्फ्यू लगा दिया गया—बिना पास के रात को आदमियो का आना-जाना निषिद्ध हो गया। पहली रात घर पहुँचने के लिए श्री श्रीनिवासजी अपनी मोटर म मुझे ले जा रहे थे। रास्ते म कार मे खराबी हो गई। कर्फ्यू का समय था। खैरियत हुई, जगह रहने के स्थान से दूर नही थी। अगले दिन पजाब मे कत्लेआम की खबरें बड़े जोर से आने लगी। रेल मे चलना निरापद नही था। शान्ति कायम करने के लिये सेनाएँ बराबर इधर से उधर भेजी जा रही थी, जिसके कारण ट्रेन मे जगह भी आसानी से नही मिलती थी।

८ सितम्बर को कवि सम्मेलन हुआ, सुमन और सरदार जाफरी की कविताओ को लोगो ने बहुत पसन्द किया। अगले दिन जनकवि सम्मेलन हुआ। शमशेर और वशीधर शुक्ल की सरल और चुभती हुई कविताएँ बहुत पसन्द की गई। जन-लोक-कविता को जनप्रिय देखकर कितने ही लोग उसकी नकल कर रहे थे, पर यह नकल अधिकतर बहुत भद्दी थी, और आधा तीतर आधा बटेर देखकर सहृदयो को विरक्ति होती थी। शिक्षित कवि के लिए लोक-कवि बनना और भी मुश्किल था, क्योंकि अहम्मन्यता के कारण वह निरक्षर जनकवि के चरणो म बैठने के लिए तैयार नही हो सकता था।

बनारस—प्रयाग से बनारस जाने के लिए बड़ी लाइन और छोटी लाइन दोनों मौजूद है। दिल्ली में इसी समय भारी साम्प्रदायिक दंगा हो गया, जिसके कारण बड़ी लाइन से जाना संदिग्ध हो गया था। हमने छोटी लाइन से ११ सितम्बर को प्रस्थान किया। महादेव भाई और नागार्जुन भी साथ थे। बनारस में अमृतरायजी के निवास पर गये। पहले पितरकुंडा पर रहते उन्हें देखा था, अब वह गोदौलिया के एक मकान में आ गये थे। यहीं प्रेस भी था अब वह यहीं रहेंगे। किन्तु व्यवसाय स्वयं अपना स्थान निश्चित करता है। पीछे अमृतराय को प्रयाग आने के लिए मजबूर होना पड़ा। उनकी माता शिवरानीदेवी गोदौलिया में काशीवास करने के लिए रह गई है।

बनारस में चार दिन रहना था। इसी में १२ सितम्बर को सारनाथ हो आये। बाढ़ आई हुई थी, वरना का पानी एक जगह सड़क पर चढ़ आया था। बनारस से सारनाथ जाने वाली सड़क इतनी खराब थी, जितनी कभी नहीं देखी। सड़कों को ठेकेदारी पर बनवाने से काम कैसा होता है, इसका तजर्बा मुझे पहले भी हो चुका था। बिहार में जब जिला बोर्ड गैर-सरकारी हो गया, तो ठेका अपने-अपने आदमियों को दिया जाने लगा जो पैसे में से अधिक से अधिक को अपने पाकेट में रखना चाहते थे। कच्ची ईंट जैसी बेकार की सामग्री से सड़कों को पक्की बनाते, जो छः महीने भी ठीक से काम नहीं देती थीं। ठेकेदारों की लूट और भी बढ़ी हुई है। रिश्वत का बाजार गर्म, लूट में से कुछ दे देने पर इंजीनियर और ओवरसियर काम पास कर देते है। किसको पड़ी है काम को मजबूत बनाने की।

सारनाथ में सात आठ भिक्षु मिले। बर्मी धर्मशाला में कित्तिमा बाबा को रोगी देखकर दुःख हुआ। अब वह तरुण से वृद्ध हो चुके थे। बर्मा की स्थिति अभी अनिश्चित थी जिसके कारण आर्थिक कठिनाइयों का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। महाबोधि हाई स्कूल में साढ़े तीन सौ विद्यार्थी पढ़ रहे थे। विद्यार्थियों के सामने भाषण देकर ४ बजे शाम को बनारस लौट आये।

१३ सितम्बर का यह सुनकर दिल का भारी धक्का लगा, कि बिसराम अब इस दुनिया मे नही रहे—बिसराम आजमगढ के तरुण वियोगी लोक-कवि। कभी ही कभी ऐसे कवि पैदा होते है। वह अपनी मातृभाषा भोजपुरी म कवि बनने के लिए कविता नही करते थे। स्वात सुखाय भी नही करते थे, क्योकि उनकी कविता सुख के लिए नही दुख के लिए होती थी। तरुणाई म ही उनकी प्राणप्रिया पत्नी मर गई, वियोग ने उन्हे पागल बना दिया। वह दुनिया की किसी चीज को देखने ही अपनी प्रियतमा को याद करते थे। अपने सीधे सादे विरहा को जोडकर स्वय गुनगुनाया करते थे। उन्होने कागज पर उतारने के लिए उन बिरहो को नही रचा, अपनी इष्ट देवी की पूजा के लिए शब्दो की माला बनाई। कानोकान उनके विरहे दूसरा के पास पहुँचे, लोगो ने इन अनमोल मोतियो का परख भी लिया। बिसराम अपने सभी विरहा को याद नही रख सकते थे, जो याद थे, उन्हें लिपिबद्ध करने की पूरी कोशिश नही की गई। समय-समय पर लिखकर बीस के करीब बिरह एकत्रित किये जा सके, वही बिसराम की कृति के रूप मे बच रहे है, जिसका श्रेय श्री परमेश्वरीलाल गुप्त को देना चाहिए। हम सभी इसके लिए अपराधी हैं जो बिसराम के और विरह नही जमा कर सके। लेकिन किसको पता था, यह वियोगी कवि २५-२६ वर्ष की उमर मे ही चल बसेगा ? उनके विरह बतला रहे थे, कि जो बडवा उनके हृदय म धाय धाँय जल रही है, उसके कारण वह देर तक नही रह सकेंगे।

डा० मगलदेव शास्त्री स बिना मिले बनारस का आना पूरा नही हो सकता था। वह मेरे बहुत पुराने कृपालु मित्र हैं। साल भर ही बाद उन्हे पेंशन होने वाली थी। राजकीय सस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य होकर उन्होने उसके लिए बहुत से काम किये। रूढिवादियो के गढ को उन्होने मुक्त होकर सास लेने लायक बनाया। निश्चित हो है, गगा को उल्टी नही बहाया जा सकता। किसी सस्था को भी समय के प्रवाह के साथ ही आगे चलना होता है। कुछ साधु मित्रो ने मुझसे पूछा—हमारा क्या भविष्य है ? मैंने बतलाया था—"आपका और सस्कृत के गम्भीर पाडित्य का भाग्य एक साथ बँधा

हुआ है। स्वतन्त्र भारत मे, आज की आर्थिक स्थिति तथा भाषा की सुगमता के कारण वे विद्यार्थी सस्कृत पढना छोड देंगे जो और शिक्षा पाने से वचित हो क्षेत्रो की रोटियाँ खाकर सस्कृत पढा करते थे। पढने वाले भी तीस-तीस वष सस्कृत की साधना नही करेंगे। दूसरो की तरह वह भी बीस पच्चीस वष की उमर मे पहुँच पढाई समाप्त कर कोई काम सँभाल लेंगे। ऐसे समय सस्कृत का गम्भीर पाडित्य कैसे कायम रह सकेगा? पर, निराश होने की आवश्यकता नही। साधु पच्चीस तीस साल नही, अपने सारे जीवन को विद्याध्ययन म लगा सकते हैं। वही गम्भीर पाडित्य को अक्षुण्ण रख सकते हैं। सस्कृत विद्या वै साधु आजगम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि' कहती अब आप लोगो के पास आयेगी। और इस निधि की रक्षा करने के कारण आपकी उपयागिता को लोग मानेंगे।''

*छपरा*—*बनारस से हम तीन दिन के लिए छपरा गए।* १४ बजे रात की ट्रेन से हम चले थे, और १५ तारीख को सवेरे बलिया पहुचे। बलिया को देखते हैलेटशाही जुलुम याद आने लगा। १९४२ मे अँग्रेजो न बलिया जिले पर वैसे ही जुल्म ढाए थे जैसे मार्शल ला के दिना मे उन्होन पजाव मे किया था। बलिया वालो ने जुल्मो का बडे साहस के साथ सामना किया था और अपनी स्वतन्त्रता की भावना को दबने नही दिया। बलिया के वीर वक्ता चित्तू पाडे याद आ रहे थे। भोजपुरी ने ऐसा वक्ता शायद ही कभी पैदा किया हो। सन् ४२ के आन्दोलन के तो वह बडे सेनानी थे। जब आन्दोलन दब गया और धर पकड होने लगी, तो चित्तू पाडे भसे के सौदागर बनकर दूसरे जिले मे घूम रहे थे, जहाँ से पुलिस उन्हे पकड लाई।

आगे सुरेमनपुर के पहले एक जगह वर्षा के कारण रेल की सडक दब गई थी। ट्रेन इधर ही रुक गई। एक फलाग पैदल चलना पडा। यद्यपि मरम्मत का काम एक दो घटे मे हो सकता था, लेकिन रेलवाले ऐसा करके अपनी योग्यता का परिचय कैसे देते? कई घटो बाद दूसरी ट्रेन पर चढकर हम दो बजे छपरा पहुँचे। बलिया की बाढ से और छपरा मे वर्षा की कमी

से फसल को नुकसान हुआ। छपरा में सदा से मेरा निवास स्थान पं० गोरखनाथ त्रिवेदी का मकान रहा। असहयोग से आन्दोलन में हम साथ-साथ काम करते थे फिर वकील बनकर उन्होंने वकालत शुरू की। तब से मैं बराबर उन्हीं के यहां ठहरा करता। त्रिवेदीजी वैसे बहुत तेज दिमाग के हैं, पर किसी काम के बारे में निर्णय करने में जरूरत से अधिक समय लेते हैं। जब शहर के भीतर सस्ती जगह मिल रही थी तब उन्होंने आज-कल कर दिया। जमीन ली, तो शहर से बाहर एक बगीचे में, जहाँ चोरों के लिए उनका घर हमेशा तैयार मिलता था। एक से अधिक बार चोरियाँ हो चुकी हैं। बागवाले मकान में हम ठहरे। पंजाब के दंगों की खबरें अखबारों द्वारा यहां भी पहुँच रही थीं, जिसके कारण सभी जगह उत्तेजना फैली हुई थी। उस वक्त तो मालूम होता था, कि भारत में कोई मुसलमान नहीं रह पाएगा, सभी पाकिस्तान चले जाएँगे।

१९१३ में पहले पहल छपरा से मेरा सम्बन्ध स्थापित हुआ। ३४ वर्ष हो चुके। राजनीतिक जीवन को मैंने यहीं आकर आरम्भ किया। असहयोग के दिनों की स्मृतियाँ आज भी मुझे बहुत मधुर मालूम होती हैं। उस समय के सहकर्मियों के प्रति तो एक अद्भुत स्नेह, श्रद्धा और सद्भावना मन में पैदा होती है। मेरी हर यात्रा कुछ वर्षों के बाद हुआ करती है। इतने वर्षों में नये लोग भी आ जाते हैं, लेकिन शिशुओं से तो हमारा परिचय नहीं, और जो परिचित थे, उनमें से कितने ही अनन्त पथ के पथिक हो गए। बाबू बच्चू बिहारी अब नहीं रहे। उनकी बातें बहुत याद आती थीं। घटनाओं को बड़े रोचक ढंग से कहते थे कैसे एक कंजूस कायस्थ तरुण ने अपने ब्याह पर कुल मिलाकर आठ आना ही खर्च करने की प्रतिज्ञा को पूरा किया, किस तरह चैनपुर के बाबू की बारात में नौकरों चाकरों की बेवकूफी से सारी बारात को आफत में पड़ जाना पड़ा। बच्चू बाबू वकील थे। इतना ही कमा पाते थे, जिसमें रोज की नून तेल-लकड़ी का प्रबन्ध हो जाए। बच्चे अब निराश्रय थे। बड़ी लड़की ने किसी तरह डाक्टरी पास कर लिया, वह घर का अवलम्ब साबित हुई। पं० भरत मिश्र अब सोहम् स्वामी थे।

छोटे छोटे बच्चे बच्चियों के लिए उन्होंने 'सोहम् विद्यामंदिर' स्थापित कर दिया था, जिसमे पढ़ाई का माध्यम संस्कृत थी, बच्चे संस्कृत मे ही बातचीत करते थे। पाच कक्षाएँ थी, हर साल दस विद्यार्थी लेते थे। जानकर प्रसन्नता हुई, कि विद्यालय स्वावलम्बी है। जो लडके यहा से पाच साल पढकर निकलते, वह अपनी सारी पढाई मे संस्कृत और हिन्दी मे आगे रहते हैं फिर माता पिता ऐसे विद्यालय की उपयोगिता को क्या न माने।

राजेन्द्र कालेज काफी उन्नति कर चुका था। विद्यार्थियों के सामने बोलना पडा। सबसे दु खद समाचार यह मिला कि गुह्य बाबू का एकमात्र पुत्र गंगा मे डूबकर मर गया। गुह्य बाबू की दवाइयों की दूकान छपरा की सबसे बडी और पुरानी दूकान है। पर, वह उसके लिए विशेष स्थान नही रखते। राजनीतिक आन्दोलन मे उन्होने बराबर हर तरह से भाग लिया। छपरा के वह बडे उदार नागरिक थे। कांग्रेस उस समय तपस्वियो की कांग्रेस थी। कर्मी अभावग्रस्त रहते थे गुह्य बाबू हमेशा उनकी सहायता करने के लिए तैयार रहते थे। उनके अनुज डा० शिवदास सूर का एक मात्र पुत्र सुनील अब दोनो भाइयो के अवलम्ब रह गए है। सुनील कम्युनिस्ट पार्टी के मेम्बर हैं।

१७ सितम्बर को तीज, हरितालिका के नाम से नही, बल्कि तीज के नाम से स्त्रियो का सबसे प्रिय त्यौहार था, तीज त्यौहार कहा जाता है। नवीगंज मुहल्ले की महिलाओ ने भाषण करने के लिए बुलाया। मैं गया भी। शताब्दी के आरम्भ से अब तक स्त्रियो मे बहुत अन्तर आया है, इसमे शक नही। किन्तु, उनके सामने मंजिल कितनी दूर है, उसे देखकर देखते सन्तोष नही हो सकता था। बिहार मे स्त्रियो की प्रगति चीटी की चाल से हो रही है, शिक्षा मे भी अपने पडोसी प्रदेशो की महिलाओ से वह बहुत पीछे हैं।

छपरा मे सभी तरह के लोगो से मेरा घनिष्ठ परिचय था, यह देखकर आश्चर्य और खेद भी हुआ कि सोशलिस्ट मित्रो ने मेरा पूर्णतया बायकाट किया। सन् ४२ के आन्दोलन के वह सेनानी थे, जिसके कारण उनकी

काफी इज्जत थी। समझते थे, हम सब कुछ कर सकते है। उनके नेता कांग्रेस को भी अपने सामने कुछ लगाते नही, पर साथ ही इतना आत्म-विश्वास भी नही, कि कांग्रेस से अलग हो जाएँ। काफी पीछे समय आया, फिर पता लग गया, कि पुरानी कमाई पर सफलता की आशा रखना बेकार है।

पटना—उस समय रेल की यात्रा करना आफत मोल लेना था। लेकिन उसके बिना यात्रा कैसे की जा सकती थी? १८ सितम्बर को हम तीन दिन के लिए पटना को रवाना हुए। मसरख मे माल और पसिंजर ट्रेनें लड़ गई थी। ड्राइवर ने सिगनल की पर्वाह किए बिना गाडी स्टेशन की ओर हाक दी। स्टेशन मास्टर ट्रेन के आने के समय कायदे के विरुद्ध शटिंग करा रहा था। वस्तुत देश का विभाजन भी रेलों की अव्यवस्था का कारण हुआ था। बहुत अधिक सख्या मे मुसलमान इंजन ड्राइवर भाग छोडकर पाकिस्तान चले गए थे। नये ड्राइवरो को तजर्बे की आवश्यकता थी। उस दिन हमने रास्ते मे दो डब्बो को उलटे देखा। ट्रेनो का बेकार जगह-जगह रोक देना आम बात थी। सोनपुर मे दूसरी ट्रेन पकडकर पलेजा घाट पहुँचे। एक ही ऐसा जहाज था जो धार से ऊपरी ओर आ सकता था, इसलिए गमना-गमन मे दिक्कत हो रही थी। जानकर सताप हुआ, कि गगा का पानी उतर रहा है। हम १ बजे के करीब पटना के महेन्द्र घाट पर पहुँचे। जहाज समय से पहले आ गया था, इसलिए स्वागत करने वाले कितने ही पीछे से पहुँचे। सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा पटना कालेज मे अध्यापक थे। प० रामरतनाथ त्रिवेदी के दामाद होने से उनके साथ मेरी विशेष आत्मीयता थी। उन्ही के यहा ठहरे। पटना का तीन दिन का व्यस्त कार्यक्रम शुरू हुआ। जब व्याख्यान देने या टहलने न जाता, तो घर पर ही गोष्ठी चलती रहती। आखिर साम्यवादी देश मे वर्षों रहकर आया था इस-लिए लोगो की जिज्ञासाएँ बहुत थी। यह जानकर प्रसन्नता हुई, कि बिहार की कम्युनिस्ट पार्टी ने इस बीच काफी उन्नति की है, उसमे ३६०० सदस्य हैं। अपना वन्य प्रेस लगा दिया है, जिससे पत्र निकलता है। १६ सितम्बर को

म्यूजियम देखने गए। म्यूजियम के साथ मेरा वर्षों से सम्बन्ध रहा है, तिब्बत से लाई अपनी चीजें मैंने इसी को प्रदान की हैं। तिब्बत की चौथी और अन्तिम यात्रा में मैं बहुत सी सम्कृत की ताल पोथियों का फोटो उतरवाकर लाया था, जिनके प्रकाशित करने का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। यह जानकर सन्तोष हुआ, कि फोटो खराब नहीं हुए है। पोथियों के ग्रन्थ बडा महत्व रखते हैं उनका किसी भाषा में अनुवाद नहीं हुआ है।

गाधीजी के साथ काम करने वाले दो तरुण आए, गाधीवाद और साम्यवाद के समन्वय की बात कर रहे थे। कह रहे थे, कि भेद तो केवल साधन या हिंसा और अहिंसा के सम्बन्ध मे है। शोषणहीन समाज गाधीजी भी कायम करना चाहते है। मैंने कहा—गाधीजी ने देश की जो सेवा की है, वह अद्वितीय है। हमे स्वतन्त्रता जनजागरण और कुर्बानियों के कारण मिली, जन-जागरण में सबसे बडा हाथ गाधीजी का है। यह भी मानने में कोई आपत्ति नहीं है, कि गाधीजी जैसे प्रभावशाली महापुरुष यदि आर्थिक स्वतन्त्रता के ध्येय मे लग जाएँ, तो बहुत काम हो सकता है। पर उसमे कई बाधाएँ हैं। उद्योग धन्धा और हस्त शिल्प दोनो एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। सोवियत भूमि में भी दस्तकारी की उपेक्षा नहीं की जाती, उसको कई गुना बढा दिया गया है। हा वह कल कारखानो मे होड नहीं लगाती, कलापूर्ण चीजो का उत्पादन करती है। इसके अतिरिक्त देश की आर्थिक स्वतन्त्रता में कितने ही स्वार्थ भारी बाधक हैं, जिनको दबाए बिना हम आगे नहीं बढ सकते। गाधीजी उतने भारी परिवर्तन को और सो भी शीघ्रता के साथ करने के लिए तैयार हो जाएँगे, इसमे सन्देह है।

तीन चार सार्वजनिक भाषण रोज ही देने पडते हैं। बीच बीच में समय निकालकर मैं मित्रो से मिलने चला जाता था। सोशलिस्ट पार्टी वालो ने यहा भी बायकाट कर रखा था, लेकिन मैं अपने पुराने मित्रो से मिले बिना कैसे पटना जा सकता था? सोशलिस्ट पार्टी के आफिस में गया, तो वहाँ सभी चेहरे नये मिले। फिर पता लगाकर साथी गगाशरण के घर पर गया। उनसे देर तक साम्प्रदायिक दगो के बारे मे बातचीत की। बतला

रहे थे, हिंदुओ ने अबलाओ तक पर भीषण अत्याचार किए है। मेरी इच्छा थी, राजनीतिक विषयो पर, विशेषकर कम्युनिस्टो और सोशलिस्टो के नजदीक लाने के बारे मे, कुछ कहूँ, पर उसका वह अवसर नही था। नेताओ को उसकी जरूरत नही महसूस हो रही थी। २० तारीख को युनिवर्सिटी और मेडिकल कालेज के छात्रो की दो सभाओ म व्याख्यान देना पडा, उसी रात पौने २ बजे मैं और महादेव जी कलकत्ता के लिए रवाना हुए।

२

# देश का चक्कर

२१ सितम्बर को सवा १२ बजे हमारी ट्रेन हावड़ा पहुँची। उसी ट्रेन मे बरेली के एक इमाम साहब अपने परिवार के साथ चल रहे थे। भारत के भीतर और बाहर भी जो मार काट हो रही थी, उससे भयभीत होना स्वाभाविक था। आखिर इन दगो के समय हमारे समाज की वैसी स्थिति हो जाती है, जैसे भूकम्प के समय गुरुत्वाकर्षण की। आदमी की जान का कोई मूल्य नही रह जाता। धर्म के नाम पर हत्यायें होती है, गवाही साखी मिल नही सकती, इसलिए अदालत चाहने पर भी न्याय नही कर सकती। पुलिस भी एकतरफा सहानुभूति रखती, या कुछ करने मे असमर्थ होती है। कलकत्ता मे हम अलीपुर मे बैरिस्टर स्नेहाशु कुमार आचार्य के हम अतिथि हुए। मुख्य शहर से दूर होने पर भी मिलनेवाले आते रहे। २२ तारीख को डा० सुनीतिकुमार चटर्जी से मिले। उसी दिन जननाट्य समिति ने अपने कुछ गीत और अभिनय कई तरह के लोक-गीत और लोक नृत्य उपस्थित किए। लावनी अभी तक महाराष्ट्र और हिन्दी-भाषी लोगो की चीज समझी जाती थी, लेकिन यहा बगाल मे जिस सुन्दर रीति से उसे स्वीकार किया गया था, उससे मालूम हो रहा था, कि हमारी जनकला किस खूबी के साथ एक जगह से दूसरी जगह अपनाई जा सकती है।

मिर्जा महमूद ईरान मे मेरे अकारण मित्र थे। तेहरान के सात महीने

के निवास मे उन्होने जो सहायता की थी, उसका मैं सदा ऋणी रहूँगा। केपँमे-कोडी के वहाँ पहुँचते ही मुझे चारो ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई पडा था, उनके कारण तेहरान मेरा घर-सा बन गया था। मिर्जा महमूद कलकत्ता ही मे रहने वाले थे। पाकिस्तान बन जाने पर सन्देह ता था, कि वह अपन अस्पहानी बन्धुओ की तरह वहा चले गए हा, तो भी जो पते मुझे मालूम थे, उन पर मैंने उन्हे ढूढने की कोशिश की। घुमक्कड अपनी यात्राओ मे पग पग पर दूसरे सहृदय जनो की सहायता प्राप्त करता है। उसकी इच्छा रहती है, कि इन उपकारो के लिए किसी प्रकार से कृतज्ञता प्रकट करे। मुश्किल है, कृपालु एक बार के बिछुडे फिर नही मिलत। अपने इस मित्र स मिलने की मेरे मन म बडी चाह थी। बहुत दौड धूप करने पर यही पता लगा, कि वह फिर ईरान लौट गए। उसके बाद भी मैं बराबर कोशिश करता रहा, पत्र द्वारा उनके साथ सम्बन्ध स्थापित हो, पर वह नही हो सका।

२३ सितम्बर का मैं प० विधुशेखर भट्टाचार्य से मिलने गया। पुराने स्नेह मूर्ति सरल संस्कृत पडितो के वह जीवित जागृत प्रतिनिधि थे, जिनके लिए विद्या का सम्बन्ध सबसे बडा सम्बन्ध है। अपने आचार मे वह पुराने दीन पडित हैं, किन्तु विचारो म बिल्कुल आधुनिक। शौक शोध और सत्य उनके लिए सर्वोपरि मान्य वस्तु है। महामहोपाध्याय उसी अकृत्रिम वात्सल्य से मिले, जैसे वह सदा मिलते रह। असग का महान ग्रन्थ 'योग-चर्याभूमि' मुझे तिब्बत मे प्राप्त हुआ था। उसे महामहोपाध्याय सम्पादित कर रहे थे। प्रेस बडी धीमी गति से काम कर रहा था, और उनका शरीर बहुत जीर्ण हो चुका था। निराश से होकर कह रहे थे मैं तो इस काम को पूरा नही कर सकूगा, इसे आपके लिए छोड जाऊँगा। मुझे इस बात का हर्ष है कि सन् ४७ मे उनके शरीर की अवस्था देखकर जो शका हुई थी, वह ठीक नही घटी, १९५६ म भी वह हमारे बीच म है। "योगचर्याभूमि" मे अब भी वह लगे हुए हैं, यद्यपि उनका शरीर केवल हाड और चमडा भर रह गया ह। वह सौहार्द्र प्रदर्शन करने के लिए खडे होने की कोशिश करते

थे, मुझे दु ख होता था । महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचाय विद्वानो और शोध प्रेमिया के लिए आदश पुरुष है। खेद यही है, कि उनके ज्ञान और शक्ति का पूरा उपयोग हमारा देश नही ले सका।

२४ सितम्बर का हम पार्टी द्वारा स्थापित अस्पताल देखने गए। कल कत्ता के शिक्षित वग की सहानुभूति वामपक्षी विचारधारा की ओर है। वहा के तरुण डाक्टरो ने पार्टी के प्रभाव मे आकर अस्पताल खोलने दिया। अस्पताल तीन हो चार साल पहले खुला था, इतने ही मे उसने काफी उन्नति कर ली थी। चिकित्सा और सुश्रूषा का यहाँ अच्छा प्रबन्ध है। पार्टी के मेम्बरा की तो सेवा होती ही है बाहर के रोगिया की देख भाल की भी अच्छी व्यवस्था है। आजकल जबकि रुपया पैदा करने के लाभ मे अस्प ताला और डाक्टरा का बर्ताव असहृदयपूण देखा जाता है यह अस्पताल एक आदश सस्था के रूप म मौजूद है। उसी दिन दोपहर को हम बगाल के महाकवि नजरुल इस्लाम को देखने गए। कवि की आयु उस समय ४६ वष की थी। छ वष पहले उनका मस्तिष्क सुन्न हो गया। तब से वह जीवन मृत है। उस मस्तिष्क ने जिसने कभी अग्निवीणा बजाई थी, अब इस तरह अकमण्य हो गया है। सुन्न हो जाने से उनको दु ख सुख का क्या अनु भव हो सकता है? आज के समाज के लिए क्या यह शोभा की बात है कि उनकी पुस्तकें प्रकाशित कर लोग लाभ उठा रहे है और कवि आर्थिक कठिनाइया म जीवन बिता रहे हैं। उनकी पत्नी प्रमीलादेवी भी एक ही दो साल पहले पक्षाघात मे पीडित होकर चारपाई पकड चुकी हैं। दो पुत्र लेनिन और सुनु याद् सेन पिता माता के इस दुस्सह जीवन मे सहभागी हैं। उस घर को सुखी सजीव होना चाहिए था, लेकिन वहाँ चारो तरफ उदासी और निरीहता दिखाई पडती थी।

कटक—कलकत्ता के व्यस्त प्रोग्राम को समाप्त कर २५ सितम्बर को हम मद्रास मेल मे कटक के लिए रवाना हुए। ३ बजे के करीब कटक पहुँचे। श्री शरद पटनायक और दूसरे साथी स्टेशन पर मौजूद मिले। मैं कटक स्टेशन से तो कई बार गुजर चुका था, लेकिन कटक म रहने का

मौका यह पहली बार मिला था। वहा वे वकील श्री हरिहर महापात्र का आतिथ्य प्राप्त हुआ। कटक वस्तुत नगर-सा नही मालूम होता। वह एक बडा गाँव है। मकानो की अधिकाश छतें फूस की है। टढी मेढी सडक गाव की सडक-सी मालूम होती है। इस ग्रामीण वातावरण के साथ लोगो के स्वभाव मे भी ग्रामीण स्नेह और सरलता दिखलाई पडती है। एक प्रदेश की राजधानी है, जहाँ प्रादेशिक सरकार के बडे-बडे अधिकारी रहते है, किन्तु इस ग्रामीण वातावरण के साथ जनसाधारण से उनका उतना भेद नही मालूम होता, जितना दूसरी प्रादेशिक राजधानियो मे। मैं यह ऊपर-ऊपर ही से देखकर कह रहा हूँ। भुवनेश्वर मे उडीसा की नई राजधानी बनने लगी है। कटक सीग और चादी की अपनी कलापूर्ण चीजो के लिए बहुत प्रसिद्धि रखता है। इनकी बडी माग हो सकती थी, पर हमारी जनता आज जिस आर्थिक स्तर पर है, उसके कारण कलाकार यदि किसी तरह अपना जीवन निर्वाह कर सके, तो भी बहुत है। चाँदी के कलाकारो ने मुझे सिगरेट रखने का एक डब्बा और एक लाल झडा प्रदान किया। उस समय अभी सिगरेट छोडने म कुछ महीनो की देर थी, नही तो सिगरेट की जगह कोई दूसरी चीज प्राप्त हुई होती। उसकी जाली का बारीक काम देखकर मन मुग्ध हो गया।

उडीसा के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर श्री त्रिपाठीजी से बातचीत होती रही। रूस की शिक्षा प्रणाली श्रेष्ठ है, लेकिन हमारी स्थिति म उसे अपनाया कैसे जा सकता है ? भिखारी बाबू दस्तकारी की उन्नति के लिए बडा प्रयत्न कर रहे थे, पर उसकी पूरी उन्नति जिन कारणो पर निर्भर है, वह हमारे यहाँ मौजूद नही है। रेवेनशा कालेज उडीसा का सबसे बडा और पुराना कालेज था, उसमे १४ सौ छात्र छात्राएँ पढते थे। वहा भी बोलना पडा। साहित्य समाज म उत्कल के विद्वानो के सामने सोवियत के बारे म भाषण दिया। मैं हिन्दी मे भाषण दे रहा था, लेकिन उसमे श्रोताओ को समझने मे कठिनाई हुई हो, ऐसा नही मालूम होता था। वस्तुत सुदूर दक्षिण की चार भाषाओ को छोडकर बाकी हमारी सारी भाषाएँ हिन्दी के

इतना नज़दीक हैं, कि सस्कृतवहुल हिन्दी समझने मे लोगो को दिक्कत नही होती। ८ बजे रात को मैं श्री कालीचरण पटनायक के नाटय मन्दिर से "रक्त मिट्टी" नाटक देखने गया। वहाँ भाषा समझने म मुझे कोई दिक्कत नही हुई। यद्यपि वही लिपि मिल्ती, तो सभवत उतनी आसान न होती। उडिया अक्षर नागरी स मिलते जुलते हैं किन्तु आधी जगह घेरनेवाली ऊपर की अधवृत्त शिरोरेखा वडा भ्रम पैदा कर देती है। इस नाटक को देखते वक्त मेरे मन मे ख्याल होता था, कटक आखिर एक वडा सा गाव ही है, और यहा पर यह नाटय मच स्वावलम्वी होकर वर्षों से चल रहा है। इसका श्रेय कालीचरण वावू को भी होना चाहिए। जिन्होने रग मच के लिए अपने सारे परिवार को अर्पित कर दिया था। नाटयशाला की कोई भारी इमारत नही थी। दर्शको के वैठने के लिए फूस का छाया मडप था, और रगमच भी उसी तरह फूस से छाया था। साज सज्जा, दूसरे साघन भी अल्पव्यय-साध्य थे। इस नाटयशाला का देखकर विश्वास होने लगा कि हिन्दी नाट्य के लिए "नौ मन तेल" की शर्त लगाना वेकार है। पटना बनारस, लखनऊ, कानपुर या दिल्ली मे हिन्दी रगमच बनाने के लिए पहले लाखो रुपये की इमारत वनाने की योजना बनती है। यदि उसमे हम सफल भी हो जाएँ तो भी क्या सिर्फ उससे रगमच चिरजीवी हो सकता है? वस्तुत सच्चे कलाकार अपने सब कुछ को न्यौछावर करने के लिए यदि तैयार हो, तो बिना लाखो की इमारत और साज सज्जा के भी रगमच स्थापित हो सकता है यह इस उडिया रगमच के देखने से मुझे विश्वास हो गया। पुरुष का रगमच पर उतरना उतना कठिन नही, किन्तु नाटयकला के दीवाने ने अपने घर की स्त्रियो को भी अभिनय के लिए तैयार किया था यह बडे साहस का काम है। मैं कभी अभिनय, वार्तालाप और सगीत के कौशल, सौन्दर्य तथा माधुरी को देखकर मुग्ध होता और कभी उडिया भाषा के कितने ही प्राचीन क्रियारूपो को। जैसे लिखन्ति का प्रयोग। उडिया सगीत अपना खास महत्व रखता है। मुस्लिम काल से पहले उत्तर और दक्षिण सगीत मे अवश्य भेद रहा होगा। दक्षिणी सगीत बहुत कुछ अपने शुद्ध रूप म आज भी मौजूद

है, जबकि उत्तरी संगीत ने मुस्लिम काल में विदेशी प्रभाव में अपना सुन्दर विकास किया। उड़ीसा सदियों बाद मुस्लिम शासन में आया, जिसके कारण वहाँ की कला और संगीत मुस्लिम प्रभाव से बहुत कम प्रभावित हुए। यहाँ का संगीत उत्तरी संगीत था।

कटक में एक ही नहीं दो-दो नाट्यशालाएँ चलती थीं, और दोनों स्वाव लम्बी थी। दूसरी नाट्यशाला को कालीचरण बाबू के सहकारियों ने स्थापित किया है।

उस समय उड़ीसा के मुख्य मन्त्री श्री हरेकृष्ण महताब और दूसरे प्रभावशाली मन्त्री श्री नित्यानन्द कानूनगो थे। उनसे भी बातें हुई। देश की आर्थिक समस्याएँ और उड़ीसा में आदिवासियों का प्रश्न लेकर खास तौर से विचार विमर्श हुआ। आदिवासियों की शिक्षा के लिए सौ पाठशालाएँ खोलने की योजना थी, लेकिन उस समय तक दस खाली जा चुकी थी। मैंने सोवियत का उदाहरण देते हुए कहा, लिपि देकर उनकी अपनी भाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाए, तभी उसका स्थायी प्रभाव पड़ेगा। वैसे तो हमारा सारा देश ही दरिद्रता और अभाव का शिकार है, पर उड़ीसा की स्थिति सबसे अधिक दयनीय है। यहाँ के नेताओं का ध्यान उधर गया है पर सफलता का मुँह देखने को नहीं मिल रहा था। मुख्य मन्त्री ने बतलाया, उपज को बढ़ाने के लिए हमने पंचायती खेती भी आरम्भ कराई, किन्तु उसके संचालन के लिए जिन अफसरों और दूसरों को रखा, वह पैसे को उड़ा-उड़ाकर बैठ गए। अब सोचते हैं, सरकारी नौकरों की अपेक्षा जन निर्वाचित लोगों के ही हाथ में यह काम देना अच्छा है। अगर खाएँगे भी, तो जनता ही के लोग तो। मेहताब नाक की सीध तक सोचना नहीं जानते, यह इसी से मालूम है, कि उन्होंने प्रवाह के विरुद्ध जाकर विनोबा के भूदान की व्यर्थता को खुले तौर से घोषित किया। २७ सितम्बर को टाउन हाल में अध्यापकों की सभा हुई, जहाँ मैं सोवियत शिक्षा-प्रणाली पर बोला।

श्री ज्ञानवल्लभ महान्ती उड़ीसा के एक वृद्ध महापंडित हैं। संस्कृत

और उत्कल दोनों साहित्य के विद्वान् और प्रेमी है। उ हाने बहुत सी ताल्-पोथियो का सग्रह किया था। मुसलमानो के साथ कागज आने से पहले हमारे देश म स्थायी अभिलेखो पुस्तको को तालपत्र पर लिखा जाता था, और पुर्जों आदि का भोज पत्र पर। उत्तर वाले ताल पर पत्र स्याही से लिखते थे, और दक्षिण वाले सूर्य से ताल पर पत्र अक्षर कुरेदकर उस पर कजली डाल देते थे। उत्तर-दक्षिण की सीमा-रेखा रेखा वही नही जो कि उत्तर-दक्षिण की भाषाओ की। उडीसा भाषा के तौर पर यद्यपि उत्तर का अग है कि तु यहा ताल्पत्र पर सूय से लिखा जाता था। सूय से तालपत्र लिखने की प्रथा आज भी दक्षिण और उडीसा मे प्रचलित है, यद्यपि छापे के कारण उसम कमी पडी है। उडिया भाषा यद्यपि उत्तरी भाषा है, कि तु उसके कुछ उच्चारण दक्षिणी भाषाओ से मिलते हैं। इसका कारण भी है। मराठी और उडिया भाषी लोग सबसे पीछे द्रविड भाषी से उत्तरी भाषा-भाषी बने।

कटक छोटा सा नगर होने पर भी सभाओ की भरमार रही। उसी दिन ब्राह्म समाज म प्रात स्मरणीय राममोहन राय की बरसी के उपलक्ष मे बोलना पडा, और टाउन हाल मे श्री मेहताब की अध्यक्षता मे हुई बडी सभा म सोवियत रूस के ऊपर।

बालासोर—उसी दिन रात को मैं महादेव भाई के साथ बालासोर के लिए रवाना हुआ, जहाँ गाडी अगले दिन छ बजे सवेरे पहुँची। यहाँ भी डिगरी कालेज है, जिसमे छात्र छात्राओं के सामने १०बजे ही भाषण हो गया। बालासार के साथ क्रान्तिकारी काल की कई भव्य स्मृतियाँ बँधी हुई हैं। यहीं कुछ वीर क्रान्तिकारियो ने अग्रेजो की शक्ति से मुकाबिला किया था, और मरणासन्न आहत क्रान्तिकारी न पुलिस के सवाल करने पर उत्तर दिया था मुझे शान्ति से मरने दो। वह शान्ति से मर गया। कितने ही वीरो न अपने तरुण जीवन का उत्सर्ग किया, कि तु क्या वे कुर्बानियाँ निष्फल गईं? आज हम जो स्वतन्त्रता मिली है उसके सबसे बडे कारण यही हुतात्माएँ थीं। बालासार समुद्र तट से सात मील हटकर एक बहुत स्वास्थ्य-

कर जगह में बसा है। सितम्बर के अन्त में चारों तरफ हरियाली दिखाई देती थी। छ घंटे में हमने कुछ जगह देखी, और १२ बजे की ट्रेन पकड़कर खड़गपुर पहुंचे।

●

वर्धा—खड़गपुर से अब महादेव भाई कलकत्ता के लिए रवाना हुए, और मैंने वर्धा के लिए बम्बई मेल पकड़ा। भीड़ इतनी थी, कि सेकंड क्लास—आजकल के फर्स्ट क्लास—में जगह नहीं मिली। रात की यात्रा थी, माता भी था, इसलिए सवा पच्चीस रुपये और खर्च करके रात भर के लिए फर्स्ट क्लास का आश्रय लिया। दिन में बिलासपुर पहुँचते पहुँचते सेकंड क्लास में फिर जगह मिल गई। २६ तारीख को जब मैं छत्तीसगढ़ के भीतर से चल रहा था। वर्षा का अन्त था, इसलिए उस समय की नयनाभिराम हरियाली को देखकर प्रकृति का क्या अंदाजा लगाया जा सकता था। पर हरे-भरे जंगलों से ढँकी पहाड़ियाँ बतला रही थीं, कि भूमि उर्वरा है। जहाँ-तहाँ हरे-हरे धान के खेत लहरा रहे थे। हमारी ट्रेन नागपुर पहुंची। स्टेशन पर हजारों मुसलमान नर-नारी जमा थे। वह अपने को अरक्षित समझकर हैदराबाद जाने के लिए यहाँ आए थे। अभी हैदराबाद अपने को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र मानता था। अंग्रेजों ने जाते वक्त उसे वैसा ही कर दिया था। लेकिन भारत के अंदर में यह स्थिति कब तक रह सकती थी। गुजराती सौराष्ट्र में जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान में मिलने की इच्छा प्रकट की थी, और पाकिस्तान ने उसे स्वीकार कर भारत को युद्ध का निमंत्रण दिया था। देश की यह स्थिति बड़ी खतरनाक थी। अंग्रेजों को गए अभी डेढ़ ही महीने तो हुए थे, हमारे लोग शासन और सेना के यंत्र को अच्छी तरह सँभाल भी नहीं सके थे। इसी समय चारों तरफ आग लग गई थी। अंग्रेज सैनिक अफसर अभी बड़े बड़े पदों पर मौजूद थे। हिन्दू राष्ट्रवादियों ने उनके शासन को हिन्दुस्तान से भगाया, इसलिए उनकी सहानुभूति पाकिस्तान के साथ हो तो क्या आश्चर्य? तब से अब (फरवरी १९५६) में जमीन-आसमान का अन्तर है। भारत उस समय के भीषण

तूफान का सकुशल पार कर काफी आगे बढ़ा है। लेकिन, हमारे राष्ट्र का धार अब भी अंग्रेज साम्राज्यवादियों पर अविश्वास करने के लिए तैयार नहीं है, यद्यपि वह भारत-सम्बन्धी हर महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न के सम्बन्ध में अंग्रेजों को अपने विरुद्ध पाते हैं। हमारे उत्तरी सीमान्त के नक्शों को मैं या कोई भारतीय रिसर्च लेना चाहे तो उसे सैनिक और राजनीतिक कारण बताकर सर्वे डिपार्टमेण्ट देने से इनकार करता है, किन्तु अंग्रेज अफसर उन्हें बिना रुकावट के पा जाते हैं।

शाम के ६ बजे मैं वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में पहुंचा। समिति ने आनन्दजी की देख-रेख में अपने काम का बहुत विस्तार कर लिया था। वर्धा से बाहर पांच एकड़ जमीन लेकर उस पर एक लाख के करीब की इमारत बन गई थी। हिन्दी की हमारे स्वतन्त्र देश को बड़ी आवश्यकता है और आवश्यक काम के लिए किया गया प्रयत्न दुगुना फलदायक होता है। तभी तो कुछ ही वर्षों पहले मामूली सी किराए की कोठरी में आरम्भ होकर समिति का काम इतना आगे बढ़ा। वर्धा में दो ही दिन मुझे रहना था। पहला दिन तो समिति में ही मित्रों से बातचीत करने में गया। अगले दिन—३० सितम्बर—को यहां के दर्शनीय स्थानों को देखा। मगनवाड़ी गांधीवादी उद्योग धंधे का बड़ा केन्द्र है। दस्तकारी की चीजों का कला के तौर पर अपना बड़ा महत्व है, और शिक्षा तथा समृद्धि के अनुसार उसके बहुत बढ़ने की भी गुंजाइश है। पर गांधीवाद चाहता है, वह आधुनिक उद्योग धंधों का स्थान ले। क्या यह पाषाण युग का विद्युत् युग से मुकाबिला नहीं है? यहां के संग्रहालय में बहुत तरह के पुराने चरखे रखे हुए थे। मद्रास की प्रकाशम मिनिस्ट्री ने एक अल्मुनियम का चरखा बनवाकर भेजा था, जो उस युग की चीजों में सजता नहीं था। मिल के कागज की रद्दी से बना हाथ का कागज विचित्र सा मालूम होता था। गुड़, तेल, चावल, आटे के कोल्हू, ओखल और चक्कियां भी थीं। मगनबाड़ी पहले सेठ जमनालाल बजाज का घर था, जिसे उन्होंने गांधी उद्योगशाला बनाने के लिए दे दिया। सेठ खादी और दस्तकारी के यदि भक्त बनें तो कोई बुरा नहीं था। किन्तु चीनी और

कपडे के मिलो के मालिको का यह प्रेम कुछ विचित्र-सा ही मालूम होता था।

दोपहर बाद सेगाँव गए। वर्धा म एक्के नही ताग है किन्तु घोडे सारे मरियल थे। हम जो ताँगा उस दिन मिला था, उसका घोडा इनाम पाने लायक था। बहुत साल पहले छपरा मे राजापुर के महन्त की बैलगाडी और हाथी से पाला पडा था। मैंने सोचा था, वह समय मारने की मशीन हैं। यह तागा भी वैसा ही था। तीन चार मील पर अवस्थित गाधीजी के आश्रम म पहुचने मे न जाने कितना समय लगा। गाधीजी कितने ही समय से इसे छोड गए थे। आश्रम मे सब जगह बडी उदासी दीख पडती थी। तालीमी सघ, चरखा सघ अगर न होते तो और भी बुरी हालत होती। यहाँ की गोशाला ही अच्छी हालत मे दीख पडी। आश्रम म अभी कुछ लोग रहते थे, लेकिन दरोदीवार से हसरत बरस रही थी। लौटते वक्त सामने हनुमान टेकरी पर साधु के स्थान को देखा। मेरे मुह मे अनायास निकल गया—यह है रजिस्ट्री किए और बरजिस्ट्री किए पथ का भेद। इधर रामानन्द के पथ की हजारो कुटिया में से एक यह मजे से सैकडो वर्षों से अपना झडा फहरा रही है और इधर सस्थापक के जीवन मे ही सेवाग्राम का आश्रम ढह मह हा रहा है।

बसिक शिक्षा का भी यहा केन्द्र था, जिसमे १० १५ विद्यार्थी पढते थे। प्रान्तीय सरकार की छात्रवृत्ति मिल रही थी, जिसके कारण भिन्न-भिन्न प्रदेशो से ये तरुण आये हुए थे। अगले दिन राज्यपाल साहब इसका उद्घाटन करनेवाले थे। पूव-बगाल के एक तरुण ने बतलाया—मुझे दो मास आए हुए, अब भोजनालय का सुपरिन्टन्डेण्ट बना दिया गया है। बसिक ट्रेनिंग के प्रयोग के लिए आस पास के गावो मे लडके लडकियो के बेसिक विद्यालय ह। बेसिक विद्यालय एक भारी पाखड भर होता, तो भी कोई बात नही, किन्तु वह तो स्वावलम्बी शिक्षा के नाम पर अधिक खर्चालू शिक्षा प्रणाली है। काम के साथ विद्या पढाना कितना महँगा है? आय दिन लडके-लडकियो को अपने घर से कपडा, भोजन सामग्री लाकर देना पडता

है। मा बाप मनाते है, यदि फीस देकर अवेसिक विद्यालय मे पढाना होता, ता शिक्षा कही सस्ती रहती। हर महीने डेढ-डेढ रुपये का खच हरेक मा-वाप वर्दास्त नही कर सकते। गाधीजी के मुँह से जो निकल जाय, उस पर आँख मूदकर चलना, इसी का यह परिणाम है। गाधीजी के चेलो म कुमारप्पा जैसे अथशास्त्री, विनोबा जैसे भगत, मश्रूवाला जमे दार्शनिक थे जो सभी अपनी अपनी दिशा मे नये प्रयोग कर रहे थे, और सभी अब आश्रम से बाहर थे। आश्रमवासियो को देखकर तो पिंजडापोलकी लँगडी लूली गाएँ याद आती थी। प्यास लगी हुई थी, मैंने कुए से पानी पीना चाहा, पर आश्रमवासी ने उसे न देकर क्लोरिन मिला जल दिया। स्वास्थ्य मे कम से कम आश्रम अवश्य आधुनिक युग के नियमा का पालन करता था।

उस दिन दो भाषण देने पडे, जिनम से एक सोशलिस्ट पार्टी की ओर से नेहरू मदान मे हुआ। सोशलिस्ट पार्टी की यह सभा प्रा० रजन के प्रभाव से हुई। तरुण रजन की कमठना को देखकर मैं वडा प्रभावित हुआ था। कुछ ही समय मे वह अपनी प्रतिभा का जौहर दिखलाने के लिए वडे क्षेत्र म आ गए थे। उनकी लेखनी वडे अधिकारपूर्वक चल रही थी, उनका शिक्षा कौशल अव राष्ट्र के काम आने लगा था। उस समय क्या मालूम था, रजन बहुत दिना तक अपनी प्रतिभा से देश की सेवा नही कर पाएँगे, और उन्हे अकाल ही छोडकर चला जाना पडेगा।

●

१ अक्तूबर का सवेरे हिन्दी नगर मे ही वर्धा के सौ से अधिक शिक्षित पुरुष आए, दो घट तक उनके प्रश्नो का उत्तर देना पडा। १ बजे सेक्सरिया व्यापारिक कार्यालय म भाषण देना पडा, और उसी दिन ३ बजकर ४० मिनट पर ट्रेन पकडी। जवलपुर इटारसी म भी होकर जाया जा सकता था, लेकिन हमने गाडियावाली लाइन पकडी। गोंदिया से छोटी लाइन मिली। सारा रास्ता जगल और पहाडो का था। गाडी म वडे हल्ले हो रहे थे। आनन्दजी भी साथ थे।

बुन्देलखण्ड—जबलपुर मे हमारी ट्रेन समय से पहले ही पहुँच गई थी,

इसलिए स्टेशन पर कोई नहीं मिला। नया परिचय प्राप्त हुआ, और हम ठेकेदार मलहोत्राजी के साथ उनके घर पर नेपियर टौन मे ठहर गये। २ तारीख का बाकी समय यही बीता। ३ तारीख को महाकोशल विद्यालय के छात्रों के सामने बोलना पडा। ११० वर्ष पहले यह विद्यालय अंग्रेजों ने स्थापित किया था। सार्वजनिक सभा मे भाषण देना था, पर वर्षा के कारण वह नही हो सकी। ४ तारीख को नर्मदा को देखने के लिए चले। साथ मे अपनी पत्नी सहित सावी नवजी, श्रीकृष्णदास और आनन्दजी भी थे। नर्मदा के किनारे भेडा घाट पर पहुँचकर संगमरमर शिला देखना चाहते थे, किन्तु वर्षान्त म वहाँ नाव नही जाती थी, इसलिए वह ख्याल छोडना पडा। मोटर भी घाट मे पहले ही पुल के पास छोड देनी पडी। नर्मदा चट्टानो पर से बह रही थी। भारत की सभी नदियां विवाहिता है केवल नर्मदा ही कुमारी है। एक जगह दिखलाकर श्रीकृष्णदासजी कहने लगे कि यहाँ ४०० फुट ऊँची चट्टान छिपी हुई है। भेडाघाट म कच्चे संगमरमर के बहुत तरह के खिलौने मिलते थे। लंगूर और शरीफे यहाँ के जगलो मे बहुत हैं। पकने के समय मीठे शरीफे मुफ्त खाने को मिल सकते थे। हम पास के चौसठयोगिनी मन्दिर देखने गये। चारो तरफ गोल चहारदीवारी है, जिसके साथ कल्चुरी काल की बहुत-सी टूटी फूटी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। आजकालीन तथा उसमे पीछे की मूर्तियो से कल्चुरी मूर्तियाँ अधिक सुन्दर थी। मन्दिर मे नन्दी पर बैठे हरगौरी की मूर्ति थी। कल्चुरी पाशुपत धर्म के माननेवाले थे। उस समय उत्तर मे भी शैव धर्म अपने असली रूप मे जीवित था, और आजकल की तरह भस्म और रुद्राक्ष धारण तक ही वह समाप्त नहीं हो जाता था। एक शिवलिंग को देखकर श्रीमती नवजी न उसके बारे मे पूछा। हम इसी देश मे पैदा होते हुये भी एक दूसरे की संस्कृति स कितने अपरिचित है इसका यह उदाहरण था। शायद उन्होने शिव का नाम नहीं सुना था। हरगौरीवाले मन्दिर की दाहिनी बगल मे घुटन तक बूट धारण किये द्विभुज सूर्य की मूर्ति थी। कल्ह ही मैं अपने भाषण मे बतला चुका था, कि शको के साथ मूर्ति का प्रचार भारत मे हुआ। इस तरह का बूट आज भी जानो मे रूस के लोग

पहनते है। रुसी वस्तुत उन्ही शको की सन्तान हैं, जिनकी पूर्वी शाखा दानुओ से मजबूर होकर मध्य एसिया छोडकर भारत की ओर आई। लौटते वक्त रास्ते मे तेवर गाँव मिला। यही प्रतापी वश कल्चुरी की राजधानी त्रिपुरी थी।

शामको जबलपुर मे एक सावजनिक और एक काग्रेसी सभा मे भाषण देना पडा। आनन्दजी यहाँ से चले गए और मैं मलहोत्राजी के घर १० बजे रात को लौटा।

जबलपुर मे तडके गाडी पकडनी थी। ट्रेन से घटे भर पहले तयार हो जाना मेरा सिद्धान्त है। ४ बजे ही उठकर सामान सँभाला, सवा ५ बजे झुटपुटा ही था, कि मल्होत्राजी के साथ स्टेशन पर पहुँचा। गाडी देर से आई और देर से खुली। अब गन्तव्य स्थान कोच (जिला जालौन) था। सेकड क्लास के टिकट का २५ रुपया से कुछ अधिक लगा। हम कटनी और बीना मे दो जगह गाडी बदलनी पडी। कटनी से जो गाडी मिली वह हरेक स्टेशन मे खडी होनेवाली थी। पजाब की मारकाट की खबरें सुनकर मुसलमानो मे आतक छाया हुआ था। सघी और हिन्दूसभाई केवल इसका प्रचार भर ही नही कर रहे थे, बल्कि वह नेहत्था पर अपनी वीरता दिखाने से भी बाज नही आए। कम्युनिस्टो ने जबलपुर मे इसका विरोध किया था, जिस पर सघियो ने कइयो को आहत किया। पजाब की खबरो को सुनकर हिन्दू मुसल्माना के विरुद्ध सभी तरह की बातें सुनने के लिए तैयार थे। काग्रेस वाले इस समय मौन थे। इसी कारण नागपुर मे उस दिन चार हजार शरणार्थी मुसलमानो का स्टेशन पर हैदराबाद जाने की ट्रेन की प्रतीक्षा करते देखा। जबलपुर से भी अपनी चीजो को मिट्टी के मोल बेचकर बहुत से मुसल्मान भाग खडे हुए। दहा दमोह और सागर के स्टशनो मे हमारी ट्रेन पर कई सौ मुसलमान नर नारी अपने बच्चो सहित चढे। मालूम हुआ, इन शहरो के दो तिहाई मुसलमान भाग चुके हैं। सघी खबर उडा रहे थे, भूपाल के अमुक गाव मे मुसलमानो ने दो सौ हिन्दुओ को मार डाला। लोग विश्वास करने के लिए तैयार थे। उस दिन—५ अक्तूबर—को सागर मे ८६

मुसल्मान मारे गय थे। मालगुजार—जमीदार—अपने गावा से मुस्लिम किसानो को निकाल बाहर करके धमवीरता का परिचय दे रह थे। मध्य-प्रदेश की सरकार को लकवा-सा मार गया था। अब उसकी नीद जरा जरा खुली थी, और शान्ति-स्थापना के प्रयत्न कर रही थी।

बीना मे हमारी साढे तीन घटे लेट ट्रेन शाम को साढे ५ बजे पहुँची। दूसरी गाडी १० बजे रात को मिली। झाँसी मे आगे की ट्रेन तैयार थी। सेकड क्लास का डिब्बा भीतर से खूब बन्द था, बहुत बहुत मुश्किल से खुलवाया। बतलाया गया, आजकल ट्रेनो मे छुरेबाजी हो रही हैं धमवीर लोग आदमिया को मारकर या ऐसे ही चलती ट्रेन से फेंक देते हैं।

बुदेलखण्ड के एक बडे भाग का पुराना नाम दशाण कालिदास के समय भी मशहूर था, जो जबलपुर से काल्पी तक फैला हुआ था। जमुना और नमदा यही बहती थी। दशाण का नाम अब भी वहाँ की धसान नदी मे मौजूद हैं। कृषि और खनिज दोनो से प्राचीन दशाण (बुदेलखण्ड) की भूमि समृद्ध है। नये मध्य प्रदेश मे बुन्देलखण्ड के कितन ही टुकडा को मिला दिया गया, पर अब भी बाँदा, हमीरपुर, जालौन झासी के जिले को उत्तर-प्रदेश मे ही रखा गया है। आज भी इन चारो जिलो को मध्य प्रदेश के साथ मिलाकर दशाण को एकताबद्ध किया जा सकता था, पर स्थानीय सस्कृतियो और भाषाओ की अभी पूछ कौन करता है? यमल मालव-दशाण मे मालव अपनी काली मिट्टी और अन्न के लिए प्रसिद्ध है। युगो से कहा जाता रहा, माल मे कभी अकाल नही पडता। मेवाड और बुदेलखण्ड के लोग अकाल पडन पर माल्वा का रास्ता लेते थे, लेकिन कलयुग मे किसी भी बात का ठिकाना नही, माल्व मे भी अकाल पडे, ता क्या अचरज?

झाँसी से एरच हाते हमारी ट्रेन एट पहुँची। एरच एरकच्छ के नाम से बुद्धकाल मे भी एक प्रसिद्ध नगर था। आज भी उसकी धरती के भीतर प्राचीन सस्कृति की बहुत सी सामग्री छिपी पडी है। अपने बुन्देलखण्ड के निवास के समय म यहाँ आया था। एट मे ६ बजे पहुचकर दो घण्ट प्रतीक्षा करनी पडी, तब काच की गाडी आगे रवाना हुई। इस ट्रेन मे क्लास या

वग का भेद नही है। पुराने जीवन की स्मृतिया जागत हो रही थी। इसी ट्रेन मे प्रथम विश्व युद्ध के समय यात्रा करते समय मेरा तरुण गम खून उबल पडा था, जबकि किसी अग्रेज-अफसर के चपरासी ने जगह छोडने के लिए कहा था। आज वे अँग्रेज नही थे। कोच मे उतरकर अपने पुराने मित्र श्री पन्नालाल और श्यामलाल के घर पहुचा। घुमक्कडी जीवन म अपना घर छोडने पर भी जगह-जगह बहुत से अपने घर और परिवार मिले थे जिनम पन्नालाल परिवार भी था। वस्तुत उन्ही पुरानी स्मृतियो को जागत करने के लिए मैं यहा आया था। पन्नालालजी के पिता स्वामी ब्रह्मानन्द से मिलना था, अब वह ८५ वप के हो चुके थे।

कोंच—अगले दिन—७ अक्तूबर—स्कूल मे व्याख्यान दिया, फिर साढे ५ बजे यहा के गण्यमान्य सज्जनो के साथ जलपान की दावत मे शामिल हो ८ बजे रात तक गोष्ठी चलती रही। स्वामी ब्रह्मानन्द का गाव महेशपुरा यहाँ से दस मील पर है। गाव म अनुकूलता न देख करके उनके दोनो पुत्र महेशपुरा छोडकर कोच के कस्बे मे आ गए। लेकिन, स्वामी ब्रह्मानन्द को महेशपुरा न छोडा नही। वह वही रहते थे। शरीर अब अस्थि पजर मात्र रह गया है चलना डोलना मुश्किल है। महेशपुरा मे अपनी छोटी सी कुटिया थी, उसी म रहते अपना भोजन आप पका लेते थे। उन्होने अपने दादा को देखा, और अब परपोता को देख रहे थे, अर्थात् ६ पीढी उनके सामने से गुजरी। उनके दोनो पुत्रो के परिवार म आज १० व्यक्ति थे। गहोई वैश्य अग्रवालो की तरह पीढियो से निरामिष भोजी थे किन्तु समय ने सब बातो को उलट दिया। उनके पौत्र मेधातिथि अब आमिषाहारी थे। स्वामी ब्रह्मानन्द तथा श्री रामदीन पहाडिया थोडी सी हिन्दी जानते थे, और महेशपुरा म शान्तिपूर्वक रहते और लेन-देन का व्यापार करते थे। इतनी कम शिक्षा और शहर से इतने दूर पर भी विचार पहुँच गए। रामदीन पहाडिया आयसमाजी हो, आय समाज की शिक्षा को अपने जीवन में लाने की कोशिश करने लगे। उन्होने दूकान म दाम के बारे म एक बात का नियम दृढता से पालन किया। पहले कुछ कठिनाई हुई लेकिन

उसे पीछे लोगो ने जान लिया। जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा। अपनी पत्नी और बहू को भी जनेउ पहनाया, और घर मे स्त्रिया भी नियमपूर्वक हवन-सध्या करने लगी। रामदीन पहाडिया अपने समय के क्रान्तिकारी थे। पर जात पात की सीमा से बाहर नही गये। छूतछात नही मानते थे। उन्होने और उनके पुत्रो ने आर्यसमाज के लिए हजारो रुपये दान किये।

१६१६ मे जब मैं महेशपुरा पहुँचा, तब वह सन्यासी बन चुके थे। सन्यासी बनने पर भी घुमक्कडी की प्रवृत्ति न होने के कारण वह महेशपुरा को नही छोडते थे। आज अपनी चौथी पीढी मे वह कितना परिवर्तन देख रहे थे? पुत्रो पौत्रो को अण्डा खाते देखकर क्षुब्ध हो जाते थे, लेकिन कौन दादा अपने पोते को अपने काबू मे रख सकता है? स्वामी ब्रह्मानन्द चाय को हानिकारक समझते थे स्वास्थ्य के ख्याल से भी और पैसे के ख्याल से भी। पोता के पास चाय का सेट था, और दिन मे दो बार चाय पिये बिना उनका काम नही चलता था। खर्च के बारे मे शिकायत करने पर एक पोते ने कहा—"यदि हम अधिक खर्च करते हैं, तो अधिक कमाते भी हैं। आपके युग मे स्त्री के पास दो मोटी झोटी साडी काफी समझी जाती थी। हमारी स्त्रियो को देखे, हरेक के ट्रक मे एक दजन अच्छी-अच्छी साडियाँ है।" पुरानी पीढी के पास इसका क्या जवाब था? मैंने स्वामीजी से कहा—"कुढने की जरूरत नही, हरेक पीढी को अपना जिम्मा लेना चाहिए। नई पीढियाँ हमेशा इसी तरह परिवर्तन करती आई हैं।" चार पीढी का अपनी आखो के सामने देखना जरूर कुढन पैदा करता है, लेकिन यह बुद्धिमानी नही है।

८ अक्तूबर को कोच के प्राचीन इतिहास की ओर मेरा ध्यान गया। कोच, जैसे हमारे देश मे सैकडो नगर हैं, जो अपने समय मे काफी महत्व रखते थे, लेकिन इनके इतिहास का कोई उल्लेख नही मिलता। कोच का नाम ही बतला रहा था, कि यह मुस्लिम काल का नही है। सस्कृत मे शायद यह कौच नगर रहा हो, पर कौच पक्षी के नाम पर किसी नगर के होने का पता नही लगता। पूछने पर बारहखम्बा स्थान का पता लगा।

८ अक्तूबर को एक काफी जमात मेरे साथ वहाँ पहुंची। बारहखम्बा के पास बडी माता का मन्दिर है, जिसमे गुप्तकालीन या तुरन्त बाद की छठी या सातवीं सदी की पाषाण मूर्तियाँ हैं। सुन्दर छाती और भुजमूल गुप्त और पश्चात् गुप्तकाल की मूर्तिकला की विशेषता है। वह यहाँ के प्रतिहारो की मूर्ति मे दिखलाई पडी। एक छोटी वराह की मूर्ति भी, इसी काल की बतलाती है। खण्डित हरगौरी बतला रहे थे कि यहाँ पाशुपतो का मन्दिर था। बारहखम्बा के किसी प्राचीन मन्दिर के खम्बो को लेकर बनाया गया जो शायद ११ वी सदी मे। पास का तालाब पुराने मन्दिर का ही है। गाव की माता के पास की मूर्तियो मे एक जैन मूर्ति थी। कोई बौद्ध मूर्ति देखने मे नही आई पर पिछले सौ वर्षो मे मूर्तियो की लूट मची हुई है। न जाने कितनी मूर्तियाँ यहाँ से उठ गईं। काच नगर गुप्तकाल मे बडा समृद्ध रहा होगा। यहाँ भुक्तिपति राज्यपाल नही, तो विषयपति (जिलाधीश, कुमारामात्य) जरूर रहता रहा होगा। दक्षिणापथ की ओर जानेवाला वणिक माग शायद यही से जाता रहा, इसके कारण यह धनधान्य-सम्पन्न बस्ती रही होगी।

आज कोंच की आबादी २० हजार थी। नगरपालिका थी जिसकी आमदनी एक लाख सालाना थी। पिछले तीन सालो से प्राइमरी शिक्षा निःशुल्क रही और अब वह अनिवाय भी कर दी गई थी। नगरपालिका के सचिव कह रहे थे आर्थिक कठिनाइयो के कारण हम नगर के सुधार का कोई महत्वपूर्ण योजना अपने हाथ मे नही ले सकते। उनके पूछने पर मैंने सोवियत की नगरपालिकाओ का वर्णन किया, तो उन्हे स्वप्न की बात मालूम हुई। हाँ, २० हजार आबादीवाले सोवियत के किसी नगर की यह दशा थोडे ही हो सकती थी। कर के बारे मे पूछने पर हमने बतलाया, वहाँ की नगरपालिका ही नगर के सारे घरो की स्वामिनी है। यहाँ भी यदि सारे घर आपकी नगरपालिका को मिल जाए तो वह कितनी धनी हो जाएगी?

कोंच मे और उसके चौक मे कितनी ही बार मै व्याख्यान दे चुका था, पर जिनके सामने व्याख्यान दिये, उनमे अब बहुत कम रह गये थे। नई

पीढ़ी मे पुस्तकों से शौक रखनेवाले ही राहुलजी को जानते थे। हर पीढ़ी से नये परिचय प्राप्त करने की जरूरत होती है।

६ अक्तूबर को कोंच से विदाई ली। विदा करते स्वामी ब्रह्मानन्द रो पड़े। अब फिर मिलने की आशा कैसे हो सकती थी, "जो बिछुड़ गये सो बिछुड़ गये।" हम दोनों का कितना घनिष्ट सम्बन्ध था। एक धुन में महीनों हम साथ घूमा करते थे, साथ स्वप्न देखा करते थे—आर्यसमाज का घर-घर मे प्रचार करना है, देश विदेश में उसके सन्देश को पहुँचाना है। स्वामी ब्रह्मानन्द अब भी आर्यसमाजी थे, अब भी वेद, ईश्वर और ऋषि दयानन्द की शिक्षा पर उनकी निष्ठा थी। इन ३१ वर्षों में कहाँ से कहाँ पहुँच गया। हमारे विचारों में भारी भेद था, लेकिन स्नेह अब भी वैसा ही था। स्वामी ब्रह्मानन्दजी से विदा होते मेरा दिल भी भारी हो गया। जालौन जिला वर्षों मेरी कर्मभूमि रहा—"यहाँ नाथ मम पगपग जोहा।" पग पग जोही जगहों को देखने की तीव्र इच्छा होती है, पर समय कहाँ से लाऊँ। अब समय की सावर्ची काम मे नहीं लाई जा सकती। श्री बेनीमाधव तिवारी उसी समय के मेरे परिचित हुए थे। उस समय उन्होंने स्वराजी आल्हा बनाया था। वह छोटी पुस्तिका के रूप में छपा भी था। फिर उन्होंने कांग्रेस मे काम किया, जेल गये, लेकिन यह सब उस समय हुआ, जब मेरा सम्बन्ध जालौन जिले से टूट चुका था। उन्हीं के साथ मोटर पर मैं उरई गया। घंटे भर में १९ मील पहुँच गये। मेरे रहने के समय अभी मोटरों का प्रचार नहीं हुआ था। खेतों में हरी-भरी फसल खड़ी देख हृदय उल्लसित हो जाता, और खाली खेत देखकर अवसन्न। आजकल के जमाने मे दुर्लभ है, इसलिए ऐसा होना ही चाहिए। उरई अब १० हजार से बढ़कर १८ हजार का नगर हो गया था, पानीकल भी लग गई थी, किन्तु सभी घरों में उसका लगना तभी हो सकता था, जब कोई नागरिक दरिद्र न हो, वहाँ के दो हाई स्कूलों में एक इंटर तक था। जालौनवालों को जब मालूम हुआ, तो वह भी मुझे लेने के लिए पहुँचे। उनको निराश कर मैं बहुत दुःखी हुआ। सचमुच उनसे भी अधिक जालौन जाने की मेरी इच्छा थी। शाम को सार्वजनिक सभा

हुई। पण्डित अलगूराय शास्त्री सयोग से उरई पहुचे हुए थे। वह प्रातीय काग्रेस के उप प्रधान और प्रात के एक बडे काग्रेसी नेता थे। आजमगढ जिले के होने से उनके साथ एक विशेष आत्मीयता होनी स्वाभाविक थी। पहले उन्हे मैंने दुबला पतला देखा था, अब मोटे हो गये थे। मैं कम्युनिस्ट था और वह काग्रेसी, दोनो के विचारो मे छत्तीस का सम्बन्ध था, लेकिन वैयक्तिक सम्बन्ध पर उसका क्या असर हो सकता था। ऐसे मधुर सम्बन्ध को आदमी को खोना नही चाहिए।

३

# कलम घिसाई

१० अक्तूबर को पौने ६ बजे सबेरे की गाडी घण्टे भर देर से आई। जिस कम्पार्टमेन्ट मे मैं था, उसी म गोरखपुर निवासी एक मुसलमान सैनिक अफसर भी थे। वह नेहरू के दर्शन से बडे प्रभावित थे। आज की स्थिति म दूसरे मुसलमानो की तरह वह भी बहुत खिन्न और निराश थे। कहते थे—"मनुष्यता कहाँ है?" लेकिन वह रही कब? वह कह रहे थे—"भारत फिर परतन्त्र होगा, पाकिस्तान से लडाई होगी, दोनो म से एक पराजित और अधीन होकर रहेगा।" उस समय की स्थिति देखकर वह इसी तरह सोच सकते थे। कह रहे थे—"युक्त प्रान्त की सरकार मुसलमानो को नौकरियो से निकाल रही है, बायकाट के कारण मुसलमान व्यापार भी नही कर सकते।" उनका यह भी कहना था कि हमे हिन्दू मुसलमान की वेष-भूषा हटाकर यूरोपियन पोशाक अपनानी चाहिए। वेष भूषा के हटने से हिन्दू मुसलमान का बाहरी भेद मिट जाएगा, यह ठीक है, मैंने कहा—वह खर्चीली होगी। क्यो न हिन्दुस्तानी पोशाक एक सी दोनो अपना लें। उस वातावरण म कोई किसी पर विश्वास कैसे कर सकता था? चलती ट्रेनो मे छुरा मारकर निरीह मुसाफिर को ट्रेन से बाहर गिरा दिया जाता था। महीने भर की यात्रा म मैंने इस भीषण साम्प्रदायिक स्थिति को देखा। बनारस, छपरा और पटना म हिन्दू मुसलमानो म हल्का सा तनाव था,

यद्यपि सघी और हिन्दू सभाई अपनी कोशिश से बाज नही आ रहे थ। कलकत्ता म और भी हलका तनाव था। कटक, बालासोर बिलकुल शान्त थे, वर्धा मे जरा जरा और जबलपुर मे ज्यादा तनाव देखा। दमोह और सागर मे तूफान मचा हुआ था, और कोच तथा उरई मे हलका सा तनाव।

फीस बढाने से विद्यार्थियो मे क्षोभ मचा हुआ था। हमारे अधिकाश विद्यार्थियो की आर्थिक स्थिति वस्तुत इतनी बुरी है, कि वह पट काटकर बडी मुश्किल से पढते है। उस पर से जब फीस बढा दी जाती है तो वह क्यो न उत्तेजित हो जाएँ। इस समय उन्होने जगह जगह हडतालें और प्रदर्शन किए थे, शिक्षा मत्री श्री सम्पूर्णानन्द के मकान के जगलो को तोड दिया था। गिरफ्तारी शुरू हुई। इतना ही तक नही, लाठी बरसने लगी, विद्यार्थियो पर घोडे दौडाय गए। यह सब अँग्रेजो के वक्त की सरकार का ही अनुकरण था। एक लडका मारा गया, बहुत से घायल हुए। जेल म बद विद्यार्थियो के साथ वही निष्ठुर बर्ताव हुआ, जैसा कि अँग्रेजो के सामने होता था। विद्यार्थी-आन्दोलन उस समय सारे प्रदेश मे जोर शोर से फैला हुआ था।

**प्रयाग**—कानपुर म ट्रेन बदलकर ८ बजे रात को मैं प्रयाग पहुचा। कर्फ्यू नही था नही तो डा० बदरीनाथप्रसाद के बँगले मे पहुँचने मे दिक्कत होती।

अब प्रयाग मे ४६ दिन रहकर कलम का काम करना था। रूस मे रहते मैंने मध्यएसिया के उपन्यासकार सदरुद्दीन ऐनी के कई ग्रन्थ पढे थे। वह मुझे बहुत पसन्द आए थे। उनमे वैसे ही समाज के महान् परिवर्तन की बातें बतलाई गई थी, जैसा हमारे यहा अब भी था। इसलिए उपन्यासो का हमारे देश के लिए विशेष उपयोग भी था। लेनिनग्राद म रहते ही मैंने ऐनी के दो बडे-बडे उपन्यासो— दाखुदा" और "गुलामान' (जो दास थे)— का अनुवाद कर डाला था। ताजिक फारसी से उर्दू म करने मे बहुत से मूल शब्दो को रखा जा सकता था, इसलिए मैंने अनुवाद उर्दू मे किए। यहाँ आने पर मालूम हुआ, उर्दू का प्रकाशक नही मिल सकेगा। उर्दू पुस्तकें अब

बहुत कम प्रकाशित होने लगी हैं। मेरे हिन्दी के प्रकाशक जोर देने लगे, कि उन्हें हिन्दी में कर दूँ, तो वह तुरन्त छप जाएँगे। मैं सबसे पहले "दागुदा" में लग गया, १२ अक्तूबर से, और २५ अक्तूबर को उसे समाप्त कर दिया। जब ३१ को "दागुदा" का पहला प्रूफ आया, तो और भी प्रसन्नता हुई।

डा० बदरीनाथप्रसाद के यहाँ मैं बहुत आराम से था, लेकिन बहुत से लोग मिलने-जुलने आया करते थे, और काम का बहुत-सा समय बातचीत में चला जाता था। मुझे ऐसी जगह चाहिए थी, जहाँ मैं निर्विघ्न लिखने का काम कर सकूँ। यही सोचकर १५ अक्तूबर को मैं दारागंज में राय रामचरण के निवास में चला गया। दारागंज में परिचितों की कमी नहीं थी, पर रायसाहब केवल मेरे रहने-खाने-पीने का ही बहुत ध्यान नहीं रखते थे, बल्कि इसके लिए भी सतर्क थे, कि निश्चित समय के अतिरिक्त और समय कोई मिलने न आए। अपने हाथ से लिखने का अभ्यास छूटा तो नहीं था, पर दिन पर दिन मेरा हस्ताक्षर बिगड़ता गया था, स्वयं लिखने में कठिन-मालूम होता था। लिखने के लिए नागार्जुनजी ने अपनी सेवाएँ अर्पित की, पर मुझे यह उचित नहीं मालूम होता था। नागार्जुन जब स्वयं साहित्य-सृजन कर रहे थे, उनकी लेखनी का लोग लोहा मानने लगे थे। उनसे लिपिक का काम लेना मुझे ठीक नहीं मालूम होता था, पर अभी तो मजबूरी थी। अक्तूबर का मध्य था, लेकिन पंखे के बिना काम नहीं चलता था। सन्तोष था, जाड़ा जल्दी ही आ जाएगा।

दारागंज में राय रामचरण ने मेरे लिए जो निवास निश्चित किया था, वह सचमुच तल्लीनता का स्थान था। कोई शिकायत नहीं हो सकती थी, और पाखाना कुछ ठीक नहीं था, लेकिन उसका कारण मेरा बहुत काल तक सोवियत में रहना था। दिन भर बिजली का पंखा चला करता, साथ और प्रातः को तापमान अनुकूल हो जाता।

१८ अक्तूबर को रामलीला की धूमधाम थी। इधर कितने ही सालों तक हिन्दू मुसलमान वैमनस्य के कारण अँग्रेजी सरकार ने प्रतिबन्ध लगा

दिए थे, जिसके कारण रामलीला बन्द रही। अँग्रेजो के जाने का यह शुभ फल तो मिला।

यहा आने काशी के आचाय (द्वितीय खण्ड) के बौद्ध दर्शन का प्रश्न पत्र बनाना पडा। व्यस्त रहने के कारण यद्यपि समय निकालना मुश्किल था, लेकिन काशी की परीक्षाओ मे बौद्ध दशन को सम्मिलित कराने म मेरा भी हाथ था, इसलिए इन्कार कैसे कर सकता था। २० अक्तूबर को डा० उदयनारायण तिवारी और राय रामचरण अग्रवाल कार से बनारस जा रहे थे, रास्ते म कार उलट गई। सौभाग्य से चोट कम आई। आदमी का जीवन दरअसल हर समय अपना अन्त लिए चलता है। न जाने किस समय भीषण दुघटना हो जाए। २१ तारीख को रामलीला की चौकिया निकली। गोस्वामी तुलसीदास के समय से पहले से रामलीला होती आई है, पर कालबली के कारण किसी चीज का रूप एक सा नही रहने पाता। प्रयाग म रामलीला के जुलूस के साथ चौकियो की परम्परा चल पडी है। हरेक मुहल्ला अपनी अपनी चौकियो को सजाने मे होड लगाता है। चौकिया म केवल रामायण के दृश्य नही होते, बल्कि आधुनिक भावो को व्यक्त करने-वाली मूर्तिया सज्जित की जाती है। जुलूस बडी कोठी के सामने से निकला जिसके सामने ही उस कोठी का फाटक था, जिसम मैं रहता था। यह कहने की आवश्यकता नही, कि उसके दर्शन का लाभ मैं सवरण नही कर सका।

मेरे अनुज श्यामलाल के पुत्र उदयनारायण मेट्रिक पास करके दिल्ली मे नौकरी करने लगे थे। २८ अक्तूबर को वह आए, बोले मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया, अब पढना चाहता हू, प्रोफेसर बनना चाहता हूँ लेखक होना चाहता हूँ। मैंने कहा खर्च की चिन्ता मत करो, पढो और सादर पढो। अक्तूबर के अन्त मे आशा तो नही थी, कि इस साल वह एफ० ए० की परीक्षा म बैठ सकेंगे, लेकिन उसके लिए कोशिश करने के लिए कह दिया। प्रसन्नता हुई, जब १ नवम्बर को उनकी फीस जमा होकर फाम स्वीकृत हो गया। यदि पढाई न छोडे होते, तो इस साल वह बी० ए० म बैठते, अर्थात् दो साल का नुकसान हुआ था।

२५ अक्तूबर को "दाखुदा" समाप्त करने के बाद "सोवियत भूमि" के दूसरे सस्करण मे हाथ लगाना था। एक तरह सारी पुस्तक का फिर से लिखकर पहले से डयौढा करना था। रोज थोडा-सा समय मित्रो मे मिलने-जुलने के लिए रखा था और कुछ समय बाद रविवार को छुट्टी रखने का नियम भी मान लिया। उस दिन मित्रो मे मिलने मैं भी बाहर निकलता था। प० श्रीनारायण चतुर्वेदी दारागज मुहल्ले ही मे रहते थे। २६ के रविवार को सवेरे उनके यहा पहुँचा। चतुर्वेदीजी साहित्यकार और साहित्य प्रेमी ही नही हैं। बल्कि उनके यहा साहित्यकारा का दरबार लगा दिखाई पडता। साहित्य और साहित्यकारा की चर्चा ही वहा ज्यादा सुनाई देती। कितने ही तरुण और प्रौढ साहित्यकारा का चतुर्वेदीजी ने प्रोत्साहन और सहाय्य देकर आगे बढाया। आठवी नवी शताब्दी के एक चतुर्वेदी ने पूर्वी कम्बोज म जाकर बहुत सम्मान प्राप्त किया राजा का दामाद बने। उन्हान अपनी मथुरा को हजारा वेदपाठिया के स्वरा से गुजित बतलाया है। अब माथुर चतुर्वेदियो म वेदपाठी शायद ही कोई मिले। वल्लभ सम्प्रदाय से आग बढने वाले चतुर्वेदिया मे शायद प० श्रीनारायण के पिता श्री द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी ही है, जो रामानुज सम्प्रदाय म दीक्षित हो उत्तर के रामानुजिया के नेताओ मे से थे। पिता ने सरस्वती की सेवा की योग्य पुत्र उनसे पीछे कैसे रहता? चतुर्वेदीजी का साधना के लिए पूरा समय देना मुश्किल था। पर अपन सरकारी कर्तव्य को भी वह चुस्ती के साथ निर्वाह करते थे, और मित्रा के लिए भी समय देन मे बडी साखर्ची रहते थे।

उसी दिन दोपहर बाद श्री महादेवीजी के पास भी गया। महादेवीजी नारी होन के नाते हिन्दी काव्य म आगे नही गिनी जाती बल्कि उन्हाने अपना स्थान अपनी योग्यता से बनाया है। मैं निस्सकोच कह सकता हू कि पत प्रसाद निराला के बाद उस पीढी के सर्वोच्च कविया मे महादेवीजी प्रथम हैं। सावधानी के साथ रचना करने मे तो प्रसाद के बाद ही उनका नम्बर आता है। बातचीत म निरालाजी का जिक्र छिड गया। निरालाजी को कितन लोग पागल समझते थे, और उनके विचार से उन्हे राची ले

जाना चाहिए। मैं ऐसा नहीं समझता। मैं उन्हें चौरासी सिद्धों की कोटि में समझता हूँ जिनका जाग्रत और स्वप्न का भेद मिट गया है। निराला कवि के तौर पर ही नहीं, मानव के तौर पर भी बेजोड़ हैं। इस समय वह उन्नाव में थे, इसलिए मुलाकात नहीं हो सकी।

उसी दिन "सरस्वती" के भूतपूर्व सम्पादक प० देवीदत्त शुक्ल के दर्शनार्थ गया। दिसम्बर १९४४ से ही उनकी आँखें जाती रहीं, तीन साल से वह इसी स्थिति में थे। जीवन भर साहित्य की सेवा करते आज जिस तरह का जीवन उन्हें बिताना पड़ रहा था, उससे दुःख हो रहा था। मेरे दर्शन के लिए जाने से उन्हें आत्म सन्ताप हो सकता था, लेकिन इससे उनकी क्या सहायता हो सकती थी? हमारे यहाँ मृतक श्राद्ध की प्रथा है शायद इसी लिए हम जीवित श्राद्ध करना नहीं जानते। जहाँ तक शुक्लजी का सम्बन्ध था, वह अपनी स्थिति से असन्तुष्ट नहीं मालूम होते थे। आखिर तीन साल से वह इसी का अभ्यास कर रहे थे। द्विवेदीजी के बाद सबसे अधिक समय तक "सरस्वती" के कर्णधार प० देवीदत्त शुक्ल रहे। मुझे तो उनका और भी अधिक कृतज्ञ होना था, क्योंकि देर से जब मैं हिन्दी पत्रिकाओं में लिखने लगा तो सबसे पहले सम्बन्ध "सरस्वती" से हुआ। शुरू से ही शुक्लजी ने मेरे लेखों का स्वागत ही नहीं किया, बल्कि औरों के लिए माँग करते रहे। यह उस समय की बात है, जबकि मैं पहली बार लंका गया था।

[illegible] से लन्दन होकर मैं भारत लौटा था। लन्दन में ही एक छोटा-सा किन्तु शक्तिशाली रेडियो खरीद लिया था। शाम के वक्त नियमपूर्वक मैं भारत और पाकिस्तान से प्रसारित होने वाले समाचारों को सुनता। उस वक्त कश्मीर पर [illegible] पाकिस्तान रेडियो जहर उगल रहा था। जूनागढ़ के [illegible] प्रस्ताव ने मंजूर कर लिया, [illegible] भारत के भीतर जूनागढ़ पाकिस्तान का है, कश्मीर के राजा के हस्ताक्षर करने से क्या होता है, वहाँ के अधि[illegible] [illegible] मुसलमान हैं, [illegible] वह पाकिस्तान का है। रेडियो प्रचार से [illegible] ने [illegible] पाकिस्तान [illegible] आना [illegible] और प्रजा [illegible] कश्मीर पर [illegible] के लिए [illegible] दिया, [illegible] २२ अक्तूबर को कश्मीर के राजा [illegible]

भारत संघ में शामिल होने का निश्चय कर लिया।

अब के २६ अक्तूबर को शरदपूनो पड़ी। शारदी पूर्णिमा का हमारे यहाँ हमेशा नयनाभिराम माना जाता था। राजा लोग इस समय कौमुदी-महोत्सव मनाते थे। शरद पूनो को उस समय कौमुदी कहा जाता था। कौमुदी महोत्सव का निषेध कर देने पर चाणक्य और चन्द्रगुप्त का जो क्षणिक वैमनस्य हुआ था, उसका वर्णन विशाख ने "मुद्राराक्षस" नाटक मे किया है। अयोध्या में शरद पूनो को लोग अब भी धूम-धाम से मनाते है, लेकिन वह अधिकतर पत्थर या हाड-मास के राम-लक्ष्मण-सीता की झाँकी दिखलाने तक ही सीमित रहती है। सारे देश मे शरद पूनो को निरभ्र आकाश हो, यह आवश्यक नही है, लेकिन मुझे तो उत्तरी भारत की इस पूर्णिमा के जितने भी स्मरण है, उनमे आकाश निरभ्र ही मिला था। कौमुदी महोत्सव राजाओ का ही नही जनता का भी और उससे भी अधिक कलाकारो का उत्सव है। हिन्दी-क्षेत्र में उस दिन की फूल सी छिटकी चादनी को ऐसे ही जाने देना अपराध है। कवियो का यह स्वाभाविक महोत्सव है पर अभी उनका इस तरफ ध्यान नही गया है।

१ नवम्बर को देहरादून के एक मित्र के पत्र से मालूम हुआ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के लिए मेरा भी नाम लिया गया है। यह भी पता लगा, कि मेरे मित्रो ने उसके लिए निवेदन-पत्र भी छापकर मतदाताओ के पास भेजा है। कई साल पहले भी मेरा नाम सभापति के लिए लिया गया था। जब मुझे मालूम हुआ, तो बिहार के साहित्यकारो से मैंने बतला दिया—मैं नही चाहता। लेकिन, तब काफी देर हो चुकी थी, और मेरा अभिप्राय सिर्फ बिहार तक ही कार्यकारी हो सका। मतदान हुए और कुछ ही वोटो की अधिकता से श्री जमनालाल बजाज सभापति चुने गए। उनकी पीठ पर गाँधीजी का वरदहस्त था, तब भी यदि मैंने बिहार के मित्रो को न रोका होता तो परिणाम दूसरा ही निकलता। इस समय मेरे मित्रो ने इसी-लिए चुपचाप निवेदन-पत्र निकाला था, कि मालूम होने पर मैं विरोध करता हूँ। उसका समय बीत चुका था। २ नवम्बर को म...

इस साल सेठ गोविन्ददास को १४५ और मुझे १८० वोट मिले थे। उस बार भी एक सेठ से मुकाबिला हुआ था और इस बार भी। अब अपने सम्मेलन को भी समय देना पड़ेगा, इस कठिनाई का सामना करना था और मैंने लिखने के लिए काफी बड़ी योजना बना ली थी। इसी बीच सभापति के भाषण लिखने का भी भार आ पड़ा। मैं चाहता था, कि "सोवियत भूमि" के बाद "मधुर स्वप्न" उपन्यास में हाथ लगाऊँ, किन्तु उसका समय दो वर्ष बाद आने वाला था।

फिल्मों से मेरा द्वेष रही है, किन्तु भारतीय फिल्मों में बहुत से ऐसे ही देखने को मिले, जिन्हें मैं कुछ ही मिनट देखने के बाद ऊब जाता, इसीलिए किसी फिल्म की जब तक जबर्दस्त सिफारिश न हो, तब तक मैं खामखाह सरदर्द लेने के लिए तैयार नहीं होता। ९ नवम्बर को मैं मित्रों के साथ "मेघदूत" देखने गया। कालिदास की महान् कृति पर यह फिल्म बनाया गया था। सारी गुप्तकला इसकी पृष्ठभूमि में थी। इतिहास का वह अन्धकारावृत युग भी नहीं है। इस पर कितना सुन्दर फिल्म बन सकती थी, लेकिन देख कर मुझे "कुछ नहीं" लिखना पड़ा। इलाहाबाद में हर साल इन्हीं महीना में स्वदेशी प्रदर्शनी हुआ करती थी जो अब स्वदेशी मेला के रूप में परिणत हो गई थी। पहले साल से उसकी अधिक उन्नति हुई थी।

'सोवियत भूमि' के अतिरिक्त सोवियत मध्य एसिया पर एक छोटा सा ग्रन्थ लिखना चाहा। ऐनी के उपन्यासों द्वारा सोवियत मध्य एसिया के लोक जीवन में जो महान् परिवर्तन आए उनको जाना जा सकता था पर उसका पूरी तरह से समझने के लिए सोवियत मध्य एसिया के परिचय की आवश्यकता थी। इसी कमी को दूर करने के लिए १० अक्तूबर को मैंने इस पुस्तक में हाथ लगाया। २२ अक्तूबर को मैंने पुस्तक को लिखकर समाप्त कर दिया। प्रकाशक ने बहुत आशा दिलाई थी कि मैं इसे तुरन्त छाप दूंगा, पर तुरन्त का समय उनका सबसे लम्बा निकला।

मेरी तन्दुरुस्ती आमतौर से अच्छी रहती रही, इससे काम करने में बड़ा सुभीता था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। लेकिन, किसी शरीर

धारी का मदा निरोग रहना सम्भव कहाँ ? डिसेंट्री (पेचिश) १९२४-२५ ई० म मरी ज मसाथी हान वाली थी जिससे बाल बाल बचा। उसके बाद जब कभी उसक आने का पता लगता मैं सजग हा जाता। पट म कुछ गड़-बडी जान पडी। कारण ढूढने के लिए बहुत माथा पच्ची की जरूरत नही थी। मैंन सवरे से आधी रात तक बैठकी करते लिखने पढने का काम हाथ म ले लिया था, और इसका खयाल भी नही किया कि भोजन पचन क लिए कुछ शरीर क हिलान डुलान की भी जरूरत है। १३ अक्तूबर को डिसेंट्री शुरू हो गई। काम छाडकर दा दिन के लिए लेट जाना पडा। वठे रहन का मतलब था बार बार शौच के लिए जाना। दवा न डिसेंट्री का १५ अक्तूबर तक दवा दिया। अब मभापति क भाषण के लिखने की चिन्ता गिर पर आ गई। १५ अक्तूबर का पथ्य की खिचडी खाकर उसम हाथ लगाया। अपने विषय म मैं जितना ही बेपर्वाह था मरे मेजबान उतना ही उस पर विशेष ध्यान दत थे। खान म स्वादिष्ट और सुपुष्ट भाजन मिल रहा था। उसके लिए मुझे टहलने की जरूरत थी, लेकिन मैं उन घटा का बर्बाद हाना समझता था। राय रामचरणजी काग्रेमी थ यद्यपि खुमट विचारा वाले नही। उनका परिवार बहुत काल स सम्भ्रान्त धनी परिवार था। काफी बडी जमीदारी थी। बडी काठी का सारे प्रयाग म बहुत सम्मान था। पर रायसाहब भवितव्यता के लिए तैयार थे। वह जानते थ समय शीघ्र बदलने वाला है इसलिए पीछे की आर न दखकर आग की आर दखना चाहिए। उनका साहित्य प्रेम ही नही, बल्कि उदार विचार भी मुझ यहाँ खीच लाया था।

कृष्णचन्दर की कहानी और उस पर बने "सराय क बाहर" फिल्म की बहुत तारीफ सुनकर मैं भी १६ अक्तूबर का दखन गया। फिल्म बुरा नही था, लेकिन मुझे यह ठीक नही लगा, कि सराय क बाहर वाली भिखारिन की लडकी सारी कुर्बानियाँ का करन के बाद भी न्याय का न पा सकी। खैर, न्याय दिलाना लेखक का अपनी कहानी म अभीष्ट भी नही था। वह चाहता था, लाग उसका प्रतिपाद्य लें।

डिमेंट्री से मुक्त होने के बाद शारीरिक सावधानी की ओर थोड़ा-सा ख्याल गया था और १७ तारीख को गंगा पार तक शाम के वक्त एक घंटा टहलने गया। जब मैंने पहली बार मैंने गंगा को दारागंज के पास बहते देखा। लोग कह रहे थे, कुछ सालों से गंगा मैया इसी तरह दया दिखा रही हैं। टहलने में मैं बिल्कुल स्वतंत्र भी नहीं था। शाम के टहलने के समय जब कोई मित्र आ जाता तो बैठ जाना पड़ता। इस सप्ताह कई मित्र मिलने आए जिनमें श्री बेनीपुरी, नाटककार प० लक्ष्मीनारायण मिश्र, डा० बदरीनाथप्रसाद और बहुत सालों बाद मिले बाबू महेश्वर प्रसाद नारायण सिंह। महेश्वर बाबू परसा (छपरा) में पैदा हुए, किन्तु उनका जीवन मुजफ्फरपुर का हुआ। उनके छोटे भाई चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह अंग्रेजों के वक्त में उनकी नाक के बाल थे, और अब कांग्रेसी नेताओं के। इसमें आश्चर्य करने की जरूरत नहीं, जो हर उगते सूर्य के सामने दंडवत करने के लिए तैयार होता है, उससे दुनिया तोताचश्मी नहीं करती। या यह कह सकते हैं अंग्रेजों के वक्त में कांग्रेसी नेता उच्च वर्ग से वंचित थे, और अब सम्पत्ति और सम्मान द्वारा वह उसी वर्ग में सम्मिलित हो गए, इसलिए चन्द्रेश्वर बाबू अब उनके अपने वर्ग के है। मैं उनके प्रति जितना ही अच्छा भाव रखने में असमर्थ था, उतना ही महेश्वर बाबू के प्रति मेरा सद्भाव था। उनके पिता बाबू बैजनाथ प्रसाद नारायण सिंह को मैंने परसा में देखा था। परसा पुराने कुलीन भूमिहार ब्राह्मण जमींदारों का गढ़ है। अपनी सार्वखर्ची या फजलखर्ची के कारण उन्हें राजा से रंक होने में देर नहीं लगती, लेकिन अतीत और भावी सम्बन्ध पुराने धनी कुलों में ही होने के कारण रंक को फिर राजा बनने में देरी नहीं लगती। बैजनाथ बाबू की स्थिति खराब हो गई थी। उनकी बहिन का ब्याह सुरसंड के बड़े जमींदार परिवार में हुआ था, जिसमें चन्द्रेश्वरप्रसाद गोद ले लिये गए। इस प्रकार उनका सितारा जग गया। उन्हें शिक्षा का भी अच्छा मौका मिला, बुद्धि भी अच्छी मिली। उनके भाइयों को भी अच्छी ससुरालें मिलीं। इस तरह सब अच्छी स्थिति में थे। पर महेश्वर बाबू जैसे उदार उनमें दूसरे नहीं थे। रविवार को

महेश्वर बाबू ने अपने यहाँ चाय पीने की दावत दी। छुट्टी के दिन हा'न मैंने स्वीकार किया। परना के बाबुओ के यहाँ मुगल जमाने से कम बडा पर्दा नही होता था, पर आज देख रहा था बाबू वजनाथ प्रसाद की पोती यह भी जानने लायक नही रह गई थी कि उनके यहाँ कभी इतना कडा पर्दा होता था। बाबू महेश्वरप्रसाद की धर्मपत्नी भी आधुनिक महिला मालूम होती थी। परिवर्तन क्या न होता, जब सारे देश और दुनिया मे उसकी बाढ आई हुई है। महेश्वर बाबू पहले ही से जान चुके थे कि जमीदारी के लिए बहुत दिनो तक खैर नही मनाई जा सकती, इसलिए जीविका के दूसरे साधन ढूढने चाहिए। प्रयाग मे सिविल लाइन्स मे किसी अंग्रेज का एक बहुत बडा बगला था, जिसमे कई एकड की फुलवाडी और बगीचा थे। सुन्दर फर्नीचर इतना अधिक था जिसे सजाने के लिए जगह नही थी। बगले मे हजारो अंग्रेजी पुस्तको का एक अच्छा सग्रह था। भारत छोडते समय अंग्रेज अपनी चीजो को मिट्टी के मोल बेच रहे थे, लेकिन उनके खरीदने के लिए लडाई के समय मे चारबाजारी से करोडो रुपया पैदा करने वाले सेठ ही समर्थ थे। जमीदार के पास उतना रुपया कहाँ? इस बगले को महेश्वर बाबू ने खरीद लिया। वह कितने ही सालो तक इसमे आकर रहते भी थे। इस साल (१९५६) पूछने पर मालूम हुआ कि उन्होने बगले को बेच दिया। आज की परिस्थिति मे मुजफ्फरपुर, पटना, प्रयाग तीन-तीन जगहो मे निवास स्थान रखना बुद्धिमानी की बात नही थी। देर तक हमारी बातचीत होती रही। किशोरी भाई भी साथ थे। साथी किशोरी प्रसन्नसिंह बिहार के उन देशभक्तो मे हैं जिन्होने अपने सर्वस्व को देश की लडाई के लिए अर्पण किया और काय और विचार दोनो मे हमेशा सबसे अगली पक्ति मे रहे। काग्रेसी से वह समाजवादी हुए और फिर कम्युनिस्ट। उनकी हिम्मत की दुश्मन भी दाद देते हैं। सरकार से लोहा लेना उतना मुश्किल नही था, जितना समाज से, और उन्होने अपनी स्वर्गीया पत्नी को एक कर्मठ राष्ट्रसविका बनाकर इस काम को पूरा किया। उसी दिन युनिवर्सिटी मे विद्यार्थियो के सामने मुझे बोलना पडा।

नाथे हुए काम अब पूरे हो चुके थे, इसलिए बनारस तक थोडा घूम आने का विचार आया। २७ अक्तूबर को छोटी लाइन से चलकर सारनाथ पहुचे। उस समय वार्षिकोत्सव हो रहा था। जाडा का समय विदेशी बौद्ध यात्रियों के लिए बहुत अनुकूल होता है। बौद्धो का सबसे बडा पर्व वैशाखी पूर्णिमा उस समय पडता है, जबकि उत्तरी भारत मे असह्य गर्मी पडती है, लू लगने से कभी कभी लोग मर जाते हैं। यहाँ महास्थविर बोधानन्द से मिलकर बडी प्रसन्नता हुई। बौद्ध धर्म की जिज्ञासा मेरे मन मे जिस वक्त पैदा हुई, उस समय सबसे पहले इन्ही ने ही मुझे दिशा दिखलाई थी। उनके शिष्य प्रज्ञानन्द को इसी समय भिक्षु बनाया गया। प्रज्ञानन्द सिंहल मे पैदा हुए। बचपन से ही महास्थविर के साथ रहते रहे। हरेक तरुण को शिक्षा मे आगे बढना चाहिए, और दूसरो को भी उसके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। शिक्षा और परीक्षा का अटूट सम्बन्ध नही है न परीक्षा शिक्षा की कसौटी है। हाँ उसके लिए आदमी को मेहनत करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसलिए भी मैं उसे पसन्द करता हूँ। महास्थविर का इस बात मे मुझसे मतभेद था। उनका कहना था तरुण को उच्च शिक्षा दिलाने पर उसे खूट से बाँधा नही जा सकता।

सारनाथ मे ही किसी समय भिक्षु सघ की स्थापना हुई थी, लेकिन इधर शताब्दियो तक वहा कोई भिक्षु नही बना। श्रामणेर बनाना आसान है, क्योकि एक भिक्षु भी वह कर सकता है, लेकिन भिक्षु बनने के लिए सघ की आवश्यकता है, जिसका कोरम मध्यमण्डल मे दस का है। जिस स्थान या घर मे भिक्षु—दीक्षा—उपसम्पदा—दी जाती है उसका सीमा बधन पहले ही से बाकायदा भिक्षु सघ द्वारा होना चाहिए। भारत मे बौद्ध धर्म का पुनर्जागरण हुआ, फिर ऐसी स्थिति पैदा हो गई, जबकि सारनाथ मे उपसम्पदा दी जा सके।

उसी दिन दोपहर को हम अमृत के पास बनारस चले आए। रात को प्रगतिशील लेखक सघ की बैठक हुई। सुमन ने अपनी कविता सुनाई, साथी गोपाल हाल्दार भी बोले। रात दो का ३ बजे की गाडी पकडी और २६ के

७ बजे सबेर हम प्रयाग पहुँच गय। सम्मेलन क सभापति का भाषण करीब-करीब समाप्त हो गया था, लेकिन गोपालगज (छपरा) म होने वाली भोजपुरी सम्मेलन का सभापति होना भी स्वीकार कर लिया था। भोजपुरी मेरी मातृभाषा है, और हिन्दी मेरी अपनी भाषा, इसलिए मेरा स्नेह दोनो के प्रति एक-सा है।

१ दिसम्बर को रेडियो म सुना कि कश्मीर मे जो युद्ध छिडा है उसमे भारतीय सेना को कोटली से पीछे हटना पडा। जम्मू का कोटली कस्बा पहाडो के भीतर बसा हुआ है। उसे मैंने १९२६ म देखा था—१९२६ म उस समय भी हिन्दू केवल कस्बे के भीतर थे आसपास क सारे गाँव मुसलमानो क थे। आज की स्थिति म यही गनीमत थी, कि कोटली के हिन्दू सही-सलामत निकाले जा सकें। ४ दिसम्बर को पता लगा, कि शत्रु जम्मू से १० मील पर पहुँच गए हैं। घटनाएँ प्रयाग से बहुत दूर घट रही थी, लेकिन चिन्ता हम सबको हो रही थी। चित्त वैसे भी सदा चचल समुद्र है, वह एक-सा नही रह सकता, बिना पर्याप्त कारण क भी उसम कभी-कभी अवसाद आ जाता है। इसस बचन का एक ही उपाय है, मन को सदा काम म लगाए रखा जाए।

६ दिसम्बर की चिट्ठी म मालूम हुआ कि हिन्दी-अग्रेजी का जो कोश श्रीमती दीना गाल्दमान को मैंने लदन से भेजा था, वह उनको मिल गया। मुझे इसकी बडी चिन्ता थी। मेरे पास लन्दन तक का जहाज का टिकट और वही भुन सकन वाला चेक था। बिना विदेशी सिक्के के मैं लेनिनग्राद से रवाना हो रहा था। उस समय दीना न अपन पास पडे कुछ डालर मुझे दिय थे, जिन्होंने स्टाकहोम और हलसिकी म मेरी बडी सहायता की थी। उसी क बदले मैंने पुस्तक भेजी थी। सिर स एक भार उतर गया मालूम हुआ। दीना मेरी द्वितीय रूस-यात्रा मे हिन्दी पढ रही थी, और अब लेनिनग्राद युनिवर्सिटी म अध्यापिका थी।

इस समय लोगो की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो गई थी। चीजो का दाम कई गुना बढ गया था, और वह दुर्लभ भी थी। कट्रोल के मूल्य पर

अकुश था, उधर गाधीजी और दूसरे हल्ला मचा रहे थे, कट्रोल को हटा देना चाहिए। कटोल से २१ रुपये मन चीनी मिल रही थी। हटाने के साथ ही उसका दाम ३५ रुपया मन हो गया। १४ रुपया मन सीधा सेठो के पाकेट मे गया। चोरबाजारी बडे जोर से चल रही थी, जिसके लिए अफसरो को रिश्वत देना आवश्यक था। पुरानी परम्परा के कारण रिश्वत लेन-देन मे बडा सकोच था, लेकिन, अब उसका बाँध तेजी से टूटने लगा था।

८ अक्तूबर को भोजपुरी भाषाणो को समाप्त कर अगले दिन मैंने 'रोमनी' भाषा पर भी एक लेख लिखा। रोमनी लोगो को अग्रेजी मे जिप्सी कहते हैं। काबुल से लेकर सारे यूरोप और पीछे अमेरिका मे भी काफी सख्या मे यह घुमन्तू लोग फले हुए है। यह भारत से ही यह एक समय गये थे, लेकिन यह बात वह अब भूल गए हैं। भाषा-सम्बन्धी अनुसन्धानो से ही इस तथ्य का पता लगा। इग्लैण्ड के रोमनी घुमन्तू जीवन छोड चुके हैं, रूस मे भी अब वह स्थायी निवास ग्रहण कर रहे हैं। उनकी भाषा का हमारी भाषा से कितना नजदीक का सम्बन्ध है, इसी को दिखलाने के लिए मैंने यह लेख लिखा।

१० को परिमल की गोष्ठी मे गया। दूसरे कवियो के अतिरिक्त पतजी और बच्चनजी ने भी अपनी कविताएँ सुनाई। इन गोष्ठियो के रूप मे हमारा सास्कृतिक जीवन एक नई दिशा की ओर पग बढा रहा है। इसकी बडी आवश्यकता है। उसी दिन ५००० से कुछ ही अधिक आमदनी पर मैंने इन्कम-टैक्स का हिसाब भेजा। अभी तक इसकी जरूरत नही पडी थी। आमदनी केवल पुस्तको की रायल्टी की थी, और वह इन्कम-टैक्स की सीमा के भीतर नहीं पहुँचती थी। हिसाब देने वक्त, यह भी दिखाई देने लगा, कि आमदनी का हिसाब रखना होगा, और उसको ठीक रखने के लिए पैसे को किसी बैंक मे डालना होगा। मालूम हुआ, कि रूस मे रहते जो आमदनी हुई है, उस पर भी टैक्स देना होगा। नागरिक होने का यह आवश्यक भार है।

१८ दिसम्बर तक प्रयाग मे रहते कलम चलाना रहा। १२ को पट मे

फिर गडबडी शुरू हुई। सात आठ दिन बाद अब स्थान छोडना था इसलिए इस गडबडी को दूर करना आवश्यक था। १५ दिसम्बर को पेट म मीठा-मीठा दद हान लगा, वैसा ही जैसा १९४३ ४४ म वम्बई म हुआ था। वहा सोडा को पानी म डालकर पीने स दद कम हो जाता था उसी दवा को मैंने यहा भी इस्तेमाल करना शुरू किया। दद को न उस समय मैं ठीक से समझ सका था, और न अब। मैं इसे मामूली पेट दद जानता था जबकि वस्तुत यह डायबटीज की पूव सूचना थी। पक्रिया ग्रथि पेट के भीतर सक्रिय रहते भोजन की शक्करा को उपयुक्त बनाने म अपना रस (इन्सुलिन) प्रदान करती है। जब ग्रथि काम करना छोड दती है ता इन्सुलिन मिलना बन्द हो जाता है और भाजन शक्करा रूप म परिणत हाकर बाहर जाने को लिए मजबूर हाता है। पक्रिया ग्रन्थि क्या काम छोडती है क्या निष्प्राण हो जाती है? शारीरिक श्रम न करने और अधिक पुष्टिकारक भोजन करने से ही। यह तत्त्व उस समय मुझे समझ म नही आया। समय म आने पर इसम सन्देह था कि मैं उसे रोक सकता। शायद स्थिति अब हाथ स बाहर हो गई थी। मैंने कितने भोले भाले तौर से १९ दिसम्बर को लिखा था—' पेट म जब-तब मीठा मीठा दद रहता है, तो सोडा से दूर हाता है।''

रामनी भाषा'' के बाद रूसी भाषा के बारे म एक विस्तृत लेख लिखने का निश्चय किया जिसकी पहले भूमिका मात्र लिखी। १७ दिसम्बर को प्रगतिशील लेखक सघ म अभिनन्दन लेने के लिए गया। पत बच्चन, श्रीनाथ ठाकुर, निमल आदि सभी प्रयाग के साहित्यकार के [illegible]।

गोपालगज—१९ दिसम्बर को सवेरे साढ़े ७ बजे [illegible] गाडी पकडी। दोपहर को बनारस पहुँचे। गाडी म [illegible] की [illegible]। लोग स्वराज का मतलब समझ रहे थे रेल म [illegible], लेकिन टिकट का पैसा वग के अनुसार लिया जाता था। [illegible] लोगा को दोप नही दिया जा सकता था। [illegible] और [illegible] शिक्षित सभी थे। साढ़े ७ बजे [illegible] कचहरी [illegible] पहुँची। कुछ देर बाद [illegible] गाडी मिली [illegible]

का हरखुवा स्टेशन पर पहुँची। छपरा में भी स्टेशन पर कोई नहीं मिला, लेकिन उससे कोई हर्ज नहीं था, क्योंकि हम आगे की गाड़ी पकड़नी थी। डेढ़ बजे रात को हरखुवा में उतरकर अब क्या करें? मुसाफिरखाने में बिस्तरा बिछाकर सोये रहने के सिवा और कोई चारा नहीं था। सबसे दिक्कत यह हुई कि, प्यास बुझाने के लिए पानी नहीं मिला। २० तारीख का सवेरा आया। खबर भेजकर नगीना बाबू और महेन्द्र शास्त्री को बुलवाया। वस्तुतः दोष यहां के लोगों का नहीं था। वह समझते थे कि रात को हम छपरा में रह जाएँगे, और सवेरे वहां से चलेंगे। रात को प्यासे ही नहीं रहे, बल्कि पेट में होते मीठे मीठे दर्द को दबाने के लिए सोडा भी नहीं पी सके।

गोपालगंज मेरे लिए किसी समय घर सा था। असहयोग के जमाने में न जाने कितनी बार यहां व्याख्यान देता सारे सब डिवीजन में घूमता था। अब उस जमाने को बीते चौथाई शताब्दी हो गई। इसी बीच उस समय की पीढ़ी बूढ़ी हो गई या चल बसी। उसकी जगह नई पीढ़ी आ गई। यहाँ अपने पुराने बहुत से सहकर्मियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एकमा के मेरे घनिष्ठ सहयोगी बाबू लक्ष्मीनारायणसिंह, बाबू प्रभुनाथसिंह, कटिया, के बाबू महादेव राय, छपरा के बाबू जलेश्वरप्रसाद, खुद गोपालगंज के बाबू सूर्यनसिंह और बाबा झाडूदास—जिन्हें हम महेन्द्रसिंह कहा करते थे—मिले। छपरा के सबसे प्रथम एसेम्बली के मेम्बर बननेवाले हरिजन नेता बसावन राम भी थे, और छपरा के प्रथम हरिजन ग्रेजुएट और एम० ए० चन्द्रिका प्रसाद राम भी। ३ बजे से सम्मेलन शुरू हुआ। सभापति का और कुछ और भाषण हुए। इसके बाद भोजपुरी कविता पाठ शुरू हुआ। बाबू सुगराम सिंह ने बिसराम के बिरहे सुनाए। लोग अपने आँसुओं को रोक नहीं सकते थे। सम्मेलन में बड़ा उत्साह था। अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम कृत्रिम नहीं होता। अभी भोजपुरी को अपना स्थान पाने में काफी देर है यह जरूर पता लग रहा था। अगले दिन भी सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। उसी दिन पटना के मेरे गुरुभाई वीर रामरंगजी मिलने आए। उनसे

साथ जानकी नगर के बाबू सूरतसिंह भी थे। पता लगा कि महन्त लक्ष्मण-दासजी ने अयोध्या मे भी एक स्थान छान दिया है, और अब वह अधिकतर वहीं रहते हैं। मठ के कर्गें को कम करने की चिन्ता उनको कभी नही थी। सूरतसिंह ने जानकी नगर चलने के लिए कहा और सिवान से भी मित्रो का भी आने के लिए आग्रह था। बसतपुर म भी आगे भोजपुरी जिला सम्मेलन होनेवाला था, जिसम आने के लिए महेन्द्र शास्त्री का बहुत जोर था। पर अब समय की कमी की शिकायत हमेशा के लिए थी। इस यात्रा मे नागार्जुन साथ रहे।

२१ तारीख को चद्रिकारामजी के यहाँ भोज था। चद्रिकाराम अब शिक्षा और सस्कृति मे दूसरे वर्ग के हा गए थे—एम० ए० बी० एल० और एसेम्बली के मेम्बर थे। फिर उनक भोज म बडी जाति के लोग भी दिल खोलकर शामिल हो, तो आश्चर्य क्या? चद्रिका बाबू न शायद मेरी रुचि का ध्यान करके बहुत अच्छी मछली तैयार करवाई। भोजन के बाद हम स्टेशन पहुँचे, वहाँ से रात को छपरा पहुचकर सवेरे क लिए स्टेशन के प्रतीक्षालय मे ठहर गए। यही मेरे मित्र हुसेन मजहर मिले—हुसन मजहर हमारे महान नेता मजहरुल हक के एकमात्र जीवित पुत्र। अमवारी के किसान-सत्याग्रह मे भाग लेकर वह मेरे साथ जेल गए। अपने पिता की तरह ही वह बडे उदार विचारो के थे। मजहरुल हक को तो मनुष्य नही, मैं देवता मानता था उनकी मधुर स्मृति सदा बनी रहती है। मैंने बडी उत्सुकता के साथ हिन्दू मुस्लिम दगो के बारे म पूछा यद्यपि उनको या उनके परिचितो को कोई हानि नही उठानी पडी लेकिन वह अपनी स्थिति से निराश थे। तो भी यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई, कि उस निराशा म पडकर वह अपना घर छोडने के लिए तैयार नही हुए। वह कालरात्रि थी, लेकिन उसको भी एक दिन समाप्त होना ही था।

२२ को सवेरे ६ बजे प्रयाग की ट्रेन मिली। वैसे रेलयात्रा हमारे देश मे बहुत कम सुखद होती है, और इस समय ता वह पूरी आफत थी। धीरे-धीरे ट्रेन पश्चिम की ओर बढी। रास्ते भर धूल फाँकनी पडी, ७ बजे रात

को हम दारागज पहुँचे। सिर्फ एक दिन और ठहरकर हमें बम्बई के लिए रवाना होना था। अगले दिन बम्बई के लिए लिखा गया भाषण भी छपकर चला आया। उसी दिन रेल का टिकट भी ले लिया। लम्बी यात्रा थी, सेकंड क्लास में फिर उसी विपदा में न पड़ना हो, इसलिए फर्स्ट क्लास का टिकट लेना पड़ा, जिसके लिए १०० रु० ६ आ० देना पड़ा। २४ तारीख की शाम को हम बम्बई के लिए रवाना हुए।

# ४

# बम्बई मे सम्मेलन

बम्बई—अपने कम्पार्टमेंट म मैं अकेला था। अभी वह स्थिति नही थी, जबकि कम्पार्टमेंट मे अकेले सफर करना खतरे की बात थी। इसी ट्रेन मे दूसरे डब्बो म प्रयाग के बहुत से साहित्यिक चल रहे थे। रात को चुपचाप सो जाना था। सबेरे ट्रेन जबलपुर पहुँची। दोपहर का भोजन इटारसी म हुआ। नागार्जुन साथ थे ही, दूसरे ही मित्रो स बातचीत करते हम आगे बढ रहे थे। इसी समय मैंने अपने पिछले साढे तीन महीने का लेखा जोखा किया, तो मालूम हुआ प्रतिमास हजार रुपया खर्च हुआ है। इतना खर्च करना मेरी शक्ति स बाहर था। रायल्टी स अभी बारह हजार रुपये वार्षिक मिलने के लिए आधी शताब्दी तक रहने की आवश्यकता थी। जब मेरे जैसे ख्यातिप्राप्त लेखक की यह आर्थिक अवस्था थी, तो दूसरो के बारे मे क्या कहना ? लेखको की इस स्थिति को दूर करने मे बहुत देर थी।

२६ के ६ बजे शाम को हमारी ट्रेन बम्बई के विक्टोरिया स्टेशन पर पहुँची। मैं सम्मेलन-सभापति था, इसलिए स्वागत के लिए काफी लोग आए थे। शायद अगले दिन जलूस भी निकाला जाता, लेकिन बम्बई म साम्प्रदायिक झगडा चल रहा था, छुरेबाजियाँ हो रही थी। जलूस से बच जाने के लिए मुझे बडा सतोष हुआ। ठहरने के लिए मलाबार हिल पर श्री घनश्यामदास पोद्दार का निवास निश्चित किया गया था। यहाँ मर

अतिरिक्त और भी बहुत से साहित्यिक अतिथि ठहरे हुए थे। एक ही जगह सबका सामान, बैठना-उठना और सोना था। पोद्दारजी का भवन बम्बई जाने पर मेरे लिए सदा खुला रहा, और उसे मैं उन घरों में मानता हूँ, जहा रहते आदमी को बडी आत्मीयता मालूम होती है। घनश्यामदासजी सीधे सादे मधुर स्वभाव के आदमी है। पर अधिक भोला होने से वह अपने करोडो के व्यवसाय का कैसे चला सकते। उसी दिन आनन्दजी भी आ गए। स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यह पहला अधिवेशन था, इसलिए प्रतिनिधियो की सख्या पहले से बहुत अधिक थी। सभापति का पद मैंने स्वीकार कर लिया था, तो उसे हलके दिल से उठाना नही चाहता था। मेरा ध्यान लिपि सुधार और पारिभाषिक शब्दो के निर्माण की ओर विशेष तौर मे था। लिपि सुधार की योजना मे पहले भी एक बार रख चुका था, जिसे इस भाषण द्वारा भी पेश किया। परिभाषा के काम को कडा मानते हुए भी मैं उसे असभव नही समझता था।

२६ दिसम्बर को मैं पार्टी के केन्द्रीय आफिस मे गया। वहा के मित्रो ने मेरे भाषण की कापी पढ ली थी। हिन्दी उर्दू के बारे म जो मत मैंने उसम प्रकट किया था, और मुसलमानो की शताब्दियो की सास्कृतिक वाय काट छोडकर साम्कृतिक एकता को स्थापित करने मे आगे बढने के लिए कहा था, उस पर मेरे साथियो का विरोध था। वह चाहते थे, मैं इस अश को अपने भाषण म से निकाल दू। यदि छपने से पहले यह सुझाव मेरे सामने होता तो मैं उसे हटा भी देता। मैं वयक्तिक विचार से सामूहिक विचार को बडा और अनुशासन को एक बडा और आवश्यक गुण समझता हू। कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मेरा सम्बन्ध यद्यपि आठ ही बष पहले हुआ था, लेकिन मैं उसे उस समय से ही अपना समझता रहा, जबकि मेरे हृदय मे राजनीतिक चेतना का उदय होने लगा। १९१७ के नवम्बर मे रूस मे बोल्शेविक क्रान्ति हुई। उसके महीनेन्दो महीने बाद ही उसकी खबर भारत के अखबारो मे मैंने पढी। तभी से मेरे लिए वह क्रान्ति सबसे अधिक श्रद्धा का भाजन बन गई तभी से साम्यवाद

मेरा अपना वाद हो गया। सयोग नही मिला, इसलिए पार्टी के भीतर आने मे मुझे बीस वर्ष लगे। भीतर न होते हुए भी मैं अपने को हमेशा पार्टी का समझता रहा। थोडे से वैयक्तिक विचारो के लिए मैं पार्टी को छोड़ना कैसे पसद करता? उस समय पूरा नही मालूम था, तो भी मेरे हृदय मे बहुत उथल पुथल मची हुई थी। भाषण से उस अश को निकालना अब सभव नही था, और प्रतिवाद करना और भी बुरा था।

बम्बई मे साम्प्रदायिक वातावरण बहुत उग्र था। कितने ही मुसलमान जीवन को अरक्षित समझ शहर छोडकर चले गए थे। बम्बई के मुसलमान सेठ बहुत कम पाकिस्तान गए थे, हाँ, गरीब जरूर अधिक सख्या मे गए थे। पर, लाखो लोग कैसे जा सकते थे!

२७ तारीख को स्थायी समिति (विषय निर्वाचनी) की बैठक हुई। सम्मेलन के लिए कुछ प्रस्ताव स्वीकार हुए। उसी दिन पडाल मे सस्कृत सम्मेलन भी हुआ, जिसमे पण्डितो के भाषण से यही मालूम हो रहा था, कि उनके लिए पुरानी दुनिया वैसी ही बनी हुई है। साढे ११ बजे से मुद्रा सम्मेलन हुआ, जिसमे महाराजा भरतपुर अपने यहाँ के मिले सिक्को को विशेष तौर से दिखलाने के लिए आए थे। मुद्रा-सम्मेलन मे दूसरी जगह आए थे। डा० अल्तेकर बियना मे १९४६ के फरवरी मे मिले इन सिक्को पर बोले। गुप्तकालीन १८०० सिक्के मिले थे, जिनमे से कुछ तो अद्वितीय थे। लेकिन, इन सिक्को को साधारण सिक्का समझा गया अर्थात् उसका मूल्य उतना ही, जितना सोना उनमे मौजूद था। सिक्को के साथ खूब मनमानी हुई। पहले तो गाँव वालो ने ही उसमे से कुछ को खतम किया, फिर रियासत के अफसरो ने हाथ फेरा जो सिक्के बचकर महाराज के पास आए, उनमे से कितनो को महाराज ने अपने कृपापात्रो को बख्श दिया, जिन्होने उनके बटन बनवाए। बाहरी दुनिया के विद्वानो को खबर पहुँचने मे देर लगी। तब उनका महत्व मालूम हुआ, और उनकी रक्षा के लिए कोशिश की गई। भरतपुर के महाराजा यदि सौ बरस पहले के महाराजा होते, तो यह कोई असाधारण बात नही थी। लेकिन हमारे आजकल के राजा आधुनिक ढंग से

शिक्षा प्राप्त हैं, हर बात मे अंग्रेजो के पदचिह्नो पर चलते है। उन्हें ढ़ड हजार वर्ष पहले के इन सिक्को का महत्त्व मालूम नही, यह यही बतलाता है, कि उनके ऊपर संस्कृति का पुचारा बहुत ऊपर-ऊपर लगा है।

उस दिन रात्रि का भोजन श्री क० मा० मुंशी के यहाँ हुआ। मुंशीजी सम्मेलन के सभापति रह चुके थे, और गुजराती के यशस्वी साहित्यकार है।

२८ को ३ बजे सम्मेलन का अधिवेशन शुरू हुआ। आठ दस हजार लोग पंडाल मे रहे होगे। युक्त प्रान्त के महामंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने ४५ मिनट भाषण देकर अधिवेशन का उद्घाटन किया, जिसमे उन्होंने हिन्दी का जोरदार समर्थन किया। स्वागताध्यक्ष श्री खेतान ने अपना भाषण पढ़ा। इसके बाद वहा उपस्थित सम्मेलन के भूतपूर्व सभापतियो—श्री वियोगी हरि, श्री माखनलाल चतुर्वेदी और श्री कन्हैयालाल मुंशी—ने मेरा नाम सभापति लिए औपचारिक तौर पर प्रस्तावित किया। मेरा भाषण लम्बा था, लेकिन उसके कुछ अंशो को ही पढ़कर मैंने ३० मिनट मे समाप्त कर दिया। भाषण करने से पहले साथी अधिकारी ने पार्टी की ओर से फिर जोर देकर लिखा था, कि मै उर्दू सम्बन्धी विचारो के बारे मे कह दू, यह पार्टी के विचार नही है। मैने उसी दिन साथी अधिकारी को लिखा, कि पार्टी की इस नीति के साथ न होने के कारण मै अपने को पार्टी मे रहने लायक नही समझता, पर मै सदा पार्टी के साथ रहूँगा। एक तरह से इतने बड़े निर्णय को मैने उतावलेपन से किया। लेकिन, अब उस निर्णय को बदलने मे वर्षो की जरूरत थी। उस समय मैं समझता था, पार्टी वाले राष्ट्रीयता के बारे मे हल्के दिल से सोचते है, और मतवाद की संकीर्णता को प्रश्रय देते दूर भविष्य मे होने वाले प्रभावो को नहीं समझ पाते। पर ऐसा समझने मे यदि त्रुटियाँ थी तो वह एक नही बहुत से मस्तिष्को के सोचने का परिणाम थी। यदि गलती हो रही थी, तो पार्टी अपने तौरसे उसे आगे सुधार लेगी।

उसी दिन सवेरे विषय निर्वाचिनी समिति के सामने मैंने परिभाषाओ के निर्माण के बारे मे प्रस्ताव रखा। श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजी ने कहा यह काम तभी हो सकता है, जब इसकी जिम्मेवारी मैं अपने ऊपर ले लूं।

मैंने उसे स्वीकार कर लिया, और आगे मैंने उसके लिए तत्परता से काम भी किया। दूसरी बाधाएँ न उपस्थित हो गई होती, तो इन पंक्तियों के लिखने से पहले ही चार पाँच लाख परिभाषाएँ बनकर हिन्दी और भारत की दूसरी भाषाएँ इस सम्बन्ध में स्वावलम्बी हो जाती।

२९ दिसम्बर को ढाई बजे से खुला अधिवेशन हुआ जिसमें कई प्रस्ताव पास हुए, कई भाषण हुए। उसी दिन लोक गीत सम्मेलन हुआ, लेकिन नकली लोक गीत कभी अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। असली लोक गीतों का योग्य कलाकारों द्वारा पेश होना अभी दूर की बात थी।

३० तारीख को श्री कमलापति त्रिपाठी की अध्यक्षता में समाजशास्त्र परिषद् हुई। त्रिपाठीजी शुद्ध साहित्यिक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं में से हैं, और समाजशास्त्र तो उनका अपना विषय है। उसी दिन अपराह्न में पदाधिकारियों के चुनाव हुए। डा० उदयनारायण तिवारी सिर्फ दो वोटों के बहुमत से प्रधानमन्त्री चुने गए, यह शुभ लक्षण नहीं था। दूसरे पदाधिकारियों के चुनावों में भी तनातनी दिखाई पड़ी। उस समय प्रयागी और अप्रयागी का भेद माना जाता था। अप्रयागियों का यह शिकायत थी, कि अधिकांश पदाधिकारी प्रयाग के होते हैं। लेकिन तजर्बे ने बतला दिया था, कि बाहर रहने वाले पदाधिकारी पर्याप्त समय देकर अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त युनिवर्सिटी और गैर युनिवर्सिटी का भेद भी खड़ा हो रहा था। युनिवर्सिटी में न रहने वाले साहित्यिक इस पसन्द नहीं करते थे, कि सभी बातों में युनिवर्सिटी प्रोफेसर आगे रहें। बीज रूप से ही सही, कुछ कुछ दारागजी और अन्तरागजी का भेद भाव भी था, पर अभी प्रकाशकों और अप्रकाशकों का भेद प्रकट नहीं हुआ था, जिसने ही अन्त में सम्मेलन की नैया को भँवर में फँसा दिया।

३१ दिसम्बर को सन् ४७ समाप्त हो रहा था। उस दिन सवेरे के वक्त दर्शन-परिषद् हुई, और ४ बजे दोपहर से खुला अधिवेशन होकर ८ बजे के बाद सम्मेलन समाप्त हो गया।

सेठ घनश्यामदास पोद्दार का सुन्दर आतिथ्य हमें मिला था, और साथ

ही उनके परिवार को नजदीक से देखने का मौका भी। पीढी के बाद कैसे गुणात्मक परिवर्तन होता है, इसका उदाहरण यह परिवार था। घनश्याम दासजी मारवाड़ी से अधिक गुजराती सेठ मे मालूम होते थे। विशेष समय ही पर वह मारवाडी पगडी पहनने की जरूरत समझते थे। सेठानी हिंदी पढी हुई थी, अब घाघरा छोड साडीधारिणी हो गई थी। लडके लडकियो की शिक्षा पर काफी ध्यान दिया जा रहा था, जिससे अगली पीढी दो कदम और आगे जाएगी, इसमे सन्देह नही। यद्यपि अब भी वह निरामिषाहारी है, जिसकी आशा लडको पर नहीं की जा सकती पर छूआछूत का उनके यहा कोई पता नही था। साहित्यिक अतिथियो की सेवा मे इतनी अधिक तत्परता बतलाती थी कि सास्कृतिक कर्तव्य के प्रति वह कितना बढे हुए हैं।

प्रयाग से ही पेट मे मीठा मीठा दर्द होने लगा था, वह यहा भी चल रहा था। बम्बई मे दर्द होते समय मैंने एण्ड्रूज साल्ट सेवन किया था, जिससे कुछ देर के लिए दर्द दब जाता था। अब भी मैं एण्ड्रूज साल्ट ले रहा था, और यह जानकर सन्तुष्ट था, कि यह एक विशेष प्रकार का पेट दर्द है। एक दिन किसी ने पेशाब के स्थान मे चीटियो को देखकर पूछा—किसके पेशाब मे चीनी जा रही है। मुझको इसका कुछ सन्देह ही नही था। पर कुछ समय बाद समझ पाया कि मैं ही उस मर्ज का मरीज हू।

१९४७ के अन्त के साथ डायबेटीज मेरी जीवनसगिनी हो गई। वर्ष का लेखा जोखा करने पर मालूम हुआ, "सोवियत भूमि" (दूसरा सस्करण) "सोवियतमध्य एसिया" और "दाखुन्दा" इन तीन पुस्तको को लिख चुका हूँ। इनके साथ कुछ लेख और लिखित भाषण भी तैयार हुए। आखिर यह तीन महीने की ही कमाई बुरी नहीं कही जा सकती। अगले साल पुस्तकें लिखने की भी योजना थी, पर उसके साथ ही अब परिभाषाओ के काम मे भी हाथ लगाना था इसलिए कितनी पुस्तकें लिख सकूँगा, इसका कैसे निश्चय कर सकता था? पर रूस से भारत लौटने का एक बडा कारण पुस्तको के लिखने की आकाक्षा ही थी, उनमे भी "मध्य एसिया का इतिहास" नाम था जिसमे हाथ लगाने की अभी बात भी मैंने नहीं सोची थी।

५

# साहित्य-यात्रा

१६४८ का प्रथम दिन बम्बई मे ही आया। सम्मेलन का काम समाप्त हो गया था। नव वष का दिन बडे अमगल रुप म आरम्भ हुआ, ३१ को छात्र सघ ने अपना सम्मेलन करना चाहा। सरकार ने निषेधाज्ञा लगा दी। न मानने पर आसू लानेवाली गैस और गोलियाँ चलाई गइ। अहिंसा के सबसे ज्यादा ढोल पीटनवाली सरकार के लिए गोली वर्षा सबसे मामूली बात बन गई। हिंदू मुस्लिम वैमनस्य को भडकानेवाले लोगो की कमी नही थी। छात्र सघ इसका विरोधी था। चाहिए तो यह था, कि उन्ह अपने प्रचार के लिए प्रोत्साहित किया जाता। काग्रेस यदि साम्प्रदायिक वैमनस्य को रोकना चाहती थी, तो अपन सहायको की शक्ति को निबल नहीं करना चाहिए था। गोली फिर अपने ही लडके लडकियो पर बरसाई जा रही थी कई छात्र छात्राए घायल हुए। यह उस समय जब कि कश्मीर मे युद्ध छिडा हुआ था, हैदराबाद कलेजे का काटा बना हुआ था, देश म रियासतो के प्रतिक्रियावादी राजा और उनके पिट्ठू अपनी सवतन्त्र स्वतन्त्रता को छोडने के लिए तैयार नही थे, देश आर्थिक तौर से अत्यन्त निबल था, और उसकी सामरिक शक्ति की परीक्षा का यह समय था। किसान और मजूर अर्थात् जनता का सबसे अधिक भाग इस समय प्रिय होना चाहिए था। उनके नेताओ मे किसी काग्रेसी नेता से कम देशभक्ति नही थी। अग्रेजो के हथकण्डे

जेल और गोली द्वारा स्वतन्त्र भारत का सबल नही बनाया जा सका। सरकार एक आर सबको एक हान के लिए कहती और दूसरी तरफ आचरण इस तरह करती थी।

अब तक पश्चिमी पाकिस्तान विशेषकर पजाब और पश्चिमात्तर सीमान्त हिन्दुआ से खाली हो चुका था। घरबार छोडे लाखो लोग सूखे पत्त की तरह जहा तहा डाल रह थे। लडाई के वक्त मे अग्रेजा ने बहुत से सनिक कैम्प बनवा दिय थे जिन्होन इस समय बडा काम दिया। बम्बई मे ऐसे तीन बडे बडे केम्पो मे दा म सिन्धी और एक म पजाबी रहते थे। सिन्धी सभी नगरावाले आफिसो के क्लर्क, छाटे-मोटे दूकानदार और मिस्त्री का ही काम कर सकते थे। तीना म मिलाकर १५ हजार नरनारी रहे हांगे। अभी सहायता क बारे मे सरकारी नीति साफ नही हुई थी, आशा रखी जाती थी, कि मारवाडी व्यापार मण्डल और दूसरे व्यापारी इस बोझ को अपन ऊपर उठाएँग। वे सहायता कर भी रहे थे लेकिन कितने दिनो तक ? खाने का प्रबन्ध बुरा नही था, लेकिन बहुत से लोग पक्की या टिन की छता के नीचे नही थे। यदि वर्षा हुई तो कहा जाएगे ? शिक्षा और चिकित्सा का प्रबन्ध बहुत असन्तोषजनक था। नाना जगहो के एक सी विपद के मारे लोग जब चौबीस घटा एक जगह रहने के लिए मजबूर हुए, तो आपस मे झगडा भी हाता था। शिक्षा क लिए अवैतनिक शिक्षिकाआ को नियुक्त किया गया था, लेकिन इस तरह की बगार वह कितने समय तक मन लगाकर कर सकती थी।

कश्मीर म पाकिस्तान सीधे लड रहा है, यह किसी से छिपा नही था, लेकिन पहले उसन इसे मानन से इन्कार किया। भारत सरकार ने सयुक्तराष्ट्र सघ मे इसकी शिकायत की, लेकिन सयुक्त राष्ट्र सघ ता अमेरिका और उसके पिट्ठू इगलैड की दुम भर रहा था। ये दोना स्वय चाहत थे, कि कश्मीर पाकिस्तान के हाथ म चला जाए, इस प्रकार उनका सोवियत रूस की सीमा पर ताल ठोकन का मौका मिले।

रायपुर—२ तारीख को कलकत्ता मेल से हम रायपुर के लिए रवाना

हुए। सवेरे ८ बजे वर्धा म आन दजी उतर गय। उनका टिकट भी रायपुर तक का था, लेकिन इसम म दह था, रि वह वहा पहुँच सकेंगे। नागार्जुनजी के साथ मे आगे चला। आगे गाडिया तक गाडी म बहुत भीड नही थी। फिर लोग अधिकाधिक चढने लगे। छत्तीसगढ पहाडी देश है पर वहा साल मे ५० इच वर्षा होती है, इसलिए पहाडो का हरे जगलो स ढँका रहना स्वाभाविक है। पहाडी जगलो म बाँध डालकर समुद्र सी जलनिधियो का बनाना आसान है। फिर सिचाई ही नही, बिजली पैदा करना भी सहज हो सकता है। छत्तीसगढ म य सुभीते है, और इनसे भी अधिक यहाँ खनिज पदार्थों का अटूट भण्डार है, जिसके ही लिए भिलाई का लौह कारखाना बनने जा रहा था। छत्तीसगढ म जिलो के अतिरिक्त १४ परमभट्टारक राजा भी थे, अत जिनके अधिकारो का भारत सरकार न ले लिया था—उन्हें वार्षिक पेंशन मिलेगी, और पदवी तथा सम्मान भी पूर्ववत् बना रहेगा। १ जनवरी से इन रियासतो का मध्य प्रदेश के शासन म दे दिया गया। उसी तरह उडीसावाली रियासते उडीसा म विलीन कर दी गई। सरैकेला और खरसवा का उडीसा म मिलाने का बिहार की ओर से विरोध हो रहा था पीछे उन्हें बिहार को दे दिया गया जिस पर इसी साल उडीसा मे विरोध की आग भडक उठी। यदि इन दोनो रियासतो के लोगो की भाषा उडिया है, तो उन्हें उडीसा को ही देना चाहिए था। लेकिन भाषा किसी प्रदेश के लोगो की पारम्परिक सबसे जबदस्त कडी को हमारे राष्ट्र कर्णधार बिल्कुल तुच्छ समझते हैं। वह गोलियो से भूनकर, लोगो के खून मे हाथ रगने के लिए तैयार हैं, पर भाषा पर आधारित प्रदेश को बनाने के लिए नही। छत्तीसगढ की जनसख्या ४५ लाख से ऊपर है। मध्य प्रदेश का यह पिछडा हुआ भाग है, यद्यपि वहाँ के मुख्य मत्री यही के हैं। पिछडे और उपेक्षित होने से लोगो म छत्तीसगढ के अलग प्रदेश होने की भावना स्वाभाविक है। भाषा के अनुसार यहा हिन्दी, बल्कि अवधि का एक रूप छत्तीसगढी बोली जाती है। यहाँ की भाषा पर पडोस की भोजपुरी, बुन्देली, उडिया का और मराठी का कुछ प्रभाव होना स्वाभाविक है।

रायपुर में हमें छत्तीसगढ़ के विद्यार्थी फेडरेशन ने बुलाया था। अगले दिन ४ जनवरी को शनिवार था। सबेरे ही से गोष्ठी शुरू हो गई जो शाम की सभा में जाते समय ही टूटी। सोशलिस्ट भाइयों से खुलकर बातचीत हुई, विशेषकर सोवियत के बारे में। कितने ही किसान कार्यकर्ता भी गोष्ठी में आए। पता लगा यहां की सरकार जमींदारों और मालगुजारों को हटाने की अभी बात भी नहीं सोच रही है। रात को ८ बजे के करीब सभा शुरू हुई। बम्बई में सरकार ने जिस तरह छात्रों के साथ खूनी होली खेली थी, उसके कारण यदि उनके नेता वधन ने कांग्रेस सरकार से लोहा लेने की बात की तो कोई आश्चर्य नहीं। कश्मीर और हैदराबाद का झगड़ा सामने देखकर गृह-युद्ध को रोकने की बड़ी आवश्यकता थी, लेकिन ताली एक तरफ से थोड़े ही पिटती है। मैंने भी भाषण दिया।

रायपुर में हिन्दी के महान् कवि पद्माकर की सन्तानों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। और इसने बतला दिया, कि हिन्दी के निर्माण में छत्तीसगढ़ —प्राचीन दक्षिण कोसल—किसी से पीछे नहीं रहा।

५ जनवरी के सवेरे ५ बजे हम अब प्रयाग की ओर रवाना हुए। बिलासपुर में गाड़ी बदलनी पड़ी। यहां से कटनी तक अखण्ड पहाड़ और जंगल चला गया है। जब तक न देखें तब तक आदमी को क्या पता लगता है? यह सारा भूभाग हरा भरा, और खनिज सम्पत्ति में भी अतिसमृद्ध है। यहाँ के सभी लोग पिछड़े हुये हैं, जिनमें जनजातियों की संख्या काफी है। जंगलों के ठेके—जिसका अर्थ है अधिक आमदनी—दूसरी जगह के ठेकेदारों के हाथ में जाते हैं और लोगों को कुलीगिरी करते पेट भरने और तन ढँकने की कोशिश करनी पड़ती है।

रास्ते में कटनी में भी वर्षा होती रही। तीन घंटे बाद यहाँ से प्रयाग की ट्रेन मिलनेवाली थी। स्टेशन से बाहर निकलकर देखा, सड़क के दोनों तरफ पंजाबी शरणार्थियों ने अपनी छोटी मोटी दूकानें खोल रखी हैं। कुछ भोजनालय भी थे। स्थानीय दूकानदार उनसे होड़ लेने में असमर्थ थे, क्योंकि वह ज्यादा से ज्यादा नफा उठाना चाहते हैं, जबकि शरणार्थी कम

से कम नफे पर अपने सौदे को वेंचने के लिए तैयार थे। इस साल प्रयाग मे अवकुम्भी हानेवाली थी। देश म अनाज की बडी किल्लत थी। सरकार ने इसकी सूचना देकर, लागा को न जान की सलाह दी थी। पर कौन सुनने के लिए तैयार था ? पडे यात्रिया का हाके लिए जा रहे थे, ट्रेन म जगह मिल्नी आसान नही थी। रात के ११ बजे एक्सप्रेस ट्रेन मिली, जो सवेर ५ बजे प्रयाग पहुची।

**प्रयाग**—६ तारीख को निवासस्थान पर ही रह। लोला और ईगर की चिट्ठी मिली, जिसमे पैसा की आवश्यक्ता भी वताई गई थी। लेकिन, यहा के पैसो का वहा मूल्य ही क्या था ? बुलान की तो बात भी नही कर सकता था, क्याकि ईगर के पढने का जितना अच्छा प्रबन्ध वहा हो सकता था जितनी आसानी से वहा काम मिल सकता था, उसका अभी यहा सपना भी नही देखा जा सकता था। इस समय भारत और पाकिस्तान की तना-तनी क्या कश्मीरम गुत्थमगुत्था हा रही थी। पाकिस्तान बढ बढकर धमकी दे रहा था। पटेल ने साफ शब्दा मे ललकारा—बन्दरघुडकी मत दो, यदि लडना हो ता सामने आ जाओ। लेकिन, पाकिस्तान जिन मुरब्बिया के बलपर कूद रहा था, उन्हे मजूर हो तभी तो आगे कदम बढा सकता था।

यहाँ आन पर पता लगा, नागार्जुन का लडका शोभा बीमार है। नागार्जुन का स्वास्थ्य भी हमेशा ही से कमजोर है, जो शायद [illegible] मे मिला है। बिचारा वर्षो बीमारी मे घुल्ता रहा है। ८ नागेश [illegible]-जुन घर के लिए रवाना हुए।

लिखने का अभ्यास धीरे धीर छूट गया, अब [illegible] बहुत सुभीता मालूम हाता था। नागार्जुन [illegible] बहुत बुरा मालूम होता था। मैं आर [illegible] समय का बर्बाद करन क लिए तैयार नहीं था। [illegible] जरूर थी। श्री सत्यनारायण १६/११ [illegible] तरह कर थे लेकिन मालूम नहीं [illegible] छुआछूत के [illegible]।

सभापति होने से मुझे इस साल के काफी भाग को यात्रा म बिताना था।

सम्मेलन का अब तक सबसे अधिक काम परीक्षा विभाग म रहा। सम्मेलन का मुख्य लक्ष्य जब तक प्रचार था, तब तक यह बुरा नही था। परीक्षाओ द्वारा हिन्दी के गम्भीर अध्ययन का बहुत व्यापक रूप म काम हुआ। पर अब परीक्षाओ पर निभर रहना ठीक नही। आखिर हिन्दी क्षेत्र के विश्वविद्यालय भी अपनी परीक्षाओ द्वारा उस काम को कर रहे हैं। प्रकाशन और साहित्य सृजन को बढाने की आवश्यकता थी, उसी पर ज्यादा ध्यान देन की जरूरत थी। लेकिन परीक्षा पुस्तको से जिनका लाभ था, उनकी इस ओर दिलचस्पी नही थी।

६ जनवरी से १४ जनवरी तक के लिए म अब प्रयाग म बन्द था। आत्म निरीक्षण करते मुझे मालूम हुआ, कि जरा जरा बात मे चित्त विकल हो जाता है। "काजीजी दुबले शहर के अदेशे" के अनुसार विश्व म कही पर भी समान आदश और आदशवादियो के ऊपर प्रहार या खतरा पैदा होने पर मन चिन्तित हो उठना। किसी भी अयुक्त काय या विचार को देख कर अन्तर उत्तेजित हो जाता—काय चाहे सामाजिक दबाव हो, हिंसा या और कोई बात।

प्रयाग के सामने झूसी मे प्रभुदत्त ब्रह्मचारी एक बडे सन्त हैं। धार्मिक प्रदशन उनके यहा चरम सीमा पर पहुँचा था। सन्त लोगो का मुझ मे भी बहुत सम्पर्क रहा है, और मैंने अच्छे सन्तो को हमेशा कोमल स्वभाव का पाया। उस दिन उनकी बनाई—शायद भागवती कथा—पुस्तक मिली, जिसके २१५५वें पृष्ठ पर यह लिखा देखकर चकित हो गया—

'धमहीन जो कुटिल करै निंदा हरिहर की।
गरम सँडासी पकरि जीभ खिचैं वा नर की।'

ब्रह्मचारीजी कैसे सुन्दर ढग से सन्तो की परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं? बोलो नये पैगम्बर प्रभुदत्तजी की जय! सरस भक्ति से काम नही चलते देख ब्रह्मचारी ने गरम सँडासी लेने की प्रतिज्ञा की। उनके इष्ट इसी तरह पृथ्वी का बोझ उतारते थे, और अब वह स्वय उसी पथ के पथिक

हैं। पर लोग हाथ मे गरम सडासी देखकर ब्रह्मचारी के पीछे नही भागेंगे बल्कि उस अखण्ड कीतन तथा पूजा पाखण्ड से, जो कि उनके वेदान्त के अनुसार बिलकुल मिथ्या चीज है।

अब मेरे पार्टी से अलग होने की सूचना अखबारो मे प्रकाशित हो चुकी थी। बहुतो को बहुत दु ख हुआ और मुझे भी, क्योंकि पार्टी से अलग रह करके भी मैं पार्टी को छोड दूसरे का नही हो सकता था। मैं यह भी जानता था, कि इसे विरोधी पार्टी के विरुद्ध प्रचार का साधन बनाएँगे। कुछ यह भी कह रहे थे, कि अब रूस जाना नही हो सकेगा। मैं १९१७ में उसके जन्म के समय से ही सोवियत रूस का मित्र और समथक रहा, और सदा रहूँगा। साम्यवाद सदा मेरा आदश रहा और आगे भी रहेगा। इसीलिए किसी पत्र मे यह छपा देखकर मुझे आश्चय और क्षोभ नही हुआ—क्या जाने राहुल-जी का पार्टी से अलग होना सच्चा नहीं ऊपरी दिखावा हो। मुझे उसके सच्चे न होने और बाहरी दिखावे म ही प्रसन्नता थी क्योंकि पार्टी से अलग होकर मैं अपनी किसी महत्वाकाक्षा को पूरा करने के लिए तैयार नही था।

११ तारीख को रविवार था। उस दिन रात्रि भोजन श्रीनिवासजी के एक मित्र मुसलमान सज्जन के घर हुआ। श्रीनिवासजी को निरामिष भोजन म परहेज नही था, मेरे लिए विशेष तौर से सामिष भोजन तैयार किया गया था। मध्यवित्त मुसलमान उस समय और भी चिंतित थे, कितने ही डरकर पाकिस्तान जा चुके थे। हमारे मेजबान का भविष्य के लिए चिंतित होना स्वाभाविक था। पूछ रहे थे—कैसे हम अपनी भारत-भक्ति का सबूत दें। हाँ, सचमुच ही यह बतलाना मुश्किल था। हरेक आदमी हनुमानजी की तरह छाती फाडकर अपने हृदय म विराजती भक्ति को कैसे दिखा सकता है? मैंने कहा—और लोगो मे जिससे भिन्नता न दिखाई पडे, वही रास्ता अच्छा होगा। आखिर कितने लाख ईसाई भी हमारे यहाँ हैं, उनको तो इसकी चिन्ता नही है, क्योंकि वह भेस और रुचि मे अपने दूसरे देश वासियो से भिन्न नही ह। यद्यपि धम और अपना कुछ

आचार-विचार भी है। उन्होने ठीक ही कहा—इसमे तो समय लगेगा। इसमे क्या शक है। लेकिन, समय लगने का मतलब एक पीढी की देर है और आरम्भ करने के लिए समय लगने की क्या बात है ? इसके सिवाय दूसरा रास्ता भी तो नही है। एक शिक्षित भद्र मुसलमान हृदय आशका स भरा हुआ था। वह सोचने लगे, भारत के जनसाधारण से अपने को अलग रखना हमारी भूल है। उधर गाधीजी रेडियो पर बोल रहे थे—उर्दू और नागरी दोनो अक्षर रहे दोनो भाषाये भी बकरार रखी जायें, नही तो जनतन्त्रता खतम हो जाएगी। यह भाषा और लिपि का बिलगाव उसी बिलगाव का बाहरी प्रदर्शन था, जोकि हिन्दू मुसलमान म पाया जाता है, और जिसके कारण आज इस दिन का मुह देखना पडा।

इसी समय लखनऊ से निकलनेवाले दैनिक "नवजीवन" के सम्पादक बनने का प्रस्ताव मेरे सामने रखा गया, लेकिन मैं उसके लिए कसे तयार हो सकता था ! लखनऊ मे सारा क्या अधिक समय भी देना मेरे लिए सम्भव नही था। पुस्तके लिखना इधर-उधर घूमने जाना था। साथ ही परिभाषा के काम की जिम्मेवारी मैंने अपने ऊपर ले ली थी। फिर "नवजीवन" से सघी और हिन्दू सभाई मनोवृत्ति रखनवाले भी सम्बन्धित थ, जिनके साथ मेरी पटरी कसे जमती ?

बम्बई मे बहुमूत्रता का मैं देख चुका था। लोगो न डायबटीज (मधुमह) की आशका भी प्रकट की थी। लेकिन मैं परीक्षा कराने मे अभी हिचकिचाता रहा। सन्देह की निवृत्ति आखिर परीक्षा ही से हो सकती थी। यह तो मालूम होने लगा, कि अब स्वास्थ्य पूववत् नही रहेगा, लेकिन वह स्थिति आठ वष की सीमा पार करन के बाद ही उपस्थित हुई। शारीरिक स्वास्थ्य कुछ भी रह, लेकिन मानसिक स्वास्थ्य तो जीवन-भर काम करन से ही बना रह सकता है। नई बीमारी थी, मन म तरह-तरह के भाव पैदा होने थे। मैंने ढूँढकर देखा, मन के किसी कोने म मृत्यु का भय नहीं है। जीवन की पर्वाह करनी चाहिए, मृत्यु—अभाव—के लिए चिन्ता करन की क्या जरूरत ?

१३ तारीख को आरा के श्री अवधविहारी सुमन आए। वह किसान सभा के कर्मी रहे, जेल भी गए, लेकिन सबसे विशेष बात यह थी, कि उन्होने भोजपुरी का मौखिक प्रचार न करके उसमे कहानियाँ और उपन्यास लिखे। उनकी पाडुलिपियां देखी। भाषा बहुत सजी थी लोकोक्तियाँ भी अच्छी तरह और काफी सख्या म इस्तेमाल हुई थी। कही कही खडी बोली का हल्का-सा प्रभाव भाषा पर जरूर था। दोष था अनुप्रास और कवित्व प्रदर्शन का बाहुल्य तथा चित्रण का पर्याप्त मात्रा म अभाव। मैं उनके प्रयत्न को प्रशसनीय मानता था।

आज हिंदू मुस्लिम एकता के लिए गाधीजी ने अनशन शुरू किया। अनशन से एकता इस समय स्थापित होनेवाली नही थी पर इसका दबाव भारत सरकार पर इतना पडा, कि उसने गाधीजी के जीवन के बदले पाकिस्तान को ५५ करोड रुपया देना स्वीकार कर लिया। "बूढे की हठ भयकर चीज है" यह मैंने १६ जनवरी को लिखा था और यह भी, कि 'क्या जानकी बाजी लगाकर गाधीवादी राजनीति पर चलने के लिए देश को मजबूर किया जाएगा? अतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय राजनीति म गाधी-वादी रास्ता देश के आत्मघात का रास्ता है।

१४ जनवरी को मकर-सक्रान्ति का दिन था। उस दिन श्री विश्वम्भर नाथ पाडे अपने साथ मुझे भी मेला ले गए। सूचना विभाग का प्रचार हो उठा था। मेले म बहुत भीड थी, किंतु कुम्भ नही, और छ साल बाद प्रयाग का कुम्भ कितना भयकर हुआ, इसे कहने की जरूरत नही। मेले म घूमा। वैरागियो का मैदान बहुत बडा था, लेकिन वह अधिकतर खाली था, जो कि अर्थहीनता और प्रभाव की कमी का सबूत था। उनमे पचायती अखाडा म बहुत तैयारी थी। अखाडा के अलग-अलग कई घेरे थे। एक हाथी और आदमियो के कधो पर तीन जगद्गुरु चल रहे थे। आगे-पीछे नागा साधु थे। बाजे भी घोडो पर बज रहे थे। वैरागी साधुओ का दैनिक न पढ़ने देख मुझे बडी प्रसन्नता हुई।

यात्रा (१५ २१ जनवरी)—नागार्जुन आ नही पाए, शायद लडके

की तबीयत और खराब हो गई। पर, साहित्याचार्य श्री बलभद्र ठाकुर साथ चलने के लिए तैयार रहे। ठाकुर मोशाय साहित्यिक घुमक्कड हैं, और अध्यवसाय के बारे मे यही कहना पर्याप्त होगा, कि संस्कृत पंडित होते उन्होने रूसी भाषा का मन लगाकर अध्ययन किया। पुश्किन का "कप्तान की कन्या" का भी रूसी से सीधा हिन्दी म अनुवाद किया। एक प्रकाशक कुछ अग्रिम देकर उसे ले गए, लेकिन नौ वर्ष हो गए और वह अब भी नही प्रकाशित हुई। यदि उस समय वह पुस्तक जल्दी निकल गई होती तो ठाकुर मोशायने और भी कितने ही रूसी ग्रन्थरत्नो को हिन्दी मे करके हिन्दी को समृद्ध किया होता। इस बारे म हिन्दी को हानि जरूर उठानी पडी, पर आगे उन्होने अनेक रूसी उपन्यास हिन्दी को दिए, यह फायदा भी हुआ। उस दिन रात के साढे ११ बजे हम बम्बई एक्सप्रेस से रवाना हुए। रात को यात्रा मे सोने के लिए जगह मिल जाए, इसे बहुत समझना चाहिए। पाकिस्तान के यात्री अब भी बराबर कुछ न कुछ जा रहे थे, कुछ की तलाशी भी हो रही थी। रात को ४ बजे के बाद ट्रेन खँडवा पहुँची। गाडी साढे ७ बजे रात का मिलनेवाली थी, इसलिए प्रतीक्षालय म डेरा डाल दिया। हमारे लिए निश्चिन्तता की बात यह भी थी, कि इन्दौर से श्री वैजनाथसिंह "महागणक" लेने को आ गए थे। शाम को भोजन के लिए बाहर गए। स्टेशन के पास ही दो सिनेमा थे भोजनालय भी थे पर सभी निरामिषाहारी थे। एक पंजाबी शरणार्थी ने चायखाने के साथ भोजनालय भी खोल रखा था। आमिष हो या निरामिष इस समय शरणार्थी भोजनालय मे खाना ही हम अच्छा समझते थे। जितनी बडी संख्या म पश्चिमी पंजाब से लोग बेघर होकर आए, यदि वास्तविक अर्थ म वह पुरुषार्थी न होते तो देश और उनके ऊपर कितनी मुसीबत आती, इसे सोचनेम भी चिन्ता होती है। रात को ही २ बजे हम खँडवा से चलकर इन्दौर पहुँचे।

इन्दौर—१७ तारीख का सवेरे छोटा सा भाषण करके बडा पहरान की रस्म अदा करनी पडी। दोपहर को कितने ही कम्युनिस्ट साथी आए, पार्टी से अलग होने के बारे म अफसोस करते रहे। डेढ बजे क्रिश्चियन

कालेज म अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विषय पर भाषण देना था। छात्र छात्राओ के अतिरिक्त दूसरे लाग भी थे। हिन्दी के अपने समय के अद्वितीय वक्ता प० माखनलाल चतुर्वेदी भी साथ थे। वहाँ स श्री बैजनाथ अपन एकाउटेंट कार्यालय को दिखलाने ले गए। वहा भी कर्मियो के सामने बोलना पडा। अभी हमारे अफसर और स्टाफ के लोग वस्तुत बहुत कुछ निर्लिप्त ही देश को आगे बढान मे अपनी शक्ति का उपयोग करना चाहते थे, लेकिन जैस-जैस ऊपर के बीभत्स नमूने को उन्होंने देखा, जैसे ही जैसे वह भी उसी रग म रग गए।

मैं वस्तुत साहित्य-परिषद् के अधिवेशन के लिए यहा आया था, जो शाम का साढे ७ बजे से शुरू हुआ। आध घटा देर से 'श्रीमान्'' आये, यह कोई बहुत देर नही थी। दुबला पतला मरियल-सा शरीर और चेहरे पर किसी तरह की विशेषता की छाप नहीं थी। यही हालकर के आधुनिक उत्तराधिकारी थे। सेठ हुकुमचन्द स्वागताध्यक्ष थे। उन्हान स्वागत भाषण पढा, फिर महाराजा ने उद्घाटन-भाषण किया। इसके बाद मेरा सभापति का भाषण हुआ राजा चलत वक्त मुलाकात करने की बात कहकर गए। स्वागत करनेवाला के कहने पर मैंने उनसे कह दिया—मुझे मिलने की कोई इच्छा नही है, और आप भी चिन्ता न करें, वह अपने कहे को भूल जाएँगे। आते वक्त प्रतिहार ने उच्च स्वर से महाराजा के पधारने की जो सूचना दी थी वह मुझे निरा परिहास मालूम हो रहा था। जब छत्रधारियो का सूर्य डूब रहा था, उस समय क्या यह बेवक्त की शहनाई नही थी?

१८ तारीख को दिन-भर भाषण ही भाषण हुए। सवेरे ६ बजे साहित्य-परिषद मे प्रगतिवाद के सम्बन्ध मे भाषण दिया, ११ बजे होल्कर कालेज मे भारत की ऐतिहासिक और सास्कृतिक एकता पर। वहाँ से भोजन करने के लिए सेठ हुकुमचन्द के घर पर गए। नवीन शिक्षा से वचित होने पर भी सेठ जिन्दादिल मालूम हुए। उनके पुत्र-पौत्र तो आधुनिकता के साँचे मे ढले हैं। इन्दौर को कपडे मिलो का केन्द्र बनाने मे सेठ हुकुमचन्द का बडा हाथ था। वहाँ निरामिष किन्तु बहुत नफीस भोजन था। भोजन करनेवाला

की जमात भी काफी बडी थी। भोजन चाँदी के बडे बडे थाला और कटा रियो म परोसा गया था। लक्ष्मी का चारो तरफ प्रकाश था।

४ बजे बाद शहर से बाहर महाराजा के निवास पर जाना ही पडा। पौन घट तक उनसे बातचीत होती रही। इन्दौर अभी विलीन नहीं हुआ था, लेकिन दवाव बहुत जोर का पड रहा था। आधुनिकता से परिचित और नवीन शिक्षा मे दीक्षित महाराजा भवितव्यता को समझ रहे थे, लेकिन साथ साथ अधिकार को छोडने के लिए मन भी नही था। यदि और राजाओ ने अपन सूयवशी चन्द्रवशी झडे को बरकरार रखने के लिए खड्ग का इस्तमाल किया होता, तो वह भी हिम्मत करते। अकेले ऐसा साहस करना बेकार था। वह कहते रहे थे कि शासनको प्रजामण्डल के प्रतिनिधियो के हाथ मे देकर क्या केवल वैधानिक प्रमुख रहना अच्छा नही होगा, या और कोई दूसरा रास्ता लेना चाहिए। मैं बेमन सा ही बात कर रहा था, क्योंकि दूसरी तरफ कोई वैसी बौद्धिक विशेषता नही देख रहा था। मैंने कहा—जो करना है, उसे समय से पहले और खुशी से करना चाहिए। जान पडता था, राजा हर वक्त नशे मे रहते थे। पत्नी अमेरिकन थी, जिसके साथ उसकी मा भी मौजूद थी।

मऊ छावनी मे भी आज ही प्रोग्राम था। वहा से दौडकर वहा की सभा म बोले देर हा से लोग निराश हो गए थे। लौटकर साढे ८ बजे शिक्षा-परि षद मे भाषण देने के बाद सवा नौ बजे निवास पर पहुँचने की छुट्टी मिली।

इन्दौर भी नया नगर नही है, क्योकि इन्द्रपुर म पुर का उर प्राग मुस्लिम काल—प्राकृत-अपभ्रश—के समय मे होता था। पर इन्द्रपुर नगर न होकर कोई गाँव भी हो सकता था। जो भी हो, इसका ऐतिहासिक महत्व उतना नही है, जितना अवन्ती देश की पुरानी राजधानियो, माहिष्मति और उज्जयिनी का। १९ तारीख का रात के ४ बजे ही मोटर से हम माहिष्मति (महेश्वर) के लिए रवाना हुए। सीधी सडक से जाने पर बीस मील पडता, पर वह कच्ची सडक थी, इसलिए हम पचास मीलवाली पक्की से गए, जिसमे अधिक दूर तक आगरा बम्बईवाली सडक मिली।

आसपास पहाड़ और बाघों-चीता के जंगल थे, दो घाट भी पार करने पड़े। अभी अंधेरा ही था, जबकि हम माहिष्मति के दुर्ग में पहुँचे। सबेरा होते ही नाव ले नर्मदा में घूमने चले। धारा गहरी और प्रायः उतनी ही चौड़ी थी, जितनी लेनिनग्राद की नेवा। नीचे कुछ दूर पर सहस्रधार था जहाँ जमीन की समतल-सी चट्टानों पर पड़कर नर्मदा हजारों धारावाली बन गई थी। बहुत ही सुन्दर दृश्य था। किसी समय समृद्ध अवन्ती की यह राजधानी अब दूर फैले अपने ध्वंसों के रूप में ही दिखाई पड़ती थी। एक शिवालय देखा। अकबर के समय १६२२ ई० (१५६५ ई० में) पोरवाड़ वंशज के किसी सेठ ने जिसका जीर्णोद्धार किया था। एक जगह खोह में ईसा पूर्व की कितनी ईंटें दीख पड़ीं। माहिष्मति के खण्डहर अपने प्राचीन इतिहास को छिपाए हुए पड़े हैं, जिनके उद्घाटक अवश्य पैदा होंगे। दुर्ग के नीचे। अहल्याबाई का बनवाया घाट और मन्दिर है। जिस कला का अब अवसान हो चुका है, उसके देखने की साध वहाँ पूरी हो सकती थी। महेश्वर की आबादी ६ हजार थी। अब भी वहाँ एक छोटा-सा बाजार है। नर्मदा के पार नीमाड़ जिला है जो बुद्ध के समय अल्लक देश के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पुराने पठानी सिक्के बहुत मिलते हैं, किन्तु हिन्दू काल के सिक्के भी मिलेंगे, यदि नीचे तक खोदा जाए। बाजार में कुछ व्याख्यान देना पड़ा, फिर लौटकर १२ बजे इन्दौर पहुँच गए। भोजनोपरान्त शिवाजीराव स्कूल, मेडिकल स्कूल, मिशन कालेज की चर्चा-समिति में भाषण देकर ४ बजे उज्जैन के लिए रवाना हो गए। मालव भूमि में हरी-हरी फसल लहरा रही थी। कालिदास की इस प्रिय भूमि को देखते मेघदूत की पंक्तियाँ याद आती थीं। मार्ग में ही देवास मिला, जहाँ के चमल राज्य भी अब विलीन होने-वाले थे। उज्जैन में साढ़े ५ बजे पहुँचे। महाकाल का दर्शन किया, यद्यपि उतनी भाव भक्ति से नहीं, जितना कि बाण वर्णित महाकाल का करता। डा० नागर का भी साक्षात्कार हुआ। उनकी पत्नी १६४३ की गंगोत्री-यात्रा में कितने ही दिनों तक अपने हाथ का स्वादिष्ट भोजन प्रदान कर कृतज्ञ कर चुकी थीं। डा० नागर के कारण प्राकृतिक चिकित्सा का केन्द्र

उज्जयिनी मे स्थापित हो गया था। अँधेरा हो गया था, जबकि सार्वजनिक सभा मे डेढ घटा भाषण देना पडा। उसी दिन रात को साढे १० बजे इदौर लौटे और तीन घटे बाद रेलगाडी पकडी। बडी दौड धूप रही, और किसी चीज को अच्छी तरह देखने का मौका नही मिला।

२० तारीख को अधेरा रहते ही रतलाम पहुचे। और कुछ समय स्नान के लिए मिल गया। फिर चौक और हाई स्कूल मे भाषण दिए। मदसौर—प्राचीन दशपुर—देखने की मेरी अत्यन्त उत्कट इच्छा थी। कालिदास ने इस नगर की महिमा गाई थी, फिर झूठा या सच्चा सस्कृति के पुत्र रतिदेव की राजधानी भी इसे बतलाया गया था, जिसे रतिदेव की कीर्ति चम्बल—(चामवाली, चर्मणवती) नदी है। रतिदेव परम अतिथिसेवी थे। अतिथियो के भोजन के लिए उनके यहा रोज हजारो गाएँ मारी जाती थी, जिनके ताजे चमडेसे गिरी बूदो द्वारा इसी नदी का आरम्भ हुआ था। मदसौर के लोग ले जाने के लिए आए थे। लेकिन, वहाँ जाना तभी सभव था, जबकि कार से जाकर वहाँ का काम भुगता आनेवाली ट्रेन से आगे जा सकता था। कार नही मिल सकी। मालवा देखने की उत्कट इच्छा पूरी नही हुई, इसलिए सकल्प किया "मालवा एक मास के लिए आना होगा, और खूब घूमना होगा।" लेकिन, यह सकल्प शायद कभी पूरा नही होगा।

रतलाम मे ही हम उदयपुर वाले डब्बे मे बैठ गए। उसी डब्बे मे दो महिलाओ के साथ एक जैन डाक्टर केसरियाजी (मेवाड) के दर्शनार्थ जा रहे थे। आधी रात को हम चित्तौड पहुचे। कितने ही साहित्यप्रेमी पुरुष और गुरुकुल वाले नारगी लेकर आए। जाडा बहुत था उतना [illegible] लेकिन १२ बजे रात को कहाँ भाषण मिलता। डब्बे ही मे [illegible] गए। आगे मावली जंक्शन मे पहुँचे। यहाँ तथा एक जगह और पुष्पमाला मिली। २१ तारीख को पौने ६ बजे हम उदयपुर पहुँच गए। डा० मोहनसिंह मेहता, श्री [illegible] [illegible] श्री [illegible] नागर आदि ने स्वागत किया। ठहरने का इन्तजाम महाराणा के अतिथि भवन—आनन्द भवन मे था। [illegible] पहले भी उदयपुर आया था। उस समय की स्मृति फिर जागृत हो

आई। कहाँ वह पुराने ढँग की और सफाई में बहुत पिछड़ी हवेली और कहाँ यह स्वच्छ युरोपीय ढंग का भवन। सबेरे जलपान करके मोटर से हम एकलिंग के लिए रवाना हुए। १३ मील का रास्ता पहाड़ा-पहाड़ चला गया था, जिसे पार करने में दो घंटे लगे। कई मन्दिर हैं जिनमें से दो एक अधिक कलापूर्ण हैं, यद्यपि १२वीं शताब्दी में हमारी मूर्तिकला को जो महा पाप लगा, उससे अच्छे भास्कर्य की कहाँ सम्भावना हो सकती थी। एक-लिंग के लिंग में एक मुख है, अर्थात् एक-मुखलिंग का ही यह संक्षेप है। यह पाशुपतों का किसी समय गढ़ रहा, लेकिन आज तो पाशुपत—सच्चे शैव—उत्तर से लुप्त हो चुके हैं, उनकी भव्य कीर्ति वास्तु और मूर्तिकला में ही हम सग्रहालयों और दूसरी जगहों में हमारे देश को समृद्ध कर रही है। ११ बजे तक मन्दिर का फाटक नहीं खुला। हम देर तक ठहर नहीं सकते थे। लौटते वक्त सड़क से कुछ हटकर अवस्थित सास-बहू के मन्दिर में गए, नागदा (नागह्रद) सरोवर के पास है। यहाँ जैन और विष्णु के ध्वस्तप्राय मन्दिर हैं। मुसलमानों के अनेक बार इस भूमि पर प्रहार हुए थे, जिनकी साक्ष्य यहाँ की टूटी फूटी मूर्तियाँ भी दे रही थीं। यह मन्दिर १३वीं शताब्दी के आसपास का है। साढ़े १२ बजे हम उदयपुर लौट आए।

भोजन के बाद ठाकुर साहब के साथ सिन्धी विद्यालय, हिन्दी विद्यापीठ, महिला मण्डल और बालिका विद्यालय देखने गए। हिन्दी विद्यापीठ बहुत अच्छा काम कर रहा था, और अब विश्व विद्यापीठ के रूप में अपना कार्य कर रहा है।

रात को ७ बजे स्काउटों के हाते में सार्वजनिक सभा हुई। सभापति डा० मोहनसिंह थे। यह जानकर अचरज लगता था कि एक ही संस्था के कितने ही अंगों के अलग अलग अलग अलग अधिवेशन करके सभी जगह मेरे प्रोग्राम को रखा गया था। २२ तारीख को सबेरे सस्कृति शिक्षा-सम्बन्धी सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रायः तीन घंटे मुझे ही बोलना पड़ा। मध्याह्न-भोजन श्री मोहताजी के यहाँ हुआ, फिर पत्रकार-सम्मेलन हुआ, उसके बाद विद्या भवन में गए। डा० मोहनसिंह द्वारा १९३१ में स्थापित

यह संस्था अब बहुत विशाल हो चुकी थी, जिसके साथ शिशु विद्यालय मैट्रिक तक का हाईस्कूल और एक ट्रेनिंग कालेज था। जलपान डा० शर्मा के यहाँ हुआ, जहा पचास से अधिक मेहमान थे। वहा से मोटर मे जाला सूअरा के निवास-स्थान को देखने गए। इन सूअरो को शाम के वक्त अन्न खिलाया जाता है, उस समय बडी सख्या मे आकर वह जमा हो जाते है, और देखने म पालतू से मालूम होते है।

७ बजे रात को स्काउट आश्रम मे मनोरजन का प्राग्राम रहा। गीत गाये गए, नाटक भी हुआ। पुरुष का स्त्री पात्र बनना बडा भद्दा मालूम होता है, लेकिन अभी इसके सिवा और चारा क्या था? १० बजे रात को छुट्टी लेकर विश्राम स्थान पर आए।

२३ तारीख को विद्यापीठ के कर्मियो का सम्मलन हुआ, जिसम भाग लेने के बाद १० बजे हम जावर के लिए रवाना हुए। २४ मील का पहाड़ी रास्ता था जिसमे अन्तिम कितने ही मीलो की सडक बहुत खराब थी। जावर प्राचीन काल मे भी भारी महत्व रखता था, और अब भी उसके निवासी लौटने वाले थे। यहा सीसे की खाने है जिनमे मुगलकाल और पीछे तक उनम काम होता रहा। पुराने समय मे पहाड के ऊपर से कुएँ की तरह खोद कर धूनवाली शिलाओ तक पहुँचा जाता था, अब नीचे से बारूद द्वारा तोड़ कर रास्ता बनाया गया था। सीसे के साथ इन पत्थरो मे जस्ता भी मिलता है, किसी किसी धून मे ताबा और चाँदी की भी मात्रा है। अंग्रेज और इतालियन कार्यकर्ता काम कर रहे थे। नलिनी रजन सरकार और दूसरे सेठ इसके स्वामी थे। यहाँ से चूनों को लारी मे और फिर रेल पर लाम्बर बगाल भेजा जाता था। कारखाना बन रहा था, लेकिन वह धातु की सफाई का पूरा काम कर सकेगा, इसमे सन्देह था। खाना क भीतर भी हम घुसे। फिर वहाँ से उजडे नगर म गए। दो मन्दिरा मे लेख मिले, जिनम स एक १५वी सदी का था। उस समय इस नगरी मे लक्ष्मी की वर्षा होती थी। फिर खाना म काम बन्द हो गया और लक्ष्मी का स्रोत सूख गया। आज यह नगर सुनसान खण्डहर-सा है। यहाँ के आसपास के पहाड सीस-जस्त के

भरे हुए हैं। उनकी उपेक्षा और कितने दिना तक की जा सकती है।

लौटकर वनवासी विद्यालय को देखते महाराणा कालेज म भाषण देना था। फिर प्रगतिशील लेखको म, और अन्त म सौ के करीब अतिथियो के साथ मोहताजी के यहा भोज म शामिल हुआ। उदयपुर म कार्यशीलता दिखाई पडती थी, कार्यकर्ता भी काफी थे, किन्तु सबका विकास किस ओर होगा, इसका पता नही था। उदयपुर को भी विलीन होना था, और महाराणा सबसे पहले कदम उठाकर यश के भागी हुए थे।

जोधपुर—उसी दिन शाम के साढे ५ बजे जोधपुर की गाडी पकडी। पिछली बार आते वक्त यह लाइन नही बनी थी। मैं समझता था पहले अजमेर जाना होगा, और फिर आगे के लिए दूसरी ट्रेन मिलेगी। सबेरा हो गया था, अब हमारी गाडी मारवाड म चल रही थी। मैं उत्सुकता से मरुभूमि का बालू देखने की कामना कर रहा था, लेकिन वह तो अभी बहुत दूर थी। २४ तारीख के सबेरे पौने ६ बजे हम दोनो जोधपुर पहुँचे। पहले ठहरने का कही प्रबन्ध करना था। प्रो० देवराज उपाध्याय का पत्र भी आ चुका था, लेकिन ट्रेन का पता न रहने से हम ही उपाध्यायजी के घर को ढूढने के लिए निकलना पडा। एक घटा ढूढने म लगा। उपाध्यायजी आरा के रहने वाले, और मेरे घनिष्ठ परिचित हैं। उनकी पहली पत्नी मेरे जेल के सहयोगी मित्र श्री पारसनाथ त्रिपाठी की पुत्री थी, और वर्तमान पत्नी स्वनामधन्य पण्डित रामावतार शर्मा की पुत्री। देवराजजी स्वय हिन्दी साहित्य के गम्भीर विद्वान हैं, लेखनी म भी शक्ति है, किन्तु उनका आलस्य बहुत अखरता है। योग्य प्रतिभाएँ जब कार्यक्षेत्र म आने से हिच-किचाती हैं, तो अयोग्य लोगो के आगे बढने मे उनको शिकायत कैसे हो सकती है? उपाध्यायजी कितने ही सालो से अब कानो से बहुत कम सुनते हैं, जिसके कारण अडचन भी है।

लोग आज शाम को मेरे आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन मुझे तो जल्दी पडी हुई थी। परिभाषा की जिम्मेवारी लेकर उसके बारे म अभी मैं कुछ नही कर सका था। समिति की बैठक म देर थी, इसलिए बीच के

समय को मैने इस यात्रा म बिताना चाहा था। इसी कारण ही आधी रात के साढे ६ बजे जोधपुर को छोड देना था।

यशवन्तसिंह कालेज के अध्यापको से बातचीत हुई, फिर यहा की एक सुन्दर सस्था बाल निकेतन देखने गया। निकेतन म तीन वर्ष तक के ही बच्चे रहते है। डेढ सौ के करीब बच्चो का होना ही बतलाता था कि इसकी उपयोगिता को लोग समझते है। बच्चो को किसी प्रकार की ताडना नही दी जाती सभी शिक्षा खेलकूद द्वारा दी जाती है। व्यवहार करने की क्षमता होते ही बच्चे अपने हाथ से काम करने लगते है। मुझे वहा सोवियत की शिशुशालाओ के बारे मे कहने के लिए कहा गया। कालेज के छात्र छात्राओं के सामने बोलना पडा जहा श्रोताओ की भारी सख्या उपस्थित थी। फिर यहा की दूसरी सस्था कुशलालय म गया, जहाँ छठी से दसवी कक्षा तक के छात्र पढते है। अधिकतर लडके यही रहते है। जोधपुर पुरानी रियासत है वहाँ इन नवीन सस्थाओ को देखकर भविष्य के लिए आशा पैदा होनी स्वाभाविक है। जोधपुर के तरुण महाराजा समय से शिक्षा लेने के लिए तैयार नही थे, और एक तरह जबदस्ती उन्हे विलयन के पक्ष मे करना पडा। उसके बाद भी उन्हे होश नही आई थी, और तिकडम के लिए रास्ता ढूढ रहे थे। वस्तुत राजा म अपनी बुद्धि भी नही थी, उन्हे तो दरबारी जैसे नचाते थे, वैसे ही नाच रहे थे। पर सूर्य चन्द्रवश का जमाना लौटने वाला नही था।

२४ तारीख—अक्तूबर—को भी हम काफी व्यस्त रहे। सबेरे साहित्य परिषद की गोष्ठी म गये। कुछ तरुणो ने अपनी कविताएँ सुनाई। आजकल जोधपुर जैसे किसी भी शहर म सौ-पचास हिन्दी कवियो का मिलना आश्चर्य की बात नही है, पर उनम बहुत कम ही कवि होने का अकुर अपने भीतर रखते हैं। कुछ अपनी कमजोरी को समझने वाले भी हैं, लेकिन ऐसों की सख्या भी काफी है जो कमी को मानने के लिए तैयार नही, कि मैं उच्च श्रेणी का कवि नही हूँ। ऐसा होने पर भी कुछ तरुणो की कविताओ को सुनकर निराश होने की जरूरत नही थी।

जोधपुर म आर्योपन्यासकार प० रामनरायण शर्मा रहते हैं, यह जानकर

मुझे मिलने की इच्छा हुई। पर इसी समय कहीं विवाह कराना था जिसके लिए वह आकर चल गए थे। उसकी धर्मपत्नी और पुत्र और पुत्री ने पिता की ओर स स्वागत सम्भार और भोजन कराया। वहा क उपाध्यायजी के स्थान पर लौट आया। तब से २ बजे तक प्रश्नोत्तर रूप म गोष्ठी चलती रही फिर म्युनिसिपल हाल म भाषण दिया। ४ बजे एक और जगह भी भाषण की बात थी, लेकिन तैयारी जल्दी जल्दी म नहीं हो सकी और नियत समय स डेढ घटे बाद मुस्लिम स्कूल म हिन्दी भाषा के ऊपर जाकर बोला।

जोधपुर भी अगडाई ले रहा था। बाल निकेतन और कुशलाश्रम जैसी संस्थाएँ बतला रही थी, कि वह अपने को आधुनिक युग के लिए तैयार कर रहा है। लगनवाले कार्यकर्ताओ का किसी साधन का अभाव नही रहता। साहित्यिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओ की यहा कमी नही थी। एक दिन और रहने क लिए जोर दिया जा रहा था, लेकिन वैसा करने पर आगे क प्रोग्राम टूट जाते। इसी समय को महाराजा का प्रथम पुत्र हुआ था, जिस पर दो करोड रुपया उडाए गए। उदयपुर कहीं अधिक प्रतिष्ठित संस्थान है, लेकिन सामन्तवाद की जितनी छाप जोधपुर म दीख पडी, वैसी वहाँ नही।

आगरा—रात के ६ बजे आनेवाली गाडी ११ बजे आई। २६ को सबेरा फुलेरा मे हुआ। यहाँ गाडी बदली। दो पहर बाद बादीकूई पहुचे। सेकड क्लास म रिजर्व कर लेने क कारण फुलेरा तक सोने के लिए जगह मिल गई। आगे तो भीड क लिए कुछ पूछना ही नहीं। रास्ते म साँभर स्टेशन मिला। साभर झील हिन्दुस्तान के बडे भाग को नमक देती है। झील जयपुर और जोधपुर की शामिलात है, किन्तु नमक बनाने का सारा प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के हाथ म है। इस समय वहा तीन सौ श्रमिक काम करते थे जो मौसिम के समय हजार तक हो जाते हैं। अकेला साभर कैसे सारे देश को नमक दे सकता है इसीलिए समुद्र का भी इस्तेमाल किया जा रहा है। साँभर की शाकम्भरी देवी बहुत प्रसिद्ध है। वह चौहानो की कुलदेवी

समय को मैंने इस यात्रा मे बिताना चाहा था। इसी कारण ही आधी रात के साढे ६ बजे जोधपुर को छोड देना था।

यशवंतसिंह कालेज के अध्यापकों से बातचीत हुई, फिर यहा की एक सुंदर संस्था बाल निकेतन देखने गया। निकेतन मे तीन वर्ष तक के ही बच्चे रहते हैं। डेढ सौ के करीब बच्चों का होना ही बतलाता था कि इसकी उपयोगिता को लोग समझते है। बच्चों को किसी प्रकार की ताडना नही दी जाती, सभी शिक्षा खेलकूद द्वारा दी जाती है। व्यवहार करने की क्षमता होते ही बच्चे अपने हाथ से काम करने लगते है। मुझे वहा सोवियत की शिशुशालाओं के बारे मे कहने के लिए कहा गया। कालेज के छात्र छात्राओं के सामने बोलना पडा जहा श्रोताओं की भारी संख्या उपस्थित थी। फिर यहा की दूसरी संस्था कुशलालय म गया, जहा छठी से दसवी कक्षा तक के छात्र पढते हैं। अधिकतर लडके यही रहते हैं। जोधपुर पुरानी रियासत है, वहा इन नवीन संस्थाओं को देखकर भविष्य के लिए आशा पैदा होनी स्वाभाविक है। जोधपुर के तरुण महाराजा समय से शिक्षा लेने के लिए तैयार नही थे, और एक तरह जबर्दस्ती उन्हें विलयन के पक्ष मे करना पडा। उसके बाद भी उन्हें होश नही आई थी और तिकडम के लिए रास्ता ढूढ रहे थे। वस्तुत राजा म [illegible] बुद्धि भी नही थी, उन्हें तो दरबारी जैसे नचाते थे, वैसे ही नाच रहे थे। पर सूर्य [illegible] का जमाना लौटने वाला नही था।

२५ तारीख—[illegible]—को भी हम काफी व्यस्त रहे। सवेरे साहित्य परिषद की गोष्ठी म गये। कुछ तरुणो ने अपनी कविताएँ सुनाई। आजकल जोधपुर जैसे [illegible] शहर म सौ-पचास [illegible] कवियो का [illegible] [illegible] नही है पर उनम [illegible] [illegible] [illegible] है। कुछ अपनी कमजोरी [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] है [illegible] कभी [illegible] [illegible] [illegible] रहे हैं। [illegible] [illegible] निर्माण की [illegible] [illegible]

जोधपुर म [illegible] [illegible]

मुझे मिलने की इच्छा हुई। पर इसी समय वही विवाह कराना था, जिसके लिए वह आकर चले गए थे। उसकी धर्मपत्नी और पुत्र और पुत्री ने पिता की ओर से स्वागत सम्भार और भोजन कराया। वहाँ के उपाध्यायजी के स्थान पर लौट आया। तब से ७ बजे तक प्रश्नोत्तर रूप में गोष्ठी चलती रही फिर म्युनिसिपल हाल में भाषण दिया। ४ बजे एक और जगह भी भाषण की बात थी, लेकिन तैयारी जल्दी जल्दी में नहीं हो सकी और नियत समय से डेढ घंटे बाद मुस्लिम स्कूल में हिन्दी भाषा के ऊपर जाकर बोला।

जोधपुर भी अंगड़ाई ले रहा था। बाल निकेतन और कुशलाश्रम जैसी संस्थाएँ बतला रही थी, कि वह अपने को आधुनिक युग के लिए तैयार कर रहा है। लगनवाले कार्यकर्ताओं को किसी साधन का अभाव नहीं रहता। साहित्यिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं की यहाँ कमी नहीं थी। एक दिन और रहने के लिए जोर दिया जा रहा था, लेकिन वैसा करने पर आगे के प्रोग्राम टूट जाते। इसी समय को महाराजा का प्रथम पुत्र हुआ था, जिस पर दो करोड़ रुपया उड़ाए गए। उदयपुर कहीं अधिक प्रतिष्ठित संस्थान है लेकिन सामन्तवाद की जितनी छाप जोधपुर में दीख पड़ी, वैसी वहाँ नहीं।

आगरा—रात के ९ बजे आनेवाली गाड़ी ११ बजे आई। २६ को सबेरा फुलेरा में हुआ। यहाँ गाड़ी बदली। दो पहर बाद बादीकुई पहुचे। सेकेंड क्लास में रिजर्व कर लेने के कारण फुलेरा तक सोने के लिए जगह मिल गई। आगे तो भीड़ के लिए कुछ पूछना ही नहीं। रास्ते में साँभर स्टेशन मिला। साँभर झील हिन्दुस्तान के बड़े भाग को नमक देती है। झील जयपुर और जोधपुर की शामिलात है, किन्तु नमक बनाने का सारा प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के हाथ में है। इस समय वहा तीन सौ श्रमिक काम करते थे जो मौसिम के समय हजार तक हो जाते हैं। अकेला साँभर कैसे सारे देश को नमक दे सकता है, इसीलिए समुद्र का भी इस्तेमाल किया जा रहा है। साँभर की शाकम्भरी देवी बहुत प्रसिद्ध है। वह चौहानों की कुलदेवी

थी। पृथ्वीराज का वंश शाकम्भरी का चौहान कहा जाता था। शाकम्भरी पृथिवीराज से भी पुरानी है, यह इस नाम ही से मालूम होता है—शाकम्भरी शाका का भरण करने वाली। अफसोस रहा, मैं उतरकर वहां देख-सुन नहीं सका।

बादीकूई में ट्रेन बहुत देर तक खडी रही, और ४ बजे बाद ही आगे की गाडी मिली। इससे अच्छा हुआ होता, यदि मारवाड जक्शन में इसी आगरा जानेवाली ट्रेन को पकड लिए होते, फिर वहां से सीधे आगरा पहुचते। हमारी ट्रेन आगरा के पास पहुँच गई, उसी वक्त डब्बे में एक एग्लो इडियन परिवार सवार हुआ। वह आगरा में ब्याह के लिए जा रहा था। अभी उनका वेष और भाषाओं में भारतीयता बिल्कुल पसन्द नहीं थी। लेकिन स्त्रिया जो हिन्दी बोल रही थीं, वह बिल्कुल शुद्ध थी। पहले जमाना होता, तो इनका दिमाग भी अग्रेजो से अधिक ही आसमान पर चढ़ा रहता, लेकिन अब उनके भाव बदल गए हैं, और अधिक भद्र मालूम होते हैं। एग्लो इडियनो में जो अपने गोरेपन से अग्रेजो के बहुत नजदीक थे, वे हजारो की सख्या में भारत छोडकर आस्ट्रेलिया, न्यूजीलण्ड या दूसरे गोरे उपनिवेशो में चले गए। बाकी अपनी वर्तमान स्थिति और भावी अन्धकार के कारण असतुष्ट हैं किन्तु कोई रास्ता नहीं दीख पडता।

सवा ६ बजे शाम को हमारी ट्रेन आगरा पहुँची। श्री रतनलाल मित्तल के यहाँ ठहरे। धनी मानी होते हुए भी रतनलाल जी साहित्यिक रुचि रखनेवाले थे। इन्होंने दो पुस्तकालय खोले हैं, जिनमे एक मृतपुत्र राज के नाम पर है। राजेन्द्र कालेज के द्वितीय वर्ष का विद्यार्थी था, पानी में डूबकर उसकी असमय मृत्यु हो गई। उसी के नाम पर विश्व-साहित्य के उत्तम ग्रथो के अनुवादो की माला वह प्रकाशित करना चाहते थे। आगरा में तीन दिन का समय रखा था। २७ को सबेरे गीता मन्दिर दर्शन का आयोजन किया। स्वामी आनद धन को किसी ने सवा डेढ लाख रुपये दिए। उन्होंने नगर से बाहर यह मन्दिर स्थापित किया। गीता प्रचार के साथ साथ लाट मेला भी यहीं सम्मिलित कर दी गई थी। फिर हम मित्तल

गए, जहाँ महान् अकबर अपने अधूरे स्वप्नों को लेकर सोया। सारे भारत को एक जाति बनाने का उसका स्वप्न अब पूरा होके रहेगा इसमें क्या सन्देह? आगरा के कैलाश को वर्षों आगरा में रहते भी मैं देख न पाया। नगर के बाहर जमुना के तट पर इस स्थान में हिन्दुओं के बहुत से मन्दिर हैं। पहले भी यहाँ मन्दिर रहे होंगे। खण्डित मूर्तियों को जल्दी से जल्दी जमुना में डालने की आवश्यकता मानी जाती है तो इतिहास की उन अनमोल सामग्रियों के मिलने की क्या संभावना? बहुत से धार्मिक स्थानों को इस शताब्दी के आरम्भ में मैंने देखा था। उस समय उनमें जीवन और चहल-पहल थी जिसका अब अभाव-सा दीख पड़ता था। नूरजहाँ के माँ-बाप की कबर जमुना पार एतमादुद्दौला में है। इमारत छोटी, किन्तु बहुत सुन्दर है।

रात को रांगेय राघव के यहाँ साहित्यिक गोष्ठी हुई जिसमें आगरा के बहुत से साहित्यिक आए। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पिछले पाँच सालों में रांगेय जी साहित्य क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ हैं। अच्छी-अच्छी कविताएँ लिखी, कहानी उपन्यास रचे। रांगेय जी के लिए यह तो कहना बिल्कुल उचित नहीं होगा कि वह अहिन्दी भाषी है। उनका खान-दान भले ही तमिलभाषी रहा हो, लेकिन उनका जनम-करम आगरा में ही हुआ था और शायद तमिल भाषा पर वह उतना अधिकार भी नहीं रखते, जितना हिन्दी पर।

श्री रतनलालजी ने अतिथि सेवा पर ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं समझी बल्कि वह अधिकतर मेरे ही साथ रहे। पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और हरियाना के शहरों और कस्बों में बहुत से जैन गृहस्थ परिवार हैं। रतन-लाल जी भी जैन हैं। मेरी धारणा है सभी जैन बस्तियों में अनिवार्य रूप से रहने वाले पुस्तक भण्डारों के हस्तलिखित ग्रंथों में हिन्दी गद्य पद्य की पुरानी रचनाओं के मिलने की संभावना है, अपभ्रंश के भी अज्ञात ग्रंथ वहाँ हो सकते हैं। यहाँ के लक्ष्मी पुस्तकालय के साढ़े चार हजार ग्रंथों में से अधिकांश हस्तलिखित हैं। मुझे उनके देखने की बड़ी इच्छा थी। मैं देखने गया, तो मालूम हुआ, कि पुस्तकालय की चाभी मौजूद नहीं है। सूचीपत्र

देखने से काम भी नहीं चल सकता था, क्योंकि सूचीपत्र बनानेवाले अपभ्रंश ग्रंथों को भी प्राकृत का समझते हैं। खड़ी बोली के अपने क्षेत्र मेरठ और अम्बाला कमिश्नरी तथा बिजनौर जिले की जैन-बस्तियों के पुस्तक भण्डारों में हिन्दी के प्राचीनतम गद्य पद्य के मिलने की संभावना है। बहुत संभव है यह खड़ी बोली के साहित्य को १३ वीं १४ वीं शताब्दी तक ले जाए। बौद्ध और जैन लोकभाषा को अपने धर्म के प्रचार का सबसे बड़ा साधन मानते रहे। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की इतनी ग्रंथराशि जो मिली है वह इसी प्रेम के कारण। अपभ्रंश के बाद जब खड़ी बोली कुरु और कुरु जांगल के जिले में आ उपस्थित हुई, तो उन्होंने अवश्य उसमें भी धार्मिक ग्रंथ लिखे होंगे। यह काम मेरे लिए बड़ा आवश्यक है, लेकिन समय कहाँ से लाऊँ, यह तो मासों नहीं वर्षों ठाँव ठाँव खाक छानने की बात है।

उसी दिन—२८ जनवरी—दयालबाग और पास में द्वितीय ताजमहल बननेवाले राधास्वामी मन्दिर को भी देख आए। १४ बजे आगरा के कालेजों की हिन्दी छात्र समितियों ने अभिनन्दन किया, जिसमें मुझे भाषण करना पड़ा। फिर 'सैनिक' कार्यालय में स्वागत हुआ, जहाँ प० श्री राम शर्मा और प० हरिशंकर शर्मा और दूसरों के दर्शन हुए। शाम को ७ बजे नागरी प्रचारिणी की ओर से अभिनन्दन-पत्र मिला। भाषण के बीच ही देवराज को पसन्द नहीं आया और बूँदें तेज हो गईं, जिससे बीच में ही उसे खतम कर देना पड़ा।

२९ जनवरी को सवेरे प० श्रीराम शर्मा और डा० सत्येन्द्र के [illegible] व्याख्यान हुआ। फतहपुर सिकरी जाने का प्रोग्राम था, पहले तो जान पड़ा कि मोटर बिना यात्रा स्थगित करनी पड़ेगी। पर १० बजे वह आ गई और ४५ मिनट में २४ मील की यात्रा करके हम अकबर की पुरी में पहुँच गए। [illegible] श्री [illegible] और ठाकुर [illegible] बराबर ही साथ [illegible] [illegible] सिकरी के [illegible] [illegible] देखा था। [illegible] [illegible] पुराना [illegible] है, और [illegible] [illegible] [illegible] अच्छी स्थिति में है। [illegible]

दीवारो पर पहले सुन्दर चित्र थे जिनके अवशेष अब कहीं ही रह गए हैं। सिकरी का महल एक पहाड़ी के ऊपर बना है। पास की निम्न भूमि को बाँध-बाँधकर किसी समय विशाल जलाशय में परिणत कर दिया गया था, जो कि बाँध के अभाव में अब फिर निम्न भूमि के खेतों के रूप में परिणत हो गया था। सोलह वर्ष तक सीकरी को अकबर की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। खनुवा यहाँ से सात मील पर है जहाँ बाबर ने राणा सांगा को हराया था। यह निर्णायक युद्ध था और इसमें विजय प्राप्त कर भारत में मुगल वंश की स्थापना हुई। दीवानआम और दीवानेखास यहाँ भी हैं यद्यपि इनसे बड़े आगरा के किले में और उनसे भी बड़े दिल्ली के लाल किले में हैं रानियों के रनिवास हैं जिनमें कुछ हिन्दू रानियाँ भी थीं और अकबर ने प्रोत्साहन दिया था, कि वह अपने धर्म में ही रहें।

पास ही विशाल जामा मस्जिद है जिसका दरवाजा अतिविशाल (बुलन्द दरवाजा) है। भीतर शेख सलीम चिश्ती की समाधि है। समाधि को संगमरमर का जहाँगीर ने बनवाया। निस्सन्तान होने के कारण अकबर साधु फकीरों की बड़ी सेवा करता था। उनको ने दुआ दी होगी, किन्तु शेख सलीम की लग गई। अकबर ने पुत्ररत्न प्राप्त किया, जिसका नाम शेख के नाम पर सलीम रखा। शेख सलीम की शीतल छाया के लिए ही अकबर ने दिल्ली छोड़कर सीकरी को राजधानी बनाया। पीछे उसे अनुकूल न पाकर आगरा को अपनी राजधानी बनाया।

४ बजे आगरा लौटे। यदि ४ घंटे पहले मोटर मिली होती, तो १२ बजे ही हम लौट आते और भोजन करके उसी समय मथुरा के लिए प्रस्थान कर देते।

**गांधीजी की वीरगति**—साढ़े ५ बजे आगरा से हमने प्रस्थान किया, और पौने ७ बजे मथुरा पहुँच गए। सुखसंचारक कम्पनी के स्वामी डा० विश्वपाल के घर पर ठहरे। रात के ६ बजे तक वहीं साहित्य गोष्ठी होती रही। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यहाँ के साहित्यिकों का तल काफी ऊँचा है। सुखसंचारक कम्पनी के संस्थापक पं० क्षेत्रपाल शर्मा थे

जिन्हान दवाइयों अपना औषधालय और इस कम्पनी को शुरू किया। विज्ञापन की शक्ति का उस समय अभी अमृतधारा के मालिक जैसे कुछ ही लोग जानते थे। अमृतधारा की सफलता पर बहुतों का सन्देह था कि यह रास्ता पुराना हो गया है, इसमें आकर्षण नहीं, अतएव सफलता की आशा नहीं। पर प० क्षेत्रपाल ने दिखला दिया, कि "अतिशय रगड करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन से होई।" सभी युगों मे और आजकल तो विशेष तौर से विज्ञापन की महिमा अपरम्पार है। विज्ञापन के ढग हर युग मे भिन्न भिन्न हो, यह कोई अचम्भे की बात नही है। प्राचीन सन्त महात्माओं का विज्ञापन उनके शिष्य और अनुचर किया करते थे। आधुनिक सन्त महात्माओं का भी प्रचार वह बडे दत्त चित्त से करते है, और उसके अतिरिक्त अपनी पुस्तकों पुस्तिकाओं से भी महात्मा लोग प्रचार करने मे निरत रहते है। व्यवसाय मे सफलता का अर्थ है लक्ष्मी की सिद्धि, अर्थात् द्रव्य की प्राप्ति। फिर "द्रव्येण सर्वे वशा" द्रव्य के वश मे सभी है। द्रव्य की प्रचुरता से यदि प्रथम पीढी का नही, तो अगली पीढी का शिक्षा संस्कृति सबका तल बहुत ऊँचा हो जाता, और फिर साधारण स्थिति के अध शिक्षित, अध ग्रामीण पिता माता के यहाँ पैदा हुए व्यक्ति भी उच्च वर्ग मे शामिल हो जाते है। सुखसचारक कम्पनी के स्वामी ही नही, बल्कि उनके सम्बन्धी सिकन्दराबाद के मुरारीलाल शर्मा और दूसरे बहुतो की सन्तानें इसके उदाहरण हैं।

३० तारीख का शुक्रवार एक अविस्मरणीय दिन आया। सवेरे जलपान के बाद ६ बजे म्यूजियम पहुँचे। मथुरा का म्यूजियम अपना विशेष महत्व रखता है। इसकी स्थापना का श्रेय प० राधाकृष्ण का सास्कृतिक प्रेम है। कुषाण-काल मे ही मथुरा समृद्धि के चरम उत्कर्ष पर पहुँचा। प्राय साढे तीन शताब्दियो तक वह कुषाणो और उनके महाराज्यपालो की राजधानी रही। इससे पहले वह सूरसेन जनपद की एक मामूली सी राजधानी भले ही रही, पर उस समय बहुत उन्नति करने का उसके लिए अवसर नहीं था, यद्यपि व्यापार के चतुष्पथ पर होने से आगे बढने की बहुत सी सम्भाव

नाएँ थी। अक्वर न यदि आगरा का लाभ न किया हाता और जिस लाभ
म मिस्री स उसका नजदीक हाना भी एक कारण था ता मथुरा फिर एक
बार कुपाणा की अपनी समृद्धि का दाहराता। आज मथुरा का महातम
कृष्ण की भूमि क कारण है। कुपाणा क समय उस अपन बडप्पन क लिए
इस महत्व की आवश्यकता नही थी। कनिष्क और हुविष्क का साम्राज्य
सारे उत्तरी भारत म मध्य एसिया म अराल समुद्र तक फैला हुआ था।
वाणिज्य अपन चरम उत्कष पर था। कनिष्क की कई राजधानियाँ थी,
जिनम कपिशा—काबुल पुरुषपुर पशावर और मथुरा मुख्य थी। अपनी
राजधानिया का सुअलकृत करन का कुपाणा का व्यसन था। कनिष्क की
मथुरा कितनी भव्य और सुदर रही हागी, इसकी कल्पना की जा सकती
है पर कल्पना स कही अधिक ठास प्रमाण यह म्यूजियम है, जहाँ पर
कुपाण-काल की सबस अधिक और सुदर मूर्तियाँ सगहीत की गई है। धरती
क भीतर वह इसस भी अधिक है, इस कहन की आवश्यकता नही। कितनी
ही मूर्तियाँ ता मथुरा क भिन्न भिन्न स्थाना म अभी भी भिन्न भिन्न
दवताओ क नाम स पूजी जा रही हैं। उनस भी अधिक को जमुना लाभ
मिला है। सचमुच ही जमुना, गगा सरजू गण्डक आदि म सैकडा वर्षो से
खण्डित किन्तु अद्भुत हजारा प्राचीन मूर्तिया का डाला जाता रहा है। क्या
-नक मिलन की फिर कभी सम्भावना है? मिलने पर भी दत नक-वेश
की तरह स्थानभ्रष्ट हा वह अपने बहुत स ऐतिहासिक महत्व का खा चुकी
हैं। मुझे केदार की मुद्राओ के बार म जानकारी प्राप्त करन की इच्छा थी।
यहाँ केदार की सुवण मुद्रा थी। केदार को कुछ इतिहासकार पीछे का
कुपाण राजा मानत है और कुछ उस हूणकाल श्वेत हूण।

फिर हम वृन्दावन गए। गाविन्दराज का मन्दिर अकबर क समय म
बना था, और शायद वह सदा अपूर्ण ही रहा। वृदावन जमुना क उसी तरफ
नही था, जिस तरफ कि मथुरा। पर लाठी क हाथा अब मनवा दिया गया
है, कि यही वृन्दावन है। भागवत् स मालूम है कि वृन्दावन जान म वसुदेव
को जमुना पार करना पडा। परित्यक्त और विस्मृत वृन्दावन का आविष्कार

गौडिया (बगाल के) वैष्णवो ने किया। अब वहा बगालिन भिखमगिनें भरा पडी थी, जिसका कारण पूर्वी बगाल से भारी तादाद में शरणार्थियों का आना भी था। वृन्दावन गुरुकुल को देखा, डेढ सौ के करीब विद्यार्थी मेरी दृष्टि मे पर्याप्त नही थे। अब तो गुरुकुल की शिक्षा बहुत बाना मे युनिवर्सिटी की शिक्षा जैसी ही है, इसलिए अभिभावको का कोई एतराज नही होना चाहिए। आजकल के जमाने मे १६ रुपया मासिक से लडको का कैसे भरण पोषण हो सकता है, इसलिए घी दूध का १० रुपया और कपडे का भी कुछ बहुत ज्यादा नही है। यहा के स्नातको को कई विषयो मे सीधे आगरा युनिवर्सिटी के एम० ए० मे बैठने का अधिकार है। पर केवल कला से देश का उद्धार नही हो सकता, उसके लिए साइन्स और टेक्नालोजी की आवश्यकता है। गुरुकुल को ऐसी सस्था मे परिणत करने के लिए बहुत भारी धन की आवश्यकता होगी।

रास्ते म बिडला का गीता मन्दिर देखा। सीमेंट और इट के अधिकतर कलाहीन ढाँचा को खडा करके हमारे सेठ अपनी सुरुचि का परिचय देते हैं। यहाँ मन्दिर को चित्रो से भी अलकृत किया गया है और कुछ सगमरमर का भी काम है। नगर से बाहर होने का यह मतलब नही, कि विज्ञापन से दूर रहने की कोशिश की गई है। आखिर यह मथुरा से वृन्दावन जाने वाली सडक पर है, जिस पर से होकर हरेक यात्री को गुजरना पडता है। यह अविज्ञापन युक्त विज्ञापन का अच्छा नमूना है। दीवारो के चित्रो को देखने से यह तो मानना ही पडेगा, कि सौ पचास वर्ष पहले से इस विषय म हमारी रुचि आगे बढी है। यदि देश के सर्वश्रेष्ठ चित्रकारो से सहायता ली गई होती, तो वह और भी सुन्दर होती, पर फिर सच का सवाल उठ सकता है ना।

मध्याह्न भोजन करके फिर हम मथुरा के टीलो की खाक छानने निकले। इनमे कितनी ही चीजें मिली हैं, और अभी भी वह बहुत सी मिट्टी म अन्तर्हित हैं। एक कालेज म भाषण देकर हम चाय पीने के लिए गुलमोहर कम्पनी म गए। चाय समाप्त हो रही थी। हम मन्दाकिनी हा

म भापण देने के लिए निकल रह थे, उसी समय जो खबर सुनने म आई, उस पर काना को विश्वास नही। बाजार म रेडियो के सामने खडे हुए, फिर काना का विश्वास करन के सिवा और कोई चारा नही था। कुछ कुछ मिनट पर रेडिया बराबर दाहरा रहा है गाधीजी को किसी हिंदू आततायी ने आज दिल्ली म मार डाला। भला यह विश्वास करने की बात थी। गाधीजी अजातशत्रु थ, वह किसी का अनिष्ट नही चाहते थे। उनके भी शत्रु पैदा हो सकते हैं ? और सा भी हिंदू सभ्यता और सस्कृति के अभिमान करन वाले लोगा म ? पर महाराष्ट्र का कलक लगान वाले ब्राह्मणो के मुख को काला करन वाले, नाथूराम गोडसे ने यह काम किया था। बुद्ध के बाद क्या भारत म कोई इतना महान् व्यक्ति पैदा हुआ ? हमारे देश की परम्परा ने हमेशा विचार-सहिष्णुता को जगाकर रखा। बुद्ध अनीश्वरवादी थे जात पात और कितनी ही दूसरी रूढिया के जबदस्त शत्रु थे, स्पष्टवक्ता थे, और गाधी की तरह प्रियभापी भी। ऐसे ही और भी कितने ही महा पुरुप इस धरती म पैदा हुए। लागो ने विचारा का विरोध विचार से किया, तलवार और गोली का सहारा कभी नही लिया। अधम गोडसे न न जाने क्या समझकर एसा किया। लेकिन, गाडसे को बुरा भला कहना ठीक भी नही है जबकि हम जानते है कि प्रभुता को हथियाने के लिए उतावले उच्च जाति के कितने ही लाग गोडसे के पीछे थे, जो फिर से पेशवासाही स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे। लेकिन, यह स्वप्न कभी पूरा नही होगा। अँग्रेजा के पजे से निकलकर कुछ उच्च जाति के तानाशाहा के हाथ म भारत अपने भविष्य का नही दे सकता। यदि यह सम्भव होता तो अँग्रेजो के जाने के बाद भारत म दस-बीस सूर्यवश चन्द्रवश राज्य जरूर स्थापित हो गए होते। भारतीय जनता यदि खुलकर अपने भावो को साफ-साफ नही बतला सकती, तो उसका यह मतलब नही कि उसके मन म कुछ है ही नही, और ऐरा गैरा नत्थू-खैरा जिधर चाहेगा उधर उसे बहा ले जायेगा। बहुजन हित जिस ओर है, उसी ओर भारतीय जनता और उसका वेग जाएगा। नदियो की धारा सरल रेखा म नही बहती, उसी तरह जनता की धारा भी सरल

रेखा से अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुंचती, पर उसकी एक दिशा होती है जिस ही ओर उसे जाना है।

जिस सभा में मुझे भाषण देना था, अब वह शोक-सभा के रूप में परिणत हो गया। सभा में उपस्थित लोग ही नहीं, सारे मथुरावासी स्तब्ध हो गए। ७८ साल की आयु को गांधीजी ने अपने महान् कार्य में ही बिताया। देश की आजादी उनके जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य था। उसे साढ़े पांच ही महीने पहले पूरा होते उन्होंने अपनी आंखों देख लिया था। उनकी सबसे बड़ी साध पूरी हो गई थी। वृद्ध तो थे ही और शरीर से दुबले पतले भी। आततायी और उसके पापकर्म को दो चार वर्ष और प्रतीक्षा करने में क्या हो जाता। जहां तक गांधीजी का सम्बन्ध है उनका जीवन यशस्वी रहा, और मृत्यु भी। कायर आततायी के कर्म पर विचार करते हुए मुझे उसी समय एक हिन्दू नेता की बात याद आई—'ऐसे नहीं मानेंगे तो हम जवाहरलाल को मारेंगे, मन्त्रियों को मारेंगे।' हां, उन्होंने गांधीजी के मारने की बात नहीं की थी।

## ६

# सम्मेलन में कार्य

३१ जनवरी को जलपान के बाद मोटर-अड्डे पर गए, कि बस पकड़कर आगरा जाएँ। आगरा लौटने के खयाल ही से हम यहाँ आए थे, इसलिए अपनी कुछ चीजें वहीं छोड़ आए थे। पर आज सारा भारत शोक मना रहा था। सभी जगह हड़ताल थी, बस बन्द थी, एक्के और ताँगे भी नहीं मिल सकते थे। आगरा होकर लौटने का खयाल हमने छोड़ दिया। छोटी लाइन से हाथरस पहुँचे और वहाँ से बड़ी लाइन की गाड़ी पकड़ी। दिल्ली जाने वाली गाड़ियों में इस समय बड़ी भीड़ थी। लड़के भरे जा रहे थे। जान पड़ता था रेल की सवारी उनके लिए मुफ्त कर दी गई है। हम उधर जाना भी नहीं था। कलकत्ता मेल दो घंटा लेट था, सेकण्ड क्लास भी भरा हुआ था। किसी तरह बैठने के लिए जगह मिली। आज गांधीजी की दाह-क्रिया दिल्ली में होने वाली थी। जिसके उपलक्ष्य में इटावा के पास ट्रेन दस मिनट के लिए खड़ी हो गई। इस समय राजघाट में गांधीजी के शरीर को भस्मसात् किया गया होगा। आगे जाने पर इंजन में आग लग गई। किन्तु ड्राइवर उसे घसीटकर १० मील फँफूद ले गया। लोग परेशान थे, ऊपर से खतरे की जंजीर काम नहीं कर रही थी। सौभाग्य से आग सुलगती भर रही, उसने प्रचण्ड रूप धारण नहीं किया, नहीं तो कितनों की बलि होती। फँफूद में वृन्दावन प्रवासी सेठ सेठानी आकर ट्रेन में चढ़े। सेठ का हाथ बरा

बर गोमुखी मे था, राधेश्याम के भक्त थे, अखण्ड माला फेर रह थ, हरि कीतन के भी बडे प्रेमी थे। अब कलकत्ता जा रह थे। उनके भक्तिभाव से हम कुछ लेना देना नही था, लेकिन यह देखकर बुरा जरूर लगा कि मिट्टी से हाथ धो-धाकर उन्होंने सारा पाखाना खराब कर दिया। हमारे यहा वैयक्तिक शुद्धता सबसे ऊपर मानी जाती है, चाहे दूसरो का उससे कितना ही अनिष्ट हो। यह मिट्टी से हाथ धोना ही था, तो नीचे पडी मिट्टी को भी धो देना चाहिए था, पर वह मिट्टी तो पाखाने मे पड चुकी थी, उसको धोने से धर्मात्मा सेठ अशुद्ध हो जाते।

कानपुर म कुछ आदमी उतरे, डब्बे मे कुछ आराम हुआ। पौने ११ बजे ट्रेन प्रयाग पहुची और हम भारद्वाज के पास श्रीनिवासजी के घर पर पहुँचे। प० बलभद्र ठाकुर के साथ रहने से सारी यात्रा बडे सुख के साथ बीती।

**प्रयाग**—सत्रह दिन की डाक प्रतीक्षा कर रही थी। सभी पत्रो का जवाब देना शक्ति से बाहर था। पर बहुतो को जवाब दिए। अगले दिन रविवार (१ फरवरी) सम्मेलन की स्थायी समिति की बैठक होने वाली थी, इसीलिए मुझे जल्दी जल्दी मे प्रयाग आना पडा था। स्थायी समिति म उस दिन गाधीजी की नृशस हत्या के बारे मे सिर्फ शोक प्रस्ताव पास हुआ, और ८ फरवरी के लिए बैठक स्थगित कर दी गई। "नवजीवन" के सम्पादक होने के लिए आग्रह किया जा रहा था। आज मैंने श्री सीताराम गुठे को जवाब दे दिया—मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नही।

जगह-जगह स बुलावे आ रह थे, पर मेरे सामने मुख्य काम था निर्माण म लगना। बहुमूत्र की परीक्षा और चिकित्सा बाकायदा शुरू नही की थी, लेकिन दिन-रात म पन्द्रह सोलह बार पेशाब जाना शका की चीज थी। मित्र लोग और भी अधिक शकित थे। माम के मध्य तक उसका प्रभाव तेजी से पडता दिखाई पडा। वजन घट जाने से तो प्रसन्नता हुई, क्योकि प्रयत्न करके भी मैं उसम सफल नही हुआ था, अब पेट अपने आप कम हो था। मालूम था कि शारीरिक श्रम का अभाव ही इसका कारण है।

मैं समझता था, कि टहलना सबसे अच्छा व्यायाम है, और शायद पहाडो मे जाकर घूमने मे इससे लाभ होगा। यदि इस विषय मे गम्भीर होता, तो इसी समय घूमना शुरू कर देता, लेकिन समय का लोभ था। घूमने की जगह कुछ काम कर लेना अच्छा। वस्तुत अब उससे कुछ होने वाला भी नही था यह आगे के तजर्बे से मालूम हुआ कि "चिडिया खेत चुग गई थी"। पन्नियां ग्रन्थि अपने काम से विश्राम ले चुकी थी।

४ फरवरी को अब भी माघ मेला था। महादेव भाई के साथ हम भी संगम की ओर घूमने गए। गोरखपुर जिले की एक बुढिया अपने साथियो से छूट गई थी। उसे अपने जिले का भी नाम नही मालूम था गाँव का भला प्रयाग मे कौन जानता। लेकिन बोली से पता लग ही रहा था कि वह किस जिले की है। मैंने उसके जिले के आदमियो के पास पहुचा दिया। यह सौभाग्य ही था, नही तो भारत के किसी दूर स्थान मे भटकने पर उसे कितना मुश्किल होता। साधुओ के डेरो मे अब भी धर्म ध्वनि हो रही थी। अब भी सैंकडो की पगत भोजन के लिए बैठी थी, अब भी श्रद्धालु भक्तो की कमी नही थी। स्वामी विद्वदानन्द अपने साथ गगा पार झूसी मे ले गए। वहाँ उन्होने एक कब्रस्तान को आश्रम मे बदल दिया था, दो एक पक्की कोठरियाँ बनवा कर बडे-बडे स्वप्न देख रहे थे। कमठ जीव है। १९१३ मे बरेली जिले के रामनगर गाव मे पैदा हुए। पिता कर्ज छोड गए थे जिसे हटाने के लिए दिल्ली मे नौकरी करने लगे। फिर घूमने निकले, तब से घूमते ही रहे। स्त्री मर गई और लडकी का ब्याह कर दिया। सुभीता यह भी हुआ, कि पहले आर्यसमाजी बने फिर काग्रेस की ओर खिंचे और १९४२ मे बरेली के रेकार्ड घर जलाने मे हाथ बँटाया। रेकार्ड जिसमे हमारे भी बहुत से ऐतिहासिक रिकार्ड रखे हुए थे। इतिहास लिखने मे इनकी अत्यन्त आवश्यकता थी। पर उस समय इतना विवेक किसको? अँग्रेजो का रेकार्ड घर है, उसमे आग लगा दो। गढमुक्तेश्वर मे भी पहुँचे और वहाँ हिन्दू धर्म रक्षा के लिए खड्ग धारण किया। झूसी मे गगा तट पर भी उस व्रत का पालन किया। मन मे बात बैठ जानी चाहिए, फिर

काम करने के लिए तो वह करना नहीं जानते। अनीश्वरवादी हैं किन्तु आदर्शवादी हैं, स्वार्थी नहीं, किन्तु स्वाधीन। सेवा करने की धुन है, लेकिन अनुशासन के फन्दे में शायद ही फँस सकें। पुराने समय में झूसी एक नगर था, जिसका नाम प्रतिष्ठान था, प्रयाग उस समय तपस्वियों का आश्रम था। झूसी के टीलों में बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री छिपी हुई है। उनकी कुटिया के पास के टीले में ही गुप्तकालीन ईंटें देखीं। सैर करने में श्री महादेव साहा भी साथ थे।

गाधीजी की हत्या के सम्बन्ध में पीछे और भी बातों का पता लगा। षडयन्त्र में शामिल होने वालों में से एक ने बम्बई के प्रोफेसर डा० जगदीशचन्द्र जैन से अपने मनसूबे को बतलाया था। डा० जैन ने बहुत व्यग्रता के साथ इस सूचना को बम्बई के मन्त्रियों तक पहुँचाने की कोशिश की, और चाहा कि अधिक सावधानी बरती जाए। लेकिन, मन्त्रियों को उसकी पर्वाह कहाँ? या पर्वाह थी, तो सुस्ती को इतनी जल्दी त्याग कैसे सकते थे। जब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नेताओं की गिरफ्तारियाँ हो रही थीं। संघ की अन्तिम चौकड़ी पेशवा राज्य का स्वप्न देख रही थी। जाट और राजपूत का झण्डा उठाए दूसरे नेता भी मैदान में उतरे हुए थे। सेठ लोग "लूट सकें तो लूट" के फेर में थे। अजब हालत थी। इस हत्या से नेताओं की आँखें खुलीं जरूर। २८ फरवरी को जवाहरलालजी १२ तारीख के गांधीजी के अस्थि विसर्जन की तैयारी देखने आए थे। आनन्द भवन की सड़क पर बहुत भीड़ थी, और चारों तरफ पुलिस पल्टन का पहरा बैठा हुआ था।

६ फरवरी को श्री फणि मुखर्जी से भेंट हुई। दस साल पहले वह मेरे साथ तिब्बत गए थे, उस समय अल्हड़ बेपर्वाह जवान थे। जिसके कारण मुझसे कुछ मनमुटाव भी हो गया था। अब वह विवाहित थे, एक बच्ची के बाप भी। जवाबदेही जीवन को गम्भीर बनाती है। अगले दिन उनके घर चाय पीने गया। उस मनमुटाव का कहीं पता भी नहीं था। समय भी भारी चिकित्सक होता है।

८ फरवरी को साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति की बैठक थी।

भिन्न भिन्न समितियो का चुनाव शान्तिपूर्ण हुआ, यह जानकर प्रसन्नता हुई, कुछ मतभेद अवश्य दिखाई पडे। परिभाषा निर्माण का भार मुझे दिया गया। दारागज इण्टर कालेज के प्रिंसिपल श्री चौबजी और युनिवर्सिटी के डा० सत्यप्रकाश के साथ उप समिति बनी। नागरी प्रचारिणी और नागपुर के विशेषज्ञो का भी सम्मिलित करन का निश्चय किया गया। डा० रघुवीर नागपुर मे परिभाषाओ के निर्माण का काम कर रहे थे। उनका निर्माण का ढग एसा था जिसस सहमत होना भारत के किसी भी विज्ञ पुरुष के लिए सम्भव नही था। उनकी धारणा थी कि सस्कृत म २२ उपसग २००० धातु और ३०० के करीब प्रत्यय है, इनके घटाव-बढाव स हम अरबो अलग अलग शब्द बना सकते हैं, और उन्हे एक एक अग्रेजी शब्द के लिए इस्तमाल करके उन वस्तुओ के साथ चिपका सकते है। इस तरीके का हमारे यहाँ या कही भी इस्तमाल नही किया गया। ऐसे शब्द सवथा अज्ञात होते अज्ञात मे अज्ञान का परिचय अति दुष्कर है, यह सभी जानते है। भारत म ढाई हजार वर्ष म परिभाषाएँ बनती आई है उसके परिणामस्वरूप भिन्न भिन्न विषयो के दस हजार स अधिक पारिभाषिक शब्द हमारे पास मौजूद है। उनसे अधिकतर ज्ञात स ही अज्ञात के परिचय कराने की कोशिश की गई है और कभी कभी बहुप्रचलित विदेशी शब्दो को लेने म भी आनाकानी नही की गई। उदाहरणार्थ केन्द्र, ग्रीक शब्द है यह जिस अर्थ का प्रतिपादन करता है, वह मध्य बिन्दु स प्रकट नही हो सकता था, इसलिए किन्नी शब्द को ही हमारे पूर्वजो ने ले लिया। केन्द्र, केन्द्रित, केन्द्रीकरण आदि इसके रूपो को देखकर कौन कह सकता है, कि यह सस्कृत का शब्द नही है। मेरी यही धारणा रही, कि हम नए शब्दो को ज्ञात स अज्ञात की प्रक्रिया म गढना चाहिए और बहुप्रचलित विदेशी शब्दो को भी स्वीकार करने म परहेज नही करना चाहिए।

१० फरवरी को चित्रकार सगलजी अपनी चित्रशाला दिखाने के ले गए। सगीत, चित्र और कविता म मेरा अपना दृष्टिकोण है, प्रकृति के अधिक से अधिक नजदीक रहना चाहिए। ...ान

हज नही, लेकिन बुनियाद धरती पर रहनी चाहिए। सगीत के नाम पर उस्तादो की गलाबाजी से मुझे बडी चिढ है। उसी तरह चित्र के नाम पर लिकारियो भी मुझे बिलकुल पसन्द नही हैं, चाहे इन लिकारियो के साथ बडे बडे लोगो का नाम जोडकर रौब डालने की कोशिश की जाए। मगलजी के सुन्दर चित्र मुझे पसन्द आए, क्योकि उनमे प्रकृति के साथ साथ रहने की कोशिश की गई थी। गुप्तकाल की चित्रकला और मूर्तिकला इसीलिए महान् है कि उसे कल्पना और यथार्थ के सम्मिश्रण से बनाया गया है। उर्दू मे मर्सिया (शोक प्रकाशक) कविता को बिगडे शायरो की कृति बतलाया जाता है। मै समझता हूँ, कि प्रकृति का सर्वथा उल्लघन करने वाली चित्र मूर्ति कविता कला भी उसी तरह बिगडे कलाकारो का काम है।

मेले पर जाने की मेरी उत्कठा इसलिए भी हुआ करती थी, कि प्रयाग मे नाना स्थानो से आए हुए घुमक्कडो मे शायद कोई मेरा भी पुराना परिचित निकल आए। इसी विचार से ११ फरवरी को भोजनापरान्त हम सगम पर गए। "जिन ढूढा तिन पाइया" की बात सच्ची निकली। एक युग के बाद भागवताचार्य से मुलाकात हुई। तीस वर्ष तो जरूर बीत थे। उस समय वह तरुण थे, और अब वृद्ध। लेकिन कर्मठता अब भी उनमे वैसी ही थी। दिल खोल कर मिले। कितनी ही बातो मे हम समानधर्मा थे, यद्यपि हमारे कार्यक्षेत्र अलग अलग है, और एक दूसरे से भी इतने दूर जाकर रहने लगे, कि आज तीस वर्ष बाद मुलाकात हुई। रामानदी—वैरागी—सन्तों मे घुमक्कडी तथा दूसरे कितने ही गुण थे, परन्तु विद्या का उनमे अभाव था, शास्त्रीय तौर से उनकी नीव कमजोर थी। प० भागवतदास ने इस कमी को दूर करने का बीडा उठाया, और रामानन्द को उनके उचित स्थान पर बैठाने का प्रयत्न किया। रामानन्द रामानुज या किसी भी दूसरे धार्मिक सुधारक और विचारक मे कम नही थे, बल्कि वह मानते हैं, कि दूसरे लकीर के फकीर थे, जब कि रामानन्द ने समय की माँग देखते हुए नया रास्ता निकाला। इसी प्रयाग के एक ब्राह्मण परिवार मे वह पैदा हुए। फिर घूम कर रामानुजियो के प्रभाव मे आकर साधु हो गए। एक आर

कट्टरपथिया क कारण दम घुटत वातावरण स बाहर निकलना चाहत थे और वह साथ ही हिन्दू धम और सस्कृति का भी ताजी हवा म लना चाहत थे। दूसरी आर मुस्लिम शासका के प्रभाव स जिस हीन अवस्था म हिन्दू पडे हुए थे, उसकी भी चिकित्सा करना चाहत थे। उहान साचा—जात पात क बधना का ढीला करना हागा, छुआछूत मे बाहर निकलना हागा कूपमडूकता दूर करनी होगी और उद्धार क लिए पण्डिता और सामतो ही नही बल्कि जनता और उसकी भापा का सहारा लना हागा। उहान इन विचारो का काय रूप म परिणत किया। रामानद क शिष्य ब्राह्मण स चमार तक सभी जातिया क थे। कबीर ने अपन गुरु का नाम उज्ज्वल किया। रविदास ने बतला दिया, कि जम कोई चीज नही है शुद्ध विचारवाले महापुरुष चमार के घर मे भी पैदा हा सकत हैं। छुआछूत को जितना दूर तक उहाने हटाया था, वह पीछे वहा नही रह सकी। ता भी बडी जातियो का सहभाज कम नही था और सहपक्ति म ता बल्कि प्राय सभी जातिया क साधुआ को सम्मिलित किया गया। कहावत है कि साधुआ की पक्ति म पत्तला का अभाव देखकर तुल्सीदास किसी साधु की पनही लेकर पाति म जा बैठे। उन्हाने समझा था, साधु की पनही स बढकर पवित्र कौन दूसरी चीज हो सकती है। कूपमडूकता दूर करन मे रामानन्द की शिक्षा ने कितना काम किया, यह इसीसे मालूम हागा कि तब स हजारा वैरागी देश और देश क बाहर भी कुछ दूर तक सदा घुमक्कडी करत रह। इसक फलस्वरूप भारत क कोने कोन मे ही नही, बल्कि अफगानिस्तान म भी वैरागिया की कुटियाएँ बन गई जहाँ आने-जानवाले घुमक्कड चार दिन अच्छी तरह घर की तरह विश्राम कर सकत हैं। यद्यपि भाजन क छुआछूत म वैरागी उतन नहीं आगे बढे, जितने कि सन्यासी और उदासी, ता भी रामानुजी कोल्हू के बैल यहाँ पैदा नही हा पाए। जनता की भापा का रामानन्द न स्वय अपनाकर कुछ लिखा जरूर था लेकिन वह अधिकतर पद थे जिनकी भापा पुरानी थी और वह अधिकतर कण्ठस्थ रखे गए थे। इसके कारण रामानद की यह अनमोल कृतियाँ पूरे रूप म हमार सामन

नही आ पाइ। लेकिन, रामानन्द ने ही हमे तुलसी को दिया, उन्ही की परम्परा म अग्रदास और दूसरे सन्त थे। सचमुच रामानन्द का काम महान् था, इतना महान् कि लोग उसका अभी ठीक से मूल्यांकन नही कर सके। प० भगवद्दास, (अब प० भगवताचार्य) ने उसी रामानन्द के झण्डे को उठाया था। उस समय पहलेपहल स्वामी भगवताचार्य ने जब गेरुआ कपडा पहना तो वैरागियो मे खलबली मच गई। वह समझते थे कि गेरुआ कपडा तो सन्यासियो की चीज है। अब भी उसमे गेरुआ कपडा पहननेवाले कम नही है, लेकिन अब उसमे उन्हे चिढ नही है। स्वामी भगवताचार्य का अब उनमे बहुत सम्मान है। एक दूसरे से दूर रहने पर भी पुस्तको और कभी कभी पत्रो द्वारा हम एक-दूसरे की गतिविधि का परिचय रखते थे। इन प्रसन्नता होती थी, कि दोनो ही अपने काम म तत्पर रहे। प० भगवताचार्य ने सस्कृत मे तीन भागो मे गाँधीजी की जीवनी लिखी है, और भी कितनी ही पुस्तके लिखी है। उस समय वह सन्तो की मडली म बैठे हुए थे। काले शरीर पर मोटे झोटे भगवे कपडे को देखकर कोई जान नही सकता था कि यह इतना तेजस्वी पुरुष है, यदि उसकी नजर उनकी चमकती आखो पर न पडती। उन्होने स्वागत करते हुए उपस्थित सन्तो से मेरा परिचय कराया, और कुछ कहने के लिए कहा। कोई घुमक्कड सहस्राब्दियो से बडे बडे घुमक्कडो को पैदा करनेवाले इस मण्डली के प्रति सम्मान दिखाए बिना कैसे रह सकता था। उस समय की कुछ बाते याद आ गइ जब कि मैं निद्व द उन्ही के भीतर घूमता था, पहलेपहल घुमक्कडी के पाठ को उन्ही के पास रहकर सीखा था। इन्ही के साथ न घन वन और दुलघ्य पवतो का भय की नही प्रेम की चीज बना दिया। घटा भर वहाँ बिताने के बाद हम गगा पार स्वामी हसदेव के स्थान पर गये। स्वामी सत्यस्वरूपजी और दूसरे सन्तो से विद्या और दूसरे विषयो पर बातचीत होती रही। कुछ तरुण साधु विद्वानो को देखकर बडी प्रसन्नता हुई, इस ख्याल से कि यह सस्कृत के गम्भीर पाडित्य को य नष्ट न होने देग। मेले म घूमते हुए डा० मगलदेव शास्त्री से ̄ हो गई। चौदह वष म प्रमाणवार्तिकभाष्य छपने की प्रतीक्षा कर रहा

था। तिब्बत से कितन परिश्रम और प्रम स उतारकर मैं लाया था। कई दरवाजा का देखा, आशा हा हा करक भी वह प्रेस का मुह नही देख सका। डा० मगल्दासजी दव न काशी सस्कृत काल्ज मे छपाने की बात की ता मुझे बहुत हप हुआ, यद्यपि दूव के जले का जम छाछ भी फूक फूक कर पीना पडता है मैं सहसा विश्वास करन के लिए तैयार नही हा सकता था, कि प्रमाणवार्तिकभाष्य" की नैया पार हो जाएगी। सचमुच ही अभी उस और कई घर देखने थे और अन्त म सात वप वाद जायसवाल सस्थान न उस प्रकाशित करन का पुण्य काय किया।

१२ फरवरी को गाधीजी का त्रिवेणी म अस्थि विसजन हानवाला था। त्रिवणी म ही अस्थि विसजन का क्या महत्व दिया गया? न गाधीजी की ऐमी धार्मिक मान्यता थी न जवाहरलाल जैस कितन ही नताओ की हा सक्ती थी। अस्थि विसजन दिल्ली की जमुना म भी हा सकता था। शायद दिल्ली म इस कृत्य को सम्पादन करन म सम्मान को अपूण रूप म दाहराना भर हाता और यहा उनक लिए एक नया स्थान मिल रहा था। गाधीजी की अस्थियाँ दश क भिन्न भिन्न भागा म बाटकर विसर्जित की गई, लेकिन उनक विसजन का विशेष समाराह जवाहरलाल की जन्मनगरी प्रयाग म ही हुआ। लोग जान गय थे कि भीड अपार होगी। रास्ता निश्चित था। हम भी रिजेण्ट सिनेमा के पास की एक काठी म ६ बजे ही जाकर डट गए। कितने ही लोग और भी पहल स सडक क किनारे कटघरे क बाहर बिछा-वना बिछाकर बैठे हुए थे। अस्थि को विशेष ट्रेन से दिल्ली स लाया गया था। ६ बजे जलूस निकलनेवाला था उसम डेढ घटे की देर थी। सडक पर दस दस हाथ क फासले पर सैनिक तैयार थे। सडक क किनारे के मकाना की छता पर भी लोगो की भीड थी। गाधीजी का दाव नही था। उसक लिए जा भाव पैदा हाना, वह अस्थि के लिए नही हा सकता था। इसीलिए जलूस म जानवाल मालूम हो रह थे मेल म जा रह हैं। वही बात दशका म से भी अधिकाश म देखा जाती थी। जलूस मे जवाहरलाल पैदल चल रह थे। वल्लभभाई और प० गाविन्दवल्लभ पन्त के लिए पैदल चलना सभव

नही था। और भी कितने ही लोग गाडियो पर थे। एक लौरी पर अखण्ड गीता पाठ हो रहा था जिसमे बाबा राघवदासजी भी सम्मिलित थे। और ११ बजे जलूस हमारे सामने से गुजरा।

नजरबन्दी के दिनो मे मैंने सिगरेट पीना सीखा था। १९४० से १९४५ तक पीता रहा। क्यो पीता था? देखादेखी ही कह सकता हू या समय काटने के लिए। लिखते वक्त तो मैं कभी सिगरेट नही पी सकता था। यह लाभ जरूर था कि इसके द्वारा मित्रो का स्वागत सत्कार हो सकता था। मेरे मित्रो का कहना था, कि इसमे रस आता है। मुझे वह रस कभी नही मिला, अच्छे से अच्छे सिगरेट का पीकर भी वही बात देखी। किसी किसी का कहना था, पचास सिगरेट के एक पूरे डिब्बे को पीने पर किसी एक मे रस आएगा। लेकिन वह मेरी शक्ति से बाहर की बात थी। ईरान मे सिगरेट पीता रहा रूस के अपने पच्चीस मास मे उसे बिल्कुल छोड दिया। लन्दन से फिर यह बला पीछे पड गई जहाज मे श्रेष्ठ सिगरटो को बहुत सस्ते दाम पर मिलते देखकर मित्रमण्डली का उससे सत्कार करने का ख्याल आया। अब वह मुझे दिल्ली का लड्डू मालूम हो रहा था—जो खाये वह भी पछताए, जो न खाए वह भी। मैं उसे छोडना चाहता था, और आज इस पुण्य दिन मैंने उसे छोड दिया।

लखनऊ—उसी दिन रात को लखनऊ के लिए रवाना हो गया। सीट पहले ही से रिजर्व थी, नही तो प्रयाग से लौटनेवाली भीड के कारण जगह नही मिलती। सवेरे साढे ७ बजे लखनऊ पहुँच रिसालदार बाग मे श्री बोधानन्द महास्थविर के यहाँ ठहरा। काफी दिनो बाद मैं यहाँ आया था। महास्थविर का शरीर अब दुर्बल हो चला था। ७५ वर्ष के हो गए थे, लेकिन बात करने मे जब जोश आता, तो उनकी वही तेजस्विता दर्शन गोचर होती। विहार की भूमि मे अब मकान बन चुके थे। जिनसे मकान मे बीस रुपया मासिक किराया भी मिलता था। महास्थविर को इसकी चिन्ता थी कि कैसे विहार का काम पीछे भी ठीक से चलता रहेगा। उन्हे तो जो पढने का बडा शौक था, और उतना ही संग्रह का भी।"

प्रचार विहार म एक काफी बडा पुस्तक भण्डार जमा हो गया। महास्थविर जब भी मुझसे मिलते भावाद्रेक म सजल नत्र हुए बिना नही रहते थे।

चायपान म बाद कसरबाग म म्यूजियम देखने गये। उत्तर प्रदश का यह सबमे बडा सग्रहालय है। मुझे "मधुर स्वप्न' उपन्यास लिखने की धुन थी। उपन्यास उस काल का था, जब कि पाचवी छठी शताब्दी म हफ्ताल (श्वेत हूण) उत्तरी भारत के बहुत से भाग अफगानिस्तान और मध्य एसिया क शासक थे। मैं उनक इतिहास की कुछ गुत्थिया ने सुलझाने म लगा हुआ था। म्यूजियम म केदार क सिक्के थे। जिन्हे लघु कुषाण भी कहा जाता है। उधर कुछ लोग केदार को हफ्ताला (श्वत हूण) का नेता मानत है। हफ्ताल हूण नही थे, इसम तो कोई सन्देह नही।

१४ फरवरी का यशपाल जी से मिलने गया। वह इस समय दुगा भाभी क यहाँ रहत थे। वहा से फिर नरेन्द्रजी के यहाँ गय, तो मालूम हुआ कि वह बाहर चले गए है। तीन घटा रिक्शा लेकर म्यूजियम, गोमती, कम्पनी बाग आदि की सैर करते रहे। सवा १२ बजे नरेन्द्रजी क यहा पहुचे और दो घट तक उनस बातचीत होती रही। शास्त्रीय बातो के अतिरिक्त परिभाषाओ क बारे म विशष तौर से हमन विचार विनिमय किया। उन्हे आशा थी, कि मैं कुछ दिना ठहरूँगा, किन्तु अब समय कम और काम ज्यादा थे।

**बरेली**—उसी दिन बरेली जाने का विचार था, लेकिन अगले दिन शनिवार को पजाब एक्सप्रेस म मुश्किल से जगह मिली। डब्बा मे पलटन और पुलिस क अफसर भर थे। तीन सज्जन बात करने म होड लगाय हुए थे। अपने राम तो सारी यात्रा म ऐसे बैठे रहे जिससे लोगो को भ्रम हो सकता था, कि यह आदमी गूगा है। बात करने की कोई जरूरत भी नही थी। खिडकी से बाहर हरे-भरे खेतो को देखता, कही-कही ऊख भी खडी थी। इस लाइन मे सफर करने पर सडीला की मिठाई हमेशा आकर्षण की चीज होती है। यद्यपि अब वही लड्डू नही होते तो भी नाम का गुण कुछ जरूर दिखाई पडता है। बरेली ट्रेन लेट पहुँची। स्टेशन पर प्रो०

रामाश्रय मिश्र, कितने और अध्यापको तथा विद्यार्थियो के साथ जब फूल माला गले मे डालकर उतारने लगे, तो डब्बे के साथियो को आश्चर्य होना ही चाहिए। उन्हे क्या मालूम, यह गूंग की तरह बैठा आदमी कौन है। मिश्रजी के साथ हम उनके निवास पर गए। परिवार मे पाँच सन्तानें, दो स्त्री-पुरुष और अन्धी माता आठ प्राणी थे, और कमानेवाला सिर्फ एक आदमी। शिक्षित परिवार का भार वहन करना हमारे यहा कितना मुश्किल है, इसका अन्त कब होगा?

१६ तारीख को सवेरे ६ बजे मैं रिक्शा लेकर अकेले ही चल पडा। बरेली मे मेरे घुमक्कडी जीवन के बहुत से परिचित स्थान थे। १६१० मे पहले-पहल इस नगर मे आया था, तभी से एक मधुर स्मृति बराबर मन मे बनी रहती है। आज उन स्थानो को फिर देखने की इच्छा की। बरेली सिटी स्टेशन के सामने अम्बाप्रसाद शाह की धर्मशाला मे गया, जिसमे १६१० मे उत्तराखण्ड की यात्रा से लौटकर कुछ दिनो ठहरा था। अब भी वह वैसी ही थी। पीछे बाग भी वैसा ही था, आगन कुछ कम साफ मालूम होता था। बगल वाली वह धर्मशाला भी मौजूद है, जिसमे काषाय वस्त्र धारी प० खुनीलाल शास्त्री बोधि प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे।

वहा से निकलकर छोटी लाइन के साथ की सडक से रिक्शा आगे बढा। एक सन्यासी-मठ मे गया। सोच रहा था, यहाँ कोई खण्डित मूर्ति मिली थी, जिससे बरेली के इतिहास पर कुछ प्रकाश पडेगा। पर कोई नहीं मिली। पूछने पर अलखनाथ, चम्पतराय की बगिया आदि स्थानो के नाम मालूम हुए। एक वैरागी स्थान मे गये। वहाँ हराल्ह चल रहा था, जिसमे दो पैसे मे एक गिलास गन्ने का रस मिल जाता था। मैंने तीन गिलास रस पिया, ६ पैसे दिये। महन्तजी का ही वह कोल्हू था, उन्होंने पैसा लेने से इन्कार कर दिया। घूमते हुए भैरवनाथ मन्दिर मे गए। १६१० के फक्कडापन और सजीवता का यहाँ कुछ कुछ परिचय मिला। कण्डे और गाँजे की चिलम चल रही थी और भाग छनने की बात हो रही थी। नाथो का मन्दिर होने के कारण मैंने पुस्तको के बारे मे पूछा, तो गोरख पंथ की कुछ

छपी साधारण-सी पुस्तकें दिखलाइ। अपनी परम्परा का ज्ञान जब बड़े-बड़े नायपथियो को नही है तो यहाँ उसकी क्या आशा हो सकती थी ? हाँ, यह जानकर प्रसन्नता हुई, कि घुमक्कडी का वातावरण यहाँ कुछ दिखाई दे रहा था। छोटे से स्थान के आगन म कई मूर्तियाँ मौजूद थी।

मध्याह्न भोजन के समय मैं मिश्रजी के घर पर लौट आया। ४ बजे तक यही गोष्ठी चलती रही, फिर बरेली कालेज गया। इस कालेज की स्थापना १८३७ म—महाविद्रोह से बीस साल पहले—हुई थी। इस समय इसम १३०० के करीब छात्र थे। कालेज के अधिकारियो म दकियानूसी बूढो का प्रभुत्व है। उत्तर पचाल ( रुहेलखण्ड ) उत्तर प्रदेश के सबसे कम जाग्रत स्थानो म है। बूढो म जान न हो, पर जवानो में क्यो नही, यह समझ म नही आता। हर जगह शिक्षित मध्य वर्ग द्वारा राजनीतिक और सामाजिक जागृति आई है। यहाँ का वह वर्ग अधिकतर मुस्लिम भद्र वर्ग था, और वह राष्ट्रीय भावना से दूर हट कर विदेशी शासको की सुखरई हासिल करने की कोशिश करता था। क्या यह कारण हो सकता है ? कालेज मे पहले फोटो और फिर चायपान हुआ। इसके बाद विद्यार्थियो और अध्यापको के सामने कुछ कविताएँ पढी गई, कुछ भाषण हुए, और अन्त मे मैंने साहित्य और हिन्दी के भविष्य पर भाषण दिया।

१७ को दोपहर तक निवासस्थान पर ही साहित्यिको की गोष्ठी जमी रही। भोजनोपरान्त २ बजे निकले।

केन्द्रीय जेल म ७०० के करीब बन्दी थे। हाथ की कताई, हाथ की बुनाई पर ज्यादा जोर दिया गया था। बन्दियो को जब अपने परिश्रम का कोई बदला नही मिलता, तो उन्हे काम करने की क्या प्रेरणा होन लगी ? एक नई बात देखी कि अब रसोईघर म पत्थर के कोयले के तन्दूर थे जिन पर रोटियाँ पकाई जाती थी। इतनी तेज आँच के तन्दूर म हाथ मुह झुलसने से बचाने का कोई बचाव नही था। जेल की रोटियाँ कच्ची होती थी य वैसी नही थी। वहाँ स पास ही लडके बन्दियो का जेलखाना था, जिनम सौ से ऊपर बन्दी थे। यहाँ हरेक को अपने काम का पारिश्रमिक

मिलता था, इसलिए उनकी काम करने मे रुचि थी। सारा काम हाथ से होता था, अर्थात् उपज बहुत निम्न तल पर हो रही थी, तो भी हरेक लडका बीस पच्चीस रुपया मासिक कमा लेता था। यहाँ कपडा बुनने साथ का काम जूता, खिलौना, कुर्सी-मेज आदि का काम कराया जाता था।

बरेली मे केन्द्रीय भारत का सबसे बडा पशु-अनुसधान प्रतिष्ठान है जिसका प्रबन्ध सरकार के हाथ मे है। शहर से बाहर यह विशाल संस्था बहुत दूर तक फैली है। यहा पशुओ के खाद्य का विश्लेषण होता है और कैसे पुष्टिहीन तृणो को अधिक पुष्टिकारक बनाया जा सकता, इसका तजर्बा किया जाता है। कृत्रिम गर्भाधान का भी प्रयोग होता है। यत्र द्वारा वीर्य निक्षेप करने से एक साड बीस गायो के लिए, और अधिक प्रबन्ध हो, तो दो सौ गायो के लिए पर्याप्त होता है। विशालकाय साड छोटी जाति की गायो के उपयुक्त भी नही हो सकते, लेकिन इस विधि से कोई हानि नहीं है। एक छोटी पहाडी गाय और शाहीवाल साड की आठ मास की सुन्दर बछिया को देखा, जिसके सामने उसकी मा छोटी मालूम होती थी। वह तो नही थे, कि इस तरह से प्रसव के वक्त कोई दिक्कत होती है। पर पूर्वी बगाल और आसाम के सीमान्त पर अर्ना भैंसा से ग्रामीण भैंसो की सन्तानो के प्रसव के समय बच्चे के बडे होने से अधिक संख्या मे भैंसो के मरने की बात सुनी जाती है। वहा जगली अर्ना भैंसें स्वजातीय ग्रामीण भैंसो के झुण्ड मे आ जाया करती हैं।

लौटकर शाम की चाय डा० श्यामस्वरूप सत्यव्रत के यहा पीनी थी। डाक्टर साहब पुराने आर्यसमाजी आदर्शवादी पुरुष हैं। अपने सारे परिवार को आर्यसमाज के साचे मे ढालने की कोशिश की है, यद्यपि उपहासास्पद रीति से नहीं। टौन हाल मे पहुँचकर वहाँ भाषण देना पडा। जहाँ बरेली के गण्यमान्य नागरिक मौजूद थे। अगले दिन ( १८ फरवरी ) सबेरे की चाय श्री रामजीशरण सक्सेना के यहाँ हुई। सक्सेनाजी कवि और अध्यापक रहे। कवि अब भी हैं, लेकिन अध्यापकी छोड वकालत करने लगे, और अच्छे चमके। लेकिन कविता का प्रेम उनके हृदय से नहीं गया।

उनकी देवादसी वरेली क तरण कवि निरकारदेव भी वकालत मे चले गये। नून-तल-लकडी का प्रबन्ध यदि स्वतन्त्र रीति से हो सके, तो साहित्यकार के लिए इससे बढकर और कौन बात हो सकती है ? वरेली का मेरा जहा तक अनुभव रहा बहुत अच्छा रहा। बहुत से योग्य साहित्यकर्मी यहाँ मिले। प्रो० भोलानाथ शर्मा तो गुदडी के लाल निकले। उनकी एकाध कृतिया को पहले भी मैं देख चुका था। लेकिन, उनके बारे म इतना जानने का मौका इसी समय मिला। प० भोलानाथजी वरेली कालेज म सस्कृत के प्रोफेसर है। गायथे की प्रसिद्ध कविता 'फौस्ट" के एक भाग के जर्मन से सीधे हिन्दी म अनुवाद को मैं देख चुका था। लेकिन, यह जानकर मुझे प्रसन्नता, आश्चय और खेद भी हुआ, कि वह ग्रीक भाषा के भी विद्वान् है। प्रसन्नता इसलिए कि ग्रीक के ग्रथरत्नो को सीधे हिन्दी म करनेवाला एक विद्वान् मिल गया जो ग्रीक के साथ सस्कृत का भी पण्डित है। आश्चर्य इसलिए कि अब तक इनको लोगो न पहचाना क्यो नही, और खेद इसलिए कि उनके ज्ञान का कोई उपयोग नही लिया जा रहा है। शर्माजी ने प्लातान (प्लेटो) के प्रसिद्ध ग्रथ "पोलितेइया" (रिपब्लिक) का हिन्दी म अनुवाद किया था पर प्रकाशित करनेवाला कोई मिल नही रहा था। मैंने उनसे कहा कि इस सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कराऊँगा, और ग्रीक मनीपिया की महान् कृतिया को हिन्दी म ला देने को आप अपने जीवन का लक्ष्य बनाइये। यदि अरिस्तातिल (अरस्तू) के सभी ग्रथा को आप हिन्दी म ला सकें, तो हमारे साहित्य पर यह इतना बडा उपकार होगा, जिसके लिए वह हमेशा आपका कृतज्ञ होगा। उन्होने पुस्तको के अभाव की शिकायत की। प्रयाग म आने पर मैंने यह बात आचाय क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय से कही। उनके पास लातिन अनुवाद के साथ ग्रीक साहित्यकारो म अरिस्तातिल और प्लातान के करीब करीब सारे ग्रथ लातिन अनुवाद के साथ दो शताब्दी पहले के छपे मौजूद थे। यह समाचार सुनकर वह भी मेरी तरह अत्यन्त प्रसन्न हुए, और कहा, इन ग्रथो के मेरे पुस्तकालय म रहने का कोई नही, इनसे शर्माजी काम लें। मैंने उन ग्रथो को सम्मेलन को प्रदान

वहाँ से अच्छी जिल्द बधवाकर शर्माजी के पास भेज दिया। मेरे जोर देने पर सम्मेलन ने "पोलितेइया" को आदर्श नगर के नाम से काफी देर बाद छाप दिया। प० भोलानाथ अपने काम मे दिलोजान से जुट गये। उन्होंने अरिस्तातिल के महान् ग्रथ "राजनीति" का अनुवाद अगले ही साल समाप्त कर डाला। उतने से ही उनको सतोष नही हुआ, और इगलण्ड और अमेरिका मे ग्रीक ग्रथ रत्नो के जो नवीनतम सस्करण निकल रहे थे, उनका भी उन्होंने उपयोग किया १९५० के आरभ म ग्रथ छपने के लिए तयार हो चुका था, और आज ६ वर्ष तक उसने प्रेस का मुह नही देखा। छ साल हमने खो दिये। यदि उनके ग्रथ तुरन्त छपने लगे होते, तो सभवत अरिस्तातिल के अधिकाश ग्रथो को वह हिन्दी मे ला चुके होते। यह उपेक्षा अत्यन्त खेदजनक है। हिन्दी मे गतिरोध कहा है, इसे देखना है, तो यहाँ देखिए। सस्कृत और ग्रीस का एक साथ विद्वान् और हिन्दी पर पूरा अधिकार रखने वाला व्यक्ति हर रोज नही मिला करता और हमने उसकी प्रतिभा से लाभ उठाने का यत्न ही नही किया।

**प्रयाग**—पजाब मेल एक घटा लेट रहा। उस वक्त की गाडियो के लिए यह कोई असाधारण बात नही थी। बेटिकटवालो की भरमार थी, इसलिए उन्हे दण्ड देने के लिए ट्रेनो मे मजिस्ट्रेट सफर करते थे जिसके कारण बेटिकटवालो की कमी हुई थी, और हमे आराम से बैठने की जगह मिल गई थी। आकाश मे बादल छाये हुए थे, लेकिन फरवरी मे वर्षा ऋतु तो नही होती, इसलिए बूदें एकाध ही कभी गिरती थी।। २ बजे के बाद लखनऊ पहुचे, और रिक्शा लेकर राम भवन गये। यही दुर्गा भाभी रहा करती थी। यशपाल भी यही थे। भाभी ने बच्चो के लिए एक पाठशाला खोल रखी थी। हम कालविन तालुकदार स्कूल देखने गये। अवध तालुकदारो का प्रदेश है, लाखो की आमदनीवाले दरजनो राजा महाराजा-नवाब की उपाधियो से भूषित अग्रेजो के अनन्य भक्त तालुकदारो के पुत्र यहाँ पढते थे। यह स्कूल इतना बडा है जिसके सामने युनिवर्सिटी भी छोटी मालूम होती है, जहाँ तक भूमि का सम्बन्ध है। किडरगाटन से लेकर १२ वा

श्रेणी तक यहाँ पढाई होती थी। १५० तालुकादार पुत्र उस समय यहा पढ रहे थे। अग्रेजो ने जनसाधारण से अलग रखकर उन्हे शिक्षा के साथ साथ राजभक्ति का पाठ पढाने का यहा प्रबन्ध किया था। राजकुमारो और नवाबजादो को जिस तरह रखना चाहिए, उसी तरह उन्हे रखा जाता था। इसे देखकर मेरा ख्याल तालुकदारी उठने की ओर गया। उसी समय पर एक तालुकदार तरुण ने कहा—'अभी उसके उठने मे पाँच छ साल लगेंगे।" शायद ऐसा कहने मे वह गलती पर नही था, और उसके अभिभावको ने उस समय का पूरा फायदा उठाया। तालुकादारी खरीदने के लिए अब कौन सा बेवकूफ तैयार होता? पर जमीन, परती जगल की बन्दोबस्ती से उन्होने खूब रुपया पैदा किया, कितनो ही ने ट्रैक्टर के साथ फार्म बनाने का प्रयत्न किया, शहरो मे जायदादें ली। इन सबके कारण तालुकादारो की स्थिति वैसी दयनीय नही होने पाई, जैसी कि छोटे जमीदारो की। तालुका दार स्कूल अब तालुकदारी के तौर पर नही रह सकता था यह तो निश्चय था। लेकिन, उसे इजीनियरिंग या टेकनीकल कालेज के रूप मे परिणत करने का ख्याल अभी तक किसी को नही था।

पता लगा, उदयशकर का कलात्मक फिल्म "कल्पना" आया हुआ है। हम भी देखने के लिए गए। देखकर निराश हो मैंने सोचा—सर्वज्ञता के भ्रम ने इसे समाप्त कर दिया। उदयशकर ने कलाकार उदयन को फिल्म की कथा का आधार बनाया, और कलाकार के लम्बे जीवन को छोटी छोटी झाँकियो से चित्रित करना चाहा। वह झाँकी इतनी कम थी, कि जब तक उससे आदमी कुछ निष्कर्ष निकाले उससे पहले ही वह खतम हो जाती। फिल्म साधारण जनता के लिए तो लिखा ही नही गया था, यदि मेरे जैसे दर्शक भी उसे नही पसन्द कर पाये, तो उसकी असफलता निश्चित थी। यदि उन्होने नवीन उदयन की कथा का मोह छोड नृत्य तथा सगीत के छोटी छोटी भूमिकाओ के साथ पेश किया होता, तो जरूर जनप्रिय और आर्थिक दृष्टि से भी बहुत सफल रहता। इस असफलता को मुझे बहुत खेद हुआ, क्योकि मैं उदयशकर की कला का प्रशसक हूँ।

१६ को डा० अहमद और हाजरा बेगम से मिलने गया। य कितने भले और ईमानदार दम्पती है। आधी आये या तूफान, वह अपने लक्ष्य पर अटल रहकर आगे बढ रहे ह। हाजरा ने लन्दन म मोटेसरी की शिक्षा बहुत पहले जाकर ली थी, आजकल वह एक माटेसरी स्कूल म पढा रही हैं। भोजन के बाद श्रीमती दुर्गादेवी के माटेसरी स्कूल को भी देखने गया। इन स्कूलो की अपनी उपयोगिता है, तभी तो लोग अधिक खर्च करके अपने बच्चो को इनमे पढाने के लिए भेजते हैं। लेकिन, मुझे तो शीशमहल में पलते मध्य वर्ग के इन राजकुमारो और राजकुमारियो की शिक्षा-दीक्षा का देश के लिए कोई महत्व नही मालूम होता। साधारण बालको से अलग रख कर एक कृत्रिम वातावरण म बच्चो को पढाना, उनम साधारण नागरि के भाव को नही पैदा कर सकता। वह अवश्य सतमंजिले महल की छत पर खडे होकर नीचे रेंगती जनता को देखेंगे। लेकिन, इसका दोष हम हाजरा और दुर्गा भाभी को नही देते। ऐसी शिक्षा की मध्य वर्ग को आवश्यकता है जिसका उपयोग वह अपने तौर से करना चाहते हैं। उसी दिन इसा बेल थावन कालेज की छात्राओ के बीच घंटा भर रूसी शिक्षा के बारे म बोलना पडा। यह मिशनरियो का कालेज है, और अब नये वातावरण स अपने को प्रभावित करने की कोशिश कर रहा है। छात्राएँ बीच-बीच म हँस भी रही थी जिससे मालूम होता था, उनका मनोरंजन भी हो रहा है। नास्ति के बारे म तो सन्देह ही नही।

शाम के वक्त प्रगतिशील लेखको की गोष्ठी हुई। कम्युनिस्ट मुझे अब अपने से अलग समझते थे, इसलिए उनके प्रश्नोत्तर भी उसी के अनुकूल हो थे। मुझे उनका कठमुल्लापन अच्छा नही लगता था, और यह और भी, [illegible] अपना या दूसरा द्वारा बहिष्कृत रहा या प्रयत्न करते हैं। [illegible] है, [illegible] या अपने [illegible] अपना अस्तित्व का अनु [illegible] मिल जाने की कोशिश करनी चाहिए वह [illegible] दूसरों में [illegible]। यदि विरोधी उनका अलग-अलग दल [illegible]। हिन्दी व राजभाषा और राष्ट्र [illegible]

भापा हान पर मुसलमानो के ऊपर जुल्म होगा, उनकी सस्कृति का विन हागा यही रट त लगाये थे। लेकिन हिन्दीभाषी प्रान्ता म हिन्दी के राज भाषा होन म अब कोई सन्देह नही रह गया था। उनका कहना था— सरकार के करन स उसे कुछ नही समझना चाहिए, लेकिन दस पाच साल मे कांग्रेसी सरकार का स्थान दूसरा लेगा यह साचनेवाले दया के ही पात्र थे।

प्रयाग—उसी दिन रात के ११ बजे प्रयाग जानेवाली ट्रेन पकडी, और सात सात अगले दिन सवेरे प्रयाग पहुच गया। माघ मेले के कारण हैजा फैल गया था दो सौ आदमी मर चुके थे बडे जोर शोर से हैजे का टीका लगाया जा रहा था। कुछ तो ध्यान इसका रखना ही चाहिए स्वय शिकार न होकर यदि हैजा फैलाने म सहायक बना जाए, तो यह और भी बुरा है। पर मुझे इसकी पर्वाह नही थी। उस दिन प्रेमचन्द, मन्मथनाथ गुप्त और कुछ और लेखका की पुस्तक पढता रहा। खामखाह विश्वास कर लिया था, कि "प्रमाणवार्तिक-भाष्य" अब छप ही जाएगा, इसलिए उसे प्रेस के लिए तैयार करने लगा। गर्मिया मे पहाड पर जाना होगा, यह निश्चय ही था कभी-कभी कुल्लू का भी ख्याल आता। डा० जार्ज रोयरिक के पुन से मालूम हुआ कि अभी भी सडक टूटी हुई है, और कितनी ही जगह पर पैदल जाना पडता है। पुस्तका के बक्सो को उठाए पैदल चलने के झगडे का कौन माल लेगा, इसलिए किसी दूसरी जगह जान का ख्याल करना हागा। रेल म पैर छिल गया था जो अभी सूखा नही था। डायबेटीज़ तो इसी समय राग बननी है, नही तो यदि जरूरत से अधिक वजन न घटे, तो उसकी पर्वाह नही करनी चाहिए। २२ फरवरी को अतवार था। उस दिन शाम का घूमते हुए रसूलाबाद साहित्यकार ससद भवन मे पहुँचा। गगा के किनारे ऊँची जगह पर बहुत सुन्दर स्थान है। पर, एकान्त प्रेमी कवि या योगी के लिए यह उपयोगी हो सकती है। लेकिन, सभी ता गगाजल और स्वच्छ हवा पर जी नही सकते। यदि पुस्तका की आवश्यकता हुई, तो मीलो दूर शहर मे जाइए, यदि जीवन की दूसरी चीजा की आवश्यकता पडी, तो

उसके लिए भी भोगा। दूर दौड़िये। पुराने युग और आज के युग में कितना अन्तर है ? आज किसी भी वर्धिष्णु संस्था को नगर से दूर ले जाना भ्रूण हत्या करने के समान है। हाँ, यदि देश समृद्ध हो, हरेक व्यक्ति का जीवन सामग्री पर्याप्त परिमाण मे सुलभ हो और उनके बाद भी पैसा हाथ में रहे तो ऐसे स्थान कुछ व्यक्तियों को कुछ दिनों के लिए उपयोगी हो सकते हैं यहाँ वे वनभोज कर सकते हैं, वन-गोष्ठी भी रचा सकते हैं।

सोचने पर गर्मियों के लिए कनौर—किन्नर देश—ही पसन्द आया, जहाँ अप्रैल के अन्त में जाकर अगस्त के अन्त तक लौटा जा सकता। लेकिन, परिभाषा निर्माण के काम का भी जिम्मा लिया था। अगले दो महीनों में उसके लिए काफी करना था। श्रीनिवासजी के घर मे हम हैं, यह बात प्रकट हो गई थी इसलिए मुझे कोई और एकान्त स्थान ढूंढना था। चट्टोपाध्याय जी ने अपने घर में आने का निमन्त्रण दिया। वह अपने रसोइये के साथ अकेले उस बड़े घर में रहते थे। सब तरह से अनुकूल था, लेकिन बहुमूत्र के रोगी के लिए सबसे नजदीक पेशाबखाने की जरूरत पड़ती है, रात में एकाध ही बार तो उठना नहीं पड़ता। हमारे प्राचीनतापंथी घरों मे पेशाब-पाखाने के सुभीते की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। तो भी वहाँ कुछ समय रहने का निश्चय कर लिया।

बनारस—२६ फरवरी की दोपहर को छोटी लाइन से बनारस के लिए चले। माघ मेला खतम हो गया था, इसलिए भीड नहीं थी। माधोसिंह स्टेशन पर गोपाल मन्दिर की गोसाइनजी चढ़ी। वल्लभ पंथ के गोसाई तैलंग हैं, उनके मूल स्थान मे स्त्रियाँ जानती भी नहीं, कि पर्दा किस चिड़िया का नाम है। लेकिन गोसाइनजी जबर्दस्त पर्दे मे आई थीं। पर्दा डालकर एक ट्रेन से दूसरी ट्रेन में चढाई गई। सिर्फ बनारस तक जाने के लिए इतने तरद्दुद की क्या जरूरत थी मजे में मोटर से जा सकती थीं। जब उनके सामान से सारा डब्बा भर गया, तो मालूम हुआ, कि वह क्यों मोटर से नहीं गई।

मध्याह्न भोजन डा० मंगलदेवजी के यहाँ किया, फिर निरालाजी से

मिल्न गायलघाट गए। उनिद्रता का इस वक्त आधिक्य था, जिसके साथ साथ दिमाग भी गरम था। लेकिन कुछ भी हा उनका सौजय सदा उनके पास रहता है। इस समय तुलसी रामायण को हिदी म करन की धुन सवार थी। कुछ देर तक वातचीत हुई। उहान अपन इस नय प्रयत्न के कुछ नमूना का दिखलाया। सम्मेलन न हिदी क महान् कविया के कविता सग्रह उही के द्वारा करान का प्रयत्न किया था और इस सम्बध क कुछ ग्रथ निकल भी थे। निरालाजी क कहन पर उहान भी एक सग्रह करीब करीब तैयार कर दिया था। कुछ रुपया मागने पर लागा न कायदे कानून की बात करनी शुरु की, तो उहाने अपन सग्रह का दने से इकार कर दिया। भला ऐसे पुरुष क सामन कायदे कानून की वात करनी चाहिए। एक वार इकार कर देने पर मर प्रयत्न का भी क्या जल्दी कोई असर हा सकता था? यहा से नागरी प्रचारिणी श्रीचद विद्यापीठ दशनानद आयुर्वेद विद्यालय, कार्माइकल पुस्तकालय हाते स्वामी सत्यस्वरूपजी के पास उदासी विद्यालय म गया। इसे मैं साधुआ का आदश विद्यापीठ कहता हूँ, जिसका अथ यह नही, कि उसकी स्थिति बराबर ही एक तरह की रह सकेगी। विद्यार्थी थोडे से थे पर सभी उच्च कक्षाआ के। कितने ही उनम किसी विषय के आचाय हो चुके थे। खाने रहने का बहुत अच्छा प्रवध था। डेढ घटे तक उनस बातचीत हाती रही। भविष्य क वारे म वह चितित थे, लेकिन मैंन वतला दिया कि साधु विद्वाना का चिन्ता करन की बिलकुल आवश्यकता नही। सस्कृत के गम्भीर पाडित्य क साथ साथ आधुनिक अनुसधान के ढग को भी उन्हें कुछ अपनाना चाहिय। जिस जनतान्त्रिकता और साम्यवाद के आदश की तरफ आज दुनिया का झुकाव है उसको किसी न किसी रूप म भारत म यदि किसी ने कायम रखा, तो वह साधु ही ह। आर्थिक कठिनाई की वह वात नही वतलाते थे वल्कि कहते थे कि कितने ही धनसम्पन मठो के लिए योग्य उत्तराधिकारी नही मिल रह है, हमारे यहाँ वरावर माग आती रहती है।

२७ को हम फिर भोजनोपरान्त निकले। रास्ते म न्यायाचाय प०

बडे-बडे स्वप्न देख रहे थे समझ रहे थे। जल्दी ही इन पुस्तको के बडे-बडे सस्करण निकलने लगेंगे, भारत की सारी भाषाओ मे वह अनुवाद होकर कोने-कोने मे फैल जाएँगे। लाखो नही तो हजारो का वारा-न्यारा होगा। स्वप्न देखना बुरा नही है, क्योकि कितने ही स्वप्न सत्य निकलकर आगे बढने का रास्ता खोलते हैं, पर इस समय मुझे तो ऐसी कोई सभावना नही मालूम होती थी।

सेवा उपवन म जाने पर बाबू शिवप्रसाद गुप्त की सौम्य मूर्ति याद आने लगी। कितनी उदारता और सहानुभूति उनके हृदय म थी। उग्र राजनीतिज्ञ और कार्यकर्ताओ एव साहित्यकारो के लिए वह कितनी प्रसन्नता के साथ सहायता करने क लिए तैयार रहते। तारीफ यह, कि उसके दिखावे की कोई कोशिश नही करते। तिब्बत के जाने के बाद से लौटने क बाद उनके साथ मेरा अधिक सम्पर्क बढा था। जब वहाँ से पुस्तको के लाने का सवाल पैदा हुआ तो उन्होंने आचार्य नरेन्द्रदेवजी के कहने पर वहा मेरे रहने का प्रबन्ध किया था। पैसे लका से आ गए, इसलिए मुझे उनकी आर्थिक सहायता लेने की जरूरत नही पडी। लका म चीनी त्रिपिटक की जरूरत हुई। उस समय जापान म उसका बहुत उत्तम वैसा सस्करण प्रकाशित हुआ था। उसके लिए डेढ हजार रुपय उन्होने भिजवा दिए। वह त्रिपिटक अब विद्यापीठ म था। लेकिन आर्थिक सहायता मे उदारता उनके व्यक्तित्व की पूरी परिचायक नही है। वह बडे प्रेम के साथ मेरे कार्यों को ओर देखा करते थे। १९३८ म सारनाथ म रहकर मैं कुछ लिख रहा था। उस समय वह मिलने आए थ। लौटते वक्त हिंदू मुस्लिम झगडे का शिकार हुए। किसी मुसलमान को रास्ते म पडा देखकर वह विह्वल हो गए और उसके बचाने के प्रयत्न म लगे। उस पुरुष से शून्य उपवन को देखकर मेरे हृदय म एक टीस होनी स्वाभाविक थी। अब सेवा उपवन क स्वामी उनके दौहित्र श्री सत्येन्द्र और उनके अनुज थे। सत्येन्द्र 'आज" और ज्ञान मण्डल को और उन्नत बनाने में तत्पर थे। लिनो और मोनो टाइप क बिना आज कल किसी देश की मुद्रण कला आगे नही बढ सकती। हमारे नागरी

# ७

# परिभाषा-निर्माण के काम में

प्रयाग—२९ को मैं प्रयाग म था, और भाजनोपरात उसी दिन चट्टोपाध्यायजी के निवास पर चला गया। मेरे लिए एक अलग काठरी थी। यहा अपने काम की पुस्तको का सुरक्षित सजा सकता था, लेकिन पेशाब की दिक्कत जरूर थी। उसी दिन सम्मेलन की कई समितिया की बैठको म शामिल हाने सम्मेलन भवन गया। पारिभाषिक शब्दा के निर्माण के सम्बध म दा महीन हा गए और अभी तक कुछ नही हुआ था। मुझे सबसे बडा डर था बदनाम हान का। मैं किसी काम का जिम्मा लेकर फिसडडी नही रहना चाहता हूँ। लेकिन क्या करता? उप-समिति के सहकारिया का फुरसत नही थी।

१ मार्च से मैंने ऐनी की कृति "गुलामान" का "जा दास थे" के नाम से हिन्दी अनुवाद करना शुरू किया। उर्दू अनुवाद रूस से ही करके लाया था, लेकिन उसका कोई प्रकाशक नही मिला। श्री तारीणिश झा श्रीगणेश का काम करन लगे। यह तो निश्चय ही था, कि एकात साधना निभ नही सकेगी, ता भी मिलन-जुलने वाला से कम से कम बातचीत करन का नियम रखा। उसी दिन नाम को पटना से वीरेन्द्रकुमार सिंह आए, और वचन ले लिया, कि "जो दास थे" का प्रकाशन मैं करूँगा। परिभाषा काय के कारण मैं बहुत चिन्तित था। डा० सत्यप्रकाश से मिला। उन्हें भय था, कि सम्मे-

लन अपनी अलग टकसाल खोलना चाहता है। मैंने कहा, हम अपने-अपने काम को बाँट लेना चाहिए और एक-दूसरे के काम में सम्मति और सहायता देना चाहिए। उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय और काशी नागरी प्रचारिणी सभा में भी इस सम्बन्ध में सोचा जा रहा था। कल की बात व्यर्थ नहीं गई। आज डा० धीरेन्द्र वर्मा और डा० माताप्रसाद आए। उनसे उसी बारे में और भी बातचीत हुई। उनसे मालूम हुआ, कि विश्वविद्यालय परिषद् छः कोशों के बनाने का विचार रखती है, जिनमें विज्ञान का कोश कितना ही तैयार भी हो गया है। कला-सम्बन्धी परिभाषा को भी वह रखना चाहते थे, राजकीय कोश के लिए नागरी प्रचारिणी काम कर रही थी। बाकी तीन को साहित्य सम्मेलन ले सकता था। साहित्य सम्मेलन के लेने का यह मतलब तो था नहीं कि उसमें विश्वविद्यालय के विद्वानों का हाथ नहीं रहता। आखिर मुख्य तौर से यह काम तो उनका ही था।

३ मार्च को राय रामचरण की पुत्री के ब्याह में गए। शताब्दियों पुराने बड़े रईस की लड़की की शादी हो रही थी, फिर पुरानी परम्परा एकबारगी छोड़ी कैसे जा सकती थी? तो भी बारात में सौ सवा सौ आदमियों का ही आना शुभ लक्षण था। भोज में सैकड़ों आए।

अन्तर्राष्ट्रीय दुनिया में एंग्लो अमेरिकन गुट पाकिस्तान को अपने पाकेट में रखने की कोशिश कर रही थी, और कश्मीर के सम्बन्ध में छिप कर सहायता भी दे रहा था। मंचूरिया (चीन) में चीनी मुक्ति सेना सफलता प्राप्त कर रही थी। अमेरिका इसे फूटी आँखों भी देख नहीं सकता था। वह तटस्थ नहीं था, बल्कि अमेरिकन सेना भेजना छोड़कर सब तरह से सहायता दे रहा था। भूगोल पर लाल रंग पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ रहा था, इसे देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही थी।

अभी ईगर और लोला के पत्र आ रहे थे। उन्हें आशा थी, कि दो वर्ष बिताकर मैं फिर रूस लौट जाऊँगा। कितनी घोर निराशा होगी, जब उन्हें असली बात मालूम होगी। इसी समय मालूम हुआ, कि बाबू मुरली मनोहर प्रसाद ने "सचलाइट" से इस्तीफा दे दिया। "सचलाइट" को पैदा कर

और उसे जीवित रखने के लिए उन्होंने उसे अपने खून से सींचा था। जिस समय उसमें घाटा ही घाटा होता था, उस समय राष्ट्रीयता के पक्षपाती इस पत्र को मुरली बाबू ने अस्त होने नहीं दिया। फिर थैलीशाह पत्रों को हथियाने लगे और "सचलाइट" उनके हाथ में चला गया। अब कलम नहीं थैली का उस पर एकाधिपत्य था। थैली ने कलम को अपनी उँगली पर नचाना चाहा, मुरली बाबू इसके लिए तैयार नहीं हुए, और अब उनके खून का सींचा वह पौधा दूसरे के हाथ में चला गया।

कभी कभी ख्याल आता था, टहलने के रूप में थोड़ा शारीरिक व्यायाम करूँ, लेकिन मनसाराम कह रहे थे—हिमालय में चलना ही है, वहीं नियमपूर्वक टहला जाएगा। यह तो अब मालूम होने लगा था, कि मधुमेह —डायबेटीज—शारीरिक श्रम न करके पुष्टिकारक भोजन करने का ही दण्ड है। पक्रियायें थ कुछ दिनों तक इन्सुलिन की कमी को पूरा करने के लिए जी तोड़कर कोशिश करती है, फिर स्वयं दम तोड़ देती है। बुद्ध क्या चक्रमण—टहलन—के पक्षपाती थे, अब इसका महत्व मालूम हो रहा था। पूर्व में लाल रंग मचूरिया की तरफ बढ़ रहा था, तो उधर पश्चिम मे चेकोस्लोवाकिया में भी वामपक्ष ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इंगलैंड और अमेरिका परेशान थे, लेकिन यह भी नहीं हिम्मत होती थी, कि दबकर देकर तीसरा विश्व युद्ध छेड़ें।

विश्वविद्यालय की हिन्दी परिषद् के सुन्दर काम का और भी पता लगा। माइंस की परिभाषाएँ वह छपवा रही थी। अर्थशास्त्र, व्यापार इतिहास राजनीति, भूगोल, दर्शन, कानून, भाषाविज्ञान, व्याकरण, शिक्षा, काव्य, गणित, ज्योतिष रसायन, भौतिकी, वनस्पति, प्राणिशास्त्र, कृषि की ओर भी पग बढ़ा रही थी। मुझे अच्छा लगा कि सम्मेलन और हिन्दी परिषद् मिलकर काम करें। ७ मार्च को रविवार का विश्राम का दिन था। उस दिन महिला छात्रालय मे व्याख्यान देना पड़ा। स्वयं लेखक और भुक्तभोगी होने से मैं लेखका की कठिनाइयाँ जानता हूँ, और अपने समानधर्माओं का प्रोत्साहन और सहायता देना भी अपना कर्तव्य समझता हूँ। ऐसा करने

कभी कभी लेखक और प्रकाशक के पचडे मे भी फँस जाऊँ, तो कोई आश्चर्य नही, फिर वह सिरदर्द का कारण हो सकता है। आदमी अपने अविवेक से फँसता है, फिर दुनिया भर को दोष देता फिरता है। मैंने मनसाराम को कहा—"यार तुम ऐसे झगडा मे न पडा करो। काजी को शहर के अदेसे दुबले होने की जरूरत नही।"

कई दिनो से सकल्प विकल्प होते होते ८ मार्च की शाम को था तारिणीशजी के साथ टहलने निकला। दारागज की ओर के खेत के खेत फसल काटकर रखी जा रही थी। अबके फसल अच्छी थी। बिहार मे अनाज के दाम के गिरने की खबर आई थी, सोच रहा था, यह फसल अच्छा होने ही के कारण होगा। अनाज की चोरबाजारी करने वाले बहुत हाय हाय कर रहे थे। जाडे का अब लेश भी नही रह गया था। मार्च के पहले ही सप्ताह मे इतना परिवर्तन। सिर्फ रात का कुछ देर कम्बल लेने की जरूरत पडती थी। अब ध्यान था पहाड पर भागने की तैयारी करने की ओर। कनौर ही जाना ठीक मालूम देता था, लेकिन अपनी पहली कनौर-यात्रा मे बोझा के लिए आदमी न मिलने का बडा तल्ख तजर्बा था। अगले दिन भी शाम को टहलने निकले। डा० बदरीनाथ प्रसाद के यहा गए। लक्ष्मीजी ने बतलाया, स्वास्थ्य अच्छा था। यह सुनकर प्रसन्नता होनी ही चाहिए। सोचता था, शायद सिगरेट छोडने का वरदान है, या भोजन मे सयम करने का लेकिन जब तक हर दो घटे बाद पेशाब करने जाना आवश्यक था, तब तक दिल को तसल्ली कैसे हो सकती थी? चट्टोपाध्यायजी मेरा बहुत ध्यान रखते थे, इतना अधिक, कि बाजे वक्त सकोच होने लगता था। वह अद्भुत पुरुष हैं। उनकी विद्या और विद्याप्रेम के प्रति मेरी भारी श्रद्धा है। किंतु अपने इस ज्ञान का वह लेखनी द्वारा उपयोग नही करते, इसका मैं बराबर उलाहना देता था। वे धर्म के अनुष्ठानो मे बिलकुल पुराणपथी पण्डित मालूम होते, लेकिन अनुसधान मे कट्टर आधुनिक दृष्टि वाले वास्तिक। सादगी उनकी प्रतिभा के लिए सोने मे सुगन्ध का काम देती है, शिक्षा के वे प्रेम रखते हैं। माता के अनन्य भक्त हैं। ऐसी माता, जिसे उच्च श्रेणी

के एक मित्र चुड़ैल कहने मे भी परहज नही करत, लेकिन चट्टोपाध्यायजी इसे सुनने के लिए तैयार नही। माता की कोई भी फर्माइश हो, उसे पूरा करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। माता की भक्ति पर ही उन्होंने एक युग तक अपनी पत्नी को छोडे रक्खा। उनकी एकमात्र पुत्री का बडा दुखद अन्त हुआ, और बेचारी पिता के दर्शन की लालसा लेकर ही चल बसी, तब उनकी आख खुली। इस समय पडिताइन अपने मायके गई हुई थी। ब्राह्मण रसोइया कुछ दिनो के लिए घर गया था, एक ब्राह्मणी भोजन बनाने आती थी। कुछ ही सालो में नई आर्थिक समस्याओ ने एक नई प्रथा चलवा दी है। बर्तन माजने वाली कई घरो मे समय बाधकर बारी बारी से बर्तन माजती हैं। एक जगह माजने पर पचीस तीस रुपया देना पडता, जिसके लिए बहुत कम परिवार तैयार होते। वह पाच पाँच, सात सात रुपये लेकर अब इस काम को करने लगी है। इसी तरह भोजन बनाने वाली भी कई घरो मे भोजन बनाती है। उन्हे वेतन भर देना पडता, भोजन नही। इससे मध्य वित्त लोगो का बोझा कम था, और साथ ही काम करने वाले भी घाटे मे नही थे।

अब मन किन्नर-देश मे दौड रहा था। उसके सदाहरित देवदारो के घन जगल याद आते थे वही एक कुटिया बनानी होगी और चिनी के ही पास वहाँ डाक मिलने का सुभीता रहेगा। रेल से सैकडो मील दूर तिब्बत की सीमा के पास का यह निवास पसन्द करने मे हिचकिचाहट भी होती थी। फिर आदमी दूर कितना ही हो जाएँ, उसके असलोप के कारण बाहरी दुनिया के साथ सम्बन्ध भी होते हैं। कभी-कभी तो अलग-अलग रहने पर भी चित्त की स्थिति गाडी के पहिये की तरह ऊपर-नीचे होती रहती है। आदमी के जितने अधिक सम्बन्ध होते हैं, उतने ही उसके हर्ष विषाद भी। हर्ष को आदमी स्वाभाविक समझ लेता है, और विषाद को अनभीष्ट समझ उसको कई गुना बढाकर अनुभव करता है।

११ तारीख को मच्छरो के मारे मैं परेशान था, शाम से ही मसहरी के भीतर घुसना मुश्किल था। गर्मी बढ चली थी। भोजन पर सयम था,

मिर्च छोड दी थी, घी तेल का नाममात्र ही इस्तेमाल था। कभी-कभी मठठा मिल जाता था। शाम को ६ बजे एक घटा घूमने जाता था। गर्मी और मच्छरो के मारे रात को लिखने का काम छोड़ दिया था। रात को स्नान करने पर भी गर्मी से त्राण कहाँ ?

प० भोलानाथ ने 'पोलिनेइया' का अनुवाद भेजा था, जो १६ मार्च को मुझे मिल गया। अगले दिन प० बलदेव उपाध्याय आये। आचार विचार मे तो चट्टोपाध्यायजी के दूसरे सस्करण थे, और दोनो मे पटती भी खूब थी। पूजारी तो हैं ही, साथ ही स्वयपाकी भी, लेकिन चट्टोपाध्यायजी से इनमे बडा भेद है—यह अपने ज्ञान से दूसरो को लाभान्वित करने के लिए अपनी लेखनी को खूब चलाते है, और सस्कृत वाङ्मय की सुन्दर कृतियो को हिन्दी वालो के लिए सुलभ कर रहे हैं। उनका "भारतीय दर्शन" का तीसरा सस्करण छप गया है जो बतलाता है, कि गम्भीर विषयो के पढने की ओर भी हिन्दीवालो की रुचि है।

१७ मार्च को सर्दी लौट सी आई रात को कम्बल ओढना पडा। उसे हटाकर रख दिया था।

यह रियासतो के विलयन और वहाँ की प्रजा के जबर्दस्त आन्दोलन का समय था। १७ तारीख को पता लगा अलवर, भरतपुर, करौली को मिलाकर मत्स्य राज्य की स्थापना कर दी गई है, विन्ध्य प्रदेश मे बुन्देलखण्ड की रियासतें और रीवाँ शामिल हो गईं। रीवाँ की नाजबरदारी के लिए वहाँ की सरकार को अलग करके राजा को राजप्रमुख बनाया गया। थैलीशाहो के समर्थक सरदार पटेल मुकुटधारियो को एकदम लुप्त करने मे अनिष्ट समझते, या सोचते थे, कि कुछ काम हम कर रहे हैं और आगे का काम समय करेगा। रामपुर बुशहर रियासत के ही किन्नर देश मे हम गर्मियो मे जाने वाले थे। वहाँ भी प्रजा मे असन्तोष होने की खबर आई। पत्रो मे पढा जनता ने पुलिस की बन्दूकें छीन ली। अभी हम दो महीने बाद जाना था, तब तक और बातें भी साफ हो जानेवाली थी।

१८ दिन की लिखाई के बाद १८ मार्च को जो दाम थे" समाप्त कर

दिया। ताजिक से उर्दू में अनुवाद करने में एक महीना लगा था। अपने मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास "मधुर स्वप्न" का ख्याल बार बार आता था, पर अभी हाथ लगाने में मन हिचकिचाता था। इस उपन्यास के लिखने के लिए ईरान और रूस में मैंने काफी सामग्री एकत्रित की थी। 'मध्य-एसिया का इतिहास" के लिए भारी परिणाम में नोट और मनो किताबें रूस से लाया था। इन दोनों किताबों में हाथ लगाने के लिए मैं बेकरार था। और इसे कनौर के प्रवास पर छोड़ रहा था। सोच रहा था—"वहीं गर्मियों में काम करने के लिए कुटिया रहे, भोट सम्बन्धी अनुसंधान हो, बौद्ध ग्रंथों के सम्पादन आदि का भी काम चले। तिब्बत से जिन संस्कृत ग्रंथों के फोटो मैं लाया था उनमें ज्ञानश्री के तर्कशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथों का ख्याल मेरे मन में बारम्बार आता था, यद्यपि "प्रमाणवार्तिकभाष्य" अभी प्रकाशक के बिना या ही पड़ा था, तो भी ख्याल आता, पटना में दो सप्ताह रह कर यदि ज्ञानश्री के ग्रंथों को उतार सकता, तो अच्छा होता।

१८ मार्च को परिभाषा उप समिति की बैठक हुई। सिर्फ डा० सत्य-प्रकाश ही आ सके। हमने साल भर में ६० हजार परिभाषाओं के बनाने पर विचार किया। २१ को रविवार को स्थाई समिति की बैठक हुई, लेकिन पारिभाषिक शब्दों की योजना आगे नहीं बढ़ी। टण्डनजी ने बतलाया सबसे पहले राजकीय परिभाषाओं का काम लेना चाहिये। वह युक्त-प्रदेश की एसेम्बली के स्पीकर थे, उन्हें परिभाषाओं के अभाव में अड़चन पड़ रही थी। परिभाषा निर्माण के लिए तीन हजार रुपये भी मंजूर हुए। हमने सोचा था, कुछ हजार में काम चल जायेगा, लेकिन अन्त में "शासन कोश" में १५ हजार शब्द लेने पड़े। पहाड़ पर जाने से पहले इस काम को खतम करना था अर्थात् हमारे पास मुश्किल से डेढ़ महीने थे। पर मुझे विश्वास था, हम इस काम को कर लेंगे। काम करने में सहायक की आवश्यकता थी। चट्टोपाध्यायजी से श्री विद्यानिवास मिश्र की प्रतिभा के बारे में सुन चुका था। विद्यानिवास के बुलाने के लिए पत्र लिखने को कहा। श्री प्रभाकर माचवे ने भी सहायता देने की इच्छा प्रकट की थी। इन दो तरुण

पण्डितो और कितने ही और सहायको की सहायता से यह काम आसानी से हो सकता था। मैं अब समझने लगा कि इस काम के लिए सम्मेलन भवन की सत्यनारायण कुटीर म रहना ही अच्छा होगा।

१९ माच को मालूम हुआ, हैदराबाद मे सघप जारी हो गया। इत्तिहाद मुस्लमिन उसे छोटा पाकिस्तान बनाना चाहती थी। निजाम उसके विरुद्ध जाने की हिम्मत कैसे कर सकता था, लेकिन जूनागढ का उदाहरण उसके सामने था। जूनागढ नवाब ने पाकिस्तान म मिलना चाहा, और अन्त म स्वय देश छोडकर पाकिस्तान भागना पडा। लोग निजाम के निरकुश शासन को बर्दाश्त करते-करते तग आ गए थे। लेकिन, हैदराबाद के सम्बन्ध म आखीरी निणय करने मे भारत सरकार हिचकिचा रही थी। उसे अपनी और अपनी जनता की शक्ति का पता नही था, और अमरिका तथा इग्लैंड की लाल लाल आँख भय पैदा करने मे समथ थी।

२० तारीख को दाता की पीडा ने हटने का नाम नही लिया। दात के डाक्टर के पास गए। मालूम हुआ दाता म छेद नही है उसका एनमल खराब हो गया है जिसी के कारण अधिक गरम या ठण्डा पानी पीने में पीडा होती थी। उन्होने बतलाया, कि दाँतो को साफ कराना है और दाहिनी ओर की निचली अन्तिम दाढ को निकलवाना है। दात की पीडा को साथ लेकर सुदूर पहाडो मे जाना अच्छा नही इसलिए उन्हे ठीक कराने का निश्चय कर लिया। ३० माच को एक दाढ डाक्टर ने निकाल दिया। शून्य करने की सूई लगाई गई। उस समय दद नही हुआ पर पाच घण्टे तक होता रहा। डाक्टर ने बाकी दाँतो को भी साफ कर दिया।

२१ माच को सम्मेलन म काय समिति और फिर स्थायी समिति की बैठक हुई। पारिभाषिक शब्दो की योजना की इतनी ढिलाई देखकर मैं व्यग्र था। किसी काम को लेकर उसे पूरा करने म सुस्ती दिखलाना मेरी दृष्टि म अक्षम्य अपराध है, और मैं हर तरह से अपने सारे कार्यों को छोडकर इसी म जुटने के लिए तैयार था। गोर्की के लघु उपन्यास 'दवदं' (अनाथ) के अनुवाद का काम तो या ही ले रखा था। वह पाँच छ दिन म

अधिक का काम भी रहा था। टण्डनजी उतने ही ढीलमढाल चलनेवाले थे, जितना कि मैं चुस्त। मैं दौड लगाना चाहता था और वह चीटी से भी सुस्त चाल से रेंगना चाहते थे। मैं कूदकर उठना था। लेकिन राजकाज की परिभाषाओ के निर्माण मे जल्दी होने म वह भी सहमत थ।

२५ और २६ माच का होली थी। होली का हुडदग पहले ही से शुरू हो गया था। इतनी मँहगी होने, पर भी लकडिया कस जगह जगह इतनी मात्रा म जमा कर ली गई थी, यह साचन की बात थी। काग्रेसवाला ने गाधीजी के शोक मे इस साल होली न मनाने की आज्ञा निकाली थी लेकिन हर तरह से दु खी लागो का दु ख भूलने के किसी क्षण को निषिद्ध करना ठीक नही, लागा न आज्ञा नही मानी।

२५ माच से मैं परिभाषा के सम्बन्ध की सामग्री जमा करने मे लगा। ग्वालियर राज्य ने हिंदी मे बहुत सी कानून की पुस्तकें छपवाई थी। उन्ह मँगवाया। प्रयोग की कसौटी पर कसी तजर्बा आदमी द्वारा गढी परिभाषाएँ बहुत अच्छी होती हैं। पर ऐसे तजर्बे की गति अयक्कर रूप से धीमी है इस लिए हम केवल उसका आश्रय नही ले सकते थे।

२५ माच को पता लगा, सोशलिस्ट काग्रेस से अलग हा गये। कम्युनिस्ट बहुत पहले अलग किए गए थे और अब सोशलिस्टा ने भी काग्रेस का छोडा। काग्रेस के नेताओ मे नीचे से ऊपर तक इतनी गन्दगी आ गई थी, कि सोशलिस्टा का मालूम हुआ यह डूबनी नैया है, इसमे कूद पडना ही अच्छा है। किन्तु, इससे वह काग्रेस को स्थान भ्रष्ट नही कर सकते। उसके लिए लोगो के भीतर यह विश्वास पैदा करना होगा, कि काग्रेस के कन्धे का भार दूसर लाग उठान के लिए तैयार हैं। यह तभी हो सकता था, जब कि सभी वामपक्षी दल अपना सयुक्त मोर्चा बनाए। कहने की आवश्यकता नही, कि काग्रेस के बाद जो दल अधिक शक्तिशाली हैं, उनम कम्युनिस्ट पार्टी का नाम सबसे प्रथम आता है। और सोशलिस्ट तो कम्युनिस्ट नाम से भी वैसे ही भडकते हैं, जैस लाल रग से गुसैल साड। देश के ही कम्युनिस्टो का नही, बल्कि बाहर के भी कम्युनिस्ट या कम्युनिस्ट प्रभावित

देश को वह फूटी आँखों देखना नहीं चाहते। कोई यह विश्वास नहीं करेगा, कि एक चना भाड़ फोड़ देगा। सोशलिस्टों के स्वर्ग के भूतल पर आने के लिए युगों प्रतीक्षा करने की आवश्यकता है, जिसके लिए जनता तैयार नहीं हो सकती। वह अपनी इस नीति से कांग्रेस के ही पक्ष का समर्थन करते हैं, क्योंकि दूसरे कार्यकारी नेतृत्व के अभाव में लोग कांग्रेस की अवहेलना कैसे करेंगे? कांग्रेस के लिए यह भी जरूरी नहीं है, कि सभी लोग उसका सक्रिय समर्थन करें। यदि बहुजन उदासीन रहे, तो अपने स्वार्थ के लिए कांग्रेस के साथ चिपके लोग उसे जिताने में सफल होंगे।

भाई रामगोपाल वर्षों मेरे साथ एक तरह का स्वप्न देखने वाले थे। हमारा स्नेह और घनिष्ठता असाधारण थी। अफसोस, अकाल ही वह प्लेग के शिकार हुए। उनकी निशानी दयाशंकर रहे। वह २७ को मिले। बी०ए० पास करके महोबा में भूगोल के अस्थायी अध्यापक थे। एम०ए० या एल०टी० करके आगे बढ़ना चाहते थे। ऐसे तरुण को यदि सहायता न दी जाए, तो किसको दी जाए? लेकिन, आजकल सिफारिश का जमाना है। सिफारिश भी वैसे ही आदमियों की लगती है, जो उच्च पदाधिकारी के किसी काम में साधक होने वाले हों। मेरे भीतर वह योग्यता नहीं, जिसका अर्थ था जबान खाली जाती। जिससे मैं बचना चाहता था। तब भी कुछ तो करना ही था, लगा तो तीर नहीं तो तुक्का ही सही।

२७ मार्च को पसीना आने लगा था, और पहाड़ पर जाना था मई में। कैसे दिन बीतेगा? कुल्लू से श्री चन्द्रकान्तजी का पत्र आया, अब के साल वहाँ आएँ किन्तु वहाँ जाने में सबसे बड़ी बाधा थी रास्ते की। अभी मोटर सड़क दुरुस्त नहीं हुई थी। एक आकर्षण था डा० जार्ज रोयरिख का किन्तु वह भी विदेश चले जानेवाले थे। मैंने इस समय कुल्लू आने में असमर्थता प्रकट की।

राजापुर —२८ के रविवार को दोपहर को साहित्यिकों की एक मण्डली गोस्वामी तुलसीदास के जन्मस्थान राजापुर के लिए बस पर रवाना हुई। अभी सरकारी रोडवेज की बसें नहीं चल रही थीं। हमारी बस भरी हु

थी। डा० उदयनारायण तिवारी, प० वाचस्पति पाठक, निर्मूलजी, श्री रामबहोरी शुक्ल साथ थे। ढाई घटे मे हम जमुना के किनारे पहुँच। रास्ते के कुछ गाँवो मे प्लेग फैला हुआ था, लाग घरो से बाहर झापडियो म थे। फसल कट चुकी थी। स्वतन्त्र भारत के देहात मे भी पहले की भाँति वही नगी भूखी मूर्तियाँ दीख पड रही थी। दोपहर की तपती हुई गर्मी थी। जमुना के किनारे दोमजिला पक्की धर्मशाला थी। यही थोडा जल्पान और विश्राम हुआ। फिर पैदल नाव की ओर बढे। बालू तपी थी, सिर भिना रहा था। नाव से उस पार पहुँचे। तुलसीदास का मन्दिर इस शताब्दी के आरम्भ मे कुछ उत्साही पुरुषो ने चन्दा करके बनवाया था। जमुना उसके नीचे की जमीन को काट रही थी, गाव भी कटता जा रहा था। रास्ते म एक ऐसे ही पत्थर को रग रगकर सकटमोचन हनुमान बना दिया गया था। पर राजापुर अर्वाचीन स्थान नही है। रास्ते मे चार मुँहवाला मुखलिंग मिला, जा बतला रहा था कि मैं गुप्तकाल (चौथी पाँचवी ईसवी) के आस-पास का हूँ। फिर एक जगह नृत्य करती बीस भुजावाली गणेश की मूर्ति मिली, उसन बतलाया, ११वी १२वी शताब्दी मे मैं आज की स्थिति से बहतर अवस्था मे था। यह तो धरती के ऊपर-ऊपर दिखाई देनेवाली पुरातात्विक सामग्री थी, भीतर न जाने कितनी चीजें मिलेंगी। राजापुर जमुना का एक महत्वशाली घाट है जो एक चलते वणिक्-पथ पर अवस्थित है। घाट की आमदनी तुलसीदास के स्मारक को मिला करती थी, जो १८४१ मे ४२०० रुपये वार्षिक थी। गाँव मे मकान अधिकतर कच्चे हैं। पक्के मकानो का भी निचला भाग मिट्टी का है। राजापुर मे मानस की एक पुरानी हस्तलिखित पोथी है, जिसे गोस्वामीजी के अपने हाथ की लिखी बतलाया जाता है। "रामु, फलु' आदि के अन्त के उकार बतलाते थे, कि पुरानी प्रति है, पर रामायण के श्लोको मे ष के स्थान मे तीन बार स का आना बतला रहा था कि यह गोस्वामीजी के हाथ की लिखी पुस्तक नहीं हो सकती। राजापुर म एक छोटा-सा बाजार है। स्मारक की रक्षा के

और वृद्धि के सम्बन्ध में एक सभा हुई और फिर हम वहाँ से उसी दिन प्रयाग लौट आए।

गर्मी मे कहीं बाहर जाने आने का प्रोग्राम रखना भारी कबाहट की बात थी। पर श्री जगदीशचन्द माथुर ने जब २०-२१ अप्रैल के वैशाली उत्सव में सभापति बनने के लिए स्वयं आकर निमंत्रण दिया, तो मेरे लिए इन्कार करना मुश्किल हो गया। सभापति बनना ही नहीं था बल्कि वैशाली पर एक भाषण भी तैयार करना था और भारत के परम यशस्वी तथा ऐतिहासिक इस गणराज्य के ऊपर काफी प्रकाश डालना था। वैशाली चाहे आज के दो ढाई जिलों का ही गणराज्य था, पर अथस उसमें भी छोटा था। गोस्वामीजी ने कहा है—"रविमंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा।" स्वेच्छाचारिता के घना धकार में लिच्छवियों का यह गण प्रकाश स्तम्भ था।

सत्यनारायण कुटीर—परिभाषा के काम में कई आदमियों से सहायता लेनी थी और न जाने किस समय कौन-सी पुस्तकालय से मगानी पड़े इस खयाल से ३१ मार्च को मैं सम्मेलन भवन की सत्यनारायणकुटीर में चला आया। टण्डनजी ने कुछ सामग्री देने के लिए कहा था। उनके पास लखनऊ आदमी जाकर खाली हाथ लौटा। मुझे क्षण क्षण का फिकर था और उनके लिए दो हफ्ता प्रतीक्षा में खो देना कोई बात नहीं थी। मैंने तार और चिट्ठी भेजकर कह दिया कि यदि ऐसा हुआ तो मुझे काम से हट जाना पड़ेगा। पहले के नौ हजार शब्द जमा थे, उनमें बहुत से बेकार के थे तो भी पाँच हजार अपरिमित शब्द मिल सकते थे। हमने संकल्प किया कि अप्रैल के अन्त तक दस हजार शब्दों का कोश तैयार करके टण्डनजी को दे दिया जाए। कुटीर में आने पर भोजन की समस्या सामने आई, जिसका प्रबन्ध श्री श्रीनिवासजी ने अपने यहाँ से कर दिया। गर्मी के लिए बिजली का पंखा रात दिन चलने के लिए तयार था। लेकिन उससे भी जब-तब गरम हवा आती थी। इसी समय शिमला से रजनी की चिट्ठी "हमारा" के बारे में सम्मति लिखने के लिए आई। मैंने उनसे रामपुर बुशहर के बारे में

पूछ ताछ की। उन्होने लिखा, रामपुर के रास्ते म दूर तक बस जाती है। साथ जाने के लिए आदमी का भी प्रबन्ध हो जाएगा। २२ वर्ष पहले के तजर्बे पर पूरा विश्वास नही किया जा सकता था। अब इस ताजी सूचना से कन्नौर का जाना पक्का हो गया।

७ अप्रैल को सूचना मिली कि लका मे मेरे मित्र भिक्षु प्रज्ञालोक का देहान्त हो गया। १८ वर्ष पहले वह गम्भीर प्रकृति के आदमी जरूर मालूम होते थे, लेकिन उनकी प्रतिभा का पता उस समय नही लगा था। पीछे तो वह एक सिद्धहस्त लेखक साबित हुए और विद्यालकार विहार के दृढस्तम्भ माने गए। इस प्रिय विहार को वामपक्षी विचारधारा का केन्द्र बनाने मे उनका विशेष हाथ था। ऐसे पुरुष का इतना जल्दी उठ जाना बडे अफसोस की बात थी।

**बलिया**—३ अप्रैल को डा० उदयनारायण तिवारी के साथ बलिया म साहित्य सम्मेलन के लिए जाना पडा। गर्मी का दिन था, सो भी छोटी लाइन की यात्रा। हम साढे ७ बजे शाम को चले। गाडी चार घटे लेट बनारस तक ही हो गई। इजन का पुराना होना भी कारण था, और कार्य क्षमता भी कम थी। अक्षमता की शिकायत सिर्फ रेल के बारे म क्या की जाए, जबकि सरकार के एक-एक पुर्जे म वह देखी जाती है। सरकारी यन्त्र चलाने के लिए तिगुने चौगुने अफसर और क्लर्क रख लिए गए ह, लेकिन काम कोई भी ठीक से नही होता। रेल के सेकन्ड क्लास के डब्बे को देखने से मालूम हो रहा था कि रखे हुए किसी खानदानी धनिक का कमरा है। फर्श उखडा हुआ, गद्दे गद्दे और बुरी हालत म, पाखाने का कमाड टूटा हुआ, जिस सिर्फ पर्दाव के लिए ही मुश्किल मे इस्तेमाल किया जा सकता था। हाथ धोने की बेसिन नदारद और नल म पानी नही। सभी जगह जीर्णता, सभी जगह अस्वच्छता।

४ अप्रैल ३ घटा लेट हो ११ बजे दिन को हम बलिया पहुँचे। काफी गर्मी थी। जिला-बोर्ड के सेक्रेटरी श्री श्यामसुन्दर उपाध्याय के घर पर ठहरे। पुराने ढग का बगला था, जिसकी छत काफी ऊँची और मोटी थी,

जिससे गर्मी कुछ कम मालूम होती थी। ३ बजे से सम्मेलन शुरू होने वाला था, लेकिन तब तो गर्मी बहुत होती। अच्छा ही हुआ, जो वह साढ़े ४ बजे शुरू हुआ। लिखित भाषण तैयार करने के लिए समय कहा था, मैंने मौखिक ही भाषण दिया।

आजकल जिला बोर्ड के चुनाव की धूम थी। सभापति और सदस्य सभी चुने जानेवाले थे। जिले के सर्वप्रिय तरुण तारकेश्वर पांडे कांग्रेस की ओर से जिला बोर्ड के लिए खड़े होनेवाले थे, प्रान्त ने भी इसे मान लिया था। लेकिन, जात पात तेरा बुरा हो। ऊपर पहुँचकर दूसरे का टिकट दिलवा दिया गया। तारकेश्वर कांग्रेस के विरुद्ध खड़े होने के लिए नहीं तैयार हो सकते थे, पर किसी सोशलिस्ट को कैसे रोका जा सकता था?

बलिया वस्तुतः शहर नहीं एक बड़ा-सा गांव है। गंगा नातिदूर बहती है, और धार को कोई बाँध नहीं है, गाव बिल्कुल गंगा पर निर्भर है। पानी और बिजली का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। किसी समय भी पाखाने का इतना कुप्रबन्ध हमारे देश में नहीं रहा होगा। लेकिन यह सिर्फ बलिया की बात नहीं है। टोंस, जो यहाँ सरजू (छोटी) कही जाती है बलिया के पास बहती है वस्तुतः बलिया के कटने का डर सरजू से ही है। अगले दिन नार्मल स्कूल में व्याख्यान देने गए। यहां बलिया और गाजीपुर दोनों जिलों के अध्यापक प्रशिक्षण के लिए आए थे। शाम को चलता पुस्तकालय में गए। पुस्तकें तीन ही हजार थीं, जिनका उपयोग बहुत अच्छी तरह किया जाता था। वह बराबर घूमती रहती थीं। पुस्तकालय ने अपना मकान भी बना लिया था, वह तेजी से बढ़ेगा। ६ बजे से भोजपुरी सम्मेलन आरम्भ हुआ। डा० रामविचार पांडे की भोजपुरी कविताएं बड़ी अच्छी लगीं। वह अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय कलकत्ता के स्नातक हैं। यद्यपि आयुर्वेद के लिए आवश्यकता नहीं थी, तो भी प्राइवेट पढ़ने की लगन के कारण उन्होंने बी० ए० और एम० ए० पास कर लिया। कुछ और तरुणों ने भी अपनी कविताएँ सुनाईं। इस समय बार बार चित्रू पांडे की याद आती थी। सम्मेलन ने भोजपुरी प्रान्त निर्माण का प्रस्ताव पास

किया। तीन करोड भोजपुरी भाषी दो दो प्रान्तो मे बँटे रहे, और उनकी भाषा की कोई कदर न हो, यह दुःख की बात थी। लेकिन, आजकल जनता और उनकी भाषा की पूछ भला दिल्ली के देवताओ के दरबार मे हो सकती थी ? पर, जनता का दिन लौटेगा जरूर।

६ बजे तक सम्मेलन मे रहते हम प्रसन्न मन थे। उसी समय तार मिला, डा० उदयनारायण की लडकी कलावती का देहान्त हो गया। जब हम चले थे, तब ऐसी कोई सम्भावना नही थी। कलावती और लीलावती दोनो यमल कन्याएँ थी। दोनो ही शरीर से दुबल जरूर थी पर इसकी शका किसे हो सकती थी ?

रात को ही गाडी पकडी और अगले दिन ६ अप्रैल को सवा ८ बजे हम रामबाग (प्रयाग शहर) स्टेशन पर पहुँच गए। सत्यनारायण कुटीर मे पहुँचे। त्रिपाठी और ठाकुर पहले ही काम मे लगे हुए थे। आज विद्यानिवास भी आ गय। यह मालूम होने मे देर नही लगी, कि विद्यानिवास प्रतिभाशाली होने के साथ साथ बहुत मेहनती तरुण है। वह यूनिवर्सिटी की हरेक परीक्षा मे प्रथम श्रेणी और प्रथम नम्बर मे आते रहे, सभी विषयो मे अच्छे थे, सस्कृत मे भी शास्त्री कर चुके थे। जहा तक हमारे काम का सम्बन्ध था, वह उसके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति थे। उनकी तीक्ष्ण स्मरण शक्ति और भी भारी सहायक थी। गोरखपुर जिले के सरजूपारियो के पक्की-कुल के थे। पक्की बिना मास मछली खाए भी हो सकता है, यह बात यदि उनको देखने से पहले कोई कहता तो मैं विश्वास नही करता। सरजूपारियो मे यह सबसे उच्चकुलीन माने जाते हैं। पक्की अपने बरतन भाँडे को भी दूसरे को नही देते, और न दूसरे का छुआ कच्चा पक्का खाते। पक्की ब्याह भी पक्की मे ही कर सकते हैं। अपक्की (दुटह) के साथ ब्याह करने से जाति से बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। इस बहिष्कार के फलस्वरूप अब पक्कियो के कुछ ही सौ परिवार रह गए हैं, जिनके भीतर ब्याह गोत्र छोडकर बहुत नजदीक सम्बन्धियो मे होता है। विद्यानिवासजी को अपने खान पीन का भी इन्तिजाम करना था, जिसके लिए वह किसी को

साथ लाए थे। दूध फल में छूत नहीं मानते यह अच्छी बात थी। सरयूपारिया में पक्की का रवाज काई अलग थलग या आकस्मिक घटना नहीं थी। १०वीं ११वीं शताब्दी में इस तरह के प्रयत्न करीब करीब सारे उत्तर भारत में हुए। गहड़वार गोविन्दचन्द ने कनौजिया में पचुटले और सरयूपारिया में पक्की तयार किए, उनके लिए बड़ी बड़ी जागीर इस शर्त पर दी, कि वे अपने खान पान और सम्बन्ध-व्यवहार में दूसरों से अलग रहकर जातिवाद को मजबूत करें। उस समय बहुत से कुलीन बनाये गए होंगे, जो संख्या बढ़ने के साथ आर्थिक स्रोतों के बँटवारे के कारण दरिद्र होते गए, और कुलीनता के आचार का पालन करना सम्भव नहीं हो सका, जिसके कारण उनमें बहुत से पक्की से टूटकर साधारण ब्राह्मणों में सम्मिलित होते गए। इसी समय के आसपास मिथिला में श्रोत्रिय ब्राह्मणों और बंगाल में कुलीन ब्राह्मणों की सृष्टि हुई। धार्मिक रूढ़ियों और विचारों में विद्यानिवास जी अपने गुरु प० चट्टोपाध्याय जैसे ही है, पर वैज्ञानिक अनुसंधान में वह उन्हीं की तरह दृष्टिकोण रखेंगे इसकी मुझे आशा थी। आठ वर्ष पहले उनकी लेखनी ने अपना जौहर नहीं दिखलाया था लेकिन सम्भावनाएं उस समय भी थीं। अब तो विद्यानिवास हिन्दी के एक सुन्दर निबन्धकार हैं।

इस समय सरकार कम्युनिस्टों के दमन करने में लगी हुई थी। यद्यपि पार्टी को सिर्फ बंगाल में गैरकानूनी बनाया गया था, लेकिन गिरफ्तारियाँ अन्धाधुन्ध हो रही थीं। कोई भी रेलवे दुर्घटना या दूसरी वैसी बात हो उसे झट कम्युनिस्टों का नाम बतलाकर सीधे प्रहार कर दिया जाता था। समाजवादी नेहरू अब नाम मात्र रह गए थे, और शायद अमरिका को खुश करने के लिए फासिस्टों का रास्ता अपनाया जा रहा था। नेहरू वस्तुतः उस समय वल्लभ सरदार पटेल के आगे से बढ़कर कुछ नहीं थे। सारी शक्ति और कुर्सी पटेल के हाथ में थी जो प्रगतिशील विचारधारा को सुनने के लिए भी तैयार नहीं थे। दल के भलीभाँति उनका पाकर फूले नहीं समाते थे, और उस समय जो बुराइयाँ बड़ी तेजी से बढ़ीं, उनका मुख्य स्रोत ढूँढ़ा पर पटेल के ही पहुँचना पड़ेगा।

विद्यार्थी बैठते थे। जहाँ गुड़ होता है, वहाँ चींटियाँ भी आ जाती हैं, और सम्मेलन की अवस्था कुछ वैसी-सी होती जा रही थी। मैं तो समझता था, सम्मेलन का प्रचार-युग समाप्त करके अब उच्च साहित्यिक अकदमी का रूप लेना चाहिए। सम्मानार्थ प्रतिवर्ष सभापति का चुनाव और अधिवेशन भी हो, पर पदाधिकारियों का चुनाव तीन वर्ष बाद हो, जिसमें एक बार के आए पदाधिकारी अपनी योजनाओं को कुछ पूरा कर सकें। उच्च साहित्य सृजन में अपनी शक्ति लगानी चाहिए, और महान् कवियों की पहले ग्रंथावलियाँ प्रकाशित कर देनी चाहिए, फिर विश्व साहित्य के अनमोल ग्रंथों को हिन्दी में लाना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द से १३ अप्रैल को भेंट हुई। बलदेव चौबे के नाम से वह मेरे घनिष्ठ मित्र और कितने ही स्वप्नों के साथी रहे। राजमगढ़ में उन्होंने हरिजन गुरुकुल खोला, और हरिजन उत्थान के लिए उन्होंने अपना जीवन लगा दिया। इसके लिए उन्होंने अपने समाज की पर्वाह नहीं की। उनका आग्रह था मैं कुछ दिनों आकर गुरुकुल में रहूँ, लेकिन किसको पता था, कि दिन इतने महँगे हो जाएँगे। अगले दिन गर्मी की वृद्धि चित्त को विकल कर रही थी, लेकिन संकल्प कर लिया था—"इस मास को तो यहाँ बिताना ही है।" शाम का भोजन विद्यावती और उनके पति दुबरा दूबे के यहाँ हुआ। विद्यावती बल्देव चौबे की पुत्री है। चौबेजी की चली होती, तो सभी बच्चे हिन्दी मिडिल से आगे न बढ़े होते। पर बच्चों को बूआ महादेवी का वरदहस्त मिला था, इसलिए सभी एम० ए० होने में सफल हुए।

१४ अप्रैल को गर्मी की वृद्धि चित्त को विकल कर रही थी, लेकिन संकल्प कर लिया था— "इस मास को तो यहीं बिताना है।"

अगले दिन बिजली के रुकने के कारण कुछ घंटे के लिए पंखा बन्द हो गया। फिर क्या पूछना है। मालूम हुआ, कि जीवन पंखे के सहारे चल रहा था।

विद्यानिवासजी बड़ी तत्परता से और बहुत अच्छा काम कर रहे थे।

उनको वैतनिक काम करने मे हिचकिचाहट थी। कभी कोई कह ही सकता था। पर उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नही थी, कि अवैतनिक काम कर सकते। "शासन शब्दकोश" के तैयार होकर टाइप हो जाने के बाद भारत के और प्रान्तों के तज्ञो के पास जाकर उसके बारे मे परामर्श लेना था। श्री प्रभाकर माचवे ने सहयोग देने को लिखा था, यह बड़ी प्रसन्नता की बात थी।

कवि शील कानपुर के लिए वचन ले चुके थे, १६ को ३ बजे रात्रि की गाडी से हम कानपुर चले। गर्मी मे चलना तो पसन्द नही था, लेकिन क्या करते! रात को तीन बजे श्री ललितमोहन अवस्थी के निवास पर राम-मोहन कटरा मे गए। शीलजी साथ थे, इसलिए रास्ता पूछने की जरूरत नही थी। सॅकरी सडक थी, जिस पर बीच-बीच मे गाएँ लेटी थी, लोग गर्मी से बचने के लिए आसमान के नीचे चारपाइयो पर पडे थे। अगले दिन क्राइस्ट चर्च कालेज म सार्वजनिक सभा हुई। छुट्टी के कारण विद्यार्थी नही थे, इसलिए भीड जितनी होनी चाहिए थी उतनी नही हुई, लेकिन सख्या की कमी को श्रोताओ के वेग ने सन्तुष्ट कर दिया। मुझे कुछ असन्तोष तो हो सकता था, क्योंकि मेरे प्रिय तो तरुण हैं। प्रबन्धक कह रहे थे, काग्रेस और प्रताप वालो ने बाधा उपस्थित की। सभा से मैं श्री गणेशशकर विद्यार्थी के घर पर गया। उनके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री हरिशकर विद्यार्थी मिले। आजकल वे कानपुर इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट के अध्यक्ष थे। कानपुर म सचमुच ही बहुत इम्प्रू-वमेन्ट—सुधार—करने की आवश्यकता थी। सौ ही वर्ष पहले तो गगा के किनारे इस गाँवडे मे लखनऊ के नवाब पर अकुश रखने के लिए अग्रेजो ने अपना फौजी कम्पू (कैम्प) बनाया, जो कम्पू से कानपुर बन गया। उस समय किसको आशा थी, कि सौ वर्ष बाद यह १३-१४ लाख आबादी का शहर हो जाएगा। इसीलिए अग्रसोची होकर शहर को बाकायदा बसाने की ओर ध्यान नही रखा गया, और खाली जमीन मे जिसकी जहा इच्छा हुई, उसने वहाँ अपने लिए मकान बना लिया। ये सॅकरी सडकें सँकरी गलियाँ जैसी हैं, जिनम—मनीराम की बगिया जैसी म—मोटर चलाने मे ड्राइवरो

का क्या चढने वाले का भी दिल कांपता है। शहर से बाहर सरणार्थियों के लिए बंगलों का बनाया गया था, लेकिन अब वे भी शहर के भीतर आ गए। ५० हजार से ऊपर शरणार्थी भी यहां बस गए। नए मकान बराबर बनते जा रहे थे, तो भी उनकी कमी थी। व्यापार में शरणार्थियों से दूसरे बनिए जब होड़ नहीं लगा सकते, तो तरह-तरह से दोष निकालने लगते हैं— वे नकली चीजें देते हैं, उनका आचार विचार शिथिल है। स्त्रियां नंगी नहाती हैं आदि आदि। देश-काल के अनुसार आचार विचार में अन्तर होता ही है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश वाले ब्राह्मण मछली-मांस का नाम सुनने को भी तैयार नहीं हैं, और पूर्व वाले मूछ पर ताव देकर उसका सेवन करते हैं। स्त्रियां पंजाब ही में नंगी नहीं नहाती, हमारे यहां भी नहाती हैं। हां, इतना अन्तर जरूर है कि यहां वे पुरुषों की नजर बचाकर नहाती हैं।

१८ को दिन भर कानपुर ही में रहना था। मुझे फोटो का शौक है। यात्री और यात्रा सम्बन्धी लेखक होने से मुझे फोटो का महत्व मालूम हुआ और एक बार इस खर्चीले शौक में जब आदमी पड़ गया, तो कितना ही हाथ रोकने पर भी खर्चना पड़ ही जाता है। मेरे पास सोवियत से [illegible] फेद कमरा था, जिसका नेगटिव बहुत छोटा, एक फिल्म में २६ [illegible] और बिना इन्लार्ज किये उसका कोई महत्व नहीं था। यहां चित्रा स्टूडियो में एक रिफ्लेक्स कैमरा (अर्गोफ्लेक्स) ३३५ रुपए साढ़े १० आने में ले लिया। कुछ समझ तो रहा था, कि इससे काम नहीं चलेगा। मुझे और महंगा कैमरा लेना पड़ेगा। पर सामने देखकर लोभ का संवरण नहीं कर सका। दोपहर का भोजन श्री पुरुषोत्तम कपूर के यहां हुआ, जहां [illegible] [illegible] भी मिले। और भी कई मित्र आए। इसी घर में [illegible] [illegible] कपूर का जन्म हुआ। [illegible] ने अपनी सारी [illegible] [illegible] मजदूरों को [illegible] और संगठन में लगा दी। आज तक भी उसका [illegible] बराबर [illegible] में रखा है। [illegible] अपने उद्देश्य और स्वप्न में [illegible]। [illegible] को इस बात का बहुत दुःख हुआ, कि [illegible] ने कुछ [illegible] [illegible] नहीं लिया? [illegible] समझते नहीं थे, कि [illegible] [illegible] [illegible]

है, और म्युनिसिपल्टी का मानपत्र विस आर। भोजनोपरान्त बुद्धपुरी मे श्री मेधार्थीजी के विद्यालय मे गये। बहुत दिनो बाद श्री सतरामजी से भी वही भेंट हो गई। तरुण चेहरा अब बूढा हो गया था। बीच के समय देखने का मौका नहीं मिला नही तो परिवर्तन इतना हुआ नही मालूम होता। मेधार्थीजी पहले बुद्ध के नाम से आकृष्ट हुए थे, और अपने साथ बुद्ध को भी आर्यसमाजी बनाना चाहते थे, लेकिन अब वह काफी आगे बढे थे। नवाबपुरा मे श्री छैलबिहारी कटक ने शिक्षितो की एक छोटी-सी बैठक हिन्दी प्रचारिणी सभा मे की। कटकजी जलपान कराना चाहते थे, लेकिन इस वक्त तो एक एक मिनट का बहुत मूल्य था। वहाँ से शरणार्थियो की बस्ती मे एक सिनेमा मे चायपान के लिए मित्र लोग ले गए, फिर नागरी प्रचारिणी सभा मे। प०लक्ष्मीधर वाजपेयी सभा के अध्यक्ष थे। वाजपेयीजी का सारा जीवन हिन्दी की सेवा मे लग रहा था। उन्होंने पत्र-सम्पादन किये, पुस्तकें लिखी, प्रकाशन किये। मेरे लिए तो सब से बडी बात यह थी, कि हिन्दी साहित्यकारो में सबसे पुराने और पहले इन्ही को आगरा मे मैंने श्रद्धा-वनत दृष्टि से देखा। भाषण के बाद कानपुर के महासेठ श्री रामरतन गुप्त के यहाँ पत्रकारो से भेंट और भोजन दोनो काम करना था। इस प्रकार वह सारा दिन कानपुर मे अत्यन्त व्यस्त रहा। कानपुर मे मेरे लिए तो यह परम्परा-सी बन गई है, कितना ही बचने पर भी दिन म चार-पाँच सभाओ मे जाकर बोलना मामूली बात थी। १० बजे रात की गाडी पकड-कर १ बजे प्रयाग पहुच छोटी लाइन (ओ० टी० आर०) पकडी।

(अब उसका नाम लगटसिंह कालेज है)। किन्तु दादा के बचपन की गरीबी का नाम सुनकर उन्हे उनका क्या परिचय मिल सकता है। कालेज मे नव सस्कृति केन्द्र मे जाकर डेढ घटा बोलना पडा। दोपहर को भोजन कर दिग्विजय बाबू के घर पर रह गये, और ४ बजे उन्ही के साथ मोटर से वैशाली की पुनीत भूमि के लिए रवाना हुए। भारत के लिए उसका स्थान वैसा ही है, जैसा युरोप के लिए अथेंस का। आखिर हमारा भी ध्येय गण-राज्य ही है। श्री जगदीशचन्द्र माथुर (आई० सी० एस०) जब यहाँ सब डिवीजनल आफिसर थे, तो उनका ध्यान वैशाली की ओर आकृष्ट हुआ, और उन्होने ने ही भूली वैशाली को लोगो के सामने लाने का प्रयत्न किया। वैशाली को आजकल बसाढ कहते हैं। पुरानी वैशाली के अवशेष कोल्हुआ बनिया, बसाढ आदि कितने ही गाँवो मे फैले हुए हैं। सरकारी और गैर-सरकारी सभी लोग वैशाली महोत्सव की तैयारी मे लगे हुए थे। अप्रैल या गर्मियों का महीना सभाओ के लिए अनुकूल तो नहीं है, पर इसी ऋतु मे वैशाली मे श्रमण महावीर का जन्म हुआ था। कृषि विभाग और सहयोग समिति की प्रदर्शनी हो रही थी, तम्बू पडे हुए थे, दोपहर के वक्त इन तम्बुओ के भीतर रहने वाले की कैसी गति बनती होगी? पर मुझे यह ख्याल नही था, कि उनके लिए गर्मियो मे पहाड का रहना अस्वाभाविक और यहा रहना स्वाभाविक था।

जरा धूप कम होने पर हम घूमने के लिए निकले। कोल्हुआ मे अशोक स्तम्भ देखने गये। यद्यपि वह साधु की कुटिया के आँगन मे पड गया है, लेकिन उसका ऊपरी भाग बहुत देर से दिखाई पडता है। अशोक ने वैशाली के महत्व को दिखलाने के लिए इस स्तम्भ को स्थापित किया था। शायद यही महावन कूटागारशाला थे, जहाँ भगवान् बुद्ध अवसर आकर रहा करते थे। बाहर ११वी १२वी शताब्दी की मुकुटधारी बुद्ध प्रतिमा थी, जिसके दायक ने उस पर खुदवा दिया था—"देय धर्मोयं प्रवरमहायानियायिन करणिकोच्छाट माणिक्य-सुतस्य।" जिससे मालूम हुआ, कि इस मूर्ति के बनवानेवाले कायस्थ उच्छाट थे, जिसके पिता का नाम माणिक था। करणिक

पुरुष के सामने भी वैसा व्यवहार करना मेरा स्वभाव नही है, जिससे उसके हृदय पर ठेस पहुँचे। यदि बिजलीसिंह ने अपना परिचय दे दिया होता कि मैं वही आदमी हूँ, जिसने बनिया मे पुरातात्विक वस्तुओ का संग्रह कर रखा है, तो मुझे बडी प्रसन्नता होती, और पिछले आठ वर्ष के उनके काम के बारे मे पूछता और सुनता। मैं सारे समय उन्हें पहचान नही सका। मेरे दोस्त कहने लगे, यह आदमी खुफिया पुलिस का है। मैंने उनसे यह तो कह दिया—"पुलिस ऐसे सीधे-सादे आदमी से मेरे बारे मे अपना काम नहीं ले सकती।" हाँ, पुलिस स्वतन्त्र भारत मे भी मेरे पीछे वैसे ही परेशान है, जैसे अँग्रेजो के समय मे। मुझे पीछे अफसोस हुआ, जब मालूम हुआ कि वह सीधे-सादे व्यक्ति बिजलीसिंह ही थे।

बनिया म और जगहो पर भी खेता मे कभी-कभी कुइया निकल आती हैं। ये कुइयाँ वृत्ताकार एक इट से बनी होती है। आजकल ऐसी ईटा के बनाने का यहाँ रवाज नहीं है। लेकिन छपरा, गोरखपुर, बस्ती के तीन जिलो को पार कर चौथे गोडा जिले म यदि हम जायें, तो आज भी ऐसी ईंटें बना और पकाकर लोग कुइयाँ तैयार करते हैं। ये सस्ती पडती हैं। मामूली खर्च के पान के लिए काफी भी होती हैं। एक जगह पास पास तीन कुइयाँ थी। लोगो को समझ मे नही आ रहा था, कि इतने पास पास कुइया के बनाने की क्या जरूरत थी। लेकिन ये कुइयाँ तो थी नही, ये तो सडास की कुइयाँ अर्थात् गूथकूप थे। उस समय सामाजिक स्वास्थ्य और नागरिक सफाई की ओर लोगा का ज्यादा ध्यान था, इसलिए हर घर मे गूथकूप के रहने की आवश्यकता थी। वहा के लोगो को यह समझाने म बहुत दिक्कत भी नही हुई, क्योकि गूथकूप का ढक्कन तीन टुकडो मे टूटा वहा मौजूद था। इसके बीच मे एक बित्ते का गोल छेद था, पावदान भी बना था और आगे छोटा छेद पेशाब गिरने के लिए था। लोगा को यह विश्वास हो गया, लेकिन वह कुइया समझकर उसका पानी पी रहे थे। मैंने कहा, इसकी पर्वाह न कीजिए। कुछ ही महीने मे पाखाना गोभी के फूल का रूप ले लेगा, क्या उसे

अभक्ष्य समझा जाता है ? और ये गूयकूप तो आज से सहस्राब्दी पहले इस्तेमाल किये जाते होंगे ।

२१ को भी सवेरे हम पुरानी वैशाली की परिक्रमा मे निकले। बावन पोखर पर एक शिला मे गणेश और सप्तमातृका की मूर्तिया खुदी हुई देखीं। पास ही मे बुद्ध, फिर छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु, सिंहनाद अवलोकितेश्वर, हर गौरी और विष्णु की मूर्तियाँ थी। इनमे विष्णु की मूर्ति सबसे पुरानी थी, बाकी ११वी १२वी सदी की थी। अवलोकितेश्वर की खण्डित मूर्ति बड़ी ही सुदर थी। वहा से दक्षिण भगवानपुर रत्ती गये। वैशाली के लिच्छवियो की एक शाखा ज्ञातृ थी, जिसे पालि मे नाती, नात या नत्ती भी कहा जाता है। तीथकर महावीर को वैशालिक और नातपुत्र (पालि, नात पुत्र) कहा गया है। उनके वैशाली म उत्पन्न और ज्ञातृ सतान होने मे कोई सन्देह नही, लेकिन अभी बहुत से जैन इसे मानने मे आना कानी कर रहे हैं। बीच मे इस भूमि मे जैना के उच्छिन्न हा जाने और पीछे स्थानो का मनमाना प्राचीन नाम देकर तीथ बना लेने के बाद इनके लिए यह हिचकिचाहट स्वाभाविक है। भगवानपुर रत्ती का अर्थ है रत्ति परगन का भगवानपुर। भगवानपुर नाम के कितने ही गाँव है, इसलिए यह विशेषण लगाना पड़ा। रत्ति, नत्ति या नातृ का ही बिगडा हुआ रूप है। आजकल भी इस परगने में जथरिया भूमिहार बहुत बडी सख्या मे रहते हैं। यह लिच्छवियो की ज्ञातृ शाखा की सन्तान हैं, नातृ से ही जथरिया शब्द बना। महावीर भी काश्यप गोत्री थे, और यह भी काश्यप गोत्री हैं। नात लोग क्षत्रिय थे, और यह अपने को भूमिहार ब्राह्मण कहते हैं, यह भेद जरूर है, जिसका समाधान मुश्किल नही है। यहाँ कोई विशेष चिह्न नहीं मिला, होगा भी तो जमीन के बहुत नीचे होगा। बसाढ के पास स्तूप देखा, जिसके ऊपर आजकल का बनी हुई है। यह शायद उसी स्थान पर है जहाँ वैशाली का पश्चिमी द्वार था, और जहाँ से ही बुद्ध अन्तिम बार कुसिनारा की ओर जाते वक्त निकले थे। जलपान के बाद महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य मे होनी जन सभा मे भाषण दिया, फिर जीप पर जल्दी धूप म निकल पडे। मम्मन छपरा मे

बाग मे चार पाँच हाथ नीचे अर्थात् १२-१३ सौ साल पहले (गुप्त काल) की एक चार मुख वाला विशाल मुखलिंग देखा। वह गुप्त काल से पहले का होगा। शायद यही वैशाली के पूव द्वार के बाहर चैत्य रहा होगा। चैत्य उस समय पूज्य चौतरे को कहते थे और वह बौद्धो के ही नही, दूसरो के भी होते थे।

शाम के साढे ५ बजे बिहार के राज्यपाल अणे साहब आए। भीड थी, लाउडस्पीकर ठीक से काम नही कर रहा था इसलिए सुनाई देना मुश्किल था। लाटसाहब भाषण देकर थोडी देर बाद चले गए। मैंने भी अपना वैशाली पर लिखा भाषण दिया। कितने ही प्रस्ताव पास हुए। उस समय बातचीत हो रही थी कि वैशाली मे प्राकृत का एक शोधपीठ या इन्स्टीटयूट कायम किया जाए। बिहार ने पीछे दरभगा मे सस्कृत इन्स्टीट्यूट नालदा मे पालि इन्स्टीटयूट और वैशाली म प्राकृत इन्स्टीट्यूट कायम किया। इन तीनो स्थानो मे दरभगा ही ऐसा है जहा अनुसधान के लिए काफी सामग्री मौजूद है। वहा शहर है। एक अच्छा-खासा डिग्री कालेज है, और महाराजा की बहुत बडी निजी लाइब्रेरी भी है। बाकी दोनो स्थानो मे हरेक चीज का बन्दोबस्त स्वय करना पडेगा। लाखो की इमारतें खडी करनी होगी, फिर एक बडे पुस्तकालय को तैयार करना पडेगा, और सबसे बडी दिक्कत यह कि सैकडो छात्रो और शोधकर्ताओ को वहाँ लाकर रखना आसान नही होगा। खैर, इन स्थानो का अपना महत्व है। नालन्दा को भुलवाया नही जा सकता, पर वहाँ केवल पालि इन्स्टीट्यूट कायम करना ठीक नही है। बौद्ध वाङ मय और बौद्ध जगत् की भाषाओ के अध्ययन का वहाँ केन्द्र बनाना चाहिए। वैशाली मे जैन वाङमय ही नही, राजनीति और गणराज्यो के इतिहास के अनुसधान केन्द्र बनाने चाहिए। दरभगा मे मिथिला इन्स्टीटयूट रहे।

**प्रयाग**—वैशाली से ११ बजे रात को चलकर १ बजे की ट्रेन पकडी। छपरा पहुँचते सवेरा हो गया। गर्मी बहुत मालूम हो रही थी, पखे से लू की लपट निकल रही थी। इधर यह गर्मी थी, जो कह रही थी जल्दी भाग

जाओ, उधर आमों में टिकोरे (केरियाँ) झूम झूमकर कह रहे थे—"हम कुछ ही दिनों में बड़े, पीले और मीठे हो जाएँगे। पके आमों से वंचित क्या होने जा रहे हो?" एक ओर आम खींचकर नीचे रखना चाहता था, दूसरी ओर गर्मी भगाकर पहाड़ पर पहुंचाना चाहती थी। और पहाड़ पर भी हम अब के साल कनौर जा रहे थे, जहां पके आम किसी तरह भी सही सलामत नहीं पहुंच सकते। दिग्विजय बाबू ने बहुत अच्छे आमों का टोकरा रेल द्वारा शिमला भेजा। वह समझते थे, मैं शिमला ही के आसपास कहीं रहता हूँ। बिल्टी शिमला से आठवें-दसवें दिन डाक द्वारा चिनी पहुंची। उस वक्त मैं यही मनाने लगा था अगर रेल से किसी ने चुराकर टोकरे को खा लिया होगा तो बहुत अच्छा।

प्यास बहुत सता रही थी। भोजन करना मुश्किल था। साढ़े ७ बजे शाम को प्रयाग पहुँचकर सत्यनारायण कुटीर में चला आया। टाइप करने का काम कागज के लिए रुका हुआ है यह जानकर बड़ी झुँझलाहट पैदा हुई। टण्डनजी पर भी क्रोध आ रहा था बड़े दीर्घसूत्री अनिश्चयात्मक वृत्ति के पुरुष हैं। लेकिन, काम को तो घाट पर पहुंचाना ही था। सुनीति बाबू ने सरकारी कामों में व्यवहार्य परिभाषाएँ बनाई थीं। इसमें पदाधिकारियों और कार्यालयों के नामों की ही सूची थी, किन्तु निर्माण का ढँग बड़ा अच्छा था। हमने उनमें से बहुतों को स्वीकार कर लिया। जो शब्द अकारादिक्रम से लग गये थे अब उन्हें अंग्रेजी और हिन्दी में टाइप कराना था। इसमें भी हमने कुछ आदमियों को लगा दिया। इसी समय सम्मेलन के कर्मचारियों ने वेतन वृद्धि के लिए मांग की। आखिर वह जानते थे कि सरकार भी ५० ५५ हजार की सहायता देने जा रही है। फिर उनका ही वेतन क्यों कम रहे? २३ तारीख को इसके लिए भी झुंझलाहट हुई कि चन्द्रग्रहण के कारण हमारे साथ काम करने वाले लोग त्रिवेणी स्नान करने चले गए। विद्यानिवासजी जान तोड़कर काम कर रहे थे। हमारा योजना के अनुसार उन्हें काम के दिखलाने के लिए कलकत्ता, कटक और नागपुर जाना जरूरी था। मैं चाहता था, पहाड़ के लिए प्रस्थान करने से पहले

के आ जाने, तो आगे का दिशा निर्देश सामने ही कर दिया जाता। लेकिन अभी टाइपिस्टो का ही कोई ठीकठाक नही हो रहा था।

बीच मे कुछ दिनो अनुपस्थित रहने के कारण कुछ कामो को दुबारा करना पडा। विद्यानिवासजी सस्कृत का मोह नही छोड सके, और उन्होने बहुत से सस्कृत शब्द दिए। हमारा काम लोगो को भाषा सिखलाना नही था बल्कि जितने शब्दो का हिन्दी मे प्रचार है, उन्ही से नये शब्दो का गढना था। तीन दिन का काम बढ गया। खैर, पहले पहल ऐसा होना स्वाभाविक था। २५ तारीख को माचवेजी भी आ गए। वह भी विद्यानिवासजी की ही तरह मुस्तैद थे। यदि विद्यानिवासजी दाहिने हटना चाहते थे, तो यह उन्हे खीचकर बीच मे रखने मे समर्थ थे। उस दिन तापमान ११० डिग्री तक पहुचा। पखा गरम हवा देने लगा।

२६ को बनारस से रायकृष्णदास पधारे। वह विशेषतौर से देखना चाहते थे, कि हम उसी काम को नही दोहरा रहे हैं, जिसे नागरी प्रचारिणी सभा कर रही है। सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा की प्रतिद्वद्विता से मुझे कुछ लेना देना नही था। मैंने उन्हे परिभाषा समिति का प्रस्ताव दिखलाकर बतलाया कि हमारे काम एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए। रायसाहब ने मुझे इसुलिन लेने की सलाह दी। दो चार सूई लेने के लिए तो मैं तैयार था, लेकिन अभी प्रतिदिन सूई को चुभाने से भागता था। यह भी मन के किसी कोने मे आशा थी—"शायद देवहिमालय कृपा करे, वहा प्रतिदिन दो घटा टहलना है ही।" पक्रिया ग्रथि के पेन्शन लेने से शरीर मे क्या परिवर्तन होता है, यह कुछ कुछ दिखाई देने लगा। प्यास और पेशाब दोनो एक साथ जोर करते, मुह का स्वाद बुरा रहता, चमडा रूखा तथा मन मे एक तरह की विकलता मालूम होती। डा० रवि वर्मा ने पेशाब देखकर बतलाया कि चीनी बहुत अधिक है। ८ बजे इन्सुलिन की सूई ली। ३ घटे बाद ११ बजे रात को मुह के स्वाद मे अन्तर मालूम होने लगा। [illegible] सोच रहा था, इन्जेक्शन बडी बुरी बला है, सूई को गरम पानी [illegible] कर साफ रखना होगा, फिर इन्जेक्शन का सारा सामान—इ

रिट, रूई, सुई, चिमटा आदि—सब पास रखना होगा। साफ दिखाई देने लगा, कि यह सारा तरद्दुद अकेले कंधे पर उठाया नहीं जा सकता, पर अबकी बार तो हिमालय अकेले ही जाने का निश्चय किया।

२८ तारीख को शाम सवेरे दोनों समय इंसुलिन का इंजेक्शन लिया। शाम का सवेरे से दूने परिमाण में।

२८ को तिब्बत की कुछ बातें मालूम हुईं। पता लगा, सरकार और सेरा विहार के भिक्षुओं में झगड़ा हो गया। सेरा में शिक्षित रडिंग लामा तेरहवें दलाई लामा के मरने के बाद तिब्बत के रिजेन्ट हुए थे। मेरे मित्र गेशे तन् दर उनके अध्यापक रहे। तन दर अब सेरा के एक विभाग के खम्पो (डीन) थे। वह बड़े ही प्रतिभाशाली विद्वान् थे। बाह्य मंगोलिया की अपनी भूमि को छोड़कर २५-३० वर्ष से सेरा में पहले विद्यार्थी और फिर अध्यापक रहे। यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि इस झगड़े में मुण्डे साधुओं ने मेरे तन् दर को मार डाला। उनकी सर्वतोमुखी विद्या का उपयोग अब होनेवाला था। इतना बहुमूल्य जीवन इतनी जल्दी समाप्त हो गया। मेरे दूसरे मित्र और साथी गेशे मन्दुम् छोम्फेल (संघधर्मवर्धन) के बारे में पता लगा कि प्रगतिशील विचारों वाली अपनी पुस्तक के छपवाने के लिए उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया है, कितनी ही बार कोड़े लगाये गए। धर्मवर्धन बड़े कुशल चित्रकार थे, उत्तम कवि और साथ ही दर्शन के पंडित थे। मेरे साथ रहने का प्रभाव पड़ने से उनके विचार भी मार्क्सवादी हो गए। नवीन तिब्बत को उनसे बहुत आशा हो सकती थी, लेकिन वह भी समय से पहले ही चल बसे। गेशे धर्मकीर्ति मेरे साथ दो बार भारत आ चुके थे। वह बैकाल के पास के मंगोल थे। वह आजकल तिब्बती कोश बना रहे थे। मैं प्रयाग में था, और ये शोकजनक घटनाएँ हिमालय पार सुदूर ल्हासा में घट रही थीं। पर मालूम होता था, ये मेरे सामने ही हो रही हैं। मेरा चित्त बहुत खिन्न था।

अब मैं डायबेटीज की ओर में अधिक उपेक्षा करने के लिए तैयार नहीं था। ६० यूनिट इंसुलिन का इंजेक्शन दर पर पथ्य की चीनी दवा।

२९ तारीख को दिन म दो बार इन्जेक्शन लिया। डा० रवि वर्मा ने इन्सुलिन, पेनिसिलीन, पिचकारी, गरम करने का चम्मच और दूसरी सारी चीजें जमा कर दीं। सब पर १०९ रुपय खर्च आये। डाक्टर ने अपनी फीस लेने से इन्कार कर दिया। मैं ऐसी जगह जा रहा था, जहाँ इन्जेक्शन देने वाला कोई नही मिलता, इसलिए ३० अप्रैल को अपने हाथ से इन्जेक्शन लिया।

उसी दिन कोश प्राय समाप्त हो गया। टाइपिस्ट अंग्रेजी और हिन्दी मे शब्दो का टाइप करने म लगे हुए थे। विद्यानिवासजी भी घर जाकर लौट आए। किस सिद्धान्त के अनुसार हम परिभाषाओ का निमाण कर रहे हैं, इस पर एक लेख भी तैयार किया।

२ मई को रविवार था। आज सम्मेलन कार्य-समिति की बैठक हुई। "शासन शब्दकोश" को देखकर विश्वास हो गया, और समिति ने विज्ञान की परिभाषाओ के लिए भी पाँच हजार रुपये मजूर किए। अगले दिन मुझे हिमालय के लिए रवाना होना था। आनन्दजी का बहुत आग्रह था, कि मैं किसी को अपने साथ ले जाऊँ, किन्तु मुझे चिनी जाना था, वहा की यात्रा मे कई कठिनाइयाँ आ सकती थी, जिनका सामना करने के लिए हरेक आदमी तैयार नहीं हो सकता था। इसलिए मैंने प्रयाग से अपने साथ किसी को ले जाना पसन्द नही किया। इतना विश्वास हो ही गया था, कि शिमला से कोई आदमी मिल जाएगा। हा, यह बन्दोबस्त इसी यात्रा के लिए था। अब तो मालूम होने लगा था, कि किसी आदमी को साथ रखना होगा, जो लिख भी सके और इजेक्शन भी दे सके।

९

# किन्नर देश में

३ मई को साढ़े ८ बजे मैं कालका मेल में प्रयाग से रवाना हुआ। कितने ही मित्र मिलने आए। दवाइयों का एक पासल घर पर ही छोड़ गए। कई चीजों को साथ रखने में ऐसा होता ही है। उस पासल में मूत्र परीक्षा की दवाई थी। हमारे डब्बे में दो बंगाली सज्जन थे, जिनमें एक दिल्ली और दूसरे कालका तक के साथी थे। थोड़ी ही देर में हम चिरपरिचित से हो गये। साथ में एक अँग्रेज भी चल रहे थे। वह बीस साल से दार्जिलिंग के चायबगानों के प्रबन्धक थे। चायबगान भी तो अब अँग्रेजों के हाथ से निकल रहे थे। उत्तरी ईरान में चाय के बगीचे बनाए जा रहे थे। अब वह उन्हीं के लिए वहाँ बुलाए गए थे। वह चायबगान के कुलियों की सादगी की बड़ी प्रशंसा करते थे। क्यों न प्रशंसा करते, जब कि वह बिना कान पूँछ हिलाये उनके इशारे पर हर वक्त काम करने के लिए तैयार रहते थे। "कम्बख्त" कम्युनिस्टों से उनको जरूर शिकायत थी क्योंकि वह कुलियों को भड़का रहे थे। दासों के युग में मनुष्य का पशु की तरह काम करना स्वामियों को स्वाभाविक मालूम होता था। आज भी करोड़ों का माल पैदा करानेवाले चायबगानों में कुली आधे पेट रहकर काम करें, तभी वह भले मालूम होते हैं।

१२ बजे से ५ बजे तक चलती हुई ट्रेन में भी बड़ी गर्मी रही। खाना का मन नहीं किया। ८ बजे शाम हम दिल्ली पहुँचे। दो घंटे में अदिर

गाडी रुकी रही। सीट रिजर्व थी, चार सीटें थी और चार ही आदमी थे, इसलिए रात का सोने का आराम रहा, और दिन मे गप शप् मे समय बीते मालूम नही हुआ।

शिमला—४ मई को सवेरे हम कालका पहुँच गये थे। छोटी गाडी पकडनी थी। दो सूटकेसो और बिस्तरे को लगेज मे भेज दिया बाकी सामान साथ रखा था। चडीगढ आया। यही पूर्वी पजाब की राजधानी बनने जा रही थी। यह प्रयत्न मुहम्मद तुगलक के दौलताबाद बसाने से भी बदतर था। आखिर दौलताबाद मे पहले ही से देवगिरि जैसा नगर मौजूद था, और यहाँ जगल मे राजधानी बसाई जा रही थी। जालधर प्राचीन काल मे भी एक बडी राजधानी था। आज भी एक बडा शहर, और उससे कुछ ही मील पर कपुरथला के महल मौजूद थे। पजाब की राजधानी होने के लिए वह सबसे उपयुक्त था, लेकिन समझावे कौन। मालूम हुआ, कि एक मत्री की यहाँ बहुत सारी जमीन थी, वह राजधानी के नाम पर लाखो रुपये मे बिक गई। (चडीगढ की राजधानी अब सरकारी तौर से उद्घाटित हो गई है, लेकिन, पजाबी भाषा के छोर पर बसे इस नगर के सौभाग्य को पजाबी भाषा किसी समय भी छीन सकती है)।

छोटी लाइन का डब्बा और इजन भी छोटा था। ट्रेन छोटे छोटे पहियों से बालक की तरह धीरे धीरे ऊपर साँप सी टेढी मेढी चढ रही थी। रास्ते मे पहाड के भीतर कितनी ही सुरगे मिली। चार हजार फुट की ऊँचाई पर पहुँचने के बाद गर्मी से छुट्टी मिली। यहाँ गेहूँ अब पक रहे थे। दोपहर के करीब शिमला पहुँच गये। स्टेशन पर प्रो० लाजपतराय नय्यर अपनी बहिन रजनीजी के साथ मौजूद थे। जीप पर चढकर ऊपर पहुँचे, और थाडी-सी चढाई को पैदल पार करना पडा। फरग्रोव बँगले पर पहुँचने मे काफी थका-वट हुई। मकान बडे सुरम्य हरे भरे स्थान मे था। सफाई और शान्ति चारो ओर विराज रही थी। रेल के लम्बे सफर के बाद स्नान करना अ[illegible] है। स्नान किया, लेकिन पेट खराब था, दद भी था और कई पतले और एक कै भी हुई। ६ बजे रात को छुट्टी मिली। आज खाना नही

प्रो० नय्यर पजाब सरकार के प्रचार-विभाग के डायरक्टर जेनरल (महा निदेशक) थे। उन्होने कुछ फिल्में दिखलाई जिनमे लोक कला के कुछ दृश्य थे, पर पेट के दर्द के मारे मन नही लग रहा था।

उस दिन शाम को शिमला की प्रधान सडक—माल—पर टहलने गये थे। पजाबी ललनाएँ सारे भारत मे आधुनिकता मे अव्वल रहती हैं। वे माल को पेरिस की फैशनवाली सडक बना रही थी। पेरिस और भारत के फैशनो का यहा बहुत विचित्र समिश्रण था। एक तन्वी ने चित्रवर्ण-सा पतली साडी और ब्लाउज पहनते वक्त यह ध्यान रखा था, कि उदर का सौन्दर्य ढँकने न पाए। यदि स्वस्थ और सुन्दर होती, तो गुप्तकाल की मूर्ति-सी सुन्दर मालूम होती, लेकिन थी वह बिल्कुल चुडैल। शाम को माल पर तो मालूम होता था, कि सौन्दर्य और वेषभूषा की प्रदर्शनी हो रही है। ये पहाडी नही, पजाबी तरुणिया थी। तरुण पीढी पिछली पीढी को बहुत पीछे छोड गई थी। एक लडकी अपने भाई से कह रही थी—"मैं अपने मित्र के पास जा रही हूँ।" भाई ने जवाब दिया—"तुम्हारा मित्र तरुण अमुक है ना ?" बीसवी सदी के मध्य मे ही यदि यह देखा जा रहा है, तो आगे कहाँ तक पहुचेंगे, इसे कहना मुश्किल है।

किन्नर देश की यात्रा का विस्तृत वर्णन मैं "किन्नर देश मे" कर चुका हूँ, जो कि "हिमाचल प्रदेश" मे भी लिखा गया है इसलिए उन सब बातों का यहा दोहराना उचित नही। यहाँ सक्षेप मे ही कुछ वर्णन करना होगा। शिमला मे मैं ४ से १२ मई तक रहा। प्रो० लाजपतराय का मेहमान होकर। वह पजाबी मुझे हमेशा ही खुले दिल के मेहमाननेवाज मालूम हुए। प्रो० नैय्यर मे ये गुण और भी अधिक थे। उनकी पत्नी भी हर तरह मुझे कोई तकलीफ न हो, इसका ध्यान रखती रही। यहाँ आकर इन्सुलिन को नियमपूर्वक लेना मैंने शुरू नही किया भोजन मे भी सयम नहीं कर पाया। आगे जाने की धुन थी। पैदल चलने की कभी कभी हिम्मत करता था, लेकिन चढाई मे सांस फूलती देख कर घोडे की आवश्यकता थी। स्वतन्त्र भारत मे अब २२ रियासतो को मिलाकर हिमाचल प्रदेश बना

दिया गया था, जिसके चीफ-कमिश्नर मेरे पुराने परिचित श्री एन० सी० मेहता थे। वैसे भी उनसे मिलता, किन्तु अब तो उनके प्रदेश मे कई महीना के लिए जा रहा था, इसलिए जरूरी था। टेलीफान किया। मेहताजी अनुपस्थित थे अपना नम्बर दे दिया, और सोचा यदि टेलीफान आवेगा, ता मिलने चलेंगे। टलीफान आया, और ७ मई का हिमाचल सरकार के सचिवालय म उनसे मिलने गया। सचिवालय जिस इमारत मे था, उसका नाम हिमालयधाम रखा गया था। मेहताजी मिले और व्यस्त होने पर भी उसका प्रदर्शन नही किया। कुछ बातें हुईं, उन्होने कहा, कि फल-उत्पादन और सडका का निर्माण यह सबस पहले करना है। कन्नौर मे अंगूर के बगीचें है, जिसमे जीप द्वारा वह आ सके, सडको का ऐसा बन्दोबस्त करना हागा। यह भी कहा कि हम लाग लोक-कला की प्रदर्शनी म एक मण्डली बाहर भेजना चाहते हैं, उसके लिए ध्यान रखेंगे। मेरे लिए सबसे बडा काम यह हुआ, कि उन्होंने रामपुर के उच्चाधिकारी का पत्र लिख दिया, कि घोडे, भारवाहक और डाक बँगला आदि का प्रबन्ध कर दें तथा ठाणेदार म १३ तारीख को एक घोडा और दो कुली तैयार रह।

८ तारीख को मेरे देवली के साथी ठाकुर गोविन्दसिंह मिले। उनके साथ कनौर (स्पिलो) के ठाकुर गोपालचन्द नेगी भी थे, जो इलाहाबाद म एल० एल० बी० के द्वितीय वर्ष के छात्र थे। तीसरे पुरुष शाग निवासी नेगी ठाकुरसेन बी० एस सी०, एल एल० बी० थे। नेगी ठाकुरसिंह कृषि के ग्रेजुयट थे, मौसेना मे चले गए थे, और अब हिमाचल के लिए कुछ करना चाहते थे। मालूम हुआ, कि चिनी का कमिश्नरी घर अब भी खाली पडा है, उसके एक भाग मे अस्पताल है। नेगीजी ने अपने परिचितो को कई चिटिठया लिख भी।

उसी दिन कालीबाडी मे गये। इसकी स्थापना १८१५ म उसी समय हुई थी, जब कि हिमालय के भारतीय पहाडो को अंग्रेजो ने नेपालियो से छीना था। बगाली सबसे पहले पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क मे आये। उनके भी कुछ लोग आधुनिकता मे किसी समय सरपट दौडे, लेकिन वह समय बहुत

प्रो० नय्यर पजाब सरकार के प्रचार विभाग के डायरेक्टर-जेनरल (महा-निदेशक) थे। उन्होने कुछ फिल्मे दिखलाईं जिनमे लोक कला के कुछ दृश्य थे, पर पेट के दर्द के मारे मन नही लग रहा था।

उस दिन शाम को शिमला की प्रधान सडक—माल—पर टहलने गये थे। पजाबी ललनाएँ सारे भारत मे आधुनिकता मे अव्वल रहती है। वे माल का पेरिस की फैशनवाली सडक बना रही थी। पेरिस और भारत के फैशनो का यहा बहुत विचित्र समिश्रण था। एक तन्वी ने चित्रवर्ण-सी पतली साडी और ब्लाउज पहनते वक्त यह ध्यान रखा था, कि उदर का सौंदर्य ढँकने न पाए। यदि स्वस्थ और सुन्दर होती, तो गुप्तकाल की मूर्ति सी सुन्दर मालूम होती, लेकिन थी वह बिल्कुल चुड़ैल। शाम को माल पर तो मालूम होता था, कि सौन्दर्य और वेषभूषा की प्रदर्शनी हो रही है। ये पहाडी नही, पजाबी तरुणिया थी। तरुण पीढी पिछली पीढी को बहुत पीछे छोड गई थी। एक लडकी अपने भाई से कह रही थी—"मैं अपने मित्र के पास जा रही हूँ।" भाई ने जवाब दिया—'तुम्हारा मित्र तरुण अमुक है ना ?" बीसवी सदी के मध्य म ही यदि यह देखा जा रहा है, तो आगे कहा तक पहुचेंगे, इसे कहना मुश्किल है।

किन्नर देश की यात्रा का विस्तृत वर्णन मैं "किन्नर देश मे" कर चुका हूँ, जो कि "हिमाचल प्रदेश" मे भी लिखा गया है इसलिए उन सब बातो को यहाँ दोहराना उचित नही। यहा सक्षेप मे ही कुछ वर्णन करना होगा। शिमला मे मैं ४ से १२ मई तक रहा। प्रो० लाजपतराय का मेह-मान होकर। वह पजाबी मुझे हमेशा ही खुले दिल के मेहमाननेवाज मालूम हुए। प्रो० नैय्यर मे ये गुण और भी अधिक थे। उनकी पत्नी भी हर तरह मुझे कोई तकलीफ न हो, इसका ध्यान रखती रही। यहा आकर इन्सुलिन को नियमपूर्वक लेना मैंने शुरू नही किया भोजन मे भी सयम नही कर पाया। आगे जाने की धुन थी। पैदल चलने की कभी-कभी हिम्मत करता था लेकिन चढाई म सांस फूलती देख कर घोडे की आवश्यकता थी। स्वतन्त्र भारत म अब २२ रियासतो को मिलाकर हिमाचल प्रदेश बना

दिया गया था, जिसके चीफ-कमिश्नर मेरे पुराने परिचित श्री एन० सी० मेहता थे। वैसे भी उनसे मिलता, किन्तु अब तो उनके प्रदेश म कई महीनो के लिए जा रहा था, इसलिए जरूरी था। टेलीफोन किया। मेहताजी अनुपस्थित थे, अपना नम्बर दे दिया, और सोचा यदि टेलीफोन आयेगा, तो मिलने चलेंगे। टेलीफोन आया, और ७ मई को हिमाचल सरकार के सचिवालय म उनसे मिलने गया। सचिवालय जिस इमारत मे था, उसका नाम हिमालयधाम रखा गया था। मेहताजी मिले और व्यस्त होने पर भी उसका प्रदर्शन नही किया। कुछ बातें हुई, उन्होने कहा, कि फल-उत्पादन और सडको का निर्माण यह सबसे पहले करना है। कनौर म अँगूर के बगीचे है जिसम जीप द्वारा वह आ सके, सडको का ऐसा बन्दोबस्त करना होगा। यह भी कहा, कि हम लोग लोक-कला की प्रदर्शनी मे एक मण्डली बाहर भेजना चाहते हैं, उसके लिए ध्यान रखेंगे। मेरे लिए सबसे बडा काम यह हुआ, कि उन्होंने रामपुर के उच्चाधिकारी को पत्र लिख दिया, कि घोडे, भारवाहक और डाक बँगला आदि का प्रबन्ध कर दें तथा ठाणेदार मे १३ तारीख को एक घोडा और दो कुली तैयार रह।

८ तारीख को मेरे दवली के साथी ठाकुर गोविन्दसिंह मिले। उनके साथ कनौर (स्पिलो) के ठाकुर गोपालचन्द नेगी भी थे, जो इलाहाबाद मे एल० एल० बी० के द्वितीय वर्ष के छात्र थे। तीसरे पुरुष शाग निवासी नेगी ठाकुरसेन बी० एस सी०, एल एल० बी० थे। नेगी ठाकुरसिंह कृषि के ग्रेजुएट थे, नौसेना मे चले गए थे, और अब हिमाचल के लिए कुछ करना चाहते थे। मालूम हुआ, कि चिनी का कमिश्नरी घर अब भी खाली पडा है, उसके एक भाग मे अस्पताल है। नेगीजी ने अपने परिचितो को कई चिटिठया लिख दी।

उसी दिन कालीबाडी मे गये। इसकी स्थापना १८१५ मे उसी समय हुई थी, जब कि हिमालय के भारतीय पहाडो को अंग्रेजो ने नेपालियो से छीना था। बगाली सबसे पहले पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क मे आये। उनके भी कुछ लोग आधुनिकता मे किसी समय सरपट दौडे, लेकिन वह समय बहुत

पहले बीत चुका। अब उनमे आधुनिकता, आधुनिक सज्जा वेष भूषा भी है, पर गम्भीरता के साथ।

शिमला घूम फिरकर देखा। उसके दूर के बँगलो मे भी गए। कुफरी मे वनभोज भी किया। १२ मई के सवा ५ बजे रेस्तराँ मे पजाब के मन्त्रिया ने चाय पार्टी दी, जिसमे डा० गोपीचन्द मुख्य म त्री तथा दूसरे मन्त्री भी आय। उसी दिन दोपहर को प० भगवतदत्तजी मिले। अब भी वह उसी तरह स्वाध्यायशील हैं, और आय समाज के वैसे ही पक्षपाती भी। कालिदास और समुद्रगुप्त का वह ईसवी सन् के आरम्भ मे ले जाना चाहते हैं और बुद्ध को ईसा पूव ७वी सदी मे। विचार भेद कितना ही हो किन्तु हमारा वैसा ही मधुर सम्बन्ध था जैसा १६१६ मे। ४२ वर्षो का उन पर कोई प्रभाव नही है यह जरूर इर्ष्या की बात थी। लाहौर मे वह शातिपूवक मौडल टौन म अपन घर मे रहा करते थे। निश्चिन्त जीवन था देश का बँटवारा हुआ। ६ अगस्त (१६४७) को परिवार सहित चले आय। कष्ट का जीवन है। घरबार नही। लड़का मध्य एसिया म्यूजियम मे काम कर रहा है पत्नी अमतसर के एक विद्यालय मे अध्यापिका हो गई थी, यही सन्ताप की बात है।

१३ मई को साढे ७ बजे बस से हम रवाना हुए। २६ मील पर नारकण्डा तक बस जाती थी, जा ६००० फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ से रामपुर ३२ मील था। लेकिन, हमारे लिए घोडा ठाणादार मे आने वाला था। सयोग से रामपुर हाई स्कूल के हैडमास्टर प० दौलतरामजी भी इसी बस से आय थे। सामान के लिऐ पाच रुपये मे खच्चर किया और स्वय ११ मील की यात्रा पैदल तय करने के लिए चल पडा। पहले घण्टे म रफ्तार चार मील रही फिर कुछ सुस्त, नवें मील के पास पहुँचन पर एक घोडा मिल गया। ठाणादार म डाक बँगले मे ठहर। तिब्बत मे भारतीय प्रतिनिधि श्री देवीदासजी स्टाक के पुत्र, श्री प्रीतमसिह और पुराने परिचित डा० भगवानसिह बाघ मिले। बिल्कुल अपना मे आ गये। रामपुर से आये घोडे खच्चर मौजूद थ।

अगले दिन ६ बजे चलने से पहले रायसाहब देवदासजी परौठे और फल लेकर आये। रात को पेट ठीक नही था, इसलिये आज उपवास करन की सोची थी। फल ले लिये। नौला और निरत होते शाम होने से पहले ही रामपुर पहुँच गये। डाकबँगला नगर से दूर था। हमने बडी प्रसन्नता से स्वीकार किया जब यहा के उच्चाधिकारी सरदार साहब ने अपने बँगले म रहने के लिए कहा। वे कबटा म रेवेन्यू अफसर थे। घर उजडने के बाद इधर चले आये। और अब इस काम पर थे। रास्ते म एक जगह घाडे ने पत्थर से गिरा दिया, चार जगह घाव हो गया। इन्सुलिन लेना जरूरी था। हमारे मेजवान सूई देने म दक्ष निकले। १५ १६ को रामपुर म ही बिताया। रास्ते के लिए कुछ चीजें खरीदी, चिनी के बारे मे कुछ जानकारी प्राप्त की। रामपुर का राजा अभी लडका था, राजमाता दुखी थीं। इस दिन क लिए कभी सोचा नही था। अब उनकी कोई पूछ नही थी। राजा के घोडे और खच्चरो को भी सरकारी बनाया जा रहा था। तोशाखाने मे लाखा आभूषण रह होगे, लेकिन सब पर लगाकर उड गए, जो दो चार हजार क थे उन्ह रानी को दे देने मे क्या आपत्ति थी? बेचारी अपने दुखा का वर्णन करते अपने को रोक नही सकी और उसकी आखो मे आसू आ गय।

१७ तारीख को सवेरे साढे ६ बजे आगे के लिए रवाना हुए। सामान के लिए दो सरकारी खच्चर मिले थे। सवारी के घोडे की पीठ कटी थी, यह एक मील जाने पर मालूम हुआ, उसे लौटा दिया। नौ मील पर गौरा के डाकबँगले मे दोपहर के लिए ठहर गये। मार्च मे अखबारो मे रामपुर-बुशहर मे प्रजा क विद्रोह के बारे मे पढा था। गौरा का डाकबँगला भी उस समय विद्रोह का एक मुख्य स्थान था। मास्टर अनूलाल और प० सत्यदेव प्रजा के नेता थे। रियासत वाले अपनी पुरानी चाल चलना चाहते थे। सराहन म अनूलाल को गिरफ्तार करके गौरा के डाकबँगले मे लाया गया। गिरफ्तार करनेवाली पुलिस स्वय गिरफ्तार हो गई। अगले रियासत के जज, पुलिस के अफसर तथा दजन से अधिक सिपाहियो ने गोली चलाकर काम बनाना चाहा, लेकिन उन्ह आत्मसमर्पण करना पडा। कितने ही दिनो तक

रामपुर में प्रजा का राज्य रहा। मास्टर अनुलाल और प० सत्यदेवके नेतृत्व ही के कारण लूट पाट नहीं हुई। अन्त में भारत सरकार ने पुलिस भेजी और बिना गोली चलाये ही शान्ति स्थापित हो गई।

आज २१ मील चलकर शिमला से ११वें मील पर अवस्थित सराहन के डाकबँगले में पहुचे। सारी यात्रा पैदल हुई थी, इसलिये थकावट थी और अन्त की तीन चार मील की चढाई तो बहुत ही कठिन मालूम हुई। बगले पर पहुँचते पहुँचते चूर-चूर हो गये थे। अध्यापक सोहनलालजी को पहले ही नेगीजी की चिट्ठी मिल चुकी थी। उन्होंने आराम का सारा प्रबन्ध किया, और २० रुपये पर अगले पड़ाव के लिए एक घोडा भी कर दिया।

साईस दौलतराम को पहले ही रवाना कर दिया। घोडा देखने में बडा रोबदार और मजबूत था। हमने सोचा था, यह चलने में हवा से बातें करेगा, पर वह वैसा साबित नहीं हुआ। शालिङग नाला पार कर मैं एक दूकान में बैठा था। पास के खेत में खम्बा लोगो का तम्बू पडा हुआ था। खम्बा तिब्बती खानाबदोश हैं जो जाडा में मानसरोवर प्रदेश और गर्मियों में दिल्ली और दूसरे भारत के शहरों में घूमा करते हैं। तिब्बती में बात करने पर मेरी ओर उसका आकर्षण हुआ। उसने चाय पीने के लिए बुलाया। चाय पीने से भी बढकर मुझे तिब्बत और खम्बा लोगो के बारे में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा थी। तरुण का बौद्ध धर्म में अनुराग था, ब्राह्मण धर्म को वह झूठा धर्म समझता था। उसकी जानकारी काफी थी। उसने कम्युनिस्ट पार्टी का भी नाम सुना था, शायद यह मालूम नहीं था, कि दो साल बाद तिब्बत में कम्युनिस्ट पार्टी की दुन्दुभि बजने लगेगी। वह चाहता था, भोट में भी गरीबों का शोषण बन्द होना चाहिये। उस दिन २३ मील चलकर साढे ५ बजे नचार पहुँच गए। चारों ओर देवदारों के सघन वन की छटा थी। इधर के जगलो के कजरवेंटर का कार्यालय यहीं रहता है। कजर्वेटर ढिलन साहब जालन्धर के रहने वाले थे। चाय पिलाकर उन्होंने अपना साग सब्जियों का बाग दिखलाया। अभी फल कोई नहीं तयार था। नेगी ठाकुरसिंह ने चिट्ठी यहाँ भी लिख दी थी, और बाबू

अमीचन्द ने बडी मदद की। सवेरे की चाय ढिलन साहब के यहा थी, फिर पगी के बाबू अमीचन्द साथ-साथ चले। अगला डाकबँगला वगपू मे था जिसके जरा ही नीचे सतलुज को पार करने के लिए लोहे का पुल था। रास्ता उतराई का था, इसलिये घोडा रहने पर भी उसका कोई काम नही था। डाकबँगले पर ९ बजे ही पहुँच गये। सडक के इन्सपक्टर श्री लक्ष्मीनद बडे प्रेम से मिले। चार घण्टा विश्राम करने के बाद अब वह साथी बन गए। उन्होने अपना घोडा और एक आदमी रोगी तक के लिए दे दिया। बॅंगतू पुल सवा पाच हजार फुट की ऊँचाई पर है। हम कितनी सद जगह मे थे यह आसानी से मालूम हो सकता है। आगे कुछ दूर सतलुज को सीधा रोक देने वाला पहाड आ गया। इसको तोडने मे सतलुज का लाखो वर्ष लग होगे। पानी का रास्ता तो निकल आया, लेकिन बादलो का रास्ता उतना खुला नही है। चार मील जाने पर बाबू लक्ष्मीनन्द को छोड दिया। कुछ दूर समतल-सी जगह मे चलने के बाद तीन मील की कडी चढाई आई। घोडी देखने मे कमजोर मालूम होती थी लेकिन उसने पार कर दिया। १२८वे मील पर उरनी के डाकबगले मे विश्राम किया। यहाँ वालो को स्कूल का अभाव बहुत खटकता था। हमने उनकी ओर से एक दरख्वास्त लिख दी। अब हम ठेठ किन्नर देश मे थे। आजकल यहाँ का जीवन कितना महँगा था यह इसीसे मालूम हो जाएगा, कि दोनो खच्चरो के रात को खाने के लिये ६ रुपये की घास खरीदनी पडी, आटा सवा रुपया सेर था, जो भी सुलभ नही था।

२० मई को जलपान करके सवेरे रवाना हुए। जहा-तहा चढाई पर घोडे की सवारी करते, अधिकतर पैदल चलते रोगी पहुँचे। रोगी से चार मील पहले जाडे मे वर्फ के सैलाव ने बुरी तरह से सडक को तोड दिया था। बेरास्ते दीवार-सी खडी चढाई पर चढना पडा। यदि उतराई होती, तो मेरी तो हिम्मत नही होती, लुढक जाने का डर था। रोगी मे नेगी सतोखदास से मुलाकात हुई। सैलाव ने डाकबगले को तोड मरोडकर बहुत दूर फेंक दिया था। जगल विभाग की मुस्तैदी के कारण यहाँ बहुत जगह

पर अच्छे देवदार वन लग गये है, और वनो की रक्षा भी हुई हैं। रागी गाव मे सेव, खुबानी, अखरोट, अगूर के बहुत से बाग हैं। यहा का काला छोटा अगूर शताब्दियो से मशहूर रहा है। प्राचीनकाल म कनौज के राजाओ का भी यहा से लाल शराब जाती होगी। गुर्जर प्रतिहारो क समय किन्नर देश अवश्य कान्यकुब्ज साम्राज्य के भीतर था।

चिनी—उसी दिन ५ बजे चिनी पहुँचकर जगलात के डाकबँगले म ठहरे। कितने ही दिनो की इकट्ठा डाक मिली। उसीके पारायण म बहुत सा समय लग गया। अब ७ अगस्त तक के लिए चिनी घर हो गया। गाव मे ६० के करीब घर है। मिडिल स्कूल है, जिसके प्रधानाध्यापक पोस्ट-मास्टर भी है। यहा तहसील भी है, तहसीलदार और स्कूल के अध्यापक लोगो से परिचय हुआ। वे हर तरह से मेरी सहायता करने के लिए तैयार थे। अब मुझे मालूम हुआ, खान पान का प्रबन्ध अपने जिम्मे लेना बडे सिरदद का कारण होगा। यह चिन्ता दूर होगई, जब अगले दिन पुण्यसागर साथ रहने के लिए अकस्मात् आ गये। वह किन्नर है। किन्नर लोगो मे अधिकाश लोग बौद्ध हैं। वे साधु होकर अब सोनम ग्येन्छो थे, जिसका ही अनुवाद मैंने पुण्यसागर किया। वह छठे दर्जे तक पढे थे, लेकिन पढाई उर्दू म की थी। यदि हिन्दी मे होती तो हम दोनो को ज्यादा फायदा रहता। फिर भी मेरे साथ रहते रहते वे हिन्दी काफी पढने लग गये। भोजन के बारे मे अब मैं निश्चिन्त रह सकता था। उस समय साग सब्जी का बडा अभाव था, लेकिन खाने की चीजे दूकान से मिल सकती थीं। कुछ चीजो की दिक्कत जरूर थी, लेकिन भूखे रहने की नौबत नहीं थी।

२१ मई को दोपहर बाद स्कूल म गए। यह बस्ती म सबसे ऊँची जगह पर अवस्थित है, जहा किसी समय चीनी ठकरस (ठाकुर) का दुर्ग था। अनगढ पत्थरो की दीवारें बनी थीं। दीवारो का पता नहीं है, पत्थर जरूर मिलते हैं और मिट्टी मे ढँके हुए। पुराने अवशेष के भीतर क्या छिपा है, यह जानने की इच्छा प्रबल होना स्वाभाविक है। पर जिज्ञासा की पूर्ति तनी आसान नहीं है। बहुत पीछे मैंने रहस्य जानने की कोशिश की, औ

जहाँ-तहाँ कुछ खुदवाया, पर उसमें पत्थर और जली लकड़ी मिली। यह दुर्ग वैसा ही रहा होगा, जैसा यहाँ ल्बरंग और कामरू में अर्थात् बहुत कुछ वर्गाकार २०-२५ हाथ लम्बी चौड़ी तथा छ मंजिला सत मंजिला इमारत, जिसमें लकड़ी का भी कुछ कुछ उपयोग है। धातु में लोहे का सिर्फ एक बान का फल मिला। दुर्ग की एक तरफ चीनी गाँव है और दूसरी तरफ कुछ नीचे हट कर तहसील और दूसरी सरकारी इमारतें। दुर्ग की एक ओर पहाड़ के लिए असाधारण काफी लम्बा चौड़ा एक खेत है जो किसी के देवता का है। स्कूल में डेढ़ सौ के करीब लड़के पढ़ते थे। दूर दूर गाँवों के लड़के गरीबी के कारण तब तक यहाँ पढ़ने के लिए नहीं आ सकते, जब तक कि उन्हें आर्थिक सहायता न मिले। खुला और ऊँचा होने से यह स्थान सर्द है इसलिए नीचे अपेक्षाकृत कुछ गरम जगह में जाने वाला था। डाकखाने के एक बार साढ़े सात सौ रुपये से अधिक जमा नहीं किया जा सकता, इसलिए दो बार में रुपयों को जमा किया।

जंगलात के डाक बंगले में हम रह सकते थे, किन्तु वह मुख्यतः जंगलात के अफसरों के लिए है, इसलिए हम किसी दूसरी जगह रहना चाहते थे। रेंजर श्री देवदत्त शर्मा अमृतसर के निवासी तरुण और मिलनसार थे, वह अपनी नवपरिणीता पत्नी और बहिन के साथ बँगले के पास के क्वार्टर में रहते थे। हमारे यहाँ पैसा देने वाले अतिथि के रखने का इंतजाम नहीं, स्वतन्त्र प्रबन्ध करना तो आवश्यक था। वहाँ से कुछ फर्लांग हट कर सड़क के ऊपर मिश्नरियों के मकान को देखने गए। सामने की इमारत अस्पताल के लिए थी, जिसमें वर्षों से कोई डाक्टर नहीं था, और कम्पाउंडर ठाकुरसिंह ही डाक्टर का काम करते थे। सबसे पीछे की कोठरियों में ठाकुरसिंह का परिवार रहता था, और बीच में अच्छे खासे तीन चार कमरों की एक इमारत खाली पड़ी थी। इसी को हमने पसन्द किया। अगले दिन सामान लाने में आदमियों के मिलने में दिक्कत हुई, संयोग से वैशाख पूर्णिमा को बुद्ध पूजा के लिए बहुत सी साधुनियाँ जमा हुई थीं, उन्होंने खुशी से सामान मिश्नरी बँगले में पहुँचा दिया। किसी समय वहाँ जर्मन

रहते थे, फिर साल्वेशन आर्मी वाले आये। उस समय यहा का फला और फूला का बाग बडी अच्छी हालत मे था। माली अब भी था, किन्तु बाग को कोई देखने वाला नही था। वृक्षा मे गाला नही। १९२६ मे मैंने यहा गूज-बरी खोई थी, जो अब उच्छिन्न हो गई थी। नासपाती हालैण्ड से मँगाकर लगाई गई थी, अब भी उसम बडे बडे फल आते हैं। कितने शौक से इस बगीचे का लगाया गया होगा, किन्तु अब यह बिल्कुल खतम हो रहा था।

२२ मई को तहसीलदार मँगतराम दौरे पर से लौटे। पुराने सेब, खूबानी और अखराटो के साथ कुछ साग भी ले आये। रियासत के नौकर थे, घब राये हुए थे कि अब नई सरकार रखेगी या नही। चीफ-कमिश्नर की सिफारिशी चिट्ठी आ गई थी इसलिए चाहते थे कि उनके बारे मे मैं सिफा-रिश करूँ। मैंने कहा, कि सबसे बडी सिफारिश यह होगी, कि यहा के फला खनिज सम्पत्ति दस्तकारी आदि के बारे मे पूरी जानकारी पैदा करके चीफ कमिश्नर साहब के पास भेजें।

पुण्यसागर के आने से मेरी तीन चौथाई चिन्ता दूर हो गई। यह बिल्कुल सयाग था जो वह आ गये। मेरा उनसे पहले का परिचय नही था, लेकिन नाम शायद वह जानते थे। स्वास्थ्य की ओर ख्याल पहले गया। २३ मई को मूत्र परीक्षा की, तो मालूम हुआ, चीनी थोडी है। पानमेलिटेस की गालिया खाते रहे, इन्सुलिन की सूई लेने को आगे पर छोड दिया। दूध और घी की पहाड म आशा की जा सकती थी लेकिन वे भी यहा दुर्लभ थे। सर्दी एक कम्बल और एक अण्डी से अधिक की नहीं थी। २४ मई से हमने दो घटा घूमना शुरू कर दिया।

चिनी म डाक हर दूसरे दिन आती थी किन्तु रास्ता खराब होने तथा कुप्रबन्ध के कारण उसका समय निश्चित नहीं था।

अब चिनी म आशा रखते थे मधुर स्वप्न' को लिख डालेंगे, लेकिन उसका समय साल भर बाद आने वाला था। हां उसकी सामग्री पढते रहे। कनौर के लोक-गीतो की ओर भी ध्यान गया। वे अधिकतर प्रेम, सौन्दर्य, सम्पत्ति, अद्भुत काय या देवता आदि के बारे म होते हैं और हर जगह के

लोक गीतों की तरह इनकी आयु भी ज्यादा नहीं होती। एक बार तूफान की तरह वे निकल कर सारे किन्नर देश को गुंजा देते हैं, फिर दूर जाते शब्द की तरह क्षीण होते-नष्ट हो जाते है। शायद देवताओ के गीतो की आयु ज्यादा होती है। मैंने वहा रहते कितने ही गीत जमा किए। जो 'किन्नर देश मे' छपे हैं। यहाँ रहते भिन्न भिन्न तरह के लोग मिलने आते थे। चम्बा निवासी नेपाली रामानन्द के शिष्य परमानन्द चेतन चार पाच वर्ष से किन्नर देश मे डटे थे। फक्कड, पहाडो म खूब घूमे थे। घूमते घामते यहाँ पहुँचे, और किन्नरियों के फेर मे पड़ गए। अब सम्मान भी नही रहा है, लेकिन किन्नर मे सुरा बहुत सुलभ, उन्हें तो बिना दाम के मिल जाती थी। इसलिए सुरा सुन्दरी छोड़ें तभी तो किन्नर देश से निकलें। परमानन्द चेतन कश्मीर से नेपाल तक के पहाड़ो की छान चुके हुए हैं। दस बारह हजार फुट की ऊँचाई उनके लिए कुछ नहीं है। दूसरे घुमक्कड अम्दो के मिले। वह एक युग तिब्बत म बिता चुके थे। अब तिब्बत और भारत उनके पैरों के नीचे था। ऊपर की यात्रा मे स्फू मे एक और मगोल भिक्षु मिले। तीस वर्ष पहले शायद कम्युनिस्ट क्रान्ति के कारण देश छोडकर वह ल्हासा के डेपुग मठ म आये। वहाँ कुछ दिन पढने लिखने के बाद फिर भारत और तिब्बत चक्कर म लग गय थे। इस चक्कर मे केवल घुमक्कडी की लालसा ही पूरी नही होती, बल्कि तीर्थयात्री होने से जीविका भी चलने लगती है। चौथे घुमक्कड नेपाली रगाचार्य थे, जो तोतादि के रामानुजी जगद्गुरु के शिष्य थे। वह पूर्वी नेपाल के धनकुटा मे पैदा हुए, फिर बर्मा जीविका की तलाश में पहुँचे। अन्त मे घुमक्कडी ने पीछा किया, और घूमते हुए मद्रास की तरफ जाकर रामानुजी साधु बने। वहाँ के कितने ही परिचित स्थानो के बारे मे बतलाते थे। वह आजकल अधिकतर मोने—कामरू—मे रहा करते थे, और लोग उन्हे मानेरोला कहा करते थे, जिसका अर्थ है मोने का फकीर। उनके पैर म हमेशा ही चक्कर बँधा रहता। बहुत बीहड मार्गों से वह एक दो नहीं पाँच पाँच बार कैलाश मानसरोवर गये। १९५३ म मैं काठमाण्डू गया, तो वहाँ भी किन्नर देश मे पहाड़ो को कूदते फाँदते पहुँचे थे। उनका

पाठशालाओं की धुन है। अधिकारी भी प्रसन्नता से सहायता करते हैं।

खाने की दिक्कत बिल्कुल दूर नहीं हुई थी, और सबसे ज्यादा दिक्कत थी साग और तेमनकी की। ९ जून तहसीलदार साहब ने कुछ सूखा मास भेज दिया, और पुण्यसागर ने होशियार गृहपत्नी की तरह थोड़ा थोड़ा करके दस दिन तक उसे चलाया। अब कुछ हरा साग मिलने लगा, फलों के मिलने में अभी एक महीने से ज्यादा की देर थी। सड़क इन्सपेक्टर बाबू लक्ष्मीनन्द ने घी भेजा, लेकिन दाम लेने से इन्कार किया। यह भी आफत थी। वैसे घी का खर्च भी ज्यादा नहीं था रोटी चुपड़ते नहीं थे, और तलने का काम तेल से भी चल जाता था। ३ जून की शाम का हलका सा ज्वर आया। पेट जब-तब गड़बड़ हो जाया करता था। मात्रा से भोजन करने की और बहुत ध्यान देने की जरूरत थी।

किसी जगह के पुराने स्थानों का पता लगाना हो, तो देश के जानकार आदमी से उन स्थानों के बारे में पूछे, जिनको पौराणिक कथाओं से सम्बन्ध जोड़ा गया हो। इधर पहाड़ में सभी प्राचीन स्थानों को पाण्डवों का अज्ञात निवास माना जाता है। ब्रह्मचारी परमानन्द ने उनके बारे में बतलाया कि सतलुज के इस पार हैं कोठी कश्मीर, रारंग लबरंग, कनम स्पू, डुबलिंग, टशीगंग, सामग, नाको और सतलुज पार मारंग, ठंगी चारंग और बस्पा उपत्यका में साग्ला और कामरू।

किन्नर देश के देवता न मिट्टी पत्थर के हैं, और न निष्क्रिय निर्जीव। वे विमानों पर ही सोते और विमानों पर ही टहलने के लिए निकलते हैं। विमान छोटी-सी खुली पालकी जैसा होता है जिसके भीतर से चार पाँच हाथ लम्बी भुज की सीधी बल्ली डाली जाती है जो स्प्रिंग की तरह कन्धार पर लचकती है। इसी विमान के बीच में लकड़ी की कमचियों से कुछ ऊँची सी जगह बना दी जाती है जिस पर रेशमी कपड़ा ढाक कर चाँदी या गंगा जमुनी चेहरे चिपका दिये जाते हैं। यही देवता है। गाँव के दुख-सुख और हरेक काम में देवता की राय लेना जरूरी है। देवता कभी किसी के सिर पर आ करके बातें करता है, कभी चिट्ठी डालने पर अपना निर्णय देता है, पर

सबमें अधिक वाहना क कन्धे पर चढकर विमान में हिलने के सकेत मे बात करता है। यदि विमान पूछने वाले क सामने की ओर घूमा तो उसका अर्थ हाँ है, यदि दूसरी ओर घुमा तो नही। यदि ऊपर-नीचे उछला तो बहुत अच्छा, और अत्यधिक उछला ता देवता नाराज है। चिनी के देवता का नाम नरेनस (नारायण) है। देवता काफी धनाढ्य होते हैं गाँव के सबसे अच्छा खेत उनका होता है। इसके अलावा वह जब चाहता है, तब नकद कर वसूल करता है। खुशी से दान-दक्षिणा जो मिलती है सो अलग। देवता के अपने समय-समय पर उत्सव हुआ करते है, जिनमे देवता की आमदनी पूडे-पूडी और दूसरे पकवानो को बनाकर प्रसाद बाटने म खर्च होती है। कभी कभी देवता वनभोज के लिए भी जाता है, उस समय दो वाहना के अतिरिक्त बाजे वाला और अभिवादको की पूरी पल्टन साथ साथ चलती है। चिनी म कोलियो (हरिजनो) का अपना अलग विष्णु मन्दिर है, जिसमे थम् रू (तिब्बती देवता, बुद्ध मूर्तियो) के होने की सभावना है, लेकिन वे कुछ सालो बाद भडार से निकाले जाते है। य धातु की मूर्तियाँ है, और पुरानी परिपाटी के अनुसार इन पर हस्तलेख भी होना चाहिए।

अडा यद्यपि अति सुलभ नही था, तो भी मिल जाता था। ४ जून को पतले दस्त आए, पेचिश का सन्देह हो गया। दस्त को कम करने के लिए चारपाई पर पड जाना आवश्यक मालूम हुआ। इस समय पुस्तक न पढकर जीवन पर ही दृष्टि पडने लगी—"जीवन निस्सार तो नही है, यद्यपि उसको आसमान पर नही उठाना चाहिए। जीवन पथ के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त ग्रन्थो की आवश्यकता है। और समानधर्मा लेखक के होने पर वे बडे सहायक हो सकते है। अतीत क्या सचमुच स्वप्न है ? नही, उसकी स्मृति सुखद होती है, हा, कभी-कभी दुखद भी होती है। यह बात स्वप्न क बारे मे नही है। और वर्तमान समय मे तो भागी जाती वस्तु ठोस चीज है। वैयक्तिक तौर से एक आदमी का मन कभी अवसाद मे पड जाता है, निराशा छा जाती है, किन्तु उससे सबके जीवन का मूल्याकन नही करना चाहिए। तरुणाइ मे आदमी के पास बहुत समय होता है, और बहुतायत के कारण

आदमी उसके खच म मितव्ययिता भी नही कर पाता। यदि करता, तो उसे और भा अनुभव हाता, और साहस यात्राएँ कर सकता। पर क्या यदि अपन अनुभव से कोई एक जीवन प्रयाग बना दे, ता दूसर उसका उपयोग करेंगे ही? पूरी तौर मे ता नहीं, तो भी उससे कुछ का कल्याण जरूर हागा। बाइस साल पहले मैं यहा एक-दो दिन रहा था। आज पहली आधा मास हो गया। मेरे भीतर क्या अन्तर है? उस समय एक तरह साहस यात्रा करने निकला था। कश्मीर के रास्ते ल्हाख गया था, फिर तिब्बत क पश्चिमी भाग मे घुमकर यहा आ निकला। अपरिचित देश था और भाषा भी अपरिचित थी। साधन एक तरह शरीर मात्र था। पर साथ ही तरुणाई की उमगें थी। आज भी उमगे कभी कभी उठती है फिर तुरन्त ख्याल आता है—पूरा करने के समय पर भी ध्यान रहे।"

अगले दिन (५ जून) भी लेटा रहा। मन लगाने के लिए बाइवल पढने लगा। मूसा की पाचो पुस्तकें (तौ रेत) और याशुआ की पुस्तक समाप्त कर डाली। यह यहूदी जाति का एक तरह का इतिहास है। यहूदी मसो पोतामिया से निकले, पहले फिलस्तीन गए फिर फिलस्तीन के विजेता मिस्रियो के हाथ म पडकर उनके देश म चरवाही करते रहे। याकूब का ही नाम इसराइल था जिसके कारण यहूदियो को बनीराइल कहत हैं। याकूब का ही पुत्र युसुफ मिस्र गया था। फिर उसके परिवार के लाग भी वहा पहुचे। न जाने कितनी पीढ़िया तक वहाँ सुख दुख भोगते रहे, लेकिन

करने लगेंगी। मूर्तियो और देवताओ को ध्वस करना वे पुण्य का काम समझते थे। इस बात को इस्लाम ने उन्ही से सीखा। मेरे लिए मूसा की पांचो पुस्तकें पढने मे और भी दिलचस्प थी, क्योकि उनमे यहूवा और उसके बैठन की आक किन्नर के देवता और देव (विमान) जसी ही मालूम होती थी। जब यहूवा यहूदी पैगम्बरो से बात करता, तो मुझे यहा के देवता का अपने ज्येष्ठ कर्मचारी मे बात करने की बात याद आती थी।

६ जून को पहले की तरह पाच मील टहलने गए। बहुत थकावट और कमजोरी मालूम हुई। पेट अब भी साफ नही था। दिन मे दही सत्तू खाया, और शाम को सत्तू का निरामिष सूप पिया। प्यास अधिक लगती थी यद्यपि पेशाब अधिक बार नही जाना पडता था, इसलिए पेशाब मे चीनी के अधिक होने का सन्देह नही था। ५५ से ऊपर का था, उसका प्रभाव होना ही चाहिए। यदि मधुमेह नही होता, तो किसी दूसरे रूप मे निर्बलता आती। पाचन शक्ति की कमी और पेट का साफ न होना भी शायद उसी का लक्षण हो। तो भी सयम रखना आवश्यक था, ताकि इस जीवन से अधिक से अधिक काम लिया जा सके। मैं अनुभव करने लगा, एक स्थायी सहयात्री अत्यावश्यक है जो लिखने का काम करे। आदमी तो मिल सकता है किन्तु स्थायी रहेगा, इसमे सन्देह है। साथ ही मधुमेह के लिए इन्सुलिन की सूई देनेवाला हो तो और अच्छा। ६ जून को लिखा था—"प्रतिवर्ष दो हजार पृष्ठ लिखने की योजना रहनी चाहिए। काम न हो, तो जीने का फल क्या।

चिनी मे रहते परिभाषा के काम की ओर ध्यान लगा रहता था। काफी दिनो बाद विद्यानिवास और माचवेजी की चिट्ठिया कलकत्ते से आईं। सुनीव बाबू ने हमारे कार्य की प्रशसा की और काम मे सहयोग देने के लिए चिट्ठी लिखी। 'शासन शब्दकोश" टाइप कर लिया गया था लेकिन प्रेस मे भेजने से पहले उसे एक बार देख लेना जरूरी था। इतने दूर दोनो को बुलाना आसान नही था, इसलिए सोचा कि जुलाई के अन्त मे काठगढ उतर चले। अभी गर्मी बहुत होगी, इसलिए नीचे उतरना ठीक नही है, वही बुला एक मास रहकर प्रेस-कापी का सशोधन कर डालें।

आदमी उसके खर्च मे मितव्ययिता भी नही कर पाता। यदि करता, तो उसे *और भी अनुभव होता, और साहस यात्राएँ कर सकता। पर क्या यदि अपने* अनुभव से कोई एक जीवन प्रयोग बना दे, तो दूसरे उसका उपयोग करेगे ही? पूरी तौर से तो नही, तो भी उससे कुछ का कल्याण जरूर होगा। बाइस साल पहले मैं यहा एक दो दिन रहा था। आज पहली आधा मास हो गया। मेरे भीतर क्या अन्तर है? उस समय एक तरह साहस यात्रा करने निकला था। कश्मीर के रास्ते लद्दाख गया था, फिर तिब्बत के पश्चिमी भाग मे घुमकर यहा आ निकला। अपरिचित देश था और भाषा भी अपरिचित थी। साधन एक तरह शरीर मात्र था। पर साथ ही तरुणाई की उमगे थी। आज भी उमगे कभी कभी उठती है फिर तुरत ख्याल आता है—पूरा करने के समय पर भी ध्यान दो।"

अगले दिन (५ जून) भी लेटा रहा। मन लगाने के लिए बाइबल पढ़ने लगा। मूसा की पाँचो पुस्तके (तौरेत) और योशुआ की पुस्तक समाप्त कर डाली। यह यहूदी जाति का एक तरह का इतिहास है। यहूदी मसोपातामिया से निकले, पहले फिलस्तीन गए, फिर फिलस्तीन के विजेता मिस्रियो के हाथ मे पड़कर उनके देश मे चरवाही करते रहे। याकूब का ही नाम इसराइल था, जिसके कारण यहूदियो को बनीइसराइल कहते है। याकूब का ही पुत्र युसुफ मिस्र गया था। फिर उसके परिवार के लोग भी वहा पहुचे। न जाने कितनी पीढिया तक वहा सुख दुख भोगते रहे, लेकिन वे सदा फिलस्तीन का स्वप्न देखते रहे। मूसा और उसके भाई हारून ने उन्हे निकालकर फिलस्तीन पहुँचाया। मूसा राजनीतिज्ञ था, योद्धा नही। योशुआ योद्धा था, जो यहूदियो का त्राणकर्ता बना। कबीलाशाही समाज था। युद्ध बराबर होते रहते थे। युद्ध मे स्त्रिया-बच्चो को मारने से भी वे बाज नही आते थे, खासतौर से वयस्क स्त्रियो को जरा भी दया दिखलाने के लिए तैयार नही थे। यहूदी मूर्ति पूजा के सख्त विरोधी थे। मूर्ति बनाने के लिए अधिक उन्नत सस्कृति की आवश्यकता है। उनको वयस्क स्त्रियो से सदा डर रहता था, कि वे यहोवा की पूजा छोड़कर मूर्तियो की पूजा

करने लगेगी। मूर्तियो और देवताओ का ध्वंस करना व पुण्य का काम समझते थे। इस बात को इस्लाम ने उन्ही से सीखा। मेरे लिए मूसा की पाँचो पुस्तकें पढने मे और भी दिलचस्प थी, क्योकि उनमे यहूवा और उसके बैठन की आक किन्नर के देवता और देव (विमान) जैसी ही मालूम होती थी। जब यहूवा यहूदी पैगम्बरो से बात करता, तो मुझे यहाँ के देवता का अपने ज्येष्ठ कर्मचारी से बात करने की बात याद आती थी।

६ जून को पहले की तरह पाँच मील टहलने गए। बहुत थकावट और कमजोरी मालूम हुई। पेट अब भी साफ नही था। दिन मे दही सत्तू खाया, और शाम को सत्तू या निरामिष सूप पिया। प्यास अधिक लगती थी, यद्यपि पेशाब अधिक बार नही जाना पड़ता था, इसलिए पेशाब मे चीनी के अधिक होने का सन्देह नही था। ५८ से ऊपर का था, उसका प्रभाव होना ही चाहिए। यदि मधुमेह नही होता, तो किसी दूसरे रूप मे निर्बलता आती। पाचन शक्ति की कमी और पेट का साफ न होना भी शायद उसी का लक्षण हो। तो भी सयम रखना आवश्यक था ताकि इस जीवन मे अधिक से अधिक काम लिया जा सके। मैं अनुभव करने लगा, एक स्थायी सहयात्री अत्यावश्यक है, जो लिखने का काम करे। आदमी तो मिल सकता है किन्तु स्थायी रहेगा, इसमे सन्देह है। साथ ही मधुमेह के लिए इन्सुलिन की सूई देनेवाला हो, तो और अच्छा। ६ जून को लिखा था—"प्रतिवर्ष दो हजार पृष्ठ लिखने की योजना रहनी चाहिए। काम न हो, तो जीने का फल क्या।

चिनी मे रहते परिभाषा के काम की ओर ध्यान लगा रहता था। काफी दिनो बाद विद्यानिवास और माचवेजी की चिट्ठियाँ कलकत्ते से आईं। सुनीत बाबू ने हमारे कार्य की प्रशसा की और काम मे सहयोग देने के लिए चिट्ठी लिखी। "शासन शब्दकोश" टाइप कर लिया गया था, लेकिन प्रेस मे भेजने से पहले उसे एक बार देख लेना जरूरी था। इतने दूर दोनो को बुलाना आसान नही था, इसलिए सोचा, कि जुलाई के अन्त मे कोटगढ उतर चलें। अभी गर्मी बहुत होगी, इसलिए नीचे उतरना ठीक नही है, वही कुल्लू एक मास रहकर प्रेस-कापी का सशोधन कर डालें।

# १०

# तिब्बत के सीमांत पर

किन्नर देश में वर्षा के बहुत कम होने से यात्रा करने में कोई कठिनाई नहीं थी। हमने किन्नर के छोर पर अवस्थित भारत के अंतिम गांव नमग्या तक की यात्रा को कर लेना अच्छा समझा। १२ जून को यात्रा के लिए आवश्यक सामान को पुण्यसागर बांधने लगे। तहसीलदार के एक चपरासी ने साथ दिया, और उसके लिए ऐसे आदमी को चुना, जो रास्ते में आदमी और घोड़े का प्रबन्ध आसानी से कर सके। १३ तारीख को सवेरे अभी पेट में कुछ गड़बड़ी थी ही, इसलिए थोड़ा दही खाकर चल पड़े। यहां से घोड़ा नहीं लिया, क्योंकि अगला पड़ाव पगी छ ही मील पर था, जो हमारे राजाना के टहलने से एक ही मील दूर था। दो भारवाहक सामान लेकर चले। प्राय: समतल तिब्बत हिन्दुस्तान सड़क थी जो शिमला से तिब्बत की सीमा तक जाती थी। अंग्रेजों ने इसे पश्चिमी तिब्बत पर हाथ साफ करने की नियत से बनवाया था, और इसीलिए इधर की सीमा को अपने नक्शों में अनिश्चित रखा था। सड़क हरे भरे जंगलों से जा रही थी, जिनमें देवदार और नेवजा (चिलगोजा) के दरख्त थे। देवदार की बाहरी छाल सूखी पपड़ी-जैसी होती है और नेवजा की हरी। पेड़, डालियां और पत्ते दोनों के सुन्दर होते हैं पत्तियां बारहो महीने हरी रहती हैं। छाल के सौंदर्य में नेवजा बढ़कर है। नेवजा के ही फलों में से चिलगोजा निकलता है, इस

प्रकार यह यहाँ अधिक मूल्यवान समझा जाए, तो कोई आश्चर्य नहीं।

पगी शिमला से १४४ मील ६ फर्लांग पर है। अंत में ही थोड़ी सी चढ़ाई मिली। थोड़ा विश्राम करके फिर आदमी लिए। आदमी को मजूरी दो आना प्रतिमील नियत है, अगले पड़ाव रारंग तक १२ आना देना चाहिए था, लेकिन मैंने एक एक रुपया दिया। घोड़ेवाला ८ मील के लिए ४ रुपया माँगता था। और दया जतलाते एक रुपया छोड़ने को कहा। मैंने घोड़ा नहीं लिया। सिर्फ एक जगह अधिक चढ़ाई थी, नहीं तो समतल सी ही जमीन थी। आज १४ मील पैदल चला था इसलिए रारंग पहुँचते पहुँचते थक गया। पगी और रारंग दोनों गावों के लोग पानी पानी पुकार रहे थे, और पास के खड्डों में बहुत-सा पानी बेकार बह रहा था। दूर से नहर द्वारा पानी लाना उनके बस की बात नहीं थी।

१४ जून को गाव के भीतर मन्दिरों को देखने गए। वैसे चिनी में भी बौद्ध धर्म का प्रभाव है, लेकिन रारंग तो बिल्कुल बौद्ध गाँव है। एक मन्दिर में चौरासी सिद्धों के चित्र दीवार पर हाल में अंकित चित्र थे। कुछ देर में घोड़ा भी आ गया और उसपर सवार होकर जंगी चले, जो यहा से ७ मील के करीब थी। जंगी बहुत पुरानी बस्ती है, गाव भी बड़ा है। सामने सतलज पार मोरंग गाँव है वहा का "पाण्डवो" का किला दिखलाई दे रहा था, जो एक छोटी टकरी पर था। कनौर में कई भाषाएँ बोली जाती है, यहाँ की भाषा भिन्न थी, लेकिन चिनी में बोली जानेवाली हमस्कद भाषा सब जगह चलती है।

लिप्पा (८६०० फुट)—लिप्पा सड़क से कुछ हटकर है लेकिन हमने उसके बारेमें जो बातें सुनी थी, इसके कारण वहा जाना आवश्यक जान पड़ा। घोड़े और दो भारवाहक मिल गए। तीन मील हिन्दुस्तान तिब्बत सड़क से चले, फिर बाईं ओर का रास्ता लिया। चढ़ाई पहले दो मील की आई, और मार्ग भी कठिन था। सबसे बुरी बात तब होती थी, जब तीखी ढलुआ धरती पर जाना पड़ता था, डर लगता था, कि पैर फिसला और न जाने कहाँ पहुँचे। पर्वत की यात्रा वही अच्छी तरह कर सकते हैं, जो पड़ पर

अच्छा चढना जानते हैं और जिनका शरीर हल्का है। इन दोनों कमियो के साथ साथ अब आयु का बोझ भी मेरे ऊपर था। खर, जब चल पडा, तो पीछे लौटना तो नही हो सकता था। आखिर पहाड की, एक बाही पर पहुँचे, जहा से सामने लिप्पा का बडा गाव दिखलाई पड रहा था। जगलात का क्वाटर पीछे छूटा, लकडी के पुल से एक नदी पार की, जो अपेक्षाकृत बडी थी। फिर छोटी धार के पुल पर से गुजरे। यहाँ बहुत सी पनचक्किया लगी थी। देवराम ज्योतिषी लिप्पा के रहनेवाले थे, जिनका पचाग लद्दाख और तिब्बत तक चलता है। उनके लडके सोनम डुबग्ये अगवानी के लिए आए, और अपने साथ गुम्बा (विहार) में ले गए, जिस कि उनके बाप ने बनवाया था। चढाई कठिन थी, पर मैं घोडे पर चढकर गया। गुम्बा गाव के ऊपर बीच म है, जिसके ऊपर भी घर है। एक बडी शाला म आसन लगा, जिसमे मैत्रेय (भावी बुद्ध) की मूर्ति थी। पहिले बडी प्रसन्नता हुई, जो पछतावे मे बदल गई, जब रात को पिस्सुआ ने नीद हराम कर दी। सारनाथ मन्दिर की दीवारो पर जापानी चित्रकारो ने बुद्ध के जीवन-सम्बन्धी चित्र बनाये थे जिनके कार्ड सुलभ थे। उन्ही को देखकर लदाखी चित्रकार ने यहा की दीवारो को चित्रित किया था, जो बुरा नही था। ल्हासा का कजूर ग्रथ सग्रह रखा हुआ था, और तेरगी का बृहत्सग्रह तजूर आजकल रास्ते म था। नीचे गाव से बाहर एक और भी कजूरशाला थी, जिसमे कजूर की पोथिया रखी हुई थी। उस दिन विशेष उत्सव था। पहले पुस्तको की पीठ पर रखे स्त्री-पुरुषो ने जलूस निकाला, और अन्त मे कजूर-शाला के पास नर नारी नृत्य करने लगे। मन्दिर से शराब को सदाव्रत बँट रही थी। नाचना क्या हाथ म हाथ मिलाये टहलना था। एक ओर स्त्रिया की पाती थी और दूसरी ओर पुरुषो की।

१६ जून का भी मैं लिप्पा मे रहा। कन्नौर के सबसे धनी बशीलालजी लिप्पा के रहनेवाले यहा के जेलदार थे। कुछ पीढिया से उनके घर मे कनौर के बाहर की पहाडी स्त्रियो से ब्याह करने का रवाज था, क्योकि व उच्च-कुलीना समझी जाती थी लोक-नृत्य म वे भी कल शामिल हुई थी। उप-

त्यका के देखने से मालूम होता, कि पहले यहा बस्ती अधिक थी, बहुत पुराने खेतो के निशान मिलते थे, सामने पश्चिमवाली ढाल मे देवदार के जडो के ठुठे मिलते है, अब वह ढलान बिल्कुल नगी है। ऊपर एक किला है, जिसम ओखल के पत्थर पाये जाते हैं, चावल कूटने ही के काम नही आती, बल्कि किसी समय उसीसे आटा पीसा जाता था। इसी तरफ से जाने पर चार दिन म आदमी स्पिती पहुच सकता है। पुराने जमाने मे स्पितीवाले और मौका पडने पर यहा वाले भी लूटमार करने जाया करते थे—एक दिन के रास्ते पर असरँग मे पनचक्की के पत्थर मिलते है। आक्रमणकारियो के आने की सूचना जगह जगह आग जलाकर दी जाती थी। पूछने पर पता लगा, कि यहा पर भी खछेरोम्खग—(मुसलमानी कब्रें)मिलती है। यहा के लोग यह भूल गये है, कि मुसलमान ही नही, बल्कि कभी उनके पूर्वज भी मुर्दों का कब्रो मे गाडा करत थ। पुराने मकानो की अनगढ पत्थरो की दीवारे भी कभी-कभी निकल आती थी। गुम्बा बनाते वक्त तीन मिटटी के बरतन निकले थे। आजकल लिप्पा म न मिटटी के बरतन बनते है, न उनका व्यवहार होता है। आठ साल पहले नम्बरदार के कोठे पर देवता की कोठरी म असावधानी से आग लग गई, फलस्वरूप सारा गाव नष्ट हो गया। इन पुराने गाँवो म प्राचीन काल की कितनी वस्तुएँ मिल सकती थी, लेकिन मकानो मे लकडी की बहुतायत होने से ऐसी आग जब-तब लग ही जाती है। फिर से मकान बनाने के लिए पजीराम ने खेत मे नीव खोदनी शुरू की। वहाँ मृतकघर निकल आया। पहले दीवार मालूम हुई। खजाने के लोभ से खोदने पर घर निकल आया, जिसकी दीवार म नीचे उतरने के लिए पत्थर की खुडिडयाँ थी। घर ऊपर से पत्थर से ढँका था। मेरी उत्सुकता वढ गई जब मालूम हुआ कि हाल ही म पानी की कूप बनाते वक्त एक कब्र मे नरकपाल निकला था। कपाल पानी पडने से बहुत कुछ गल गया था खोपडी भी टूटी हुई थी, लेकिन वह दीर्घकपाल थी, अर्थात् आज के लोगों की तरह आयत कपाल नही। क्या यहाँ खस लोग रहते थे ? कनौर लोग अपने को खोसिया भी कहते हैं, पर इनकी भाषा किरात वश की है। उसी

जिसकी भाषा के अवशेष चम्बा से आसाम के नागाओं तक के सारे हिमालय मे मिलते है, और जिसे विद्वान् मान रूमेर कहते है। कब्र मे कोई चीज नहीं मिली। मैं नए खडे मकान की ओर चलने की सोचने लगा। उस समय मकान मालिक एक कासे का अधगोल कटोरा और एक मिट्टी का कुतुप ले आया जो उसी कब्र मे मिले थे। शायद कोई जेवर भी रहा हो, लेकिन पजीराम उससे इन्कार करते थे। कटोरा जर्जर हो गया था, और कुतुप का मुह इतना सँकरा था, कि मेरा अँगूठा भी उसमे नही जा सकता था। इसमे शराब रख और कटोरे मे भोजन रखकर मुर्दे के साथ गाडा गया था, इसमे सन्देह नही।

१७ जून को प्रातराश जेलदार वशीलाल के यहा किया। चार भाइयो मे एक भाई मर गया। वशीलालजी स्वय सातवें दर्जे तक पढे हुए हैं। मझला भाई आठवें दर्जे तक पढकर घर का काम कर रहा था, सबसे छोटा रामपुर के हाई स्कूल मे नवें दर्जे मे पढ रहा था। लक्ष्मी के साथ सरस्वती की भी आराधना करना यह घर चाहता है यह इसी का प्रमाण था। मा के कानो हाथ-गले सोने से पीले हो रहे थे। वह भी कोची (नीचे की पहाडी) और बहू भी कोची थी। इनका घर बहुत पुराना है, लेकिन रात को ऐसे समय आग प्रचण्ड हुई, कि कागज-पत्र मूर्तिया और पोथिया तक जल गइ, किसी तरह लोग अपना प्राण लेकर भागने मे सफल हुए।

कनम्—लिप्पा स कनम् की ओर चले। जो आठ-नौ मील से अधिक दूर नहीं है, लेकिन चढाई बहुत सख्त है। कही कही सीढिया हैं, जिन पर घोडे पर चढकर नहीं चला जा सकता इसलिए बहुत कुछ पैदल ही चलना पडा। उतराई भी इतनी कडी थी, कि घोडे का इस्तेमाल नहीं हो सका। डाडे पर पहुँच कर वहा से लबरग और कनम् के गाव दिखलाई दे रहे थे, लेकिन वह काफी दूर थे। उतराई ही उतराई थी। अभी देवदार थे, लेकिन उतने घन नहीं थे। लबरग का अर्थ है गुरु या लामा का महल। सात मजिला २० हाथ चौडा २५ हाथ लम्बा यहा का दुर्ग तो किसी ठाकुर का महल बतलाया जाता है। दीवार मे छिने पत्थरो और लकडी

की सुन्दर जोड़ाई, भीतर बैठकर तीर मारने के लिए छेद बने हुए थे। ऊपर की मंजिल गिर रही थी। लोगों का यहां के ठाकुर की बहुत क्षीण स्मृति है। मध्य काल में लूट पाट करने के लिए तिब्बतियों और कन्नौरों में होड़ लगी रहती थी। उस समय आवश्यकता पड़ने पर लोग इस दुर्ग में शरण लेते थे।

दुर्ग के पास ही सक्कनशू देवमन्दिर है जो पत्थर का बना है। ओपन्न सिंह का खानदान बहुत पुराना है, लेकिन अब निस्सन्तान है। कन्नौर में पांडव विवाह का रवाज है जिसके कारण जनसंख्या बढ़ने नहीं पाती और लड़ाई या निस्सन्तानता से उसके घटने की संभावना रहती है। लबरंग में ६५ परिवार थे, पहले इससे अधिक रहे होंगे। प्रायः दो मील उतर कर हम सड़क मिल गई, और फिर कुछ दूर चलकर कनम् का डाकबँगला मिला। कनम् १०,००० फुट से ६४७० फुट ऊँचाई पर तथा शिमला से १७० मील ३ फर्लांग पर अवस्थित है। यहां भी ख छे रो-खग (मुसलमानी कब्रों) के होने का पता लगा। सड़क बनाने और खेत खोदने में कई कंकाल मिले थे, लेकिन लोगों ने उन्हें मुसलमानों का समझा। उन्हें क्या मालूम था, कि इन कंकालों से उनके और उनके पूर्वजों के इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। कंजूर देवालय में भारतीय ग्रंथों के दोनों बृहद् संग्रह—कंजूर और तंजूर—तिब्बती भाषा में रखे हुए थे। वत्ति के लिए एक खेत भी है, जिसकी आमदनी से मकान की मरम्मत तथा साल भर में एक बार पाठ करनेवाले भिक्षुओं को भोजन मिलता है। कनम् का देवता डबला बहुत धनी और शक्तिशाली है। लौटी यात्रा में मैंने २६ जून को कनम् को अच्छी तरह देखा। उस समय नम्बरदार की अध्यक्षता में डबला से बातचीत हुई थी, जो काफी रोचक थी। देवताओं के अनाचार को देवताओं की ही मदद से हटाया जा सकता है। चिनी के नीचे कोठी की देवी सारे कनौर की महा-महिम देवी है। वह सैकड़ों बकरों की बलि लिया करती है, बुद्ध के धर्म को नहीं मानती। चिरकुमारी होने से उसमें बहुत ग्राय है। मैंने उस दिन डबला देवता से इसी नियत से बात करनी चाही कि डबला और देवी का ब्याह हो जाए, और बौद्ध पति का पत्नी पर प्रभाव पड़े। मैं हिन्दी में कहता था

और नम्बरदार अगरजीत उस कनौर भाषा म डवला से कह रहे थे। नम्बर-दार न कहा, कि हमारे देवता हिंदी समझते हैं। मैं भी जानता था, कि वह दुनिया की सभी भाषाओं को समझते हैं। लेकिन, देवता के सामने कोई ऐसा शब्द न निकल जाए, जिससे नाराज होने का डर हो, इसीलिए मैंने नम्बरदार को ही दुभाषिया बनाया। मेरे कहे अनुसार नम्बरदार ने पूछा —आप काठी की देवीसे ब्याह करेंगे ना ?

डवला ने सिर को दोनो तरफ जोर से हिलाया, जिसका अर्थ था मुझे शादी नही करनी है।

नम्बरदार—शादी करने मे हर्ज क्या है, मनुष्यो की तरह देवता भी ब्याह करते हैं। क्या आप बिल्कुल इन्कार करते हैं ?

फिर सिर हिला, अर्थात् नही।

नम्बरदार—तो किसके साथ कोठी की चण्डिका देवी की शादी हो ? वह बहुत बडी देवी है उसके बराबर का कोई देवता नही है, न चिनी का न रूबागी का, न पगी का न रारग का, न जगी का, न लिप्पा का और न लबरग का ? क्या चिनी के नरेन से शादी करनी चाहिए ?

—नही, सगा सम्बन्धी है शादी नही हो सकती।

नम्बरदार—डम्बरसाहब, चिनी के देवता नारायण से नहीं, तो क्या सुगरा के ग्रस मनमिर से होनी चाहिए ?

—नहीं, वह भी सम्बन्धी है।

नम्बरदार—और कामरू के बदरीनाथ से। वह भी राज का माफीदार है और देवी भी माफीदार है।

—हा हो सकता है खुश होकर उछलकर डवला ने प्रसन्नता प्रकट की।

नम्बरदार के और पूछने पर डवला ने चण्डिका के ब्याह की आशा दिखाइ पर जैसा कि पीछे देवी से पूछने पर मालूम हुआ, वह ऐसे बन्धन म पडने के लिए तैयार नही है। नम्बरदार साथ ही डवला देवता के महामंत्री

हैं। पूछने पर डबला ने आमदनी खर्च का हिसाब मांगा, और कहा, कि दो साल से हिसाब नहीं हुआ है।

कनम् तिब्बत के एक प्रसिद्ध लामा लोचवा रिन् छेन्-जङपो—(रत्न भद्र अनुवादक का) गद्दी स्थान है। रत्नभद्र ११वीं शताब्दियों में हुए थे, वे तिब्बत के सबसे बड़े पण्डितों में थे। संस्कृत के बहुत से गम्भीर ग्रंथों का अनुवाद उन्होंने तिब्बती में किया था। तिब्बत में जब महापुरुषों के अवतार मानने की परिपाटी चल गई, और हरेक विहार की गद्दी पर अवतारी महंत स्वीकार किये गए लड़कों को बैठाया जाने लगा, तो इस लोचवा का भी अवतार पैदा हुआ। लोचवा की गुम्बा पिछली सदियें उपेक्षित सी दिखाई पड़ती थी किन्तु अबकी वह अच्छी हालत में थी। वहाँ कुछ भिक्षु भी मिले, जिनमें से कितने ही तिब्बत में पढ़कर आए थे।

स्पू (९२०० फुट)—१८ जून को हम कनौर के दूसरे महाग्राम सुग नम् को देखने की लालसा से चले। कनम् के आगे कुछ ही दूर पर अब वृक्षों का अभाव हो गया। तिब्बत जैसे नंगे पहाड़ थे। रास्ता अधिकतर समतल था। सिर्फ स्याशा खड्ड के पास दो मील उतराई आई। धूप बहुत थी और यहाँ सुखद मालूम भी नहीं होती थी। खड्ड पर लोहे का पुल था। यहाँ जो नदी बह रही थी, वह भी स्पिती के सीमान्तों पर्वतों से आ रही थी। पुल पार हो नदी के बाँए किनारे ऊपर की तरफ बढ़ने लगे। यह सड़क गाई थी। लोग और अधिकतर स्त्रियाँ सड़क की मरम्मत कर रहे थे। दो मील के करीब जाने पर स्योशा गाँव मिला। यहीं पर भारवाहक और घोड़ा बदलना था। घोड़ा अच्छा नहीं मिला। सवार होने के समय उसको भड़कते देखकर चढ़ने का ख्याल छोड़ना पड़ा। एक मील पर जाने पर मालूम हुआ, कि रास्ता बेमरम्मत और रोमांचकारी है। मैं शरीर से भी निर्बल था। सुग नम्वाले बड़ी प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन वहाँ जाने का ख्याल छोड़ मैं लौटकर रात के लिए स्याशा के बिस्ट अमरनाथ के घर पर ठहर गया। वह पहले का बहुत धनी और प्रभावशाली घर था। सुग-नम् से ऊपर स्यापोग में इनका और भी अच्छा घर था। अमरनाथ के ि

चरनदास पितामह इन्दरदास और प्रपितामह नताराम थे। नताराम १८३४ ई० म बनियम की ल्हाख सीमा म पथ प्रदर्शक थे। इन्दरदास राजा के प्रभावशाली अमात्य थे। उनके समय ही इस घर की महती श्रीवृद्धि हुई। बीस साल पहले तक हालत बुरी नही हुई थी, फिर घर मे पागल होन लगे। दो भाई मर चुके थे। मसारचन्द ग्यापाग मे पल्ला (पागल) होकर पडा है और अमरनाथ यहाँ। अमरनाथ की आयु उस समय ४८ साल की थी, घर मे कोई सन्तान नही थी। पति पत्नी माता तीन प्राणी थे। अब भी खाने भर के लिए सम्पत्ति थी, लेकिन लोग जहाँ-तहा लूट खाते थ। अब यह वश उच्छिन्न होने वाला है। कई पीढियो से पाडव विवाह होने क कारण घर बढे नही, आगे के लिए ह्याशो के विस्ट का नाम लेनेवाला कोई नही रहेगा। उस घर के दरो दीवार से हसरत बरस रही थी। अमरनाथ बडे चाव से बातें करते थे। कभी अक्ल की और कभी बेअक्ल की। इस साल बर्फ बहुत पडी थी, इसलिए बगल से जाने वाली छोटी खडड मे काफी पानी था, नही तो यह सूख जाया करती है। विस्ट का घर ही नहीं, बल्कि सारा गाव श्रीहीन था।

१९ जून को भारवाहकों की प्रतीक्षा किये बिना मैं चल पडा। चपरासी उनका प्रबन्ध करके साथ आ चलने के लिए था ही, पुण्यसागर भी साथ थे। रास्ता खड्ड के पुल तक पहला ही था, उसके बाद कुछ समतल भूमि से सडक चली। एक डाडा पार करने के लिए नदी की धार छोडकर चढाई चढनी पडी। फिर बँगले का ओर चढाई रही। स्पू बडा गाव है। इसमे बहुत से टोले हैं। शिमला से यह १८८६ मील पर अवस्थित है। इसका स्पू नाम क्यो पडा? कुछ लोग बतला रहे थे, कि यह फुग का अपभ्रंश है खुन्नू फुग का अर्थ है कनौर की गुहा। यहा के लोगो की बोली तिब्बती है। अब तक हिन्दी से ही मैं काम चलाता था, जिसके समझने वाले कनौर-पुरुषो म सभी नही थे, और स्त्रिया तो कनौरी छोड दूसरी जानती ही नहीं। अब किसी के साथ बात करने म दुभाषिया की जरूरत नही थी सबकी मातृभाषा तिब्बती थी। यद्यपि स्पू अंतिम गाव नहीं है, किन्तु इसके

विशाल और हरे-भरे खेतों तथा बड़े गाँव को देखकर मोरावियन (जर्मन) मिशनरियों ने इसी को १८८३ ई० में अपना प्रचार-केन्द्र चुना। रेस्लप दम्पती पहले आए, और यहीं मरे। इनके और भी कितने ही मिशनरियों ने लोगों की दृष्टि के अनुसार सेवा करते अपने प्राण छोड़े। यह देखकर दुःख हो रहा था, कि उनकी कब्रें अब लुप्त हो चुकी हैं, और उन पर के पत्थर बिखरे पड़े हैं।

उस समय क्यांगा से इधर की सड़क नहीं बनी थी। वह १९०७ ई० में बनी। डाकबँगला १९१३ ई० में। मिशनरियों ने एक छोटा-सा गिर्जा बनाया था, जो अब लुप्त हो चुका है। मिशनरी बढ़ई का काम जानते थे उन्होंने बढ़ईगिरी के साथ-साथ मोजा-स्वेटर बुनना और शिक्षा प्रचार का भी काम किया। आज गाँव की सभी स्त्रियाँ स्वेटर मोजा बुन लेती हैं, यह उन्हीं की कृपा है। जर्मन पादरी मार्क्स ने—जो अच्छा बढ़ई भी था—यहाँ कई बड़े कमरों का एक बँगला बनाया, जो अब भी अच्छी हालत में था, यद्यपि उसके शीशे टूट रहे थे। उसके रहते मिडल स्कूल के लिए इमारत बनाने की जरूरत नहीं होगी पर अभी तो यहाँ कोई स्कूल नहीं था। स्पू के लोग सभी बौद्ध हैं। यहाँ कई बौद्ध मन्दिर हैं। लाचा लाखड (अनुवादक देवालय) में बुद्ध के साथ सारिपुत्र मौद्गल्यायन की भी मूर्तियाँ हैं। एक मिट्टी के अवलोकितेश्वर एक लकड़ी की बोधिसत्व-प्रतिमा भी है। लोगों को स्त्री पुरुष का कोई ख्याल नहीं, और वे बोधिसत्व को श्वेत तारा मानते थे। मन्दिर शताब्दियों पुराना है। अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता की हाथ की लिखी पोथी के चित्र भारतीय कलम के मालूम होते हैं। गाँव का दूसरा मन्दिर दोमंजिला है, जिसमें करोड़ों 'ओं मणि पद्मे हुम्' मन्त्र लिखे कागजों से भरी बेलनाकार विशाल मानी है। श्रद्धालु समय समय पर वहाँ जाकर मानी को घुमाते पुण्य लाभ करते हैं। कलिम्पांग के पादरी यचिन् स्पू में ही पैदा हुए। उनके नेत्रविहीन भाई उस समय मानी चला रहे थे जब मैं मन्दिर को देखने गया था। मानी के पीछे दो पुरानी बोधिसत्व मूर्तियाँ थीं, जिनकी बनावट भारतीय मालूम होती थी, अर्थात् वे सात-आठ सौ वर्ष

पुरानी होगी। यहा पर भी खसा की समाधिया मिट्टी के बतना के साथ मिलती हैं लेकिन उनका कोई निश्चित स्थान नही, इसलिए फरमाइश पर खाद करके निकाला नही जा सकता। नम्बरदार देवीचन्द अब नम्बरदारी से मुअत्तल थे। वे तिब्बत मे काफी घूमे हुए है। तूची के साथ पश्चिमी तिब्बत मे गए थे। उनकी इस बात पर तो विश्वास हो सकता था, कि तूची ने वहा से बहुत सी हस्तलिखित पुस्तकें उचित अनुचित ढग से प्राप्त की, लेकिन यह विश्वास करने के लिए मन तैयार नही था, कि अधिक बोझ के कारण चित्रो को काटकर निकाल के पुरानी पोथिया का आग की भेंट कर दिया गया। कब्र से निकला हाथ का बना एक मिट्टी का कुतुप मिला जिसको और लिप्पा की चीजो का भी मैंने चीफ-कमिश्नर साहब को किसी म्यूजियम मे रखने के लिए दे दिया।

स्पू के लोगा का अब भी विश्वास था कि देश पर अँग्रेजो का ही शासन है। जब नोट और डाकखानो के टिकट अँग्रेजो के चल रहे थे, तो ये सीधे सादे लोग कैसे विश्वास करते कि अँग्रेज अब नही रहे। पगी का देवता तक इतना मूढ था, कि वह इस बात को मानने के लिए तैयार नही था। सयोग से इसी समय स्वदेशी टिकट मेरे पास पहुँच गया था, उसको भेजकर देवता को मनवाने की मैंने कोशिश की थी। देवता के मानने ही पर तो भक्त मान सकते है।

२१ तारीख को भी हम स्पू ही मे रहे। मिश्नरियो के समय यहा डाकखाना भी था। स्कूल तो उसके बाद भी कितने ही सालो तक रहा, जिसे लडको की कमी के कारण तोड दिया गया। यहा के लोगा को मातभाषा मे पढाया जाता, तो लडको की कमी नही हो सकती। हिन्दी म पढाने की कोशिश की जाये तो दो तीन साल म उनके पल्ले क्या पडेगा? पहले दो साल तो यहा और इसके आसपास के तिब्बती भाषी इलाके मे तिब्बती भाषा को ही माध्यम बनाना चाहिए। इस उपत्यका मे स्पू, डबलिंग नम्ग्या, खब टशीगग मे तिब्बती बाली जाती है, और पास के पहाड के परले पार

हुगरग के चागो, नाको, मर्गालिग, लियो, चुलिग आदि गाव भी तिब्बती भाषी हैं।

नमूग्या (६८०० फुट)—स्पू से आठ मील पर सतलुज के बाएँ भारत का अतिम गाव नमूग्या है। यहा से दो मील और आगे यानी शिमला से १६६ मील पर एक सूखा सा नाला है, जो तिब्बत और भारत की सीमा— अब चीन और भारत की सीमा—है। लेकिन नमूग्या से आगे तिब्बत के प्रथम गाँव शिप्की मे सतलुज के किनारे किनारे नही जाया जा सकता, उसके लिए शिपकी का डाडा पार करना पडता है। २७ तारीख को हम स्पू से रवाना हुए और दोपहर के करीब नमूग्या पहुँच गए। रास्ता अच्छा था सवारी के लिए घोडा भी था। तो उस सूखी-भावी पवतमाला मे नमूग्या इन्द्रपुरी का एक टुकडा मालूम होता था। गाव के आसपास की भूमि हरियाली से ढँकी थी, खेतो मे हरे हर नगे जौ लगे थे। खूबानी (चुली) अखरोट के दरख्त हरे पत्ता से ढँके थे। यहा भी कुछ अगूर की वेलें थी, जा और भी बढाई जा सकती थी, और वर्षा के अत्यत कम होन से अगूर बहुत मीठा होता है, इसे कहने की आवश्यकता नही। पूछने पर यहाँ भी खसा की समाधियो के होने की बात मालूम हुई। लोगा ने बतलाया, इन समाधिया मे बरतन जरूर मिलते हैं। बरतन मिलने का मतलब ही है, ये मुसलमानो की कब्रें नही हैं, हालाँकि लोग वैसा ही विश्वास रखते हैं। गाँव से बाहर एक स्थान पर खुदवाया, तो सडी हड्डी निकली। गाँव कुछ ही साल पहिले आग से जल गया था। उसके साथ कितनी ही ऐतिहासिक चीजें भी जली होगी। एक परिवार के देव-भवन मे नेपाल की बनी धातु की तीन अच्छी मूर्तियाँ मिली। हस्तलिखित बौद्ध ग्रन्थ प्राय प्रत्येक परिवार मे मिल जाते हैं और उनकी पुष्पिका मे दाता और राजा का नाम भी लिखा होता है, जिससे यहाँ के इतिहास पर प्रकाश पडता है। नमूग्या तीस घरा का गाँव है। पाण्डव विवाह ने जन वृद्धि का निरोध किया, नही तो और भी परिवार होते।

नमूग्यावाला के दिल से कजाको का भय अभी भूला नही था। मध्य-

वित्त और धनी वजाक बाल्शेविक क्रान्ति से असन्तुष्ट हो अपनी जन्मभूमि छोडकर सिंगक्याग (चीनी तुर्किस्तान) में चले आए। वहाँ भी ठीक ठिकाना न लगने पर लूटते मारते तिब्बत में घुसे। पश्चिमी तिब्बत की कुछ गुम्बाओं को भी उन्होंने लूटा। उनके नमग्या की तरफ बढने की खबर आ चुकी थी। नमग्या के तीस परिवार, अधिकतर निहत्थे या पलीते वाली बन्दूकों के साथ कैसे उन हथियारबन्द कज्जाकों का मुकाबिला कर सकते थे। कई दिन रात तो लोगों की नींद हराम हो गई थी। अन्त में वजाक इधर न आकर लद्दाख की तरफ मुड गए, इस प्रकार सकट दूर हुआ। नमग्या के लोगों को अभी क्या मालूम था, कि उनके आगे के गावों को जल्दी ही एक नया भविष्य होने वाला है। शिप्की के लोग भी वही बोली बोलते हैं, जो नमग्या के, उसी धर्म को मानते हैं, जिसे नमग्या वाले। उस समय दोनों के लिए "हनोज देहली दूर अस्त" की बात थी। उनको यह भी नहीं पता था, कि इस समय चीन में देवासुर सग्राम मचा हुआ है, और साल ही भर में असुरराज च्याग काइ शेक को चीन से भागना पडेगा। माओ के नेतृत्व में नया चीन जनम रहा है जो साल बीतते बीतते तिब्बत का भी नेतृत्व करेगा। उस समय दो मील पर अवस्थित सूखा नाला चीन और भारत गणराज्य की सीमा बन जाएगा। फिर तिब्बत प्रगति में सरपट दौडने लगेगा और भारत का छकडा अपनी पुरानी गति से घिसटता रहेगा। कुछ ही समय बाद नमग्यावाले आश्चर्य से सुनेंगे और आख मल के देखेंगे, कि उस पार मोटरें दौड रही हैं हवाई जहाज उड रहे हैं, हजारों एकड जमीन ट्रैक्टर से जुतकर तरह तरह के अनाज और साग-तरकारी से लहलहा रही है। सदियों पिछडा देश कुछ ही सालों में बहुत आगे बढ जाएगा निरक्षरता नष्ट हो जाएगी। मैले और गंदे रहने वाले तिब्बती कपडे और शरीर से साफ सुथरे दिखाई पडने लगेंगे और चाड थाड के उजड्ड मेषपाल सभ्य नर पुरुष दीखने लगेंगे।

२३ जून को सवेरे ही दूध रोटी खाकर हम चल दिए। साढे ७ मील के रास्ते में पाच मील पैदल चले। हल्की उतराई में सवारी की जरूरत नहीं थी। रास्ते में विश्राम करने की भी जरूरत नहीं पडी और ९ वजे स्पू पहुच

गए। स्पू और दूसरे भी इधर के डाकबगले सैर सपाटा करने, प्रकृति का आनन्द लूटने वाले अंग्रेज सैलानियों के लिए बने थे। इन बगलों में अंग्रेजी की काफी पुस्तकें थीं। जो भी सैलानी नई पुस्तक पढ़कर खतम करता, वह उसे बगले में रख जाता। सभी पुस्तकें सुरक्षित हैं, यह नहीं कहा जा सकता। मैं स्पू लौटकर फिर दो दिन ठहर गया, इसमें में कुछ समय पुस्तकों के पढ़ने में भी लगाया। डिकेन्स का उपन्यास "मार्टिन चुजेल्वेट" को समाप्त किया एकाध जगह कुछ चुभते वाक्य मिले, नहीं तो कोई चमत्कार नहीं था। इधर के लोगों को कनौरे लोग जाड या गड्डवा कहते हैं। जाड का मतलब जाट है। वह नाम क्यों दिया गया ? गड्डवा का अर्थ पर्वतीय लोग है, जो यथार्थ ही है।

२५ जून को सवेरे चले। दुर्याग के पुल तक पैदल ही आए। फिर घोड़े पर चढ़कर सारा १६ मील का रास्ता पूरा करके दोपहर के कुछ बाद कनम् के डाकबगले में पहुँचे। आने पर कुछ बूँदाबादी हुई, ठंडक बढ़ गई। रेंजर श्री देवदत्त शर्मा आज ही सुगनम् से आए थे। वह लिप्पा से कड़े कड़े सुगनम् गए थे, जिसका अर्थ है अजपथ से—बकरियों के रास्ते गए थे। मैदानी आदमियों के लिए यह बड़ी हिम्मत की बात थी। शर्माजी बड़े मुस्तैद आदमी और हर तरह की तकलीफ उठाने के लिए तैयार थे। उनके पास से पाँच दिन पहले—२० जून का—"ट्रिब्यून" अखबार मिला। अगले दिन कनम् ही में रहे। उसी दिन डबरा देवता से बातचीत हुई थी।

२७ को सवेरे जलपान के बाद फिर नीचे की ओर बढ़े। नम्बरदार अगरजीत का घोड़ा कमजोर था। रिकाब भी टूट गई और जीन भी जवाब देने वाली थी। दो ही मील चढ़कर गए, फिर लिप्पा खड्ड पर जाकर उसे लौटा दिया। दोपहर से पहले जंगी पहुँचे। भारवाहक और घोड़ा तैयार था। भारवाहकों को भेजकर भोजन के बाद हम भी चल पड़े। घोड़ा बैठने लगा, दो मील की सवारी के बाद उसे भी लौटा दिया। रारंग में गाँव के बाहर की उसी मढ़ी में ठहरे, जिसमें पिछली बार ठहरे थे। प्रायः नौ हजार फुट की ऊँचाई पर भी मक्खियों के मारे आफत थी। मैंने मेहता साहब को

कनौर के बारे म कुछ सिफारिशें लिख भेजी थी। उन्होने अपने जवाब मे लिखा, कि फलो की बागवानी को बढाने की ओर हम ध्यान दे रहे हैं। चिनी के लिए डाक्टर भेजेगे। तिब्बती पढाई का भी शीघ्र प्रबन्ध करना चाहते है। मैंने उन्हे दूसरी चिट्ठी लिखी, जिसमे जगी, अकपा, राग्ग के गावो की पानी को तकलीफ की ओर ध्यान दिलाया, और यह भी, कि यहा पानी की नहर आसानी से निकाली जा सकती हैं।

२८ को सबेरे चले। पगी मे थोडी देर ठहरे। यहा भी किसी को घडे म हड्डी मिली थी। यह जिज्ञासा की चीज थी। फिर चलकर १२ बजे चिना पहुँच गए।

## ११

# फिर चिनी मे

हम सोल्ह दिन बाद चिनी लौटे थे। इसी बीच कितना परिवतन हो रहा था। खूबानी के दरख्त अब पीले फलो से लदे हुए थे। वह खूब खाई जाने लगी थी। खूबानी कनौर के गरीबो का सबसे बडा सहारा है। कच्ची और खट्टी खूबानी का चटनी बनाकर खाते है। पकने पर उससे पेट भरने की कोशिश करते है। छतो पर पीले फल सूखते हुए दूर से गावो का एक अजब रग देते हैं। मैं ऊपर जाती सडक से नीचे के गावो की इन पीली छतो का अर्थ नही जान पाया। पूछने पर पुण्यसागर ने रहस्य बतलाया। सूखी खूबानी को काठलो मे भरकर रख देते हैं। थाडे से अनाज के साथ यही गरीबो का प्रधान भोजन होता है। कनौर म खूबानी के पेड यदि बहुतायत से हो ता अचरज क्या? हाँ, अच्छी किसिम की खूबानी नही पैदा करते, और सदा से अपने यहाँ लगाई जाती जात को ही बढाते हैं।

मेहताजी न अपने एक पत्र म लिखा था, कि अब रामपुर-बुशहर और आस पास के कई इलाका को मिलाकर उसका नाम महासू जिला पड गया है। तहसील से मालूम हुआ, कि सरदार बलदेवसिंह रामपुर से चले गए। महासू जिले क डिप्टी कमिश्नर पण्डित करतारकृष्ण बनाये गए हैं। कई और पुराने रियासती नौकरा का पेन्शन दे दी गई है। इन परिवतनो से

जनसाधारण का क्या दिलचस्पी हो सकती है वह तो प्रत्यक्ष यदि कुछ भला देखे, तभी मान सकते हैं।

अब फलो म चूला (खूबानी) और आलूचा बहुत मिलने लगा था, हरे साग की भी इफरात थी। बादल आते थे। लोग बडी लालसा से टकटकी लगाये थे, लेकिन वे बूदो की जगह अँगूठा दिखला रहे थे। जौ मटर की फसल कट चुकी थी गेहू भी कही कही खडी थी। कटे खेतो मे फाफडा और ओगला बोये गए थे। जाडो म यहा तिब्बत की ओर से उत्तरहिया हवा आती है जिससे ठटक बहुत बढ जाती है, और आजकल नीचे से हवा के आने के कारण सर्दी कम रहती है। पर्वत के अन्य स्थानो की तरह यहाँ भी रतिज राग एक बडी समस्या है। इससे लोहा लेने के लिए पेनिसिलिन सहायक हो सकती है, लेकिन बहुत बडे पैमाने पर इन्जेक्शन देने पर ही लोगो को त्राण मिल सकता है।

आने के बाद एक अनभिलषित प्रयत्न यह देखा, कि रात को पिस्सुओ का आक्रमण होता दिन म मक्खियाँ नाको दम करती हैं। पेट तो इस यात्रा म बार बार हडताल करने के लिए तयार रहता, पतले दस्त आते थे। यद्यपि स्वादिष्ट भोजन का लाभ नही था, लेकिन कभी दो कौर अन्न ज्यादा हो जाता, तो खट्टी डकार आने लगती। मैं इस सबको छप्पनसाला की बरकत समझता था। अभी तक लिखाई का काम बन्द-सा था। अब 'किन्नर देश' को नियम से लिखने लगा। कोशिश करता, कि रोज एक्साईज बुक के १६ पृष्ठ जरूर लिखे जाएँ। कनौर क बारे म जानकारी प्राप्त करने मे मित्र सहायता करते थ। तहसीलदार मगतरामजी मेरे कहने पर यहाँ के खनिजों और फलो के नमूने जमा कर रहे थे। ताबा, सुरमा, चाँदी, सीसा, जस्ता, सोना के खान की बातें बतलाई जाती थी, लेकिन जब तक वह आँखो क सामने न आए तब तक मैं विश्वास करने के लिए तैयार नही था।

पहाड म न धोबी होता, न तेली, न हज्जाम, न कुम्हार। ये और दूसरे कामो को लोग अपने ही कर लेते हैं। स्कूल के हेडमास्टर साहब न ११ जुलाई को मेरे बाल काटे। मैंने रविवार को स्नान करने का नियम रखा

था। शास्त्रो की बात मानी जाए, तो हिमालय के इस भाने की हवा ही जल का काम देती है, पर मैं अभी उतनी शक्ति नही रखता था। "डा०" ठाकुरसिंह बडी मनोरजक बातें सुनाया करते थे। डाक्टर के अभाव मे कम्पाउडर को ही डाक्टर की उपाधि मिल गई थी। बतला रहे थे मैं अल्हड नौजवान था। मिशनरियो की कृपा से दो अक्षर पढे थे। साल्वेशन आर्मी के मिस्टर मार्टिमार के फेर मे पड गया। उन्होने ईसाई बनने के लिए कहा, तो इन्कार नही कर सका। मार्टिमोर साहब बपतिस्मा देने के लिए शिमला ले चले। ठाकुरसिंह समझते थे, कि परमेश्वर तो सबका एक है। रास्ते मे आर्यसमाजी रेजर से मुलाकात हो गई। उसने ऊँचा-नीचा दिखलाया। फिर होश आई, लेकिन साहेब के पजे से निकलें कैसे। रेजर ने उपाय बतलाया—ईसाई बनने के बाद न घर वालो से तुम्हारा सम्बन्ध रहेगा, न जातिवालो से, न तुम्हे घर का एक पैसा मिलेगा, और न कोई ब्याह करेगा। पादरी के सामने ब्याह और पैसे की बस यही दो माँगें रखना। ठाकुरसिंह ने मागें रखी और ईसाई बनने से बच गए। आजकल वह कान से कुछ कम सुनते थे, लेकिन लोगो का उनकी दवा पर पूरा विश्वास था। खर्च के कितना ही कम करने पर भी रियासत से दवाएँ कुछ आ ही जाती थी। चोट फैंट के लिए वह किसी डाक्टर से कम नही थे। पेनिसिलिन का अभी नाम सुन पाये थे और उसका मिलना नीचे भी मुश्किल था। मैं अपने लिए एक दो शीशी ले आया था। उनके एक असाध्य बीमार को मैंने पेनिसिलिन का इन्जेक्शन देने के लिए कहा और उसके ऊपर दवा ने रामबाणी की तरह असर किया। वह रामपुर से भी जीवन से निराश होकर अपने घर मे मरने के लिए आया था। इस सफलता से यदि मेरी और ठाकुरसिंह की महिमा बढ गई, तो ताजुब क्या।

रोक्पा से ताँबे की मिट्टी आई थी। सौ वर्ष पहले सराहन के पास का एक ठठेरा रोक्पा म काम करता था। उसने ताँबा बनाने के लिए झोपडे बनाए थे। उस समय के बने ताँबे के बरतन अब भी सुगनम् की तरफ लोगो के पास है। जेलदार मिट्टी लेने जब खान पर गए तो लोग मना कर रहे

थे—ऐसा मत करो, नीचे के आदमी आ जाएँगे और हम मारे जाएँगे। हम चूल्हे से भी अपनी जिन्दगी नहीं काट सकेंगे, देवता भी नाराज होंगे।" सचमुच हो लोग अपने अवचेतन म शापका और सास्कृतिक तौर से आग बढ़े लोगो से डरते रहते हैं। अंग्रेजो ने भी खान देखने की कोशिश की थी, लेकिन लोगो ने दूसरी जगह ले जाकर घटिया मिट्टी दिखा दी। खान के पास पदुम (शुक्पा) और कुछ हटकर नवजे के वृक्ष हैं। सचमुच ही यदि इन्ही के कोयले से तांबे का गलाया जाता, तो जगलो की खैरियत नही थी। मिट्टी हाथ म उठाने पर भारी मालूम होती थी, किन्तु इसम कितना प्रतिशत तांबा है, यह तो विशेषज्ञ ही बतला सकते थे।

जुलाई के मध्य म सेब का रग भी अब लाल निखर आया था, पहले मटमैला-सा था। खमी (छोटी जात का आडू) यहाँ सबसे पीछे पकती है। खाने म उसका स्वाद खटटा मीठा था। कनौर के लोग बन्हे पारखी सुरा के अनन्य आराधक हैं। उन्होने अर्क निकालकर शराब बनाने का तजर्बा सभी फलो पर किया। उनका विश्वास है कि सिवाय जहरीले फलो क जगली हो या बगीचे के, सभी फलो से शराब निकाली जा सकती है। खमी की शराब को तो लोग अंगूर से भी अच्छी बतलाते थे। जिस शराब मे पूरा नशा न हो, उसका उनके लिए कोई महातम नही था।

नीचे की ओर ऊँचाई म कम जगहों में फल पहले पकने लगते हैं। फिर फलो का यह समय धीरे धीरे ऊपर की ओर बढ़ता है। कल्पा के बगले के सेब १७ जुलाई को आए। कुछ खटटे थे, पर उतने नही जितने कि लन्दन मे पिछले साल खाए थे। जाडा के तुरन्त बाद मास दुर्लभ हो जाता है। पुराना मास खतम हो गया रहता है और सयोग से ही कभी कुछ सूखा मिल जाता है। इस समय नये मास के लिए जानवर नही मारे जाते, क्योंकि जाडो मे खुराक की कमी के कारण वे दुबले हो गए रहते है। अब वे मोटे ताजे हो गए थे। नेगी सन्तोखदास ने ताजा मास भेज दिया था। अनाज की फसल तैयार हो जाने से अन्न आटे की कोई दिक्कत नही थी।

रामपुर के हैडमास्टर तथा इधर के स्कूल इन्स्पेक्टर प० दौलतराम

अपने पुत्र के साथ १७ जुलाई को आकर हमारे पास के कमरे म ही ठहरे।
बतला रहे थे, सारे कुनाहर मे इस साल सिर्फ ६ स्कूल खोले जाएँगे। हिमाचल
के प्रभुओ को तब तक स्कूल खोलना पसन्द नही है, जब तक कि ट्रेंड अध्या
पक न तैयार हो जाएँ। वह साक्षरता को प्राथमिकता देना नही चाहते।
आँधी खापडी के लिए क्या कहा जाए ? दौलतरामजी मेरे साथ ही शिमला
से रामपुर आए थे। वह बडे ही सज्जन और मेहनती पुरुष थे। इस समय
डूगरग की ओर जा रहे थे, यह हिम्मत का काम था। २० जुलाई का दिन-
भर वर्षा रही। लोग बहुत प्रसन्न थे क्योकि इससे फाफड और ओगला की
फसल का बहुत फायदा होने वाला था।

डा० ठाकुरसिंह को रोज शाम को शराब चाहिए। अकेले शराब पीने
मे मजा क्या, खास करके जब वह टके सेर मिलती हो ? उन्होने पिछले साल
के सूखे सेब और नास्पाती के मनो सूखे टुकडे गोदाम म भर रखे थे। अपने
ही घर मे अपने हाथ मे शराब बना लेते थे। उनके हमप्याला म बूढे
धर्मानन्द भी थे। एक दिन शराब की खमीर को ठाकुरसिंह न धर्मानन्द को
चखाया उन्हान कहा ठीक है। फिर भपके पर चढाकर अर्क खीचा गया।
पीकर देखन पर मालूम हुआ, उसम नशा नही। कई दिनो तक ठाकुरसिंह
धर्मानन्द को बुरा भला कहते रहे। एक दिन धर्मानन्द ने खूब शराब पी
थी। गिरकर कई जगह घाव लगे। मुह भी फूट गया। इसी हालत मे ठाकुर
सिंह के पास आए। उन्होने मरहम पट्टी की।

हमारा रोज का प्राय दो घटे का टहलना चिनी म रहते बराबर जारी
रहा। उससे फायदा किया, यह नही मालूम होता था।

२७ जुलाई तक अगूर भी आने लगे, लेकिन अभी रोगी के काले मीठे
अगूर तैयार नही हुए थे। तहसीलदार साहब न जो फलो के आकडे जमा
किए थे, उनस मालूम हुआ कि रोगी से जगी तक और मोरग से वारग तक
सतलुज के दोनो किनारे, और मारग से वारग तक मेवा की खान है। अगूर
तो यहा का बहुत पौधा है। प० देवदत्त शर्मा के यहाँ नाली मे अगूर के पौधे
को देखकर मैंने पूछा—क्या आप यहाँ अगूर लगा रहे हैं ? उन्हे मालूम भी

नही था कि कब वहा कोई बीज गिरा और है तो बीज को बोकर वालियान पौधा तैयार हो गया। २८ जुलाई को नेगी सन्तोसदास ने अपने यहा का काला छोटा अंगूर भेजा जो बहुत मीठा था। चिनी से शिमला एक मन चीज भेजने पर २० रुपया किराया लग जाता था, जाने में कई दिन भी लगते थे। इतनी मँहगी चीज नीचे के बाजारों मे बिक कैसे सकती ? चिनी के पास के कलपा के मैदान को छोटे हवाई जहाज के उतरने के लिए तैयार किया जाय तो इस समय भी कनौर से १० हजार मन अंगूर दिल्ली पहुँचाया जा सकता था। इससे इस गरीब प्रदेश को आर्थिक सहायता मिलती, और वह उत्साहित हो और भी बगीचे लगा सकता। तब से ८ वर्ष बीत गए अभी भी रामपुर से आगे मोटर नही गई।

श्री शिवयोगी तिवारी के ३ अगस्त के पत्र से मालूम हुआ कि उन्हें अमेरिका जाने के लिए वीजा मिल गया। बडी मुश्किलो से इस असाधारण प्रतिभाशाली तरुण ने अपनी पढ़ाई पूरी की थी। यदि उसे अनुकूल परिस्थिति मिली होती, तो कई साल ठोकरे खानी न पडती। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब शायद उनका रास्ता खुल जाए।

कोठी चिनी से दो तीन मील नीचे और समुद्रतल मे ६ ७ हजार फुट से अधिक ऊँची जगह नही है। २३ जुलाई को श्री देवदत्त शर्मा को लेकर मैं वहा गया। २ मील की उतराई थी। नीचे चुलिया खत्म हो चुकी थी, यहाँ सुखाई जा रही थी। वहा के अवशेषो के देखने से मालूम होता था कि किसी समय कोठी चिनी से भी अधिक महत्त्व रखती थी। शायद ऊपर दुर्ग रहा हो और नीचे राजधानी। कोठी की एक और विशेषता है, यहाँ के बौद्धों की ओर हिमाचल के इस भाग के जनयुगीन देवताओं की प्रधानता रही। यहा के देवता नीचे की तरह पत्थर और लकडी के थे। भैरव के मन्दिर मे २० पुरानी मूर्तियां थीं जिनमे ४ छोडकर सभी पत्थर की थीं। मूर्तियाँ भी काफी अच्छी थी। एक से अधिक वीणापाणी एक हरगौरी और एक द्वादशभुज मूर्ति थी। नीचे कुड के पश्चिमी तट पर पूर्वाभिमुख चतुर्मुख शिव की मूर्ति थी, जो प्राय २ फुट ऊँची थी। बनावट बडी सुन्दर थी।

सिर के पीछे उत्फुल्ल अष्टदल कमल का प्रभामंडल था। काठी के शासक तब पाशुपत धर्मवाले थे, मूर्तियाँ इसका प्रमाण है। पास के खेत के द्वार पर रेवाकिन पत्थर का शिवलिंग भी इसी बात का प्रमाणित कर रहा था। देवी ने चिट्ठी डालने पर ब्याह से इन्कार कर दिया। मैंने चाहा कि देव जाहन का भी छोड़कर देवी की राय पूछी जाए, लेकिन आदमी खिसक गया।

-

# १२

# कनौर से वापस

८ अगस्त रविवार का दिन था। उसी दिन चिनी से प्रस्थान करना था। १० बजे मित्रों से मिलकर हम रवाना हुए। मास्टर रामजीदास और मास्टर श्री नारायणसिंह साथ चले। मैंने कनौर की दूसरी महानदी बस्पा की उपत्यका को भी देख लेना चाहा। बस्पा सतलुज की शाखानदी है, जिसके और भागीरथी के बीच में सिर्फ एक पर्वतश्रेणी का अन्तर है। छितकुल से भागीरथी के किनारे हर्सिल में पहुँचने का रास्ता भी है, यदि कोई हिम्मत करने के लिए तैयार हो। चिनी से पहले हम कोठी गए। रास्ते में देवदारों का जंगल था, जिसमें जगह-जगह खेतों की पत्थर की दीवारें बतला रही थीं कि कभी आज से अधिक खेती यहाँ हुआ करती थी। कुण्ड पर के खंडित शिव का दर्शन किया। यह गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य में रहा होगा। देवी का मन्दिर शायद उस स्थान पर था, जहाँ पहले राजमहल था। अब सूना है, चिनी की जगह कोठी को ही तहसील के लिए उपयुक्त समझा गया है और यहाँ तक मोटर सड़क बनाने के लिए योजना बनी है। कोठी का दिन लौटने वाला है। देवी के मन्दिर को देखने के बाद हम वहाँ से रेकांग पहुँचे। यहीं के श्यामचरणजी मरणासन्न हो घर आए थे जिन्हें पनिसिलिन से फायदा हुआ था। कोठी से उतराई ही उतराई रेकांग तक पड़ती है। मैं उनके घर गया आशा थी, अब वह बच जाएँगे। नीचे उतर उस जगह

पहुँचे, जहां सतलुज पार करने के लिए लाहू क मोटे तार पर पिंजडा गडारी के सहारे लटक रहा था। नदी के दोनों तटों पर दो आदमी नियुक्त थे, जो आदमी के पिंजडे पर बैठ जाने पर रस्सी से उसे अपनी ओर खींच लेते थे। हम तीन-साढ़े-तीन हजार फुट नीचे उतर आए थे, इसका प्रभाव साफ मालूम हो रहा था। यह स्थान ज्यादा गरम था। कोठी अधिक अनुकूल तापमान की जगह है। उसके पास बहुत सी खेती के लायक जमीन भी है, लेकिन वहाँ तक मोटर सडक लाने में इंजीनियरों को कम दिक्कत का सामना नहीं करना पडेगा। उस दिन हम घाट से कुछ मील आगे चलकर गोगठोंग (५७५० फुट) में रात के लिए ठहर गए। कन्जर्वेटर डिलन आजकल दौरे पर निकले यहीं ठहरे थे। हमें भी जंगलात के बँगले में जगह मिली। डिलन साहब ने सोसे की धुन का नमूना दिखलाया। दिन था, पास में खेत में निकाई करती औरतों का स्वर सुनकर मैं उधर गया। उन्होंने खुरपा कुदाल सामने फेंक दी। मेरे एक रुपया देने पर, चुन्नीलाल डाक्टर का प्रसिद्ध लोक-गीत सुना दिया।

गोगठोंग से थोडी ही दूर ऊपर बारंग है। बारंग के रघुवर की याद मुझे बार बार आती, कलेजे में टीस लगती थी। रघुवर प्राइमरी तक पढ़कर तिब्बत चले गये थे। वहां कई साल तक तिब्बती भाषा में बौद्ध शास्त्र पढते रहे। जब जब मैं ल्हासा पहुँचता वह मेरे कामों में सहायता देते। बडे समझदार और होनहार तरुण थे। उनसे बहुत आशाएँ थीं। वह अपनी जन्मभूमि में आये, पर मरने के लिए। इस समय यदि कहीं वह जीवित होते तो कितना अच्छा होता। चिनी तहसील में भाषा के तौर पर लोग मान दमेर (किरात) जाति के तौर पर खश किरात और धर्म के तौर पर बौद्ध हैं। तिब्बत के साथ व्यापार इनकी जीविका का मुख्य साधन है। प्राय हरेक पुरुष तिब्बती बोल सकता है। यहाँ के पचीसों तरुण साधु शिक्षा पाने के लिए तिब्बत जाते हैं। चिनी या कोठी में संस्कृत तिब्बत-सम्बन्धी अनुसंधान की संस्था कायम की जा सकती है, यहाँ पर तिब्बती साहित्य में जानकारी पैदा करने वाले भारतीय तरुणों को भेजा जा सकता है। एक

समय सैकड़ा वर्षों तक यहां भी भारतीय तिब्बती विद्वानों ने मिलकर जो साढ़े पाँच हजार हमारे ग्रन्थों का तिब्बती में अनुवाद किया है, उनमें से सैकड़ों अत्यावश्यक ग्रंथों का फिर से हमारी भाषा में अनुवाद करने का काम भी यहाँ से पूरा किया जा सकता है। मैंने यहाँ के सुपठित नगा लामा के सामने यह सुझाव रखा था। वह तिब्बती साहित्य के तिब्बत में भी मान हुए महापण्डित थे। लेकिन, इस बात के महत्व को वे समझ नहीं सकते थे।

सांगला (८८०० फुट)—नाश्ते के बाद पुण्यसागर और हम ८ बजे चल पड़े। सतलुज के बाएँ किनारे कुछ दूर जाने पर दाहिने किनारे अंगूर की टट्टियाँ दिखाई पड़ीं। जितनी जगह उसके लायक थी, सबमें रागीवालों ने अंगूर की लताएँ लगा रखी थीं। यहाँ के अंगूर क्या इतने मीठे होते हैं? अंगूर के लिए भारत में तीन चीजों की अत्यावश्यकता होती है—(१) उस भूभाग में बहुत कम वर्षा होनी चाहिए, १० इंच से कम हो तो और अच्छा (२) अंगूरों को काफी धूप मिलनी चाहिए और (३) यदि पर्वतीय भूमि हो तो उसकी ऊँचाई ६००० फुट से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। विशेष खाद की तो आवश्यकता है ही। क्वेटा कुछ इसी तरह का स्थान है। वहाँ के अंगूर में १७ प्रतिशत चीनी होती है। विज्ञान प्रकृति के काम में दखल दे सकता है, इसे उसने पच्छिमी पंजाब के मटगोमरी में २५ प्रतिशत चीनी वाला अंगूर तैयार करके दिखा दिया। कनौर में रोगी छोड़कर और जगहों के अंगूर उतने मीठे नहीं होते पर नासिक की तरह खट्टे भी नहीं होते। इनकी जात सुधारने के लिए काफी गुंजाइश है।

ढाई घंटा चलने के बाद हम बस्पा नदी के पुल पर पहुँचे, और पार से उसके बाएँ किनारे से ऊपर की ओर चले। सपिनी के नम्बरदार अमीन चन्द ने माला पहनाई। ब्रूए में कुछ देर आराम किया फिर आठ मील चल कर सांगला पहुँच गए। सारी बासपा उपत्यका अति मोहक हरे भरे जंगलों से ढँके पहाड़ों वाली है। घोड़ा मिला था पर हम बहुत कम उस पर चढ़े। पौने पांच बजे डाकबँगले में पहुँचे, जो नदी के बाएं तरफ है, गांव उसके दाहिनी तरफ। बँगला बहुत आलीशान है। यहां की नयनाभिराम प्रकृति

का आनन्द लूटने के लिए ही अंग्रेजो ने जगल विभाग का रुपया खर्च करके इस बँगले को बनवाया था। पहाड के बँगला मे भगी नही होते, भगी नाम की कोई जाति भी नही है। इसलिए अंग्रेजो के समय उसी आदमी को बँगले मे ठहरने की इजाजत दी जाती थी, जो अपने साथ भगी ले जाता था।

उपत्यका यहाँ बहुत चौडी, और कोसों लम्बी है। जान पडता है, भागीरथी गगा की हर्शिल वाली उपत्यका यहाँ चली आई है। वह है भी तो इसके सामने पहाड के परले पार। लेकिन, यह उससे भी कही अधिक देवदारो से समृद्ध है।

१० और ११ अगस्त को हमे सागला ही म रहना था। लोगो की मौज है, कभी वह बडे स्नेही दिखाई पडते हैं और कभी बेमुरौवत। पास का लाया आटा खतम हो गया था, और यहाँ वह मिलना मुश्किल हो गया। सबेरे ८ बजे पुण्यसागर को लेकर हम नदी पार हुए। नगर मे बस्ती म वैरिग नागस् ग्रामदेवता का छोटा-सा मन्दिर है। और भी मन्दिर हैं। यह कनौर का सबसे बडा गाँव है, जिसमे २२७ घर हैं। इनमे ६३ कोली, ४ लोहार, ५ बढई बाकी सारे खासिया हैं। बेरिंग नागर के पास १४ बीघा जमीन है। उसके लिए एक नया आलीशान मन्दिर बन रहा था। कामरू के देखने से पहले हमें माने (कामरू) को देखना था, कामरू तो ठहरने की जगह से नजदीक था। गाँव से बाहर एक मील आए थे कि माने नेगी आते मिले। फिर क्या था, यहा का प्रभावशाली आदमी मिल गया था। गाँव से बाहर एक गुफा को उन्होंने अच्छे घर का रूप दे दिया। उसे दिखला गाव के भीतर बदरीनाथ के मन्दिर मे ले गए। मन्दिर के भीतर कमर म कमरबन्द बाँधे बिना कोई जा नही सकता। वहाँ गाँव के गण्यमान्य लोग जमा थे। नेगी श्यामसुन्दरदास और नेगी बुजुरसेन मन्दिर के मायस (सहता) भी मौजूद थे। लौन ग्रोक्म (देववाहन), बूला पुरनजीत, पालूराम और इन्दरसेन से भी परिचय हुआ। पुजारेम जवानदास, कैतस (कायथ) हरिमनदास, कारदार गगाराम तथा गोकरनदास भी वहाँ मिले। कामरू में उसी तरह का एक दुर्ग है, जैसा ल्वरग मे हमने देखा था। रामपुर का राजा पहले कामरू का

ही ठाकुर था, जिसने बहुत से ठाकुरो को जीतकर सारे कनौर को एक राज्य बनाया, और फिर अपने लोगो को लेकर शिमला तक की सतलुज-उपत्यका और जमुना की ऊपरी शाखा पब्बर उपत्यका मे अपना राज्य फैलाया। यह कई सौ वर्ष पुरानी बात है। राज्य विस्तार के साथ राजधानी कामरू (मोन) से हटाकर सराहन और पीछे रामपुर मे ले जानी पडी। मोन मे अब भी पुराने काल के बहुत से रिवाज प्रचलित है। यहा के बदरीनाथ ही रामपुर राजा के कुलदेवता थे, और वह बडी तडक भडक से कभी कभी गढवाल के बदरीनाथ के पास मुलाकात करने के लिए जाते हैं। उन्हे बडे बदरीनाथ के साथ एक सिंहासन पर बैठाकर पूजा जाता है। सवत् १६३२ (सन् १८७५) मे ऐसी ही एक यात्रा का जिक्र बदरीनाथ के रावल परसोतम को लिखे पत्र मे था—'सोसती श्री महास्री बदरीस पर चरजा राजोल परसोतम जी स्री महास्री परमभटारक श्री महारजदिरज स्रो समसेरसिंघे पएलगणा पहुँचे। इहा के समाचार बले है। ताह के बले चहिए। उप्रन्त इससे हमार गदी का देवता श्रमनस्सी बद्रीनाथ जी मारफत नेगि रोणबद्र व चोबदारी नेगी हीरामन के बद्रीजी के बेजे गए। सो दवतेजी को सगार पहनाकर सगसन उप्र बटालके पुजा मनता हच्छी तरह करणा। बद उसके मरफत नेगी रोणबद्र की दवतेजी को बेज देणा। आइद सुब पत्र लिखते रहेणा। स० १६३२ हड गते २७ सुब।'' राजा शमशेर सम्बधित दूसरी चिट्ठी मे लिखा था —

स्री महास्री परमवटारक श्री महाराजदिरज श्री महारज स्री समसेर सिंघे दवन वचन। कमरु देवते बद्रीनाथजी के करदारन नेगी राणबद्र दीसे अच राम रम वचन बोल्या उप्रन्त जोकी बद्रीनाथजी अबके बद्री जान का हुकम फरमावते होगा सो देवतेजी की मरजी हुकम माफिक देवताजी बद्री क्षेत्र मे वसक ले जाणा। बमूजब रकम के बद्री क्षेत्र मे पूजा कर दणो और सकारी तरफ से देवतेजी का रकम खरच अज तक मिलाकर ती सा अववी रकम मूजब दवतेजी खरच सकार मे मिल जाएगी। तुमन रकम बमुजब

स्वग्चेल्गा दणी। तुमको सकार से मुजरे मिलेगे। स० १६३२ रे ह प्रबिस्टे ३१ लिख्या हुक्म परमण सुभ।"

किले के भीतर कुछ आदमियो को छोडकर कोई नही जा सकता। वहाँ पुराने कागज पत्र और कुछ दूसरी चीजो के होने का पता था। दुर्ग की प्रधानता के बारे मे यही सभा का राजा जब तक गद्दी पर नही बैठ लेता, तब तक उसको राजा नही समझा जाता था। भीतर कई धातु मूर्तियाँ है, जिनको थानापति कहते हैं। तिब्बत की सीमा यहा नजदीक है। सात दिन मे पश्चिमी तिब्बत के प्राचीन और प्रसिद्ध मठ थोलिंग म पहुँचा जा सकता है। वस्पा उपत्यका के ऊपरी भाग म छितकुल आदि के लोगो की मुख मुद्रा तिब्बती है। परम्परा बतलाती है कि किसी समय सागला मे अलग ठाकुर था, और मोने म अलग। दाना म सघष हुआ। अत मे वस्पा के ठाकुर मुलोविस्नान की स्त्री न धोखा दिया और पतिकुल की जगह पितृकुल को सहायता पहुँचाई। इस प्रकार धोखे से सागला परतत्र हुआ।

मोन के किले को मोनेगोरग कहते हैं। यह नीचे पौन २८ हाथ लम्बा चौडा है। इसम पाच तले है, सबसे नीचे पाँच घर—गोदाम, गुसलखाना, कोठा, रसोई और पानीघर के हैं। दूसरी मजिल म तीन कोठरियाँ हैं—सबसे छोटा एक खाली कमरा है, पूजा गृह बहुत बडा और तीसरा थानापति का कमरा है, जिसके बीच मे राजा की गद्दी है। तीसरी मजिल पर पाँच कमरे हैं—एक कभी नही खुलता, दूसरा भीमाकाली के आने पर बलिदान का, तीसरा बलि व पशु का प्रोक्षण करन का, चौथा सराहन की भीमाकाली के बैठने का और पाँचवाँ राजा के सामान बख्तर, बारूद, हथियार, सिक्का आदि रखन का है। चौथी मजिल पर तीन कमरे हैं—सबसे बडे म राजा की बैठक, छोटे म रनिवास तीसरे म गुसलखाना, चौथे मे बडा रसोईघर। पाँचवी मजिल पर सिर्फ एक कोठरा है, जिसमे दुर्ग का देवता बटकुला रहता है।

वासपा उपत्यका विशेषकर साँगला और नीचे के गाँव अब बौद्ध बहुत कम प्रभावित रह गए हैं, और ब्राह्मणो के न रहने पर भी

प्रभाव छाया हुआ है। टहरी की भागीरथी उपत्यका के ब्राह्मण आजकल यहाँ पूजा कराने तथा जन्मपत्री बनाने के लिए आए थे। माने के बदरीनाथ मन्दिर के पास ही एक छोटा सा बुद्ध मन्दिर है, जिसमे लोगों के घरों मे निकली बहुत-सी बौद्ध प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। इनमे एक धातु की बहुत सुन्दर और प्राचीन है। यहा कुछ हस्तलिखित पुस्तकें भी हैं, जिनकी पुष्पिका से कुछ ऐतिहासिक बातें मालूम होती हैं।

उस दिन कितना ही समय मान और सांगला मे बिताकर हम बँगले पर चले आए। ११ तारीख को फिर देखासुनी मे लगे। सांगला का बौद्ध-मन्दिर पुराना मालूम हुआ। उसमे शाक्यमुनि के साथ सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की मिट्टी की मूर्तियाँ थी। "अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता" की २६ इंच लम्बी और ६ इंच चौडी हस्तलिखित पोथी बहुत पुरानी थी, जो उसके तालपत्र की नकल पर बने हर पत्र के दो गोल छिद्र तथा कुछ उच्चारण रीतियों से मालूम होता था। इनकी तीन पोथियाँ रही होगी, जिनमे दूसरी ही यहा है। इसमे कितने ही चित्र भी बने हुए है। मतक के लिए यहा गरुड पुराण और 'वर् दोल थोस-ग्राल् छेन मो" दोनों का पाठ किया जाता है। इस पुस्तक की पुष्पिका के लेख से मालूम होता है कि खुनू (कनौर) को बुद्ध-शाक्यमुनि का उत्तम धर्मक्षेत्र माना जाता था। यही पर धार्मिक राजा समसेर सिंह के समय अमात्य (कलान) की रामवर के समय यह पुस्तक लिखी गई थी। अर्थात् पुस्तक सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीथी।

छोलट्ट—जो चपरासी मिला था, वह बडा ही बेपर्वाह निकला। ११ तारीख को वह लापता हुआ तो १२ को भी वह दिखाई नही पडा। अपने ही तीन तीन रुपए मे १४ मील के लिए चार भारवाहक को करके हम १२ अगस्त को रवाना हुए। ब्रूय तक पंगी ब्रह्मचारी परमानन्द भी साथ हो गये। ८ बजे से चलकर ६ घण्टे म किल्वा पहुँचे। सतलज के बाएँ किनारे यह अपेक्षाकृत गरम स्थान है। सफेद अँगूर यहा के पककर खतम हो गए थे और काले अधपके मिले। आडू भी अच्छे और स्वादिष्ट थे। उस रात वहा

ठहरकर सवेरे जलपान के बाद चल पड़े और पाँच मील का सफर डेढ़ दो घंटे में पूरा करके हम छालटू पहुँच गए। सतलुज के बायें तट पर काफी समतल भूमि में जगत महात्मा ने अच्छा खासा बाग लगा दिया है। बहुत से फलों के दरख्त हैं, जिनके लगाने में यह ख्याल रखा गया था, कि लोगों में दवा-देशी बागबानी का शौक बढ़े। अँगूर ज्यादा थे किन्तु खट्टे और अब वह खतम हो गए थे। सरदा लगाकर भी देखा गया था यद्यपि वह उतना मीठा नहीं था, जितना काबुल का। नासपाती बहुत अच्छी थी खरबूजा भी स्वादिष्ट था। फलों के कबेटा जितना मीठे न होने के कारण वर्षा की अधिकता है। यहीं सहसराम के एक वैरागी साधु मिल गए। वह पचीस साल से हिमालय में ही चक्कर काट रहे थे। ऐसी बेसरोसामानी में यात्रा करना इन्हीं के बूते की बात थी। और यात्रा सिर्फ यात्रा के लिए ही करते थे। घुमक्कड़ जैसा भी हो, मेरे लिए वह स्नेह का पात्र है—"ना जाने किस रूप में नारायण मिल जाय।" कौन जानता है, इन्हीं में गुदड़ी का लाल कोई महा घुमक्कड़ मिल जाए। उनके साथ बैठकर खाने में मुझे आनन्द आया।

सराहन—१४ अगस्त को सवेरे चलकर दो मील पर टापरी में बेगार बदलना था। चपरासी के जोर पर हम आदमी मिलते थे, कोई मन से काम करने के लिए थोड़े ही आता। मन से काम करनेवाले आदमियों को रखना हो, तो उन्हें शिमला से ही खाना और मजूरी निश्चित करके ले जाना चाहिए। टापरी से आगे जाकर पुल पार हो फिर सतलुज के बाएँ किनारे ११ बजे बांगतू डाकबँगले पर पहुँचे। सड़क इंस्पेक्टर बाबू लक्ष्मीनन्द मिले। कुछ दिक्कत हुई, साथ आगे भारवाहक विचार के लिए तैयार हो गए। बाबू लक्ष्मीनन्द की घोड़ी सवारी के लिए मिली, निचार में हम एक घंटा ठहरे। वहाँ डाकखाने से कुछ चिट्ठियाँ लीं, और फिर चलकर ७ बजे पौंडा पहुँचे। बाबू लक्ष्मीनन्दजी सराहन तक के लिए हमारे साथ थे, जहाँ १५ अगस्त के इतवार के दिन हम पहुँचे। आज स्वतंत्रता दिवस था। आज ही के दिन पिछले साल अँग्रेजों ने भारत का पिण्ड छोड़ा था। लेकिन यहाँ

कोई चहल पहल नही थी। स्वतन्त्रता जब तक साकार न हो, तब तक लोग उसके महत्व का कैसे समझ सकते है? पौडा मे १ बजे चौरा डाकबँगले पर पहुँचे और वहा डेढ घटा भोजन विश्राम के लिए ठहरकर उसी दिन ६ बजे सराहन पहुँच गए। उस वक्त वर्षा हो रही थी।

१६ अगस्त को हमे सराहन ही मे रहना था। कामरू के बाद और रामपुर के पहले बहुत समय तक सराहन ही राजधानी रहा। यहा की भीमा काली राज्य की इष्ट देवी है। भीमाकाली के मदिर मे बहुत से पुराने कागज पत्रो दूसरी एतिहासिक चीजो और सिक्को की सभावना थी, इसी लिए मै बडी लालसा के साथ यहा आया था। बँगले से नीचे रावी ब्राह्मणो का गाँव है जिसमे २४ भारद्वाज, १६ वासिष्ठ, २० कौसल गोत्री परिवार रहते हैं। रामपुर के राजा यद्यपि अपने को चन्द्रवशी और प्रद्युम्न की सतान बतलाते है, और कनौर ठाकुरो के वश से अपने सम्बन्ध को छिपाना चाहते है। पर रावी के ब्राह्मणो की परम्परा बतलाती है, कि दो भाइयो मे एक भाई राजा हुआ और दूसरे भाई की सन्तानें रावी के ब्राह्मण हैं। एक पोथी बहुत बद बद मे रखी हुई थी। देखने की उत्सुकता हुई लेकिन जब मालूम हुआ कि यह कागज की है, तो न देखने का पछतावा नही हुआ। ब्राह्मणो के पास की कितनी ही पुरानी पोथिया सतलुज मे बहाई जा चुकी है लेकिन अब भी कुछ पुस्तकें हैं। एकादश स्कन्द भागवत् पर दोहा चौपाई मे सवत् १६९२ (१६३५ ई० मे चतुरदास की लिखी एक पोथी देखी। एक गीता की टीका भी पहाडी और हिन्दी मिली जुली भाषा मे थी।

देवी के मदिर मे गए। उसके जिस्ट (मनजर) सपनी के नेगी विद्या नन्द के मुह से यह सुनकर मन रह गया, कि सरदार बल्देवसिंह ने यहा के पुराने कागजो की होली जला डाली। कागजो ने क्या अपराध किया था? हाँ अपराध कर सकते थे, क्योकि उस वक्त रामपुर मे राजा के और सराहन मे देवी के खजाना की लूट हुई थी। आतक के मारे कोई चीं नही कर सकता था। जिसको चीं करने की हिम्मत थी उसे भी लूट मे शामिल कर लिया गया था। किसी भी ससस्कृत व्यक्ति या समाज के लिए यह असल

बात थी। शिमला लौटने पर चीफ कमिश्नर का ध्यान इधर दिलाया था। अपनी पुस्तक "किन्नर देश मे" मैंने भी लिखा लेकिन किसी के कानो पर जू तक न रेंगी। इस महा अपराध को धालकर सभी पी गए। बगले के एक हिस्से म रामपुर के एम० डी० ओ० साहब अपनी पत्नी के साथ ठहरे हुए थे। शिष्टाचार के नाते मैंने नमस्ते किया, लेकिन उन्ह नमस्ते लेने की भी फुरसत नही हुई। अपनी पत्नी के साथ बचारे ताश के खेल म लीन थे। मुझे अपनी इस गुस्ताखी पर अफसोस हुआ। यही से पुण्यसागरजी अपने गाव गये।

रामपुर—१७ अगस्त को पाच पाच रुपए मे तीन कुली करके ६ बजे हम रामपुर क लिए रवाना हो गए और पाच बजे वहा पहुँच गए। रास्ते म एकाध बार मामूली बूद पडी। रात को रेज क्वाटर म ठहरे। मच्छरो और खटमलो न नीद हराम कर दी, जिससे बचन के लिए उठ बठे और सारी रात लिखने पढने म बिता दी। १८ अगस्त को भी रामपुर ही म रहना था। अपनी पुस्तकें लिए कुछ और सामग्री जमा की। उस दिन सवेरे ही उठकर स्कूल मे चले गए। प० दौलतरामजी न मसहरी का प्रबन्ध कर दिया। रामपुर म भी पश्मीने की चादरे बनती हैं। ये अधिक शुद्ध और गरम होती हैं, पर कश्मीरो जैसी सफाई नही। पश्मीना कीडे के लिए रसगुल्ले जैसा ही स्वादिष्ट होता है। गर्मी म उसकी रक्षा करनी बहुत मुश्किल है तो भी मैंने दो चादरे ली। १६ २० तारीख को रामपुर म रहते पुस्तक के काम म अथवा मित्रो परिचितो से मिलने जुलने म व्यस्त रहा श्री विद्याधर विद्यालकार ने इस यात्रा म मेरी बडी सहायता की। रामपुर से किसी चीज की जरूरत होती, वह भेज दिया करते थे। वह गुरुकुल कागडी के आयुर्वेद के स्नातक हैं, और यहा जगलात म खजाची का काम कर रहे थे। उनकी विद्या का कोई उपयोग नही था, इसलिए असतुष्ट होना स्वाभाविक था। फ्रेजर की पुस्तक "हिमाल" यहा पढने को मिली। फ्रेजर १८१४ के गोरखा अग्रेज युद्ध म अग्रेजी सेना के साथ बिसाहर और गढवाल म घूमा था। उसकी यह पुस्तक १८२० मे लन्दन म छपी थी। इसम बहुत-सी महत्वपूर्ण सूचनाएँ थीं।

२० का विमाहर की प्रजा ने आन्दोलन मे प्रमुख भाग लेने वाले प० सत्यदेव और मास्टर अनुलाल मिलने आए। अब वह दूध की मक्खी बन गए हैं। नौकरशाही ढाचे ने रियासत का जकड लिया है, जिसमे न प्रजा का कोइ पूछ है न उसके नेताओ की। तिब्बती सीमान्त पर बसनेवाले लोगो का बारूदी हथियार रखने की कोई रुकावट नही थी। अब उसका लेखा जोखा हो रहा था और सरकार हथियार का कानून लगाने जा रही थी। अनुलाल और सत्यदेवजी ने रियासत के अत्याचारो का हिम्मत के साथ मुकाबिला ही नहीं किया था बल्कि शक्ति हाथ मे आ जाने पर भी उसका दुरुपयोग नही किया। कुछ दिनो के लिए यहा न राजा का राज्य था और न भारतीय सरकार का। उस समय लूट मच जानी आसान थी, लेकिन ये ही दोनो नेता थे, जिन्होने शान्ति स्थापित की। राज्य और देवो के खजाने का लूटा गया, यह दिल्ली के देवताओ की ओर से भेजे गए नौकरशाहो का काम था। मास्टर अनुलाल और प० सत्यदेव इसके खिलाफ आवाज नही उठा सकते थे, क्योकि शिमला से गोली गट्ठा लेकर आए। सिपाही यहा के हर तरह के "विद्रोह' को दबाने के लिए तयार होकर आए थे।

**नौगढी**—२१ अगस्त को ६ बजे नाश्ता के बाद चले। आज २३ माल की मजिल मार के काटगढ पहुँच गए। लाला खुशीराम के बारे म सुनकर मुझको उनका कारखाना देखने की इच्छा हुई। लालाजी भी साथ थे। खुशीराम के पिता जगलात के ठेकदार थे। काफी रुपया कमाया था, लेकिन अन्त मे सब बरबाद करके बेटे को दरिद्रता मे फँसा के छोड गए। खुशीराम म सपना देखने की शक्ति थी और हाथ पैर मे काम करने के लिए भी तैयार थे। सतलुज और नौगढी के खड्ड के कोन पर काफी पडी जमीन थी। वह पत्थरो से ढकी थी। पन्द्रह साल पहले उन्होने पत्थरो को साफ करना शुरू किया। नौगढी के पानी से पनचक्की के लिए एक नहर निकाली और उस पर आटे की चक्की लगा दी। धीरे-धीरे चावल कूटने की चक्की चावल फटकने की चक्की तेल का कोल्हू और लकडी चीरने का काम भी इसी

दलबल से करना शुरू किया। एक डिनामा लगाके बिजली भी पैदा करनी शुरू की जिसका काम अभी राजा और अफसरा के रडियो की बैटरियो म बिजली भरना, और घरों मे बत्ती जलाना था। इस समय २५ और १० मन आटा प्रतिदिन पीसने वाली दो चक्कियाँ चल रही थी। अधिकाश मशीनें भारत की बनी हुई थी। तेल का कोल्हू प्रतिदिन दो कनस्तर सरसो और चार कनस्तर खूबानी का तेल पेलता था। चावल की चक्की ४० मन धान प्रतिदिन कूटती थी। डिनोमा ११० वाल्ट का था, जिसे तीन हजार म खरीदा था। डिनामो और तेल की मशीन को छोडकर सारी चीजें स्वदेशी थी। माथ मे रहने का अच्छा खासा दोमंजिला घर था। खेत म फल और साग सब्जी काफी हो जाती थी। यहीं से शुरू करके उस वक्त ४०-५० हजार की चीज उन्होंने खडी कर दी। सबसे बडी बात यह कि अपने इस प्रयत्न से उन्होंने दिखला दिया, कि छोटे छोटे उद्योग किस तरह सफलतापूर्वक चलाये जा सकते हैं।

मैंने उनसे पूछा, कि आपके और मनसूबे क्या हैं? उन्होंने बतलाया पहले तो नहर को बढाकर उसे तिगुना पानी देने लायक बना देना है, जिस पर तीन हजार रुपया खर्च होगा। २२० वोल्ट के डिनामो के लिए १० हजार रुपया और २२० वोल्ट की मोटर के लिए ५ हजार रुपया हो, और दो हजार के दूसरे सामान। तब हम पानी से नहीं, बल्कि पानी से बनी बिजली से अपनी मशीनो को चलाने लगेंगे। ८ हजार लगाकर ऊन धोने, धुनने, रंगने और प्यौनी करने की मशीन लगा के लोगों को प्यौनी किया हुआ ऊन सस्ते मे देने लगेंगे। ५ हजार और लगने पर ऊन कताई बुनाई की मशीन भी लग जाएगी। यह निश्चय है, कि अगर ऊन धुला-धुना रंगा प्यौनी के रूप में लोगों को मिले तो ऊनी कपडे का व्यवसाय बहुत बढ जाएगा, और जरा सा सुधरे हुए चरखे को लेकर लोग उसमें काफी पैसा कमाने लगेंगे। सिर्फ ५० हजार रुपये का सवाल था। सरकार इस वक्त और अब भी करोडों रुपया व्यवसायियों को कर्ज दे रही है। मैंने चीफ कमिश्नर तक पहुँचा दी थी। लेकिन, मालूम नहीं कि

सरकार के कानो पर जू रेगी या नही। खुशीरामजी को मैंने कहा, अपने इसी काम से अपना और दूसरो का बहुत उपकार कर सकते हैं। राजनीति के चक्कर मे न पडना नही तो दोस्तो से अधिक दुश्मन पैदा कर लोगे। खुशीराम देखने मे बडे सीधे सादे प्रौढ उमर के आदमी थे। रामपुर मे राजा के दरबार मे पहुचना उनके लिए आसान था, लेकिन शिमला के दरबार मे वह पहुँच सकेगे इसमे सन्देह है।

**निरत**—नौगढी से चार मील जाने पर दत्तमन्दिर मिला। जान पडता है नौगढी से नीचे काफी दूर तक सतलज का यह बाया तट पुराने जमाने मे भी बहुत महत्व रखता था। सम्भव है रामपुर की जमीन पर भी राजधानी बनने से पहले कोई पुरानी बस्ती रही हो। वहाँ सतलज का पाट कम होने से वही लोहे का पुल बन गया। परले पार पजाब का कुल्लू है और इस पार हिमाचल प्रदेश। हिमाचल प्रदेश बनाते वक्त यह भी खयाल नही आया कि कागडा कुल्लू को भी मिलाकर एक चक्र बना दिया जाए। दत्त मन्दिर मे कुछ दूकानें है, और पुराने मन्दिर का अवशेष भी। चार मील चलने पर निरत मे पहुचे। यह मन्दिर ९वी १०वी शताब्दी का मालूम होता है। बूटधारी द्विभुज सूर्य की मूर्ति इसकी प्राचीनता को बतला रही थी। बूटधारी मूर्ति शको द्वारा प्रचारित हुई, लेकिन इस मूर्ति को ईसा की पहली तीन शताब्दियो का नही माना जा सकता। अक्षयवट के किनारे बहुत सी खनिज, विष्णु और हरगौरी की मूर्तिया थी। मन्दिर के भीतर धोती पहने बिना जाया नही जा सकता। ४ घर ब्राह्मण पुजारी है, जो अपने को आदि गौड और भारद्वाज गोत्री कहते—"उत्तरे मास भाजनम्" के शास्त्रवाक्य के मानने वाले है लेकिन गरीबी के कारण छठे छमाहे ही मास भोजन मिलता होगा। मन्दिर की भूमि आसपास की भूमि से ज्यादा नीची है, जो भी उसकी प्राचीनता को बतलाती है। मन्दिर के बाहर मण्डप (जगमोहन) है। सभी पत्थर का बना है और शिखरदार। बगल मे देवी का मन्दिर है, जहाँ पशुबलि होती है। सतलुज के किनारे कई मील नीचे और ऊपर तो तिब्बत की सीमा के भीतर तक इतना प्राचीन मन्दिर कोई नहीं है। मछुओ

ने मछली पकड़ रखी थी, लेकिन वह बनी-बनाई नही थी, और हम उसे ढोकर ले जाने के लिए तैयार नही थे, इसलिए शुद्धि माता के प्रसाद से वंचित हो गए।

अन्त में हम उस जगह पहुचे, जहाँ से कोटगढ की चढाई शुरू होती है। घोडे पर सवार थे। वर्षा हो रही थी। ठाणादार और कोटगढ मिली जुली बस्ती है, बाजार का नाम ठाणादार है। सत्यानन्द स्टोक्स के निवास के कारण मशहूर है। बाजार से कितनी ही दूर हटकर अस्पताल है, जहाँ पर डा० भगवानसिंह का निवास था। हम सामान लिए दिए वहाँ पहुँचे। डा० भगवानसिंह मेरे पुराने मित्र है। १९३३ मे लाहुल मे जब वह डाक्टर थे, तब कुल्लू मे उनके दर्शन हुए थे। पजाबी हैं, किन्तु बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर अब अपने लिए बौद्ध लिखते हैं। उनकी पत्नी लाज जन्मजात बौद्ध है। अब सारा परिवार ही तथागत के धर्म को मानता है। एक तो बहुत दूर से रास्ते का थका-मादा आया था, और फिर रोगी के लिए डाक्टर की छाया बहुमूल्य होती है। अब पाँच दिन के लिए उन्ही का अतिथि बन गया।

कोटगढ उस समय ईसाई मिशनरियो का गढ था। चर्च मिशन ने यहा बहुत-सी इमारतें खडी की थी, मिडल स्कूल बनाया था कई धर्म प्रचारक रहते थे। लेकिन, अग्रेजी शासन के ऊपर सभी चीजें आधारित थी। उनके जाने के बाद अवनति होनी आवश्यक थी। अब मिशन के इन्चार्ज पादरी धर्मसिंह थे। लाइब्रेरी अब भी अच्छी अवस्था मे थी। शिक्षा की माँग है, इसलिए मिडल स्कूल अब हाई स्कूल मे बदल गया। रग ढग से मालूम होता था, कि यहा के मिशन की भी वही हालत होगी, जो स्पू, चिनी और केलग की हुई। डाक्टर साहब के निवास की बगल की इमारत अभी ही गिरने लगी थी। जिस घर में डाक्टर बोध रहते थे, वह भी उनके ही कारण सुरक्षित था।

अगस्त मे कोटगढ मे उतनी ही सर्दी मालूम होती थी, जितनी चिनी मे। यह स्थान सात हजार फुट ऊँचा है भी। आजकल कोटगढ अपने सेबों

के लिए मशहूर है, जिसका सारा श्रेय स्वर्गीय सत्यानन्द स्टोक को है। सत्यानन्द पादरी स्टोक अपनी जन्म भूमि अमेरिका मे पहाडियो को ईसाई बनाने के लिए आए थे। वह धनी परिवार के पुत्र थे, इसलिए धर्म प्रचार उनके लिए जीविका का साधन नही था। यहा आने पर कुछ प्राचीन इसाई परम्परा और कुछ भारतीय सम्पर्क ने उन्हे एकान्तवासी योगी बना दिया। थोडे दिनो के लिए नही, बल्कि सात वर्ष तक वह एक गुफा मे रहते रहे। पीछे उन्हे यह बेकार मालूम हुआ, और प्रचार के काम म भी रस नही रहा। फिर वह एक पहाडी तरुणी से ब्याह करके गृहस्थ बन गए। शादी या यो ही भारतीय नारियो से सम्बन्ध स्थापित करके भारत मे रह जाने वाले अनेको युरोपियन हुए है। हर्षिल के शिकारी विल्सन १८४० म आकर हिमालय मे ही बन गए थे। उनकी पहाडी स्त्री की सन्तान म पिता की सस्कृति मे शिक्षित हो एग्लो इण्डियन बनी, और एकमात्र बच रही बहू के बाद उस पुरुष का नामानिशान नही रहेगा। उसने गढवाल म पहले पहल आलू का प्रचार किया। उसने नदियो द्वारा ऊपर के जगलो की लकडी नीचे भेजने का पहले पहल रास्ता निकाला था। स्टोक अधिक दूरदर्शी थे। उन्होने देखा, बिना इस मिट्टी से अभिन्नता स्थापित किए काम नही चलेगा। वे हिन्दू बनकर स्टोक बन गए। प्रथम महायुद्ध के जमाने म जिसने अंग्रेजी सेना म भरती करने का काम किया था, तथा विजय के स्मारक को अपने बँगले के भीतर खडा किया था, वह भारत को अब भी परतन्त्र रखने की अंग्रेजो की मनोवृत्ति देखकर विद्रोही हो गया। खादी पहनी, प्रचार किया, जेल गए। अपने हाथ के बनाए विजय स्मारक को हटाकर वहा छोटा-सा गीता मन्दिर बना दिया। वह बढई के काम मे दक्ष थे। उन्होने अपने हाथ से नागरी अक्षरो म काष्ठ पर गीता और उपनिषद् के वाक्य खोदकर उसमे लगाए। मन्दिर म कोई मूर्ति नही, केवल गीता के प्रतीक कृष्ण और अर्जुन का चित्र है। पीछे अपने पुत्र प्रीतमचन्द के आग्रह पर हवनकुण्ड भी बना दिया।

सत्यानन्द के तीन पुत्र और तीन पुत्रिया है। सबसे बडे प्रीतमचन्द

इधर से जाते वक्त पहले ही मुझे मिल चुके थे, और सबसे छोटे लालचन्द से २६ अगस्त को उनके घर पर घंटा तक बात होती रही। लालचन्द का ब्याह यहाँ के सेब के बागों के सबसे बड़े स्वामी तहसीलदार अमीचन्द की लड़की से हुआ। दो लड़कों का ब्याह रायसाहब देवीदास की लड़कियों से हुआ। लड़कियों में एक का ही ब्याह एंग्लो इण्डियन में हुआ। एक दामाद क्वेटा का वकील है, जो विस्थापित होकर भागकर चले आए।

कोटगढ़ में सत्यानन्द स्टोक को याद करने के लिए यही बात नहीं है। वे कोटगढ़वालों के पिता थे। जब वह मरे, तो सारे कोटगढ़ और आसपास के लोग उनके लिए ऐसे रो रहे थे, मानो अपना बाप मर गया। वे अपने बच्चों की जिम्मेवारी को समझते थे, लेकिन उससे भी बढ़कर कोटगढ़ वालों की सेवा जीवन का आदर्श मानते थे। देश विदेश से पचासों जाति के मेवों को मँगाकर उन्होंने अपने यहाँ लगाया और उसकी पौध तैयार करके लोगों को लगाने की प्रेरणा दी। पहाड़ में दस के बनिए पहुँचकर बुरी तरह से लोगों को लूटते हैं। एक बार उनका चढ़ा कर्ज फिर घर द्वार, खेत खलिहान बिकवाकर भी नहीं उतरता। ऐसे कर्ज से स्टोक लोगों की रक्षा करते थे, स्वयं बिना सूद रुपया देते। इस प्रकार यहाँ के लोगों की जमीन बिकने नहीं दी। जब लोगों ने सेबों की फसल होती देखी और उसे अच्छे दाम पर शिमला जाकर बिकते भी, तो उन्होंने सेबों के बाग लगाने शुरू किए। आज यह सारा इलाका मेवों के बाग से भरा है। यहाँ के सेब दिल्ली और दूसरे शहरों में जाते हैं। सुनहला सेब तो यहाँ का बहुत ही स्वादिष्ट और मीठा होता है।

डा० बौध कुछ ही सालों में अब नौकरी से अवकाश लेनेवाले थे। डायबेटीज ने मुझे अब घुमक्कड़ होने लायक नहीं रखा था। जरा भी कहीं छिल जाए तो लेकर महीनों बैठे रहो। यह क्या घुमक्कड़ी के लिए अनुकूल हो सकता है। डा० बौध ने शिमला से सीधे कुल्लू जाने वाली सड़क पर, प्रायः साढ़े ५ हजार फुट की ऊँचाई पर, अनी में आठ दस एकड़ जमीन ले रखी थी। अभी यह सड़क मोटर लायक नहीं बनाई गई है, लेकिन उसके

बनने म कोई दिक्कत नही है। यह दिल्ली से नाक के सीधे उत्तर जा कुल्लू पहुँच जाती है। सतलुज मे लोह का पुल है, और आगे पीछे सडक का चौनी भर करन की देर है। उधर १५ मील तक मोटर सडक बजारत आई है। आजकल इसम दो सरकारा का साझा है, सतलुज से दक्षिण हिमाचल प्रदश और सतलुज से उत्तर पजाब सरकार का। सरकारा के साथ वा काम और भी मुश्किल होना है। लेकिन किसी समय वह मोटर सडक बन के रहगी, और फिर अनी और उसके आसपास के इलाके का भाग्य चमकेगा। कुल्लू का सब भी इसी रास्ते आएगा। अनी मे मिश्नरियो ने अपना अड्डा बनाया था, उनका बगला बिक चुका है। मुझे भी अब कही ठण्डी जगह म रहकर काम करने का ख्याल आ रहा था। डा० वौघ न अनी मे अपने साथ या अलग रहन का निमत्रण दिया। चश्मे का पानी पास था, जगल का मनोहर दृश्य, और डेढ मील पर ही डाकघर। पाच छ हजार मे छोटा सा लकडी का बगला बन सकता था। दिल तो मचलने लगा था।

२३ को भी वर्षा हो रही थी। शिमला जान का रास्ता बन्द था। पैदल जाने मे इस समय पहाडो से पत्थर गिरने का डर रहता था। इसलिए जब तक मौसम अनुकूल न हो जाए तब तक यहा से चलने का इरादा नही किया जा सकता था। समय को जहा तहा मिलने जुलने मे खच किया। २३ अगस्त को रायसाहब अमीचन्द से मिलने गए। रायसाहब अभी भी तहसीलदार थे, इस साल उनका सेबो का बाग ४५ हजार रुपये मे बिका था। यह तब जबकि ६० ६५ रुपये वाली पेटी (३५सेर) अब ४५ ४० रुपये मे बिकी। रास्ता ठीक न होने से खच्चरो पर लादकर सेब नारकण्डा भेजा जाता। वैसे मौसिम म कोटगढ मे रेलवे और एजेन्सी रहती है, जो भेजने का काम अपने जिम्मे ले लेती है। एजेन्सी के इन्चाज रमेशचन्द्र बडे उत्साही तरुण थे। उन्होने जिम्मा ले रखा था कि जैसे ही जीप आएगी, मैं इन्तजाम करूँगा। रायसाहब का बगीचे के प्रबन्ध के लिए चिन्ता की जरूरत नहीं थी। उनकी पत्नी सुभद्रादेवी सब काम बडी दक्षता से कर लेती थी। दम्पती का एक लडका बी० ए० म पढ रहा था, अकाल ही उसका देहान्त

हुआ। अब एक लडका प्रकाशचन्द था, जो एम० एस सी० कृषि मे करके कुछ दिनो सरकारी नौकर रहा। लेकिन, घर छोड वही अकेले रहता। बडा होनहार तरुण था। कहते अफसोस होता है, अभी पिछले साल दिसम्बर १६५८ में शिकम की तरफ किसी दुघटना म उनका दहान्त हो गया। माता पिता और तरुणी विधवा के ऊपर क्या बीती है, इसे शब्दो में कैसे कहा जा सकता है ? अभी उनकी माता की चिट्ठी आई थी, जिसम अपनी विह्वलता और विवशता को प्रकट किया था। इससे पहले ही किसी न मुझे इस दुघटना को बतलाया था, और बाद में डा० बौध की चिट्ठी से भी मालूम हुआ था। सब-कुछ रहते भी इस वृद्ध दम्पती का घर वीरान हो गया। काल कुछ मलहम का काम देगा, लेकिन घाव जीवन भर नही भर सकेगा, इसमे सन्देह नही।

डा० बौध के निवास के पास से नीचे उतराई की ओर देखने पर दूर फिर उठने पहाड दिखाई पड रहे थे। इसी उतराई के सबसे निचले भाग मे मानसरोवर के पानी को लेकर सतलुज नीचे की ओर जा रही थी। वह पानी जो पहले बहुत कुछ बेकार समुद्र मे जाने के लिए छोड दिया जाता था, अब मनुष्य के हाथो भाखडा-नगल के कृत्रिम समुद्र और विद्युत-उत्पादन के काम मे लगने वाला है। इसी उतराई के रास्ते जाने पर वह सडक मिल जाएगी, जो कि कुल्लू को जाती है। एक बार आस्टिन को पटियाला के पहले राजा ने कुल्लू तक ले जाकर दिखला दिया था कि सडक बनाना मुश्किल नही है।

पहाड की गरीबी बडी समस्या है, और यातायात भी। अग्रेजी राज्य की एक और बडी देन है रतिज रोग। जहाँ-जहाँ गोरे की छावनियाँ रही, वहाँ वहाँ सूजाक और आतशिक की बीमारी फैली। डा० भगवानसिंह से बढकर इसके बारे मे कौन बतला सकता था ? उन्होने बतलाया, लाहुल कोटगढ मे २५ प्रतिशत लोग इसके मरीज हैं, कुल्लू, बागी, निमण्ड, काटन खाई म तो मुश्किल से ३० सैकडे लोग रोगमुक्त होगे। सूजाक स्त्री पुरुष को निस्सन्तान बना देता है जिसके फलस्वरूप हर गाँव म कितने ही ५

उच्छिन्न हो गए या हो रहे हैं। मेनिसिलिन सूजाक की रामबाण दवाई है, लेकिन वह पूरी तौर से इस रोग को तभी उच्छिन्न कर सकती हैं, जब कि संदिग्ध कोई व्यक्ति बिना इन्जेक्शन का न रह जाए। आतशिक पर तो उसका प्रभाव नहीं पडता, यद्यपि उसका सम्बन्ध कुष्ट से नहीं बतलाया जाता, किन्तु अंग भंग तो लोग होते ही है।

डा० बौध का स्थान अनी नारकण्डे से २४ मील और लुरी के पुल से १३ मील हैं (सतलुज पार सिर्फ ११ मील)। लूरी सतलुज के इसी पार है। वहां तक जीप और मोटर जा सकती है। डा० भगवानसिंह का बडा लडका कितने ही दिनों से घर से भाग गया था। चिन्ता होनी ही चाहिए किन्तु घुमक्कड क्या बिना प्रसव वेदना के पैदा होते हैं। जवान है, दुनिया की सैर करता होगा, यद्यपि इस तरह की स्पष्टवादिता मैं डाक्टर साहब के सामने नहीं कर सकता था।

देश के बटवारे के समय १६४७ की अन्तिम तिमाही में हिन्दू मुसल्मानों का जो दंगा पंजाब में हुआ था, उसकी छींटें यहां भी पडी थी। गूजर लोग अर्ध घुमन्तू मुसलमान है। ये भैंसें पालते, उनके बचने तथा घी का रोजगार करते है। भैंसो के पीछे पीछे बराबर एक जगह से दूसरी जगह घूमना उनका काम है। उस आंधी में इनके ऊपर भी प्रहार हुआ, और बहुतों ने हिन्दू बनकर अपनी जान बचाई। अब वह फिर अपने धर्म को मानते हैं। उनके लिए एक और समस्या खडी हो गई। पर्वतों की पीठों की सब जगहों में बडी अच्छी घास होती है। पहले इन चरागाहों का पहाडियों के लिए कोई मूल्य नहीं था, अब वह भी अपने पशुओं के चरने के लिए गोचर भूमि मांगते है, और गूजरों को उससे वंचित करना चाहते हैं। गूजर वर्षों से अपनी इस्तेमाल की जाती भूमि छोड नहीं सकते। यह बडा सिरदर्द है। गूजरों में चोआण, डिड, ददड गोरसी चाड पुसवाड, ठाकरिए काइस लोदा, कसाणे पटाणे आदि भेद मिलते हैं। गूजर उन्हीं कबीलों में से हैं, जो ईसवी-सन् के आरम्भ में मध्य एसिया से शकों के साथ भारत आए थे। कोटगढ में एक घर बतलाया गया जिसने उस आंधी के जमाने में हिन्दू बन

पर अपनी जान बचाई थी। लालचन्द स्टोक के मौसा नसीब अली के ऊपर भी आंच आ रही थी, लेकिन उनका नाम ही मुसलमान था, नही तो वह ईसाई थे। अब बूढ़े हैं, स्टोक की कृपा से थोडी-सी सम्पत्ति बाग-बगीचे के रूप मे है, जिससे गुजारा करते हैं। नसीब अली जाति से दरद हैं, जिनकी भूमि गिलगित आजकल पाकिस्तान मे है। यह खाम और तिब्बत मे बहुत दूर तक घूमे हुए हैं। मन तो करता था, दो चार दिन पास मे बैठकर उनकी यात्रा का विवरण तैयार कर लू। १९वी सदी के उत्तरार्द्ध मे हिमालय के पार के देशो का पता लगाने के लिए बहुत से लोगो ने साहस यात्राएँ की थी। गिलगित से पूर्व मे चीन की सीमा के भीतर तक गये हुए घुमक्कड की यात्रा कम मनोरजक नही होगी।

कोटगढ छोडते समय मालूम हुआ, अगले अप्रैल मे अभी जरूर आना होगा। डा० भगवानसिंह से दो एकड जमीन ले लेंगे, और तीन चार हजार मे लकडी की कुटिया बन जाएगी। कोटगढ रहने के लिए अनुकूल स्थान नही है। मई जून मे यहाँ पानी दुर्लभ हो जाता, लकडी का दु ख, नौकर का दु ख तो है ही। अभी जरूर मोटर से २४ मील दूर है जिसमे ६ मील चढाई का भी पडता है लेकिन, यह दिक्कत कुछ सालो बाद नही रहेगी, जब कि कुल्लू की मोटर सडक बन जाएगी। लेकिन उस दिन की ये सब कल्पनाएँ मन के लड्डू थे। डा० भगवानसिंह ने भी पेंशन लेने के बाद बच्चो की शिक्षा के लिए और अपने काम के लिए अभी से बेहतर कुल्लू को समझा।

नारकण्डा (९१६० फुट) जीप का इन्तजार कितने दिन करते? २७ को ९ बजे सवेरे सामान को कुली पर रखवाकर मैं चल दिया। नारकण्डा वस्तुत नागकण्डा है। कण्डा पर उस नाग देवता की मढी अब भी मौजूद है, जिसके कारण इस कण्डा (डाडा, जात) का यह नाम पडा।

नारकण्डा जब ४ मील रह गया, तो बाई ओर एक मोटर-सडक ६ मील पर बागी को जाती दीख पडी। बागी नारकण्डा से भी ऊँचा स्थान है। अभी सडक चालू नही हुई थी। वह आगे बढती हुई राहू तक चली जाएगी,

जिसके कारण जमुना की नाला पत्थर की विशाल उपत्यका भी आधुनिक यातायात के साधनो के लिए खुल जाएगी। १२ बजे के २० मिनट पर हम नारकण्डा पहुँचे। बतलाया गया था, वहाँ जीप आती है, लेकिन जीप-मोटर का वहीं पता नहीं था। यहाँ का डाकबगला बहुत विशाल और आदर्श बगला है। अनुमति लेने की कोई जरूरत नहीं, जो भी आए ठहर जाए, और खानसामा निश्चित दाम पर चाय, भोजन दे देता है। इसी तरह के सारे बगले हो तो सैलानियो का कितना आराम रहे। आज जन्माष्टमी थी। दूकानदार अपनी भक्ति और शक्ति के अनुसार उसको मना रहे थे। आज हम यहीं रहना था, लेकिन कल की चिन्ता थी। इसी समय किसी को रामपुर ले जाकर लौटता रिक्शा मिल गया। २२ मील आगे ठियोग तक के लिए १८ रुपये मे सामान के साथ मुझे ले चलना स्वीकार किया। वहा से तो मोटर-बसें शिमला को जाती ही रहती हैं।

**ठियोग**—२८ को ७ बजे चल दिए। २२ मील मे से साढे १७ मील मैं पैदल ही चला। वस्तुत सामान के लिए रिक्शा की जरूरत थी, नहीं तो मैं पैदल चल सकता था। अन्त मे भी जल्दी चलने के लिए ही रिक्शे पर चढा, क्योकि मालूम था, दो बजे मोटर चली जाती है। मोटर तैयार भी थी, लेकिन जब आदमी का किराया डेढ रुपया और आलू का फी मन ४ रुपया हो, तो कौन मोटरवाला आदमी को चढाने की बेवकूफी करेगा। कलान मोटर सर्विस के ड्राइवर ने लेने से इन्कार कर दिया। रग तो यह मालूम होता था कि शायद कोई भी मोटरवाला ले जाने के लिए तैयार न होगा। प्राइवेट मोटर सर्विसो की यही हालत होती है। खैर चार घन्टा बैठना पडा और ६ बजे दूसरी गाडी मे जगह मिली। उसमे भी १२ १४ बोरे आलू लादे थे। रास्ते मे काफी वर्षा पडी। रात के साढे ९ बजे हम मोटर से उतरकर फर ग्रोव मे नायर साहब के पास पहुँचे।

**शिमला**—अब पाच दिन के लिए हम शिमलावासी हो गए। पता लगा ५ सितम्बर को सम्मेलन कार्य समिति की बैठक है, इसलिए उस दिन वहा पहुँचना जरूरी था। इन पाच दिनो को शिमला के घूमने, जहाँ तहा

लोगो मे विशेषकर श्री एन० सी० मेहता से मिलने मे बिताया। मेहताजी से मैंने कहा, कि नर देश का महत्व ऐसे मेवा के पैदा करने के लिए बहुत है, जिनकी भूमि क्वेटा पाकिस्तान मे चली गई। वहा बहुत तरह की धातुएँ है, लेकिन इन दोनो कामो के लिए मोटर की सडक बनाने की जरूरत होगी। चिनी के कल्पा स्थान मे छोटे विमानो के लिए अवतरण भूमि तैयार हो सकती है। चिनी के मिडिल स्कूल को हाई स्कूल बनाना चाहिए। तिब्बती भाषाभाषी लोगो को शिक्षा तिब्बती मे देना चाहिए। इनके अतिरिक्त मैंने वहा के पुरातत्व और काठी की मूर्तियो के बारे मे भी बतलाया, और कहा कि उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। उनके कहने से मालूम होता था कि शायद इन बातो मे किसी के भी हाथ की सम्भावना नही। हिमाचल प्रदेश से कुल मिलाकर जो आमदनी होती थी, वह नौकरशाही के खर्च के लिए ही पर्याप्त नही थी। दूसरे काम सिर्फ दिल्ली के बल पर हो सकते थे। ३० अगस्त को मिलने पर ठाकुर गोविन्दसिंह का भी यही कहना था, कि सारे खुशामदी या दूसरे प्रान्त के अफसरो से दफ्तरो को भर दिया है। राजाओं के सामने जो खुशामदे चलती थी, उससे भी ज्यादा अब उनका रवाज है। एक मैट्रिक पास पुरुष रघुवीर जुब्बल के ए१० डी० आ० है, दूसरे उसी तरह के आदमी बुशहर मे भेजे गए है। एक दिन का काम महीने भर मे भी नही होता। राडू तहसील मे अड्डेल का पानी का हौज बिगड गया जिसके कारण नल मे पानी नही मिलता और लोगो को तकलीफ है, लेकिन कही कोई सुनवाई नही। मज्जी का अस्पताल तोड दिया गया। कोई अफसर शिमला छोड बाहर जाने के लिए तैयार नही। अगर कोई दौर पर निकलता है तो दस आने की जगह पाच आना सेर दूध ले लेना चाहता है। ऐसा होने होने पर क्यो न बहुत से लोग समझे कि इससे राजा का राज ही अच्छा था। जब मैंने हिमालय मे कही रहने का विचार प्रकट किया, तो मेहताजी ने चम्बा के खजियार को बतलाया। यह तो मानता ही था, कि यदि अपना स्थायी निवास कही बनाना हो तो वह ६ हजार फुट के आसपास होना चाहिए। बाकी १० हजार फुट से ऊपर है,

पर ६ हजार फुट से ऊपर सेव खटटे हो जाते हैं। कुल्लू के चन्द्रकान्तजी चिनी म आना चाहते थे आते तो लिखन मे जरूर मदद करते, लेकिन उन्हें तक्लीफ भी होती। यहा शिमला मे साथ घूमते रहे। बी० ए० पास करके अब काई काम ढूढ रहे थे। साहित्य का भी शौक है, लेकिन भूखे रहकर साहित्य सेवा ता नही की जा सकती। उनके अपने खेत और बाग हैं, जिसम जीविका चलाते हुए साहित्य सेवा करनी मुश्किल नही थी, लेकिन आज के शिक्षित का ऐसा जीवन पसन्द कसे आ सकता है?

रियासतों के विलयन के समय राजकोश और राजाओ की चीजा पर किस तरह हाथ साफ किया गया इसकी बहुत सी बातें मालूम हुइ। रामपुर के खजाने के बारे मे लिख ही चुका हूँ। और सराहन की देवी के खजाने के लूटने का काई पता निशान न रह जाए, इसके लिए पुरान कागजा की जा होली जलाई गई थी, वह भी बतला चुका हू। राजाआ के चादी के टी सेट, पुराने चित्र और दूसरी कितनी ही चीजे सरकारी अफसरा न अपनी बना ली। कुछ महीनो के लिए ता "राम नाम की लूट है लूट सके ता लूट" का नारा लगा हुआ था, लोगो ने लाखा से अपना घर भर दिया।

१ सितम्बर को मित्र लाग यहाँ के फैशनेबुल रस्तरा डेविका क बाल रूम (नत्यशाला) मे ले गए। साढे ४ रुपय मे सीटें रिजव थी। खान के साथ नत्य और दूसरे तमाशे देखन थे। गागिया पाशा और उसके दल न नत्य और दूसरे करतब दिखलाए। पाशा ने ताश और सिगरेट के कुछ मनो रजक तमाशे दिखलाए, दूसरा ने सरकस व खेल। चार आने का टिकट लेने पर मडली की लडकी के साथ नाचन की छूट थी। एक सिक्ख छाकरा—जा नाच कुछ भी नही जानता था—चार-चार आने का टिकट लेता एक तरुणा के साथ बार बार नाचने लगा। चार आना टिकट लेकर जो कोई पीठ पर हाथ रख देता उसके साथ नाचने के लिए सुन्दरी बाध्य थी, और दूसरे नाचने आदमी को छोड देना हाता। नतकिया एग्लो इडियन थी। सिक्ख छाकरे को इस तरह जल्द जल्द टिकट लेकर हाथ रखत देख डर लगन लगा था, कि कही यहाँ हिन्दू सिक्ख झगडा न हा जाए। शिमला से हम प्रयाग चले आए।

## १३

# परिभाषा के काम मे

प्रयाग—गर्मियो म फिर शिमला आने का इरादा था, इसलिए कुछ सामान यही छोड दिया। लन्दन से लाया रेडियो यही छोडकर चिनी गए थे अब उसे भी बेकार समझ बेचकर छुट्टी ले ली। कालका से प्रयाग के लिए ८६ रुपये १५ आन मे द्वितीय श्रेणी की सीट रिजर्व कराली थी, इसलिए रेल की चिन्ता नही थी। ३ सितम्बर को नय्यर दम्पती और उनकी बहिन रजनी का आतिथ्य के लिए धन्यवाद देकर ढाई बजे अड्डे पर पहुँचा। बतलाया गया, गाडी एक घटे बाद जाएगी, लेकिन वह ४ बजे चली। नीचे उतरने के साथ एक ओर गर्मी बढ रही थी, और दूसरी ओर दात का दर्द था, नही कह सकता किसने अधिक परेशान किया। कालका म सहयात्रियो ने चाय पीने मे घटा भर लगा दिया। आगे यात्रा रात को करनी पडी और कार की बत्ती मे अपना मुह देखने भर की शक्ति नही थी। डर लगता था कही नीचे की ओर न चली जाए। खैर, किसी तरह साढे ८ बजे कालका पहुँच गए। गाडी तैयार थी। ऊपर की बर्थ मिली थी, जिससे मैं बचना चाहता हूँ, क्योकि रात मे कई बार पेशाब के लिए उतरना पडता है। ट्रेन साढे १० बजे रवाना हुई। सवेरे दिल्ली पहुँचे। घटे भर से अधिक ठहरे रहे। मैं दात के दर्द से बहुत परेशान था। दिन भर ऊपर ही बर्थ पर लेटा रहा, कुछ नही खाया, पर्वा जान थी। यही सोच रहा था, कि माच रे अन्न

मे पहाड पर चला जाना चाहिए और नवम्बर के आरम्भ म ही वहा से नीचे उतरने का नाम लेना चाहिए। बस पाच महीने से अधिक मदान के लिए देना चाहिए, तभी कुछ काम किया जा सकता है, तभी शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है। मेरे कम्पाटमेट म चार आदमी थे। सुदरलाल गासाइ लाहौर मे वकील थे, छ हजार महीने की आमदनी, और हाईकोट के जज बनने की आशा भी थी। पाकिस्तान ने सब पर पानी फेर दिया। दो हजार अब भी कमा लेने ह। घर मकान गया, लेकिन रहने का काम किसी तरह चल ही जाता है। पच्चीस हजार रुपये का पुस्तकालय था, जिसमे स तीन चौथाई पुस्तको को इसलिए मँगा पाए कि जफरुल्ला स उनकी दोस्ती थी। दूसरे ये शाहजादा मिजाज के कोई सेठ कुमार, जो सदा मोटर और मोटर के पुर्जों की बाते करते थे। तीसरे सज्जन कुछ हँसमुख थे, जो कानपुर मे उतर गए। इस समय जमुना, गगा, घाघरा की बाढो से युक्त प्रात म हाहाकार मचा हुआ था। बाढ या सूखा, युक्त प्रात के किसी न किसी हिस्से को हर साल घेरे रखता है। जान के नुकसान से बढकर मुसीबत है जीविका के नाश की। इसकी दवा तभी हो सकती है, यदि फसलो का अनिवाय बीमा हो। अच्छी फसल के समय सरकार कुछ प्रतिशत ले ले, और फसल बिगडने पर बीमा की हुई मात्रा मे अनाज को दे दे। ४ तारीख को प्रयाग पहुँचकर श्रीनिवासजी के यहा ठहरा।

५ को रविवार था। सरकारी कार्यालय मे काम करने वालो की सुविधा के लिए सम्मेलन की समितियो की बैठकें अक्सर रविवार को हो हुआ करती हैं। इस समय उस दिन ११ बजे से काय समिति की बैठक हुई। सम्मेलन नियमावली के सशोधन का काय हो रहा था। नियमावली के सशोधन का काम और पहले से चल रहा है। यदि टण्डनजी ने जरा कम दीघसूत्रता से काम लिया होता, तो शायद नियमावली काफी पहले स्वीकृत हो गई होती और फिर गुट के चीटो से भुगतने की नौबत न आती, और न सम्मेलन दल दल म पडा होता। सशोधन रखा गया कि सम्मेलन के प्रधान और प्रधान मन्त्री तीन-तीन साल के लिए चुने जाएँ और वही

मन्त्रिमण्डल बनाएँ। दिल्ली म सम्मेलन भवन बनाने के लिए सरकार पाच लाख रुपये इस शत पर दे रही थी, कि सम्मेलन भी पाच लाख और जमा कर ले। यह कोई मुश्किल नही था, लेकिन उसम भी आखिरी निणय टण्डनजी के हाथो म था। सब जगह कुछ ही दूर जाने पर रास्ता रुक जाता। टण्डनजी उच्च आदश पर चलन वाले है उनकी नियति पर सदेह नही किया जा सकता था। पर किसी किसी काम को घडिया और मिनटा मे निश्चय करने से ही काम चलता है और वह साला म भी निणय पर नही पहुँचना चाहते।

उसी दिन कुमारी केम्प से मुलाकात हुई। वह युगास्लाविया की नागरिका और इस समय इलाहाबाद युनिवर्सिटी मे रूसी पढा रही थी। युगोस्लाविया की भाषा और रूसी भाषा का बहुत नजदीक का सम्बन्ध है। अँग्रेजी भी उनकी मातृभाषा सदश रही, इसलिए उनके जैसा अध्यापक आसानी से नही मिल सकता था। लेकिन, उनका अपना विषय था पुरातत्व और नृतत्व, जिसके लिए यहा काम का सुभीता नही था, यह उनके सामने बडी अडचन थी।

इस समय बाढ आई हुई थी। १९१६ की बाढ की तल से भी पानी ऊपर बढ गया था। जो मोरियाँ गगा मे पानी ले जाने के लिए बनी थी अब वे पानी लाने वाली हो गइ, यदि उन्हे खुला रखा जाता। लोग शक्ति थे। ८ तारीख को तो बल्कि क्रास्थवट महिला कालेज म छोटी-सी नदी बह रही थी जमुना क्षुद्र नदी की तरह इतरा रही थी। ९ तारीख को दानो बहनें जब उतरने लगी, तो लोगो की जान म जान आई।

'शासन शब्दकोश'' को प्रेस म दे दिया गया था, और चौथाई कम्पोज भी हो गया था। जो कुछ घटाना-बढाना था, वह प्रूफ मे करना था। सबसे पहले इसी काम को पूरा करना था। अभी 'किन्नर देश म'' का कुछ हिस्सा लिखने को बाकी था, और ''आज की राजनीति'' और 'घुमक्कड शास्त्र'' तो दिमाग से कागज पर उतरे भी नही थे, उनके लिए भी प्रकाशको की माँग थी। ९ सितम्बर को शासन शब्दकोश के पहले फाम को छापने की

आज्ञा दे दी। उस दिन पश्चात् अधिक हालत मालूम हुई। हिमालय के नियमपूर्वक चहलकदमी का कोई असर नहीं हुआ ? मैं निराश नहीं हुआ और अगले दिन से ना ६ मील रोज टहलने का नियम बना लिया, और इतना या कुछ कम कई महीनों तक नियमपूर्वक घूमता रहा। बनारस से दुखद खबर मिली रायकृष्णदास का घर गिर गया। आजकल घर बनाना आसान नहीं है और उनका खानदानी घर बड़ा भव्य था, पास में गंगा की धारा दिखाई पड़ती थी। उसी दिन मालूम हुआ, हैदराबाद के बारे में भारत सरकार कुछ करने के लिए तैयार है। १३ तारीख को पता लगा, कि भारतीय सेना शोलापुर, बेजवाड़ा, मनमाड और चादा—चार जगहों से हैदराबाद में घुसी है, जिनमें दक्षिण (बेजवाड़ा और पश्चिम शोलापुर) से मुख्य आक्रमण हो रहा है। शोलापुर से वह ढाई सौ मील आगे बढ़ चुकी है। संचालक जेनरल राजेन्द्रसिंह के एक कम्यूनिक से साफ था, कि भारत सरकार निजाम को बरकरार रखना चाहती है। यही क्यों, वह तो बहुत पीछे तक यह भी चाहती रही कि हैदराबाद में पड़े महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र के हिस्से सदा अपने स्वाभाविक बंधुओं से अलग रखे जाएं। रिज़वी के इस्लामी रजाकारों (स्वयं सेवकों) ने हैदराबाद में हद कर दी थी। वहां दूसरा पाकिस्तान कायम हो गया था। हजारों हिंदू परिवार अपने को अरक्षित समझकर रियासत से बाहर चले गए थे। लेकिन, रजाकार आधुनिक सेना का मुकाबिला कैसे कर सकते थे ? अगले दिन की खबर से भी यही पता लगा, कि बहुत प्रतिरोध नहीं हो रहा है। १७ सितम्बर की शाम को ५ बजे निजाम ने अधीनता स्वीकार की और पास ही दिनों में हैदराबाद काण्ड खतम हो गया। हैदराबाद में कोई कारवाई की जाए, इसके लिए पटेल ने ही दृढ़ता दिखाई। नेहरू अपनी सज्जनता से हमेशा हिचकिचाते रहे। यह भी कहा जाता है कि सेनाओं को बढ़ने का हुक्म दिया जा चुका था उसी दिन आधी रात को अंग्रेज प्रधान सेनापति ने सरकार को बतलाया कि ऐसा करने पर पाकिस्तान हमला कर देगा, और दिल्ली अहमदाबाद और बम्बई को पाकिस्तानी हवाई जहाज ध्वस्त कर देंगे।

दिल्ली के देवताओ मे घबराहट हो गई थी, लेकिन अब तो तीर हाथ से निकल चुका था।

प्रयाग मे रहते विद्यार्थियो और तरुणो के सगठनो के किसी न किसी काम मे भाग लेना आवश्यक ठहरा। १३ सितम्बर को कायस्थ पाठशाला मे छात्र सघ का उद्घाटन करने गए। अगले दिन शाम को इडो सोवियत सोसायटी का उद्घाटन और भाषण देना पडा।

बहुत दिनो से मैं जोर दे रहा था कि उर्दू की अमूल्य निधियो को नागरी अक्षरो मे लाना चाहिए। मेरे सभापति होने के समय सम्मेलन से ऐसी १६ पोथियों के निकालने का निश्चय भी हो गया था, लेकिन कोई उसके लिए आगे नही आया। गोयलजी ने उर्दू कविता पर एक बहुत सुन्दर पुस्तक "शेर-ओ शायरी" लिखी, जिसकी भूमिका मुझे लिखने के लिए कहा। मुझे ऐसा करने मे बडी प्रसन्नता हुई क्योकि गोयलजी का उर्दू काव्य का गभीर ज्ञान और लिखने की शक्ति ऐसी थी, जिसके द्वारा हिन्दी पाठको को उर्दू कविता के समझने मे आसानी होती। काफी बडी पुस्तक लॉ-जर्नल प्रेस मे बडी सुन्दर छपी। हिन्दी वाले उर्दू कविता के प्रेमी है, यह इसी से मालूम होगा, कि पुस्तक का प्रथम सस्करण एक साल मे ही खतम हो गया, और फिर उत्साहित होकर गोयलजी ने कई भागो मे 'शेर-ओ सुखन" को प्रकाशित करके उर्दू कविता के बहुत बडे भाग को हिन्दी पाठको के लिए सुलभ कर दिया। यह सन्तोष की बात है, लेकिन मैं इसको पर्याप्त नही समझता। उर्दू का सारा मूल्यवान गद्य और पद्य साहित्य नागरी अक्षरो मे छपना चाहिए। उर्दू भाषा के लिए नागरी लिपि भी अपनी लिपि हो जानी चाहिए। उर्दू हमारी भाषा है, उर्दू का साहित्य हमारा है, उर्दू के महान कवि और लेखक हमारे अपने हाड मास है। उर्दू लिपि मे पुस्तको के प्रकाशन मे अब बहुत कमी हो गई है, उस लिपि के पढने वाले भी कम होते जा रहे हैं। ऐसी अवस्था मे उर्दू-साहित्य नागरी मे जल्दी आना और भी आवश्यक है। इसका यह मतलब नहीं, कि उर्दू साहित्य को उर्दू लिपि का

वायकाट करना चाहिए। हा, उर्दू के प्रचार मे उर्दू लिपि को बाधा के रूप मे सामने नही आना चाहिए।

पंजाब मे चीनी के बढने से अब उसकी तरफ उपेक्षा नही की जा सकती थी। उसकी चिकित्सा के लिए कई तजर्बे कर चुका था, आयुर्वेदिक दवाइया भी खाई थी। ३० सितम्बर को एक सप्ताह के लिए मैंने निरन्न भोजन करने का निश्चय कर लिया, और अण्डा, मास, मछली तथा फल यही भोजन मे रखे। मैं इसे फलाहार कहता था। और सचमुच ही यदि फल के अतिरिक्त दूध को भी फलाहार माना जा सकता है, तो इसका क्या नही। सवेरे आध सेर दूध श्रीनिवासजी के यहा से आ जाता था। मास या मछली बिना पानी के चढा दिए जाते। पककर उनमे स्वय काफी सूप पैदा हो जाता। नमक के अतिरिक्त और कोई मसाला या तामसिक चीज साथ मे लेना नही चाहता था, लेकिन मछली की गध को दबाने के लिए प्याज और कुछ चीजो के डालने की जरूरत थी। टडनजी वैसे बडे भक्त राधा स्वामी है, लेकिन उनका मेरे ऊपर विशेष स्नेह या अनुग्रह कहिए, वे भी चाहते थे, कि मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहे, ताकि मैं अच्छी तरह काम कर सकू। एक दिन उन्होंने किसी दूसरे परिचित रोगी का उदाहरण देते हुए बतलाया भी था, कि वे मास खाया करते थे। इस भोजन के नियम से कुछ ही समय लेने से लाभ मालूम हुआ, और पेशाब कम होने लगी। टहलना भी मैंने पूर्ववत जारी रखा, तो भी २८ अक्तूबर को चिनी आने मे कोई रुकावट न देखकर जान पडा —इसुलिन लेना ही चाहिए। लेकिन, नियमपूर्वक इन्सुलिन लेने मे अभी दो वर्ष की देर थी जब सब तरफ से भटककर और खतरे मे पडकर देख लिया, कि इसुलिन छोड "नान्या पन्था विद्यते ऽयनाय"।

बहुत सालो बाद २९ की शाम को आर्य समाज मे हिन्दी दिवस के सम्बन्ध मे व्याख्यान देना पडा। मैंने सोचा था, इतने सालो मे यहाँ भी परिवर्तन हुआ होगा, लेकिन वह धर्म क्या, यदि उस पर काल का प्रभाव पडे? सभा के बाद अब भी वही 'हे दयामय हम सबो को शुद्धताई दीजिए'

की तुकबन्दी गाई जा रही थी। सबसे बड़ा आश्चर्य यह हुआ कि अपने को आर्यसमाजी कहलाने वाले एक सज्जन ने फलित ज्योतिष पर छींटा कसने के लिए मुझसे विवाद करना चाहा।

इधर "शासन शब्दकोश" की छपाई चल रही थी, उधर आगे के परिभाषाओं के काम के बारे मे भी हम तैयार हो रहे थे। विद्यानिवासजी और माचवेजी कलकत्ता, कटक, नागपुर आदि मे जाकर वहा के अधिकारी विद्वानो से मिल आए थे। सबने हमारे कोश को बहुत पसन्द किया था। साइन्स की परिभाषाओ के बनाने के लिए एक साइन्स और भाषा दोनो के जानकार योग्य आदमी की तलाश थी। डा० महादेव साहा ने श्री सुरेशचन्द्र सेन गुप्त का पता दिया। वे साइन्स के एम० एस सी० थे संस्कृत और रूसी तथा युरोप की और भी कितनी ही भाषाओ के अच्छे जानकार थे। वे इस काम के लिए उपयुक्त थे और वैसे ही साबित भी हुए। बहुत बातो मे वे विद्यानिवास जैसे ही थे। प्रयाग विश्वविद्यालय के दर्शन के अध्यापक डा० विश्वनाथ नरवणे दर्शन की परिभाषाओ की जिम्मेवारी लेने के लिए तैयार थे।

अपनी आर्थिक स्थिति की ओर ख्याल करना जरूरी था क्योंकि सम्मेलन से पैसा लेकर मैं काम करना नही चाहता था। इस साल ४१०० रुपए के करीब किताब महल से रायल्टी मिली थी, जो अकेले रहने पर भी मेरे लिए अपर्याप्त थी। कभी इतनी रकम को मैं बहुत काफी समझता, लेकिन इस वक्त तो इससे काम चलना मुश्किल था।

अगली गर्मियो मे फिर कहीं भागना था, और वहा भी खर्च की जरूरत थी। साथ मे एक सहायक की आवश्यकता तो अनिवार्य मालूम होती थी। पुण्यसागर का ज्ञान इतना कम था, कि उनसे काम नही चल सकता था। चन्द्रकान्तजी शिमला मे साथ रहे। उनका आग्रह था, कि मैं कुल्लू चलूं। कुल्लू म नगर मुझे बहुत पसन्द था। डा० जार्ज रोयरिक का खडला (पूना) से पत्र आया, जिसमे उन्होने लिखा था, कि हम नगर के अपने निवास उरुस्वती को बेचना नही चाहते, किन्तु काम की सुभीते की दृष्टि से कलिम

लता था। ३ अक्तूबर को साहित्य ससद् भवन म रसूलाबाद गया। महादवी जी की यह सस्था गगा के किनारे बहुत अच्छे स्थान पर है, लेकिन आर्थिक चिन्ता से पीडित लेखक शहर से दूर इस सस्था का लाभ कैसे उठा सकता है? आज से पचास वष बाद इसका मह व बहुत बडा हो सकता है, लेकिन आजकल तो यह सिफ तमाशे की चीज ही है।

कितनी ही पुस्तकें मैं केवल अपनी इच्छा पर ही लिखता हूँ। कभी कभी ऐसी पुस्तक भी लिखनी पडती है, जिसमे मित्रो का बाध्य करना भी सहायक होता है। यद्यपि लिखता हूँ तब भी वैसी ही पुस्तक मे जिसमे मेरी रुचि होती है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इधर कई वार हिन्दुस्तानी एकेडमी के लिए एक भाषण तैयार करने के लिए कहा। मैंने "बौद्ध सस्कृति" पर वचन दे दिया। उस समय नही मालूम था, कि मुझे इतनी बडी पुस्तक लिखनी पडेगी, और दुर्लभ समय म से भी कई महीने निकालकर उसे देने पडेंगे, फिर पुस्तक छपकर तैयार हो जान पर भी फरवरी १९५६ तक उसके पाठको के हाथ मे पहुँचने की नौबत आएगी।

टाइप के सुधार की ओर भी मेरा मन दौड रहा था। मैं सोच रहा था, यदि ऊपर-नीचे की मात्राओं का बगल मे रख दिया जाए, तो हिन्दी के छोटे आकार के टाइप भी देखने म काफी बडे और मोटे मालूम होंगे। आजकल दस प्वाइट के शरीर वाले टाइप का आकार वस्तुत ६ प्वाइट के बराबर होता है। इसी दिक्कत के कारण ६ प्वाइट के टाइप हिन्दी म ढाले नही जा सकते। मैंने यह बात प्रयाग के एक टाइप फौड्री के स्वामी को बतलाई और उन्होंने इस तरह का टाइप ढाल भी दिया। मैं चाहता था, अपनी एक दो पुस्तक इस टाइप मे छपवाऊँ। अक्षरो के आकार म तो कोई अन्तर था नहीं, इसलिए पढने म दिक्कत नही हो सकती थी। सुधरे हुए टाइप मे मेरी किसी पुस्तक को आनन्दजी छापने वाले थे। पीछे सब तितर बितर हो गया और टाइप बन के बन रह गए। ४ अक्तूबर की रात को भिनसार तक पने की सहायता लेनी पडी। भोजन म अगले दिन की डायरी के अनुसार —"सवेरे आज सर शुद्ध दूध श्रीनिवासजी के यहाँ से आ जाता है, और शाम

का यहाँ मँगा लेते हैं। आध सेर मछली या माम और सवा मेर सब या दूसरे फल—जिनका किलारी परिणाम है साढ़े १६०० जो अपर्याप्त है। यदि पाव भर माम और बढ़ाएँ, तो ८०० किलोरी और बढ़कर २२००, २३०० किलोरी होकर पर्याप्त होगा।"

'शासन शब्दकोश" मे तुरत हाथ लगाना टडनजी के कारण हुआ था। इधर मैंने सविधान के मसौदे के हिन्दी अनुवाद को जब देखा, तो माथा ठनका। यह तो हिन्दी के किसी दुश्मन का ही काम हो सकता था। यह अनुवाद नही किया गया था बल्कि नई भाषा लोगो के ऊपर थापी गई थी। मैंने उसका थोडा अनुवाद करके दिखलाया, तो टडनजी और दूसरे मित्रो का आग्रह हुआ कि सविधान के अँग्रेजी मसौदे का पूरा अनुवाद कर दिया जाए और उसे छाप भी दिया जाए, ताकि सविधान सभा की अगली महत्वपूर्ण बैठक मे उसे लोगो मे वितरण करके बतलाया जा सके, कि यह हिन्दी का कसूर नही है, जो कि उस तरह का अनुवाद सरकार की ओर से नियुक्त समिति ने किया है। डा० रघुवीर से कोई शिकायत नही हो सकती थी, वे अपने पल्लवग्राही पाडित्य के बल पर टाग अडा सकते थे। श्री घनश्यामसिंह गुप्त हिन्दी के बडे प्रेमी और सहृदय पुरुष थे। वे चाहते थे, कि हमारे स्वतन्त्र देश मे अँग्रेजी का प्रभुत्व हटे और हिन्दी उसका स्थान ले। ऐसे काम मे सहायता देने के लिए उन्हे किसी विशेषज्ञ की जरूरत थी, और भूले भटके डा० रघुवीर किसी तरह नागपुर पहुँच गए। लेकिन आश्चर्य होता था, कि इस पर श्री हरिभाउ उपाध्याय श्री कमलापति त्रिपाठी और डा० नगेन्द्र ने क्या ध्यान नही दिया। १०३ धाराओं के अनुवाद को देखने के बाद टडनजी ने कहा, सबका अनुवाद कर डालना चाहिए। मैं और विद्यानिवासजी उसमे जुट गए। अनुवाद करते समय रघुवीरी प्रक्रिया को और नजदीक से देखने का मौका मिला, और उस पर मैंने एक व्यगात्मक लेख भी लिख डाला।

**दरभगा**—दरभगा मे आरियेंटल का फ्रेस हो रही थी। प्रयाग से भी डा० बाबूराम सक्सेना, डा० उदयनारायण तिवारी जा रहे थे। उधर

मुजफ्फरपुर में बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन हो रहा था, उसका भी आग्रह था इसलिए १५ अक्तूबर को साढ़े ७ बजे रामबाग स्टेशन से छोटी लाइन द्वारा मैं रवाना हुआ। सेकंड क्लास की अवस्था कम से कम इस ट्रेन में सुधरी मालूम होती थी। अच्छा डब्बा लगा हुआ था। बनारस गाजीपुर, बलिया, छपरा में भीड़ जरूर रही, और छपरा बलिया में देखने से मालूम हो रहा था, कि अब भी पुराने जमाने की तरह ही बड़ी संख्या में लोग मजूरी करने के लिए बंगाल की ओर जा रहे हैं। पहले वे पूर्वी बंगाल के खेतों में जाकर काम किया करते थे, लेकिन अब तो वे पाकिस्तान में हैं। श्रम मारा मारा फिर रहा है, और उससे समुचित काम लेने की व्यवस्था नहीं है। शारीरिक और मानसिक श्रम की यह बेकारी ही हमारी दरिद्रता का कारण है।

रात को २ बजे ट्रेन मुजफ्फरपुर पहुँची। श्री रामधारी प्रसादजी बाबू उमाशंकरजी और श्री देवदत्त शास्त्री से स्टेशन ही पर मुलाकात हुई। रात का सबसे पहला काम सोने का था। सवेरे मित्रों से मुलाकात होती रही। असहयोग के दिनों में कांग्रेस की सरगर्मियों के समय मुजफ्फरपुर न जाने कितनी बार आता जाता रहा। लेकिन, २० २५ वर्ष में तो नई पीढ़ी आ जाती है, और पुराने परिचित चेहरे विरल हो जाते हैं। अधिवेशन के समय मुजफ्फरपुर नगरपालिका ने मुझे अभिनन्दन पत्र प्रदान किया। ३ बजे ही अधिवेशन में शामिल हुआ। अभिनन्दन के उत्तर में मुझे भी एक घंटा बोलना पड़ा। इस समय डायबेटीज का मन पर भी प्रभाव पड़ रहा था, मालूम होता था, जैसे कुछ नदी में बाढ़ रहा हूँ। साथ ही अनकुस भी लगता था। दरअसल मुझे पहले ही समझना चाहिए था, कि डायबेटीज का एक-मात्र उपचार है, नियमपूर्वक रोज इन्सुलिन लेना। फिर मानसिक शारीरिक सारे क्षोभ मिट जाते हैं।

नागार्जुनजी और नलिनविलोचन शर्मा भी ७ बजे शाम को उसी ट्रेन से दरभंगा की ओर चल रहे थे। नलिनजी अपने डाक्टरेट के निबन्ध के बारे में बातचीत करते रहे। पीछे जब युनिवर्सिटियों के निबन्ध टके सेर हो

गए, तो बहुतो ने उसका ख्याल छोड दिया, और नलिनजी भी शिथिल हो गए। उनसे भी ज्यादा मैं सोचा करता था, कि अपने काल के अद्भुत विद्वान् प० रामावतार शर्मा की सस्कृत और हिन्दी कृतिया को पुस्तकाकार कैसे छापा जाए। उनका सस्कृत कोश तो प्रकाश म बिल्कुल आया ही नही, और डर था, कही स्वदेह जग को प्राप्त न हो जाए। नलिनजी की वह मूर्ति भी मुझे याद है, जबकि दो तीन वर्ष के बच्चे थे, और बनारस मे शर्माजी आधी धोती नीचे और आधी धोती ऊपर किए उनको कधे पर करके गगा स्नान को जाते समय लोगो की जिज्ञासाओ को तृप्त करने के लिए देर तक सडक के किनारे खडे थे। शर्माजी के निबन्ध और पुस्तक अब प्रकाशित हो रहे है, यह बडे हर्ष की बात है।

रात के १२ बजे दरभगा पहुचे। महाराजा दरभगा के लालबाग के अतिथि भवन म ठहराया गया। डा० बाबूराम सक्सना और डा० तिवारी और बहुत से विद्वानो के साथ खेमो मे टिके हुए थे। डा० अमरनाथ झा एक तरह इस सम्मेलन के निमन्त्रणकर्ता थे, प्रबन्ध सारा डा० उमेश मिश्र के ऊपर था। अपनी मातृभाषा भोजपुरी का पक्षपाती होने से मैं भी चाहता था, कि उसको उचित स्थान मिले। भोजपुरी प्रारम्भिक शिक्षा की माध्यम हो, उसमे साहित्य का निर्माण हो। कुछ दूर तक वह न्यायालयो की भी भाषा हो। पर डा० उमेश मिश्र और कितने ही और मैथिल ब्राह्मण इतने से सन्तुष्ट नही हैं। वह हिन्दी के विरोध को मातृभाषा भक्ति का एक अग मानते थे। उनके ख्याल से तारीफ म भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी नही सस्कृत होनी चाहिए। कितनो के मुख को सुनकर तो मुझे याद आता था "नास्त्रा पयोपानपि भवन्ति मूर्खा"। सारे फ़ोरम के कागज पत्रो मे या तो अग्रेजी का प्रयोग किया गया था या सस्कृत का। हिन्दी विद्वेषमूलक मैथिली का मत चन कुछ बूढे और बिगडे दिमागो का ही स्वप्न है। मैथिल प्रतिभा किसी मे बन्द होने के लिए तैयार नही हो सकती। उस सारे भारत के रगमच पर अपना जौहर दिखलाना है। सस्कृत मे आज तक उनका स्थान अग्रिम रहा है। कुछ ही दिनो म जब मैथिली तरुणो के दिमाग का ताला टूटा तो

वे आई० सी० एस० मे भी अपनी सफलता दिखलाने लगे। हिंदी मे नागार्जुन ने गद्य-पद्य दोनो मे अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है, और दूसरे तरुण भी आगे बढ रहे हैं। तरुण पीढी "पुनर्मूषकोभव" मानने के लिए तैयार नही हो सकती, यह निश्चित है। मैथिली साहित्य मे सुन्दर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। हरिमोहन ठाकुर की व्यंगात्मक कृतिया मैथिली मे ही नहीं, हिंदी मे भी बहुत आदर के साथ पढी जा रही हैं। आगे के मैथिल विद्वान् अपनी मातृभाषा और हिंदी दोनो की सेवा करके यश के भागी होंगे, इसमे सन्देह नही।

कान्फ्रेंस के साथ कई और सम्मेलन हुए। १७ अक्तूबर का हिंदी कवि सम्मेलन हुआ। प० माखनलाल चतुर्वेदी का भाषण बडा ही सुन्दर था। चतुर्वेदीजी जैसा हिंदी का सुवक्ता इस वक्त कोई नही है, वह हिंदी के सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। हरेक शब्द और वाक्य चुने हुए गढे हुए बडे लालित्य के साथ उनके मुह से निकलते है। सचमुच मालूम होता है मोती झर रहे हैं मालूम होता है अच्छी तरह लिखे हुए भाषण को कोई सुन्दर पढने वाला पढ रहा है। मुझे जब जब चतुर्वेदीजी के भाषण को सुनने का अवसर मिला, तब तब ख्याल आया, कि इनके भाषणो के कुछ रेकार्ड रहने चाहिएँ, ताकि आनेवाली पीढिया भी देखें, कि उनके पूर्वजो म एक इस तरह का अद्भुत वाग्मी पैदा हुआ था। कवियो को विशेष तौर से नही बुलाया गया था। हिंदी को प्रोत्साहन देना कान्फ्रेंस के प्रबन्धको का इष्ट भी नही था। तो भी नागार्जुनजी ने अपनी कुछ सुन्दर और चुभती हुई कवितायें सुनाई।

अपने विहार के राजनीतिक जीवन मे हर जिले के कितने ही कर्मियो के घनिष्ठ सम्पर्क मे मुझे आने का मौका मिला था। कभी प्रचार के लिए इधर उधर जाने पर कभी प्रादेशिक काग्रेस कमेटी की बैठकों म और कभी वर्षों या महीनो जेल म निरन्तर साथ रहने समय। इन्ही परिचितो मे से एक लहेरिया सराय मे इस समय बीमार थे। उन्हे जब मालूम हुआ, तो मिलने के लिए बुलाया। मैं गया जब वह वृद्ध हो चुके थे, और उस पर रुग्ण भी। कुछ देर तक बातें होती रही। पुराने परिचित से मिलकर बडी

प्रसन्नता हुई। अफसोस है, उस समय नाम लिख नहीं सका और अब याद नहीं आता।

दोपहर बाद पण्डाल खाली था। इस समय संस्कृत के पण्डितों ने अपनी सभा करनी शुरू की। कान्फ्रेंस के लिए समय नजदीक आ रहा था, तो भी पण्डितों की सभा खतम होने का नाम नहीं लेती थी। डा० उमेश मिश्र को बहुत बेचैनी होनी ही चाहिए, लेकिन उन्होंने पालिसी से काम नहीं लिया। फिर क्या था। पण्डित उबल पड़े और उनकी अगुवाई करने के लिए आगे जिले के एक गेरुवाधारी लम्बी चौड़ी मूर्ति मंच पर आकर संस्कृत में प्रबंधकों की धज्जियां उतारने लगी। मैं थोड़ी ही देर पहले पण्डाल से बाहर चला आया था। लोगों को कुछ सूझ नहीं रहा था, इसी समय किसी ने मेरा नाम लिया, मुझे वहां बुलाया गया। उत्तेजित पण्डित मण्डली को शान्त करने में मैं समर्थ होऊँगा, इस पर सहसा मुझे भी विश्वास नहीं था। लेकिन, पण्डित मण्डली मुझे अपना मानती थी, मेरी बात सुनने के लिए तैयार थी। मंच पर जाकर लम्बी चौड़ी मूर्ति से मैंने भोजपुरी में कहा—"सारे देश के विद्वानों के सामने हम लोगों की भद्द हो जाएगी, इसलिए बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए।" पण्डितों का भी उनकी बातों का कुछ जोरदार समर्थन करके और भद्द होने का डर दिखाकर शान्त किया। पण्डाल कान्फ्रेंस के लिए खाली हो गया। इस बात का उल्लेख करते डा० अमरनाथ झा ने कहा था कि उमेशजी में कुछ खानदानी स्वभाव है जिसके कारण रात दिन एक करके सेवा में लगे रहने पर भी ऐसी चूक हो गई। प० उमेश मिश्र प० शिवकुमार शास्त्री के बाद उनके शिष्य तथा उन्हीं की तरह अपने समय के संस्कृत पण्डित चक्रवर्ती प० जयदेव मिश्र के सुपुत्र हैं। डा० गंगानाथ झा (प० अमरनाथ झा के पिता) प० जयदेव मिश्र के शिष्य थे, इसलिए अपने गुरुपुत्र पर बहुत स्नेह रखते थे। महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र भी जल्दी उत्तेजित हो जाते थे, इसका मुझे पता नहीं। लेकिन कुछ कमियों के कारण डा० उमेश मिश्र के गुणों को नहीं भुलाया जा सकता। उनका

संस्कृत भाषा और उसकी संस्कृति से घनिष्ठ प्रेम है। हां, वह सौ साल पहले की दृष्टि से ही उसको देखते हैं।

डायबटीज के लिए चिन्ता बना रहती, मुंह का स्वाद और बार-बार पेशाब का होना ही घबराहट का कारण नहीं था, बल्कि मन भी प्रसन्न रहकर काम नहीं कर सकता था। कभी सोचता शरीर का वजन भी इसमें कारण है। क्या ही अच्छा होता, यदि १५ पौण्ड घट जाता। डायबेटीज वाले के लिए यह क्या मुश्किल है? और आजकल (१९५६ में) तो वह दिन भी देखना पड़ रहा है, जबकि शरीर का वजन उतना (१५२ पौण्ड) ही हो गया है, जितना होना चाहिए था। कान्फ्रेंस में आने का एक यह भी प्रलोभन था, कि परिभाषाओं और हिन्दी के बारे में भिन्न भिन्न प्रदेशों से आए हुए विद्वानों से बातचीत करेंगे। हिन्दी विरोध तो केवल तमिलनाड की चीज है, और उसकी जड़ में भी वस्तुतः ब्राह्मण और अब्राह्मण का सवाल है। अब्राह्मण ९० फीसदी से ऊपर है, तो भी वहां के धन विद्या के सर्वेसर्वा ब्राह्मण शताब्दियों से होते आए हैं, उसी का बदला अब वहां का बहुजन ले रहा था। ब्राह्मण विद्वान् भी तमिल के पक्ष का अब्राह्मणों की तरह अपमान के लिए मजबूर हैं। ट्रावनकोर और आन्ध्र के प्रतिनिधि हिन्दी और परिभाषाओं के बारे में हमारी ही तरह उत्साह दिखला रहे थे यद्यपि अंग्रेजी का मोह अभी बहुतों के पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ था। मुझे तो समझ में नहीं आता था, कि कैसे कोई सोच-समझ रखनेवाला आदमी मान सकता है, कि अंग्रेजी हमारे देश में अनिश्चित काल तक अपने प्रभुत्व को बनाए रखेगी। हम देख ही रहे हैं, कि नई पीढ़ी अंग्रेजी की योग्यता में दिन पर-दिन पिछड़ती जा रही है। आज (१९५६ में) तो नवयुवकों में वही शुद्ध अंग्रेजी बोल समझ सकता है, जिसकी शिक्षा कन्वेन्टों और युरोपियन स्कूलों में हुई है। यह निश्चय ही है, कि इस शताब्दी के अन्त तक ऐसे लोगों की भी संख्या बहुत कम हो जाएगी। यदि अगली पीढ़ियाँ अंग्रेजी को अपने कन्धे पर उठाने के लिए तैयार नहीं हैं, तो सठियाए बूढ़ों का चिल्लाना क्या बेकार नहीं है?

१८ अक्तूबर को ढाई बजे कान्फ्रेंस समाप्त हुई। मैंने इसमें परिभाषा सम्बन्धी अपना लेख पढ़ा था, और अन्तिम दिन नाटक रूपक की बहस में भी कुछ बोला था। उस दिन शाम को हिन्दी महारथियों के स्वागत के लिए टौनहाल में सभा हुई, जिसमें संस्कृत के राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयत्न पर बोलते हुए मैंने कहा—हमारी भाषाओं के उपजीवक की तरह संस्कृत का स्थान सदा बना रहेगा। लेकिन, अब बेटी के समय में माता का सिंहासन का लोभ छोड़ना ही अच्छा होगा। मिथिला विश्वविद्यालय की स्थापना का भी मैंने समर्थन किया, और बतलाया, कि जमींदारी प्रथा के हट जाने के बाद यहां की बहुत सी इमारतें वर्षों में भी मिल जाएँगी। दरभंगा में महाराजा का निजी पुस्तकालय है, जो पुस्तकों की संख्या में बहुत बड़ा नहीं कहा जा सकता, लेकिन उसमें भारी परिमाण में बहुत अच्छी-अच्छी पुस्तकें संग्रहीत हैं। छपी हुई पुस्तकों में ऐसी भी बहुत हैं जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आरम्भिक दिनों में देश या विदेश में मुद्रित हुई थीं।

१९ अक्तूबर को सवेरे हम लोगों को विद्यापति के पद सुनने का मौका मिला। हिन्दी और बंगाली कई विद्वान् मैथिल कंठ से मैथिल कोकिल की कविताओंको सुनना चाहते थे। इसका प्रबन्ध महाराजाके अनुज राजाबहादुर विश्वेश्वर सिंह के यहां किया गया। दरबारी गुनियों ने उसे उस्तादी तरीके से सुनाया, जिसे हम कहीं भी सुन सकते थे। हम तो लोककंठ से उसे सुनना चाहते थे। फिर इन दरबारी गुनियों में इतना बेहूदापन हो सकता है, इसका हमें कभी ख्याल भी नहीं था। सुननेवालों में महिला विदुषी भी थीं, और वह गुनी विद्यापति के नाम से विपरीत रति का पद सुना रहे थे। किसी तरह जल्दी जल्दी वहां से हम भागे।

शाम को ७ बजे स्टेशन पहुँचे। प्रयाग के लिए यहीं डब्बा लग गया था इसलिए हम अब निश्चिन्त थे। अगले दिन (२० अक्तूबर को) हमारी गाड़ी चल रही थी। डा० उमेश मिश्र की अगली पीढ़ी उनके हाथ में नहीं रहेगा, और तीसरी पीढ़ी तो बिलकुल विद्रोह करेगी इसमें सन्देह नहीं। लेकिन, अभी वह अपने पुत्रों पर लाठी के हाथ अपने खान पान के नियम को चला

रहे थे। तीनो पुत्र भूखे चल रहे थे, रेल म छुआछूत और खान पान का वही सनातन नियम पालन करना चाहिए, चाहे चौबीस घंटे का व्रत क्या न रखना पडे। और यह सब उस परम असंदिग्ध परलोक के लिए, जिस पर उनका शायद ही पूरा विश्वास हो। मुझे समस्तीपुर म स्टेशन म सुन्दर स्वादिष्ट बनी हुई मछलियाँ प्लेटफार्म पर बिकती दीख पड़ी तो मैंने समझा सचमुच ही मिथिला स्वर्ग का एक कोना है। किसी मैथिल ने इनके बारे म कहा था, कि अमृत कही दूसरी जगह नही, बल्कि ब्राह्मो दय सकलशास्त्र-विचारदक्षा जम्बीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे।" नीबू के रस म बनी मछलियो का खण्ड कितना स्वादिष्ट होता ह इसे सौभाग्यवान ही जानते हैं। और सकलशास्त्र के महापण्डित होने के बाद भी ब्राह्मण ही ऐसे ह जो पुरानी आर्य प्रथा को अपनाए हुए खाते हो या कही मत्स्य और मास के भोजन से परहेज नही करते। पश्चिम के म्लेच्छा मे खाने पर कभी कभी उन्हें अपने परमप्रिय खाद्य को छोडना पडता ह, और उसके लिए देश लौट कर प्रायश्चित करनेके बाद जब जम्बीर-नीर परिपूर्ण मत्स्य खण्ड मिलता है तो वह अपने को कृतार्थ समझते है। मैथिला के साहस की दाद क्या न दी जाए। मत्स्य, कच्छप और वराह इन तीनो अवतारो को जब वह चट कर गए, "इति मत्वेव भगवान नारसिंह वपुर्दधौ। (तीन अवतारो के खा जाने से डरकर विष्णु ने नरसिंह का अवतार लिया।) यदि सिंहमात्र का अवतार लिया होता, तो भी खैरियत नही थी। मैं देख रहा था, तीनो तरुणो का मुह चौबीस घंटे के व्रत के कारण सूखा हुआ था।

प्रयाग—२० तारीख को प्रयाग पहुचकर ४ नवम्बर तक के लिए फिर मैं परिभाषा के काम मे जुट गया, भोजन म फलाहारी हो गया और जैसा कि मैंने कहा मेरे फलाहार का मतलब था अन्न का सर्वथा त्याग। उसम दूध, मास मछली और फल सम्मिलित थ। रोज ५ ६ मील का टहलना भी होने लगा।

२२ अक्तूबर को श्रीपतजी ने अपना विवाह जाति और धर्म के बन्धन को तोडकर किया। उनकी पत्नी जोहरादेवी बनारस की सुशिक्षिता ग्रेजुएट

महिला है। यह देखकर आश्चर्य हो रहा था, कि पतिकुल में तो हर्ष और उल्लास था। शिवरानीदेवी अपनी बहू का सिर आँखों पर बैठा रही थी पर मातृकुल में शोक और संताप छाया हुआ था—कैसे मुस्लिम कन्या काफिर बनने के लिए काफिर के घर जाएगी। काल जब पहलेपहल प्रहार करता है तो भले के लिए होने पर भी वह प्रिय नहीं मालूम होता। लेकिन, काल ही उसे सह्य और प्रिय भी बना देता है। सामाजिक बातों में पीछे रहनेवाले हिन्दू आगे बढ़ रहे हैं इससे भले दिनों की आशा होती है। मैंने हँसते हुए कहा—बड़ी बहू को भी कौंसिल में अहिन्दू निर्वाचन क्षेत्र से भेज देना चाहिए। आज प्रेमचन्दजी होते, तो वह भी शिवरानीजी की तरह ही पुत्र और बहू को बढ़े हर्ष से आशीर्वाद देते।

२३ अक्तूबर को श्री राजेन्द्र बाबू के पत्र से मालूम हुआ, कि वह भी संविधान के रघुवीरी अनुवाद से संतुष्ट नहीं है।

२४ अक्तूबर को प्यास और पेशाब बहुत ज्यादा हो गई, मालूम होने लगा, चंक्रमण और भोजन नियंत्रण से डायबेटीज को नहीं भगाया जा सकता इन्सुलिन लेना ही पड़ेगा। यद्यपि मैं डेढ़ दो घंटे रोज घूम आया करता था लेकिन १६ घंटे की निरन्तर बैठकी होती थी। ८ बजे सवेरे से रात के १२ बजे तक बस खाने के लिए कुछ मिनट रुक बैठा काम में ही लगा रहता था। मेरे पत्र को राजेन्द्र बाबू ने श्री घनश्यामसिंह गुप्त के पास भी भेज दिया था। उसमें कुछ कड़वी बात भी थी। लेकिन, गुप्तजी नम्रता की मूर्ति हैं। उनका अपना निजी आग्रह या स्वार्थ भी रघुवीरी प्रणाली से नहीं है। उन्होंने मिलकर काम करने के लिए कहा और पीछे हम लोगों ने बहुत स्नेह के साथ मिलकर काम किया।

३० अक्तूबर को "शासन शब्दकोश" छप गया, और अगले दिन सौ कापियों की जिल्द भी बँध गई। उसी दिन सम्मेलन के कार्यालय के नए भवन की नींव मुझे डालनी पड़ी और टंडनजी ने सम्मेलन प्रेस का उद्घाटन किया। प्रेस के लिए मैं बहुत उत्सुक था। परिभाषा का काम तभी ठीक से और तेजी से चल सकता था जब प्रेस पूरा सहयोग देने के लिए तैयार हो।

बाहर के प्रेसो मे काम सतापजनक नही हाता था। उस समय प्रेम के लिए जो दामजिला इमारत बनी थी, उसे लाग काफी लेकिन मैं नाकाफी समझता था। परिभाषा के काशो का छापने के लिए नागरी और अग्रेजी दाना टाइप चाहिएँ, और छपाई भी अच्छी हानी चाहिए, तभी वह दूसरे प्रान्तो के विद्वाना पर प्रभाव डाल सकती थी। सभी प्राता के भिन्न भिन्न विषया के पण्डितो से परिभाषा के काम मे मुझे सहायता लेनी थी। यदि वह अपन काम का जल्दी और सुन्दर रूप से छपा देखेंगे, तो और भी उत्साह के साथ सहयाग देंगे। टडनजी न पटल बाबू को माना टाइप मशीन खरीदन के लिए कह रखा था। छठे छमाह को याद आता तो वह पूछ देत। पटल बाबू कहते— बाबूजी, बहुत कुछ हा गया है।" मैं इससे असतुष्ट था। उस समय मोनाटाइप मशीन का मिलना आसान नही था, यह ठीक है, और यह भी कि चारबाजारी मे ही काम जल्दी बन सकता था। पर मैं समझता था, यदि कोशिश की जाए, ता सम्मलन जैसी सस्था के लिए उसका मिलना मुश्किल नही हागा। ऐसा ही हुआ भी। मैंने कल-कत्ता की अपनी एक यात्रा मे बातचीत की। मेरे तरुण मित्र श्री परमानन्द पाद्दार न कम्पनी के एजेन्ट से बातचीत की। किसी के लिए आई हुई मशीन की कुछ शर्तें पूरी नही हा रही थी, एजेन्ट ने उस मशीन को देना स्वीकार कर लिया। मैंन सम्मेलन और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति दाना को लिखा, तुरन्त दाम देकर मशीन उठा लाएँ। दोना ही तुरन्त तैयार हुए। मशीन सम्मेलन म चली आई। मैं समझने लगा, हमारे परिभाषा के काम म बहुत जल्दी हागी, लेकिन आपबीती बात सदा थोडे ही हुआ करती है।

श्री विद्यानिवास मिश्र बडी तत्परता से काम कर रहे थे, उनका ज्ञान तथा स्मरणशक्ति हमारे काम के लिए बहुत ही उपयागी सिद्ध हुई। लेकिन बीच-बीच म उनका मन उचट जाता था, वेतन लेकर काम करने पर जब कोई टीका टिप्पणी कर दता ता वह विरक्त हा जाते। फिर समझा बुझा कर ठीक करता। इस समय सविधान-सभा म राष्ट्र भाषा हिन्दी का सवाल पेश था। मौलाना आजाद उसके सख्त विराधी थे नेहरू भी उनके समर्थक

महिला हैं। यह देखकर आश्चर्य हो रहा था, कि पतिकुल में तो हर्ष और उल्लास था। शिवरानीदेवी अपनी बहू को सिर आँखों पर बैठा रही थी पर मातृकुल में शोक और संताप छाया हुआ था—कैसे मुस्लिम कन्या काफिर बनने के लिए काफिर के घर जाएगी। काल जब पहलेपहल प्रहार करता है तो भले के लिए हो तो भी वह प्रिय नहीं मालूम होता। लेकिन, काल ही उसे सह्य और प्रिय भी बना देता है। सामाजिक बातों में पीछे रहनेवाले हिन्दू आगे बढ़ रहे हैं इससे भले दिनों की आशा होती है। मैंने हँसते हुए कहा—बड़ी बहू को भी कौंसिल में अहिन्दू निर्वाचन क्षेत्र से भेज देना चाहिए। आज प्रेमचन्दजी होते, तो वह भी शिवरानीजी की तरह ही पुत्र और बहू को बड़े हर्ष से आशीर्वाद देते।

२३ अक्तूबर को श्री राजेन्द्र बाबू के पत्र में मालूम हुआ, कि वह भी संविधान के रघुवीरी अनुवाद से संतुष्ट नहीं हैं।

२८ अक्तूबर को प्यास और पेशाब बहुत ज्यादा हो गई, मालूम होने लगा, चंक्रमण और भोजन नियन्त्रण में डायबेटीज को नहीं भगाया जा सकता इन्सुलिन लेना ही पड़ेगा। यद्यपि मैं डेढ़ दो घंटे रोज घूम आया करता था, लेकिन १६ घंटे की निरन्तर बैठकी होती थी। ८ बजे सवेरे से रात के १२ बजे तक बस खाने के लिए कुछ मिनट रुक बैठा काम में ही लगा रहता था। मेरे पत्र को राजेन्द्र बाबू ने श्री घनश्यामसिंह गुप्त के पास भी भेज दिया था। उसमें कुछ कड़वी बातें भी थीं। लेकिन गुप्तजी नम्रता की मूर्ति हैं। उनका अपना निजी आग्रह या स्वार्थ भी रघुवीरी प्रणाली से नहीं है। उन्होंने मिलकर काम करने के लिए कहा और पीछे हम लोगों ने बहुत स्नेह के साथ मिलकर काम किया।

३० अक्तूबर को 'शासन शब्दकोश' छप गया, और अगले दिन सौ कापियों की जिल्द भी बँध गई। उसी दिन सम्मेलन के कार्यालय के नए भवन की नींव मुझे डालनी पड़ी, और टंडनजी ने सम्मेलन प्रेस का उद्घाटन किया। प्रेस के लिए मैं बहुत उत्सुक था। परिभाषा का काम तभी ठीक से और तेजी से चल सकता था जब प्रेस पूरा सहयोग देने के लिए तैयार हो।

बाहर के प्रेसो मे काम सतोषजनक नही होता था। उस समय प्रेस के लिए जो दोमजिला इमारत बनी थी, उसे मैं काफी लेकिन मैं नाकाफी समझता था। परिभाषा के कामो को छापने के लिए नागरी और अग्रेजी दोनो टाइप चाहिएँ, और छपाई भी अच्छी होनी चाहिए, तभी वह दूसरे प्रान्तो के विद्वानो पर प्रभाव डाल सकती थी। सभी प्रान्तो के भिन्न भिन्न विषयो के पण्डितो से परिभाषा के काम म मुझे सहायता लेनी थी। यदि वह अपने काम को जल्दी और सुन्दर रूप म छपा देखेंगे तो और भी उत्साह के साथ सहयोग देंगे। टडनजी ने पटेल बाबू को मोनो टाइप मशीन खरीदने के लिए कह रखा था। छठे छमाहे को याद आता, तो वह पूछ लेते। पटेल बाबू कहते—"बाबूजी बहुत कुछ हो गया है।" मैं इससे असतुष्ट था। उस समय मोनोटाइप मशीन का मिलना आसान नही था, यह ठीक है, और यह भी कि चोरबाजारी से ही काम जल्दी बन सकता था। पर मैं समझता था, यदि कोशिश की जाए, तो सम्मेलन जैसी सस्था के लिए उसका मिलना मुश्किल नही होगा। ऐसा ही हुआ भी। मैंने कल-कत्ता की अपनी एक यात्रा म बातचीत की। मेरे तरुण मित्र श्री परमानन्द पोद्दार ने कम्पनी के एजेन्ट से बातचीत की। किसी के लिए आई हुई मशीन की कुछ शर्तें पूरी नही हो रही थी, एजेन्ट ने उस मशीन का देना स्वीकार कर लिया। मैंने सम्मेलन और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति दोनो को लिखा, तुरन्त दाम देकर मशीन उठा लाएँ। दोनो ही तुरत तैयार हुए। मशीन सम्मेलन मे चली आई। मैं समझने लगा, हमारे परिभाषा के काम मे बहुत जल्दी होगी, लेकिन आपचोती बात सदा थोडे ही हुआ करती है।

श्री विद्यानिवास मिश्र बडी तत्परता से काम कर रहे थे, उनका ज्ञान तथा स्मरणशक्ति हमारे काम के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई। लेकिन बीच बीच मे उनका मन उचट जाता था वेतन लेकर काम करने पर जब कोई टीका टिप्पणी कर देता तो वह विरक्त हो जाते। फिर समझा बुझा-कर ठीक करता। इस समय सविधान सभा म राष्ट्र भाषा हिन्दी का सवाल पेश था। मौलाना आजाद उसके सख्त विरोधी थे, नेहरू भी उनके समर्थक

थे। राजेंद्र बाबू विधान सभा के अध्यक्ष थे, और उनमें इतनी भारतीयता थी, कि वह अंग्रेजी का कभी समर्थन नहीं कर सकते थे, और हिंदी के तो वह सदा से पक्षपाती रहे। अपने बहुव्यस्त जीवन में समय निकालकर वह हिंदी में लिखते भी थे, लेकिन खुलकर तो इस विवाद में भाग नहीं ले सकते थे। सरदार वल्लभभाई पटेल भी हिंदी के पक्ष में होते, अगर हिंदी और अंग्रेजी में एक को चुनना होता। लेकिन, संविधान सभा में हिंदी हिंदुस्तानी का सवाल छेड़ दिया गया था, और हिंदुस्तानी के द्वारा उर्दू भाषा लिपि को भी राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न हो रहा था।

परिभाषा के काम के लिए ३१ अक्तूबर की बैठक में १० हजार रुपया खर्च करने का निश्चय हुआ, उपयुक्त आदमियों को रखने की बात थी। श्री भगवद्दत्त नामा पंजाब विश्वविद्यालय के शास्त्री और एम० ए० थे। विस्थापित होकर आनकर प्रयाग में थे। ऐसे आदमी को काम पहले मिलना चाहिए। यह टंडनजी की और मेरी भी राय थी। उन्हें परीक्षार्थ रख मुस्तैदी और अभिज्ञता देखकर ढाई सौ रुपये मासिक देने का भी निश्चय कर लिया गया। माचवेजी भी समय देने के लिए कह रहे थे, लेकिन अभी निश्चय नहीं हो सका था, क्योंकि वह रेडियो की नौकरी में थे। सहकर्मियों को प्राप्त करना सबसे जरूरी था। इसी बीच दिल्ली जाने की जरूरत पड़ गई। संविधान-सभा के इसी अधिवेशन में राष्ट्रभाषा के बारे में निर्णय होने वाला था।

दिल्ली—४ नवम्बर को ६ बजे रात की गाड़ी से श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय के साथ मैं दिल्ली के लिए रवाना हुआ। अगले दिन सवेरे गाड़ी इटावा के पास जा रही थी। टुंडला में कम्पार्टमेंट के तीन सहयात्री उतर गए, और आगरा के वकील श्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा दिल्ली के श्री गुरुदत्तजी नए सहयात्री बने। भोजन का समय था, और मैं था 'फलाहारी'। मुसलमान माल बेच रहा था, मैंने कुछ दाने के लिए। एक तो माल और दूसरे मुसलमान का चतुर्वेदीजी घबराकर दूसरे कम्पार्टमेंट में जाने के लिए तैयार हो गए। फिर न जाने क्या रह गए। मेरा नाम वह जानते थे।

फिर तो घुल घुलकर बात होने लगी। मैंने कहा—चतुर्वेदी मथुरा के चौबे तो नगरों के पुरोहित थे, और स्वयं भी अधिकतर नागर थे। उस समय तो यह मास क्या, दूसरे मास भी उनकी रसोई मे रोज बना करते थे।

७ बजे गाडी दिल्ली पहुँची। प० श्रीनारायण चतुर्वेदीजी स्टेशन पर आए थे। उनके साथ उनके निवास पर गए। पश्चिमी पाकिस्तान से उजड-कर आए लाखो शरणार्थी अब भी दिल्ली मे बेसरोसामान पडे थे। वस्तुत यदि वे पुरुषार्थी न होते और अपनी मदद आप करने के लिए तैयार न होते, तो उन्हे और देश को बडे बुरे दिन देखने पडते। मैं सोचता था कि यदि यही इतनी बडी सख्या पूर्वी बगाल मे आती, तो क्या हालत होती।

उस दिन (५ नवम्बर) शाम को घूमते हुए मध्य एसिया म्यूजियम मे गया। इस समय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल यही थे। डा० अग्रवाल जैसे सुयोग्य पुरुष को दिल्ली अपने पास नही रख सकी, इसमे दिल्ली का ही दोष है। दिल्ली को खुशामदी दरबारी ही पसन्द आते है, वहाँ आत्मसम्मान रखनेवाले पण्डित का कैसे गुजारा हो सकता है? अग्रवालजी भी वहा नही टिक सके। पीछे डा० मोतीचन्द को भी तल्ख तजर्बा हुआ, और वह भी बम्बई लौट गए। सग्रहालय मे उस समय श्री कृष्णदेवजी थे। कृष्णदेवजी बिहार शरीफ के रहने वाले थे और पटना मे विद्यार्थी रहते समय से ही मेरे परिचित थे। लेकिन, अब तो उसे १२ १४ साल बीत चुके थे। पुरानी पीती का सालो का मूल्य समझना चाहिए, और 'घरे पाछिली नाव' की कभी ख्वाहिश नही करनी चाहिए। मैं इसके लिए बहुत सावधान रहता हूँ। थोडे दिन हुए एक प्रोफेसर से पटना मे मैंने जब आप करके सम्बोधन किया, तो वह कहने लगे—'हमे आपका तुम ही अच्छा लगता है।' पर मैं जानता हूँ, कि तुम कहना काल की उपेक्षा करना है।

उसी हाते मे कुछ तम्बू पडे थे, जिनमे कितने ही पश्चिमी पजाब से आए हमारे भाई एक बरसात बिता चुके थे। प० भगवद्दत्तजी भी यही थे। उनके पुत्र सत्यश्रवा म्यूजियम मे काम कर रहे थे। कितनी ही देर तक उनसे बातचीत होती रही। परिभाषा के काम की आवश्यकता को वह सम

चते थे। वह एक अपने मित्र इजीनियर के पास भी ले गए। इजीनियर भाषा की विशेष योग्यता न रखते हुए भी इसको समझते थे, कि हम अपनी भाषा मे ही ज्ञान विज्ञान को पढना होगा। उन्होने अपने महकमे के सम्बध की कुछ परिभाषाएँ तैयार कराइ, और इस लालसा से प० नेहरू को दिखलाना चाहा, कि वह उसके लिए साधुवाद देगे, लेकिन उनको उल्टा झाड खानी पडी—तुम अपने काम को करो, अनधिकार चेष्टा न करो। हिन्दी को आगे बढने मे कितनी कठिनाइया का सामना करना पडेगा, यह साफ मालूम हो रहा था।

६ नवम्बर को सवेरे और शाम दोनो वक्त श्री घनश्यामसिंह गुप्त से परिभाषाओ के बनाने के सम्बध मे किन बातो का ख्याल रखना चाहिए, इसके बारे मे बात हुई। हम दोनो ही एक राय थे परिभाषाएँ परिचित शब्दो से बनाई जाएँ, और जनसाधारण तक पहुँचे। प्रसिद्ध शब्दो का बाय काट न किया जाए। लेकिन गुप्तजी अपने रघुवीरी अनुवाद को कानूनी बारीकियो के ख्याल से अधिक उपयुक्त समझते थे। पर, जब फिर से अनुवाद करने का अवसर आया तो उन्होने उस आग्रह को छोड दिया।

उसी दिन बौद्ध विहार मे जाने पर एक भूतपूर्व इजीनियर भिक्षु से भेंट हुई, जो दिल्ली के पास के एक गाव मे सहयोगी खेती मे सहयोग दे रहे थे वह सरकारी प्रबन्ध से सन्तुष्ट नही थे। पाँच सौ एकड साथे मे रखकर हरेक परिवार को साढे सात एकड जमीन दे दी गई। भला दो नाव पर पैर रखकर यात्रा थोडे ही की जा सकती है? हर परिवार पहले अपने साढे सात एकड मे जुटेगा, फिर साझे के खेतो की खोज-खबर लेगा। योजना तो असफल होनी ही को थी फिर कहा जाएगा, कि यह तरीका भारत की प्रकृति के अनुकूल नही। लेकिन, अगर हमें अपनी भूमि से पूरी मात्रा मे अन्न उपजाना है, तो साइन्स का सहारा लेकर ही हो सकता है, और साइन्स का सहारा तभी लिया जा सकता है, जब छोटे छोटे खेतो को हटाकर विशाल खेत बनाए जाएँ और सब लोग मिलकर काम करें।

७ नवम्बर को रविवार के दिन श्री वियोगी हरिजी के साथ १० बजे

घूमने के लिए निकले। कुतुब गए। कुछ दूसरा सा ही मालूम होता था। शायद इसका कारण देर से आना हो। कुतुब के पास के पुराने मन्दिरो के अवशेष देखे, लौह गरुडस्तम्भ पर राजा चन्द्र के अभिलेख को पढा, फिर पुरानी दिल्ली मे सब्जी मण्डी होते लौटे। अब सब्जी मण्डी मे एक भी मुसलमान नही है। उनके घरो मे शरणार्थी हिन्दू बस गए हैं। पर यह स्थान था, जहाँ पिछले साल मुसलमानो ने डटकर सेना का मुकाबिला किया था। अगले दिन श्री हरभगवान्‌जी अपनी पुत्री गायत्री के साथ मिलने आए। लाहौर मे बडी साध से उन्होने कृष्णनगर मे अपना घर बनाया था। तरुणाई के संघर्ष के बाद अब कुछ निश्चिन्त सा जीवन बिताने लगे थे, इसी वक्त तूफान आया और नीड उजड गया। लडकी बौद्ध धर्म मे अनुराग रखती थी, और पालि पढना चाहती थी। मैंने दो चार दिन पढा दिया, पर इतने से काम थोडे ही हो सकता था। बौद्ध विहार मे भिक्षु पालि के पण्डित थे, उनसे सहायता लेने की बात कही।

७ नवम्बर का हिन्दी दिवस की सभा हरिजन निवास मे हो रही थी। मैं भी गया। सभामे ठक्कर बापा भी आए। ८० वर्ष के तपे हुए तपस्वी के दर्शन से किसको प्रसन्नता न होती? सबसे अधिक उत्पीडित और दलित लोगो को उठाने मे ही इन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया। इंजीनियर थे, दुनिया जिसको सफलता कहती है, उसका रास्ता लिए होते, तो उनका जीवन दूसरा ही होता। लेकिन, फिर वह ठक्कर बापा नही हो सकते थे। उनका समय समीप है, पर वह बालू की लकीर की तरह होंगे।

उसी दिन सवा ८ बजे शाम का दौडा दौडी करते मोटर से मेरठ गए। व्याख्यान दिया, और उसी रात को साढे १२ बजे लौट आए। आजकल के नए यातायात के साधनो ने यात्राओ को कितना आसान कर दिया है। यह तो मोटर थी विमान से तो और भी दूर का सकता है।

अगले दिन शहर मे आर्यवीर दल द्वारा सगठित सभा मे सभापति बनकर हमे बोलना पडा। सभा हिन्दी के सम्बन्ध मे थी, नहीं तो मुझे वहा जाने की जरूरत नही रहती। सभा मे आने का एक सबसे बडा लाभ यह

हुआ, कि १८ वर्ष बाद डा० अनन्तराम भट्ट से मुलाकात हो गई। अखबार मे पढकर वह वहाँ आए। डा० भट्ट से सबसे पीछे मुलाकात १९३० मे लका मे हुई थी, जब कि मैंने उन्हें प्रोत्साहित करके जर्मनी भेजा था। तब से वह बराबर जर्मनी मे रहे, और देश के स्वतन्त्र होने की बात सुनकर बडे उत्साह के साथ अभी अभी लौटे थे। उनके साहस और ज्ञान का मैं बहुत प्रशंसक हू चाहता था, इसका उपयोग हो। उन्हें आशा थी, दिल्ली मे उनके योग्य कोई काम मिल जाएगा, इसीलिए वह यहा पडे हुए थे। उसी दिन डा० सत्य नारायणसिंह से भी भेंट हो गई। वह बर्लिन से लौटे थे। सोवियत और साम्यवाद से उनकी सहानुभूति बराबर रही लेकिन इधर शायद अपने क्षेत्र मे घूमने मे बाधा उपस्थित करने के कारण वह सोवियत अधिकारियों से बहुत रुष्ट हो गए थे, वैसी ही बातें कर रहे थे। बुद्धिजीवी अपनी बौद्धिक तराजू से हरेक चीज को तौलता है, और बहुजनीय लाभ की बातें भूल जाता है। अगले दिन डा० भट्ट से दो तीन घटे बात होती रही। इतने ही दिनो मे वह ऊब गए थे, और भारत आने के लिए पछता रहे थे। वह सस्कृत के विद्वान् थे वैसी ही मनोवृत्ति रखते थे, लेकिन युरोप गए, तो सभी बातो मे युरोपियन हो गए। वहाँ की व्यवस्था और नियमित जीवन उन्हें बहुत पसन्द था, यहाँ वह अनियमित अव्यवस्थित जीवन देख रहे थे। वहा हरेक चीज मे सफाइ और स्वच्छता थी, और यहा उसका अभाव था। पार्लियामेंट भवन की सीढियो और कोनो मे भी लोग पान की पीक थूकने और सिगरेट के टुकडो को फेंकने से बाज नहीं आते। भट्ट अपने को पानी से बाहर की मछली-सा अनुभव करते थे। लका जाने की सोच रहे थे। मैंने कहा परिभाषा का काम यदि पसन्द हो, तो उसका प्रबन्ध हो सकता है पर वेतन योग्यतानुसार नहीं मिल सकता।

१० नवम्बर को हम दिल्ली से प्रयाग चले आए। ट्रेन मे इन्दौर मेडिकल कालेज मे अनाटोमी के अध्यापक डा० सिंह मिले। वह अपने विषय के शब्दो का सग्रह कर देने को तैयार थे, यद्यपि पीछे श्री सतगुप्त ने इसे स्वय किया, और डा० सिंह की सहायता की जरूरत नहीं पडी।

# १४

# राष्ट्रभाषा की जद्दोजहद

प्रयाग—कृषि विनान-सम्बन्धी परिभाषाओ की हम आवश्यकता थी। ११ नवम्बर का जब नैनी के कृषि कालेज मे व्यारयान देने का निमत्रण आया ता मैं वहा बडी खुशी से गया। यह अमेरिकन मिश्नरियो की सस्था थी। अध्यापका मे कितने ही अमेरिकन थे। उन्होने पारिभाषिक शब्दो के सग्रह मे सहायता देने की इच्छा प्रकट की, और पीछे पशुपालन के शब्दो का दिया भी। लेकिन, हमारी प्रकाशन-सम्बन्धी व्यवस्था इतनी गडबड थी, कि उनसे लाभ नही उठा सके।

शृ गवेरपुर—१२ नवम्बर को आनापुर जाना पडा। २१ मील माटर से गए। साथ म कई साहित्यिक मित्र थे। सबसे अधिक यात्रा का प्रलोभन था शृगवेरपुर (सिगरौर) का देखना। १८वी सदी के महावैयाकरण नागेश भट्ट का कुछ रुपल्लिया की सहायता करके शरण देनेवाले यहाँ के स्वामी राम का नाम उस विद्वान ने अमर कर दिया है—"शृगवेरपुराधीशाद् राम तो लब्धजीवक।" अब दा सौ वप बाद उस राम के वश का पता लगान पर भी मालूम नही हुआ। आनापुर से ४ मील पर गगा के किनार सिगरौर का विशाल ध्वसावशेष है। वाल्मीकि रामायण मे शृगवेरपुर का नाम आया है। उससे नगर की प्राचीनता की तब तक पुष्टि नही हा सकती, जब तक कि यहाँ की वस्तुएँ वहाँ की साक्षी न दें, और साक्ष्य की यहाँ कमो

नही थी। ४ इच मोटी, १३ इच चौडी और १८ इच लम्बी इटे बतला रही थी, कि मौर्यकाल और उससे पहले भी यहा पर नगर मौजूद था। गुप्तकाल की एक पुरुष मूर्ति का तादेवी के मन्दिर मे सिगीरिसि के नाम से पूजी जाती है। शृगवेरपुर को लालबुझक्कडो ने सिगीरिसीपुर बनाने की कोशिश की है और इसीलिए सिगीरिस की पत्नी तथा राम की बहिन शान्ता का मदिर खडा किया गया है। हो सकता है पास की स्त्री मूर्ति भी गुप्तकालीन हो। नीचे गढ मे एक बूटधारी सूर्यमूर्ति और मुखलिग (मुखयुक्त शिवलिंग) देखा। सूर्य चोगाधारी भी है। ये दोनो मूर्तिया चौथी सदी की हो सकती हैं। ११वी १२वी शताब्दी की तो यहा कई मूर्तियाँ हैं। जान पडता है मुस्लिम शासनकाल के आरम्भ मे यह नगर ध्वस्त किया गया। बहुत पीछे यहा राम नामक कोई जागीरदार था, जिसने नागेश भट को आश्रय दिया। आजकल सस्कृत पाठशाला भी चल रही है। काल उसके अनुकूल होगा या नही, यह भविष्य बतलाएगा।

यहा प्रयाग जनपद साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन होनेवाला था। उसीका सभापति बनकर मुझे आना पडा। काफी आदमी मौजूद थे, और अधिवेशन समाप्त कर सवा ७ बजे चल हम रात को प्रयाग पहुच गए।

सारनाथ—नवम्बर मे सारनाथ का वार्षिक उत्सव हुआ करता है। आसपास रहने पर मैं वहाँ जरूर पहुच जाया करता था, जिसमे एक लाभ यह भी था, कि देश विदेश के कितने मित्रो से मुलाकात हो जाती। इसी लिए १३ नवम्बर को सवेरे साढे ७ बजे मैं छोटी लाइन से सारनाथ के लिए रवाना हुआ। खेतो मे रबी की फसल उग रही थी। दो ही महीने पहले बाढ के मारे हाहाकार मचा हुआ था, और अब उसका कोई प्रभाव नही मालूम होता था। बनारस मे एकादशी मेले से लौटनेवाले यात्रियो की भीड बढ गई। मिरजापुर मे ही डब्बा भर गया था और अलईपुर मे तो सरेडे बलाम मे भी तिल रखने की जगह नही रही। हम छावनी मे हो फर्स्ट क्लास मे बैठ गए यह अच्छा किया। डब्बो की छतो पर भी लोग जा बैठे थे लेकिन आगे बडी लाइन के पुल से सिर टकरा जाता, इसलिए जबर्दस्ती

उन्हें उतरवाया गया। १ बजे सारनाथ पहुँचे। स्टेशन से सारनाथ धाम बहुत दूर नहीं है, लेकिन सामान के लिए एक्का और कुली मिलने में बराबर दिक्कत का सामना उठाना पड़ता है। जाकर धर्मशाला में ठहरे। शाम को बर्मी धर्मशाला में किंतिमा बाबा से मिलने गए। अब चेहरे पर बुढ़ापा छा चुका था। उनका तरुण चेहरा ही मैं कुछ साल पहले देख रहा था। किंतिमा बाबा ने अपने गुरु महास्थविर चन्द्रमणि (कुशीनारा) की तरह भारत में ही बौद्ध पुनर्जागरण में अपना सारा जीवन लगा दिया। आजकल बर्मी यात्री कम आ रहे हैं, जिसके कारण आर्थिक कठिनाइयां भी हो रही हैं।

सारनाथ में घूमते समय उस पुरुष की स्मृति आए बिना कैसे रह सकती थी, जिसने "बहुजन हिताय" विचरण करने का उपदेश देते बहुजन का नारा बुलन्द किया था, और जिसे नागार्जुन ने अप्रतिम बुद्ध कहते हुए उसकी पैनी दृष्टि प्रतीत्यसमुत्पाद और मध्यमा प्रतिपद (मध्यम-वर्ग) की महिमा गाई थी।

आनन्दजी भी यहाँ थे, और काश्यपजी भी। भिक्षु जगदीश काश्यप इस समय कुछ भिक्षुपन से उदासीन हो चले थे और चीवर की जगह बगैर किनारी के कपड़े पहने थे। मैंने उन्हें समझाया—भिक्षु वेष को न छोड़ें, इसके जरिए आप बहुत सा सांस्कृतिक काम कर सकते हैं। क्षणिक आवेग था, पीछे वह ठीक हो गए।

१४ नवम्बर को प० गुरुसेवक सिंह उपाध्याय से भेंट हुई। शायद यह पहली ही मुलाकात थी। वह ७० साल के थे। जब मैं उनके जन्म कस्बे निजामाबाद में पढ़ता था, तब वह डिप्टी कलेक्टर थे और विद्या के बारे में निबन्ध लिखने पर मैं और मेरे साथी बराबर उनका उदाहरण दिया करते थे। उपाध्यायजी हरिऔधजी के अनुज हैं। सरकारी सेवा में रहकर इन्होंने बड़ी योग्यता से काम किया था, और कितने ही दिनों तक सहकार विभाग का संचालन इनके हाथ में था। अवकाश प्राप्त करके अब वह निजामाबाद में नहीं रहते थे ? फिर ऐसे ग्रामों या महाग्रामों के आगे बढ़ने की क्या आशा

हो सकती है ? लेकिन, सस्कृत पुरुष को सास्कृतिक जीवन के साथ-साथ अपने बच्चो की शिक्षा आदि का भी ख्याल रखना पडता है, और उसकी अनुकूलता बनारस जैसे शहर ही मे हो सकती है।

एक शताब्दी से अधिक हो गए, जब से बोध गया मन्दिर को बौद्धो के हाथ मे आने की जद्दोजहद शुरू हुई। अग्रेजी शासनकाल मे राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता मे इसके लिए एक समिति भी बनी थी, जिसने सिफारिश की थी, कि मन्दिर का प्रबन्ध बौद्धो के हाथ होना चाहिए। दीवानी मामले से बचने के लिए समिति ने बोध गया के महन्त को भी प्रबन्ध समिति मे रखने की बात कही थी। अग्रेज नही चाहते थे, कि बोध गया मन्दिर जैसे एसिया के कई देशो के केन्द्रीभूत स्थान का इस तरह प्रबन्ध हो। स्वतन्त्र भारत मे इस सवाल का फिर उठना स्वाभाविक था, लेकिन बिहार सरकार ने जो कानून का मसौदा पेश किया था, उसमे इस बात का पूरा ध्यान रखा गया था कि प्रबन्ध समिति मे बौद्धो का प्रभाव अधिक न होने पाए। इसीलिए नौ सदस्यो मे से चार को ही बौद्ध रखा चार हिन्दू और एक गया जिले का कलक्टर, यदि वह हिन्दू हो तो। यह सरासर बौद्धो के ऊपर सन्देह प्रकट करने की बात थी। सारनाथ मे इसके विरुद्ध प्रस्ताव पास हुआ और कहा गया, कि प्रबन्ध समिति मे एक दो से अधिक हिन्दू नही होने चाहिए, और उसे सिर्फ भारतीय बौद्धो के लिए नही, बल्कि विश्व भर के बौद्धो के लिए खोल देना चाहिए। यह जानकर प्रसन्नता हुई, कि सारनाथ का महाबोधि स्कूल अब एफ० ए० तक मजूर कर लिया गया था।

**गोरखपुर**—गोरखपुर आने के लिए श्री विद्यानिवासजी का बहुत आग्रह था। १८ नवम्बर को साढे १० बजे मैंने उधर जानेवाली गाडी पकडी। अगले दिन दो घटे लेट होकर ट्रेन नौ बजे गोरखपुर पहुँची। विद्यानिवासजी के पिता श्री प्रसिद्धनारायण मिश्र (वकील) के यहा ही ठहरे। नीचे लडकियो का एक स्कूल था जिसमे किसी को महसूस नही हुआ, कि इसे झाडने की भी जरूरत है। गोरखपुर आने पर श्री महावीरप्रसाद पोद्दार से मिले बिना कैसे रहा जा सकता था ? एक बडी दुखद घटना हुई थी,

जिसका प्रभाव मेरे हृदय पर भी पड़ा था। उनके ज्येष्ठ पुत्र आनन्द ने आत्महत्या कर ली थी। बड़ा ही होनहार तरुण था। पढ़ने में भी अच्छा रहता, और ऊँचे ऊँचे सपने देखा करता था। एम० ए० कर लिया था। मैं रूस में था मुझसे कुछ पुस्तकों के बारे में पूछा था। किसी तरुणी से प्रेम था, जो अपनी जाति और प्रान्त की नहीं थी। दोनों के मिलन में बाधा हुई, और दोनों ने आत्महत्या का निश्चय कर लिया। आनन्द कर बैठा लेकिन तरुणी की हिम्मत नहीं हुई। माता पिता पर क्या बीती, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

इधर कितने ही साल से बुद्ध निर्माण स्थान कसया नहीं जा पाया था, इसलिए १८ को ६ बजे कसया के लिए रवाना हुआ। चन्दा बाबा अब ७३ साल के हो गए थे। सबसे पहले १९१९ में उनका दर्शन किया था। वृद्ध हो गए हैं किन्तु अब भी स्वस्थ हैं। बुद्ध स्कूल अब उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बन गया है। उसके लिए इमारत भी पक्की तैयार हो गई है। कुशीनारा में एक और धर्मशाला और मन्दिर की वृद्धि हुई, जिसे बिड़ला ने बनवाया। छोटी सी प्राइमरी पाठशाला चन्द्रमणि बाबा के नाम से कायम हुई थी, वह भी अब पक्की हो गई है। बौद्ध मठ की दो और नई इमारतें तैयार हो गई थीं। पहले से बहुत परिवर्तन मालूम हुआ। शताब्दियों तक विस्मृत रहकर बुद्ध अब फिर अपनी जन्मभूमि में लौट रहे हैं नई पीढ़ी दिल खोलकर उनका स्वागत कर रही है।

१७ और १८ को गोरखपुर के कई संस्थाओं में भाषण दिये। सेंट-एंड्रूज कालेज की संस्कृत परिषद का उद्घाटन भाषण भी देना पड़ा। पं० गौरीशंकर मिश्र—देश के पुराने राष्ट्रीय कर्मी—से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अब जीवन की संध्या आ गई है। सबसे बड़ा स्वप्न देश की स्वतन्त्रता चरितार्थ हो गया पर जनता के लिए कुछ नहीं हो रहा है यह जानकर उन्हें खेद हो रहा था।

वाराणसी—१९ की रात को १० बजे की गाड़ी से चलकर अगले दिन साढ़े ८ बजे बनारस पहुंचा। अब के छ दिन रहकर यहाँ के प्रोफेसरों

से परिभाषा निर्माण मे सहयोग देने की प्रेरणा के लिए आया था। स्टेशन मे रिक्शा करके नवाबपुरा मे पण्डित जयचन्द्र विद्यालकार के यहा पहुँचा। प० जयचन्द्र जी जैसे इतिहास के गम्भीर पण्डित की आर्थिक स्थिति हमेशा अनिश्चित रही, जिसको सबसे अधिक भोगना पडता, उनकी पत्नी सुमित्रा देवी शास्त्रिणी को। लेकिन, चाहे जिस स्थिति मे भी हो, शास्त्रिणी जी को चिंतित मैंने कभी नही देखा और अतिथि सत्कार के लिए वह मुस्कुराते हुए हर वक्त तैयार रही। जलपान करने के बाद काम पर निकला। भारतीय ज्ञानपीठ मे न्यायाचार्य प० महेन्द्र शास्त्री नही है। मेठो की छाया बडी विरल होती है। रास्ते मे वृद्ध प० शिवविनायक मिश्र वैद्य मिल गये और अपने साथ अपने दातव्य औषधालय मे ले गये, जिसे नगवा मे उन्होने लेश भक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्त के नाम से खोल रखा है। वृद्ध हैं, लेकिन अब भी उनकी कर्मठता नही गई है। काग्रेस की गतिविधि से असतुष्ट होना स्वाभाविक है। मैंने कहा— निराश होने की जरूरत नही। इसे तरुणो पर छोड दीजिये।' वहा से अस्सी पर जगन्नाथ मन्दिर मे गये। वहाँ मेरे बालमित्र दशरथ पाण्डे थे, जिनके साथ १९१० या १९११ मे दो दिन चार दिन की घुमक्कडी मैंने की थी। उस वक्त आयु १८ साल से ज्यादा नहीं थी, और अब मुह मे एक भी दात नही, सारे बाल सफेद हो गये। जगन्नाथ मन्दिर के भीतर नरसिंह का मन्दिर है जिसके पुजारी उडिया साधु भी उस समय तरुण थे। अब वह भी पके आम हो चुके थे, यद्यपि दशरथ जी जितने घिसे नही। दिल मे आया, चलें अपने विद्यार्थी जीवन की एक स्मरणीय जगह मोतीराम के बगीचे को भी देख आएँ। उसकी अवस्था देख कर मन को बहुत खेद हुआ। इसका यह अर्थ नही कि मैं मोतीराम के बगीचे मे किसी तरह के परिवर्तन को देखना नही चाहता था, किन्तु जिस तरह का परिवर्तन हुआ था, वह बुरा था। बगीचे को खरीदकर सेठ गौरा शकर गायनका अपने नाम से पाठशाला बनवाने की तैयारी कर रहे थे। किनारे की चहारदीवारियाँ प्राय सभी टूट गई थी। सबसे अफसोस की बात यह थी, कि अपने समय के काशी के महान पण्डितो के भी गुरुतुल्य

ब्रह्मचारी मगनी राम के निवास का वहा कोई चिह्न बाकी नही रखा गया था। मँगनीराम विद्वान् थे, और वदान्त की साक्षात् मूर्ति, त्याग के लिए क्या कहना ? इसीलिए पण्डित चक्रवर्ती शिवकुमार शास्त्री भी गुरपूर्णिमा के दिन उनकी पूजा करने के लिए आते। उनको दिखावा छू नही गया था। जिस कुटिया म रहते थे, वह पहले ही से पक्की बनी हुई थी। दो तरफ कोठरियाँ, बीच म दालान और बाहर चौडा सा पक्का चबूतरा—यह नक्शा अब भी मेरे मानस पटल पर अंकित है। दो छोटे छोटे गेरुए के टुकडा से शरीर ढँके चबूतरे पर टहलते मँगनीराम की मूर्ति मैं नही भूल सकता। भास्करानन्द बिल्कुल ढागी थे, उनम विद्या भी वैसी नही थी किन्तु नग्न रहने के कारण उन्हे आसमान पर चढाया गया, और थोडी ही दूर पर उनकी सगमरर की समाधि उसी समय बन चुकी थी। यदि किसी ब्रह्मनिष्ठ पुरुष का स्मारक काशी म होना चाहिए था, तो वह मँगनीराम ब्रह्मचारी थे। अगर उनकी कुटिया का मानव हाथो ने गिराया नही था, तो सौ बरस और चल सकती थी। लेकिन, सेठ ने मँगनीराम की मधुर स्मृति का लुप्त करके स्वय अमर बनना चाहा, यह अक्षमतव्य अपराध है। जहाँ तक मँगनीराम ब्रह्मचारी का सम्बन्ध है, उन्हे नाम की बिलकुल भूख नही थी। जीवन म भी जानकार लोग ही इस गुदडी के लाल का पहचानते थे। मरने के बाद वह किसी तरह की यादगार की आकाक्षा नही रख सकते थे। लेकिन, वेदान्त की दुहाई देनेवाले किस मज की दवा है ?

मेरे रहते समय मोतीराम बगीचे म विद्यार्थियो और सन्यासियो के लिए तीन या चार क्षेत्र चलते थे, जिनम ६०-७० आदमियो का भोजन मिलता था। अब उन क्षेत्रो की इमारतें धराशायी हो चुकी थी। कई दजन से अधिक विद्यार्थी रहते थे अब किसी का पता नही। बगीचे म सैकडा नीबू के पेड और कुछ बडे वृक्ष भी थे, जिनसे गर्मियो मे भी ठण्डक रहती थी। बीचोबीच टिन के नीचे ऊँचा पक्का चबूतरा था, वह भी अब नही रहा। शकर तरुण थे। विरक्त होकर काशीवास करने के लिए चले आये थे। पुरानी निशानी के रूप मे मिले। अब आखो से सूझता नही था। बहुत याद

दिखाने पर वह मुझे पहचान पाये। दो वृद्ध सन्यासी भी वहाँ थे। स्वामी अद्वैत आश्रम से मैं बातचीत करता रहा। उनको याद है, एक दण्डी स्वामी के भतीजे वनमाली को एक दूसरा विद्यार्थी बहकाकर कहीं ले गया था। वनमाली मेरे ही जिले के रहनेवाले थे और बहकाने का जवाब जिस पर लगाया गया, वह मैं ही था। हम दोनों में स्नेह था। जब मैं काशी से वैरागी साधु बनने के लिए परसा चला गया, तो वनमाली का मन भी उचट गया, और वह भी परसा पहुंच गये। मैं उस समय दक्षिणी पथ की लम्बी यात्रा पर निकला हुआ था। मेरी अनुपस्थिति मे वह वरदराज दास बन गये। कितने ही सालों तक वरदराज और मैं कभी साथ और कभी अलग-अलग पर हृदय से एक दूसरे के नजदीक रहते रहे। असहयोग का जमाना आया और उस समय पाच छ वर्षों के लिए मैं छपरा का स्थायी निवासी बन गया। लेकिन अब वरदराज वहा से गायब हो चुके थे। उनसे मिलने की बहुत कोशिश की, और आज भी अपने बालमित्र के मिलने की बड़ी लालसा है। गौहाटी कांग्रेस म बहुत पता लगाया। लेकिन असफल रहा। सुना था, वह आसाम मे चले गये, और फिर साधु से गृहस्थ बन गये। जसे भी हो मित्र के मिलने की आकांक्षा थी।

बगीचे की दीवार के सहारे—जहा पहले बगीचे का एक दरवाजा था अब भी वह घरौंदे सी पक्की कोठरिया मौजूद थी, जिनमे चक्रपाणि ब्रह्मचारी और कुछ विद्यार्थी रहा करते थे। छत के ऊपर मैं कितनी ही बार पुस्तक घोखाई करता था। उस समय दीवारों के सहारे जगह जगह छोटी छोटी कुटियाँ बनी हुई थी जिनको देखने से प्राचीन आश्रम याद आते थे। लेकिन आज सब लुप्त था। स्वामी अद्वैताश्रम और उनके साथी दण्डी उस पुराने ससार के लुटने से असतुष्ट थे। पर इतना सतोष जरूर था, कि सेठ ने उनके खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया था। दोनों इतने वृद्ध थे, कि अधिक दिनों तक उनके रहने की आशा नहीं थी।

हिन्दू विश्वविद्यालय मे गये। प्रा० ललित किशोर सिंह रघुबीरी नागरी के पक्षपाती नहीं थे, पर साथ ही अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर अंग्रेजी परि

भाषाओं के भारी समर्थक थे। प्रो० फूलदेव सहाय और डा० व्रजमोहन अपनी परिभाषाएँ चाहते थे, लेकिन डा० रघुवीर की शैली नये शब्दों के बनाने को आसान कर देती थी, इसलिए उसी तरफ झुके हुए थे। सचमुच ही उसमें आसानी थी—उपसर्गों, प्रत्ययों और धातुओं का गणित के अनुसार जोड़ घटाकर अरबों शब्दों को बनाना। लेकिन जिनके लिए ये शब्द बनाये जाने वाले थे उनकी दिक्कतों का भी ख्याल करना जरूरी था जिसे समझने के लिए डा० रघुवीर और उनके साथी तैयार नहीं थे। असली रास्ता दोनों के बीच में था।

२० नवम्बर को फिर निकले। बंगालीटोला, दशाश्वमेध, कचौड़ी गली मणिकर्णिका, सिंधिया घाट, नन्दनसाहु की गली, गोदौलिया सभी अपनी पुरानी जगहों को देखते फिरे। फिर विश्रामनिवास जी के साथ हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर चले। भिनगा की कोठी में प० गुरुसेवक सिंह उपाध्याय को रहता जानकर उनसे भी थोड़ी देर मिल लिया। वृद्धों की सबसे बड़ी पूजा है उनसे मिलकर कुछ मीठी बातें और पुरानी स्मृतियाँ सुनना तथा सुना देना। विश्वविद्यालय में प्रो० फूलदेव सहाय ने रसायन सम्बन्धी प्लास्टिक आदि की परिभाषाओं का लेना स्वीकार किया। डा० दयास्वरूप खनिज और धातु-सम्बन्धी परिभाषाओं का भार उठाने के लिए तैयार थे। डा० पन्त विमान चालन शास्त्र के लिए तैयार थे। डा० राजनाथ भूगर्भ और धातु शास्त्र में सहायता देने को सन्नद्ध हुए यह मालूम हुआ पर उस समय वह मिल नहीं सके। इंजीनियरिंग कालेज के प्रिंसिपल सेनगुप्त यंत्र शास्त्र और बिजली इंजीनियरिंग के लिए विश्वास दिला रहे थे। डा० वाडवालकर बहुत बातूयायी होने से विश्वास तो नहीं पड़ता था, किन्तु आशा थी, अपने टेक्नोलाजी कालेज से परिभाषाओं का कुछ काम करा देंगे। डा० गाडवोले शिक्षा के लिए कितने ही समय तक जापान और जर्मनी में भी रहे थे, इसलिए भली प्रकार जानते थे, कि अंग्रेजी परिभाषाएँ अन्तर्राष्ट्रीय नहीं हैं, यदि अन्तर्राष्ट्रों में जापान और जर्मनी भी आ सकते हैं। प्रिंसिपल सेनगुप्त ने बहुत उत्साह दिखलाया था। हिन्दू विश्वविद्यालय के

विद्वानो मे मिलने पर साफ मालूम होने लगा, कि काम पहले कठिन जरूर होगा किन्तु अन्त मे इसे पूरा होने मे दिक्कत नही होगी। मैंने समझा दो मास मे विद्वानो से शब्दो का सग्रह कराना, एक मास मे सम्पादक विभाग का देखकर अवशिष्ट शब्दो के प्रतिशब्द देना, एक मास सम्पादक मडल द्वारा संशोधन किया जाना, टाइप करके दो मास परामर्श के लिए सग्राहक विद्वान और भारत की दूसरी भाषाओ के तज्ज्ञ पण्डितो के पास राय के लिए भेजना, और अन्त मे एक मास लगाकर अन्तिम संशोधन करके प्रेस के लिए पुस्तक तैयार कर देना। छपाई मे एक मास लगने का रख देने पर कुल आठ मास का काम था। बहुत से विषयो का काम एक साथ चल सकता था, इसलिए आठ मास के भीतर कई विषयो की परिभाषाएँ छपकर प्रकाशित हो सकती थी। मेरे ख्याल से सारी चार पाच लाख की परिभाषाओ को बनाने मे चार पाँच वर्ष से अधिक नही लगते। यदि परिभाषा निर्माण का काम रुक गया होता तो १९५२ ५३ तक हिन्दी और भारत की सभी भाषाएँ परिभाषाओ के अभाव से मुक्त हो जाती। सम्मेलन का भीतरी झगडा उतना बाधा नही पहुँचा सकता था जितना परिभाषाओ के छापने मे उदासीनतावाली सुस्ती। किस मुह से मैं विद्वानो को समय और श्रम देकर शब्दो के सग्रह के लिए कहता जब कि मैं देख रहा था, कि उनके छापने की कोई आशा नही है।

२१ नवम्बर को डा० मगलदेव शास्त्री से मिला। उन्होने भी हमारी योजना को पसद किया। उस समय काशी मे संस्कृत विश्वविद्यालय बनाने की बात चल रही थी। डा० सम्पूर्णानन्द काशी मे इस कृति और कीर्ति के समर्थक थे, जिसके लिए योजना बनाने के वास्ते डा० मगलदेव को कहा गया था। मुझे तो यह बेकार का सफेद हाथी मालूम होता था। आखिर हिन्दू विश्वविद्यालय मे संस्कृत विभाग है ही, उसी को और मजबूत करना चाहिए था, और राजकीय संस्कृत कालेज को उसी का अग बना देना चाहिए था। संस्कृत के विद्यार्थियो की सख्या तो दिन-पर दिन कम होती जा रही थी, फिर इस लम्बे-चौडे नामवाली संस्था मे पढनेवाले कहाँ से आयेंगे ? यदि सामग्राह

सफेद हाथी को बाँधना ही है, और अब तो वह बध सा गया है, तो यहाँ सस्कृत की पढाई म ऐसे परिवतन करने चाहिए कि विद्यार्थी ३ मास नही ६ मास पढे, और अपने-अपने विषयो की गम्भीरता रखते हुए कुछ ऐसे भी विषय ले जिनसे यहाँ के स्नातको को सरकारी नौकरियो म प्रवेश पाने की सहायता हो। आज सस्कृत के लिए सबसे बडी समस्या है—कस उसके गम्भीर पाण्डित्य की रक्षा की जाए। पुराने महाविद्वान महाप्रस्थान करते जा रहे ह, और उनका स्थान लेनेवाले बहुत कम नये पैदा हो रहे हैं। क्या इस महान क्षति को सस्कृत विश्वविद्यालय रोक सकता है? मेरी समझ म इसका दूसरा रास्ता ही है।

उस दिन विश्वविद्यालय म कृषि कालेज के प्रिंसिपल लूथरा से मिले। पुराने युग के नौकरशाह लाल फीताशाही के अनन्य भक्त हैं। उन्होने सलाह दी, उप कुलपति एक परिपत्र निकाल करके हम लोगो के पास भेज दें, तो यह काम आसानी से हो सकता है। उप कुलपति प० गोविन्द मालवीय से परिपत्र निकलवाना मुश्किल नही था लेकिन परिपत्र निकालने पर फिर सवाल होगा प्रोफेसर लोग इस काम के लिए अपनी ड्यूटी का समय देंगे, और उनके अपने काम का हरज होगा। मैं चाहता था, इस काम को ड्यूटी से अतिरिक्त मानकर किया जाए।

उस दिन साढे ६ बजे शाम को हरिश्चन्द्र कालेज मे व्याख्यान देना था। व्याख्यान का एक लाभ तो मुझे होता है, तरुणो से मिलने का मौका, जिन्ही के ऊपर देश का भविष्य निभर है और दूसरा यह था कि पत्रो म निकल जाने से हितमित्रो को पता लग जाता और उनसे मुलाकात हो जाती।

२० तारीख को दाँत के दद से होठ सूज गए थे, भोजन की भी रुचि थी। काम के लिए मैंने श्री भगवद्दत्त शर्मा और श्री विद्यानिवासजी को विश्वविद्यालय भेजा। प्रिंसिपल लूथरा से ही भेंट हो सकी, और उन्होने फिर परिपत्र की बात की। कई सालो से तिब्बत से लाया 'प्रमाणवार्तिकभाष्य' कई दरवाजे घूमकर भी कीडो का भक्ष्य होने के लिए रखा हुआ था। आचाय महेन्द्र शास्त्री को आशा थी, शायद ज्ञानपीठ उसे छाप दे। वे ले

भी गए लेकिन अभी प्रभाकर की इस महान् कृति का प्रकाश मे आना बदा नही था।

अगले दिन २३ नवम्बर तबीयत कुछ ठीक मालूम हुई और १ बजे फिर हम विश्वविद्यालय पहुँचे। भौतिक विज्ञान मे डा० आसुन्डी विश्वविद्यालय के एकमात्र पुरुष थे, जो बडे उत्साह के साथ अपने विषय के अनुसन्धान मे लग हुए थे। उन्होने अपनी छोटी सी प्रयोगशाला म पारे की किरणो के अनुसन्धान को दिखलाया। यहा वह काम हो रहा था, जिसके लिए पैसे और साधन की कमी नही होनी चाहिए पर डा० आसुडी अपने ऊपर ही निर्भर रहने के लिए मजबूर थे। अच्छे बडे यन्त्रो को वे कहा से ला सकते। डा० आसुडी कन्नडभाषी है, अर्थात् उस प्रदेश रहनेवाले हैं, जिसके लिए कहा जाता है कि वह अंग्रेजी का बहुत पक्षपाती है। पर वह परिभाषा के काम म बहुत उत्साह दिखला रहे थे। सात-आठ अध्यापक उनके विभाग के जमा हो गए और वहा मैंने परिभाषा निर्माण के बारे म बतलाया। डा० सदगोपालन प्रसाधन को और प्रो० रामचरण ने स्फटिक को लेना स्वीकार किया। एक तरुण विद्वान ने हिन्दी माध्यम होने से विस्तृत साहित्य से वचित होने की आशका प्रकट की। मैंने कहा—हिन्दी या किसी भाषा के माध्यम होने पर भी विश्व की दो तीन उन भाषाओ को हरेक अनुसन्धानकर्ता को पढना पडेगा जिनम रोज रोज नये नये वैज्ञानिक आविष्कार प्रकाशित होते रहते हैं। हिन्दी या कोई भी प्रादेशिक भाषा के उच्च शिक्षा का माध्यम होने का मतलब यह हर्गिज नही कि हम जर्मन, फ्रेंच अंग्रेजी और रूसी का कामचलाऊ ज्ञान नही प्राप्त करना होगा। आयुर्वेद विभाग के डा० घाणेदार से बातचीत हुई। उन्होने हिन्दी मे कई पुस्तकें लिखी हैं। परिभाषाओ के लेने मे वह भी रघुवीरी पथ के पथिक हैं। वस्तुत अंग्रेजी परिभाषाओ के अपनाने तथा रघुवीरी परिभाषाओ के बनाने म बहुत मेहनत नही करनी पडती। पहली के लिए तो कुछ करना ही नही है दूसरी के लिए यान्त्रिक तौर से धातुओ और प्रत्ययो को जोड-जोड देना है। इसलिए कितने ही विद्वान इनमे से एक को स्वीकार करना चाहते हैं। मध्य

का माग परिश्रम साध्य है, जिसे हमारे देश न परिभापाओ के लिए दो हजार वप से अपनाया है, और उस पर ही युराप की समुन्नत भापाएँ भी चली हैं। अर्थात् परिभापाआ को नात न्दा द्वारा बनाना चाहिए।

७४ नवम्बर को डी० ए० वी० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय म व्याख्यान देने गया। यह विद्यालय जब अभी-अभी स्थापित हुआ था तभी मैं तीन महीन तक इसका छात्र रहा, और किसी अग्रेजी स्कूल म पढन का वम यही मुझे मौका मिला। उस समय वह किराये के मकान मे गादौलिया के पास सिकरोड जानेवाली सडक से कुछ हटकर गली मे था। अब विद्यालय की अपनी विशाल इमारत है। छठी से बारहवी कक्षा मे ग्यारह सौ लडके पढ रहे है। आयसमाज उस समय शिक्षा प्रचार के लिए बहुत प्रयत्न कर रहा था, और इसके ही फल जगह जगह के दयानन्द स्कूल और दयानन्द कालेज है। लडकियो की शिक्षा क वह विरोधी तो नही थे पर चाहत थे कि उन्हे हिन्दी और अधिक से अधिक सस्कृत तक ही सीमित रखा जाए, इसीलिए वे लडकियो के स्कूलो को अधिक नही खोल सके। कालेज के प्रिंसिपल श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड वढब बनारसी' का मेरे साथ एक दूसरा भी हैं। उनका ननिहाल आजमगढ जिले का निजामाबाद कस्बा है जहाँ पर उनके बचपन के बहुत से साल बीते थे। मैंन निजामाबाद से ही उदू मिडिल पास किया था। उस समय बेढबजी से परिचय तो नही हुआ था, पर उनके नाना मामा और ममरे भाइयो को रोज देखता था। बादशाही जमाने मे किसी समय गौड कायस्थ लोग निजामाबाद म जाकर बस गये थे। अब भी उनकी पक्की-कच्ची हवेलियाँ बतला रही थी, किसी समय उनकी स्थिति बहुत अच्छी थी। बेढबजी का ननिहाल निजामाबाद का सबसे बडा जमीदार घराना था। हवेलियाँ क्या, मुझे तो उस समय वह महल जैसे मालूम होते थे। स्टशन से दूर महाग्राम या पुरान कस्बे मे रहत भी वहा देहाती वातावरण नही था। शिक्षा की तरफ भी उनका ध्यान था, यद्यपि निजामाबाद मे मिडिल स्कूल से अधिक की पढाई नही थी, और सो भी हिन्दी उदू मे। इस स्कूल के मुख्याध्यापक कुछ समय हरिऔधजी भी रह चुके थे। मेरे

अध्यापक प० सीताराम श्रोत्रिय उन्ही के शिष्य थे। निजामाबाद म और भी शिक्षा बढी, परन्तु उससे निजामाबाद का कोई फायदा नही हुआ। शिक्षा प्राप्त कर जीविका के लिए लोगो को बाहर जाना पडा और वह किसी बडे शहर म जाकर बस गए।

विश्वविद्यालय म इजीनियरिंग कालेज के प्रिंसिपल श्री सेनगुप्त न बुलाया था। उनसे और बातचीत हुई, और बिजली तथा यान्त्रिक इजीनियरिंग की परिभाषाओ को उन्ह देना स्वीकार किया। भिक्षु जगदीश काश्यप उस समय विश्वविद्यालय मे ही पालि पढा रहे थे। उन्होने परिभाषा का काम चुस्ती से हो, इसकी देखभाल का जिम्मा अपने ऊपर लिया। सब मिलाकर बनारस की यह यात्रा बडी उत्साहवर्धक रही। यदि पीछे गाडी आगे नही बढी तो इसका दोष उनके ऊपर नही था।

विद्यानिवासजी को कल आने के लिए छोड प० भगवद्दत्त शर्मा के साथ रात को मैं प्रयाग के लिए रवाना हो गया।

**प्रयाग**—आते ही इन्कम टैक्स अफसर का हुकुम मिला। विदेश म रहते समय मेरी आय का ब्यौरा मागा था। मुझे लेनिनग्राद के प्रोफेसर के तौर पर साढे चार हजार रूबल मासिक मिलता था। यदि सरकारी विनिमय को लिया जाता, तो दो हजार रुपये से यह अधिक होता था। पर वहाँ की चीजो के मूल्य को देखा जाए तो कितनी ही चीजें यहा से बीस तीस गुना मँहगी थी। किस तरह हिसाब किया जाए? विदेश म अपनी आमदनी के लिए यदि देश की दो चार साल की आमदनी को इन्कम-टैक्स मे दे दिया जाए तो इसका अर्थ है भूखे मरना। इन्कम टैक्स का यह झगडा कई साल म तय हुआ।

हिन्दी के छोटे टाइपो के प्रयोग म सबसे बडी दिक्कत थी उसकी ऊपर नीचे की पाइया, जिसके कारण हमारे अक्षरो का आकार दूना होने पर भी मोटाई आधी होती है। मैंने उसके बारे मे कुछ सोचा था, इसे मैं बतला आया हू। कैलाश टाइप फाउन्ड्री के मालिक ने अपने मिस्त्री सुलतान से ऐसे टाइप को बनवाना स्वीकार किया, जिसमे मात्राएँ ऊपर नीचे न होकर

आगे पीछे हो। अन्त मे यह टाइप बनकर तैयार भी हुआ, लेकिन वह काम म नही आया।

२८ नवम्बर को प्रयाग मे सरदार वल्लभभाई पटेल के आगमन की धूम थी। वल्लभभाई कांग्रेस आन्दोलन मे बडे सेनानी थे, गान्धीजी का उन पर असीम विश्वास था। भारत के स्वतन्त्र होने पर रियासतो के झगडे मिटाने मे उन्होने बडी दृढता का परिचय दिया था और हैदराबाद की समस्या का हल करना उन्ही का काम था। लेकिन वह थैलीशाहो के समर्थक और हर तरह के प्रगतिशील विचारो को कठोरता से दमन करने के पक्षपाती थे। वह आज के भारत की समस्याओ को न समझ पाते थे न उसके सुलझाने की हिम्मत रखते थे। सारे भारत मे प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव तो नही है, इसलिए कांग्रेसी नेता और थैलीशाह उनके स्वागत म अपनी पलको को बिछाने के लिए तैयार थे। पटेल के रहते नेहरू सिर्फ उनके शब्दयन्त्र थे। पटेल स्वय वक्ता नही थे, इसलिए उन्हे ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी।

मामूली-सी बात म कैसे बात का बतगड बन जाता है, इसका उदाहरण २६ नवम्बर की एक घटना है। श्रीनिवासजी के छोटे लडके नीलू को नौकर घुमाने ले गया। उस वक्त प्रयाग मे हल्ला मचा हुआ था, कि शहर मे लकडसुंघवा घूम रहे हैं, जो लकडी सुघाकर बेहोश करके बच्चो को उडा ले जाते हैं। किसी ने नौकर के साथ नीलू को जाते नही देखा था। हल्ला मच गया। लोग इधर उधर बेतहासा दौडाने लगे। अन्त मे जब नौकर के साथ नीलू सही सलामत आया, तो लोगो की जान मे जान आई।

कानपुर—मैं परिभाषाकी धुन मे था। बनारस के बाद कानपुर के विशेषज्ञो से मदद लेने के लिए २६ नवम्बर को कानपुर पहुँचा, और प्रा० बालमुकुन्द गुप्त के पास ठहरा। अगले दिन उनके और श्री ललितमोहन अवस्थी के साथ कृषि कालेज पहुँचा। प्रो० सरगा हिन्दी परिभाषाओ के महत्व को समझने के लिए तैयार नही थे, और समझाने पर भी निराशावाद की बातें करते रहे। लेकिन, डा० उदयनारायण सिंह काम करने के

लिए तैयार थे। चर्म स्कूल के प्रधानाध्यापक ने भी अपने विषय की परिभाषाओं को देना स्वीकार किया। परिभाषाओं को टाइप करके उसकी कई कापियों की आवश्यकता थी, ताकि भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के विद्वानों के पास उनको भेजा जा सके। इसके लिए डुप्लिकेटर मशीन के लिए बातचीत चल रही थी। यहाँ वह तैयार मिली, और मैंने २६०० रुपये में सम्मेलन के लिए उसे खरिदवा दिया।

१ दिसम्बर को टक्सटाइल (वयन) इन्सटीटयूट में गया। वहाँ के तीन अध्यापकों—अग्निहोत्री वरला और चक्रवर्ती ने वयन सम्बन्धी परिभाषाओं को देने का जिम्मा लिया, और यह भी कहा, कि जनवरी के अन्त तक हम इस काम को पूरा कर देंगे। वस्तुतः जिस विद्वान् से हम मिलते, वह परिभाषा के महत्व को समझता, और हमें सहायता देने के लिए कटिबद्ध हो जाता। मैं जानता था, यह प्रेम की बेगार है। विद्वानों को अपने निजी समय को इसके लिए अर्पित करना पड़ेगा। हारकोर्ट बटलर टक्नालाजिकल इन्स्टीटयूट में चीनी और तेल सम्बन्धी परिभाषाओं का काम श्री दयाचन्द्र कौशल के निरीक्षण में होने लगा। कौशलजी टेक्नालोजी के बी० एस सी० थे, यद्यपि उन्होंने जीविका के लिए इनकम टक्स के मुकद्दमों की पैरवी का काम ले लिया, और उसमें सफलता प्राप्त करने करते एल एल० बी० होकर वकील भी बन गए। वह उन पुरुषों में थे, जो परिभाषाओं के बारे में सबसे अधिक तत्पर और उनकी तैयारी के लिए अधीर थे।

और दिन भी व्याख्यान देने पड़े थे किन्तु २ दिसम्बर को तो व्याख्यानों का तांता लग गया। मारवाडी कन्या विद्यालय में ११ बजे व्याख्यान दिया, फिर संस्कृत महाविद्यालय गुरुसहाय शर्मा स्कूल और क्राइस्ट चर्च स्कूल में भाषण देकर श्री कैलाशचन्द्र कपूर के यहाँ भोजन किया। श्रमजीवी पत्रकार संघ और प्रताप कार्यालय में भी बोलना पड़ा। शाम को कल्याण बाबू के यहाँ भोजन करने भी एक गोष्ठी हो गई।

[illegible] जहाँ-तहाँ घूमने का काम हुआ। गंगा के किनारे मनीघाट पर गए, जहाँ अंग्रेज स्त्री बच्चों का हत्याकाण्ड हुआ था।

मन्दिर १८५७ में भी वहा मौजूद था। फिर कम्पनी बाग मे उस कुएँ का देखा, जिसके भीतर सैकडा अग्रेज नर-नारिया का मरा या अधमरा करके डाल दिया गया बतलाया जाता है और जिसे पत्थर के अच्छे स्मारक का रूप दे दिया गया था। इस कुएँ को १६ अगस्त १९४७ स पहले भारतीया का देखन के लिए नही खोला गया था। अब खुला था, और स्मारक की इमारत मौजूद थी।

उस दिन का प्रातराश और मध्याह्न भाजन श्री पुरुषोत्तम कपूर के यहाँ हुआ। इधर मैंन विवाह प्रथा और उसके गीतो का जमा करन क लिए कई महिलाओ से कहा था। पुरुषोत्तमजी की धर्मपत्नी विमलाजी से भी मैंने अर्ज कर देना चाहा, कहत रहो, दस मे से एक कोई ता उसके लिए तैयार हो जाएगा। विमलाजी न उत्तर प्रदश म पीढिया से आ बसे "पजाबी" खत्रियो को विवाह प्रथा और गीतो का जमा भी कर दिया पर वह अधूरा रहने से प्रकाशित नही हो सका। एक दजन महिलाआ म मे सिर्फ एक डा० किरणकुमारी गुप्ता ही ऐसी निकली, जिन्होंने 'कदीमी अग्रवाल" विवाह प्रथा पर एक सुन्दर पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवाई।

दिल्ली—उसी दिन साढे १२ बजे कलकत्ता मल पकडकर ९ बजे दिल्ली पहुँचा। अब कितने ही समय के लिए दिल्ली मे मेरी टिकान श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार के यहा होती थी। दिल्ली मे विद्यालकार की पत्नी श्रीमती स्वणलता और दूसरे तरुण तरुणियो ने मिलकर एक नाटय मण्डली स्थापित की थी यह स्तुत्य प्रयत्न था। कानपुर मे मैं मित्रो स कहता रहा, कि १३ १४ लाख आबादी की इस महानगरी म हिन्दी का रगमच न हाना खटकता है।

४ दिसम्बर को इम्पीरियल कृषि अनुसन्धान देखन गया। पहल यह सस्था पूसा (मुजफ्फरपुर) म थी। जब भूकम्प स वहाँ की इमारतें ध्वस्त हा गई, ता उसे यहा लाया गया। डा० उमानाथ चटर्जी और श्री बाबूराम पालिवाल से परिभाषाओ के सग्रह के बारे मे बातचीत हुई और दाना न काम करने की रुचि प्रकट की। बहुत दिनो बाद ५ दिसम्बर का प० ईश्वर

चन्द्रजी से भेंट हुई। शायद १६१६ था, जबकि ईश्वरचन्द्रजी बनारस में पढ़ते थे, और कितने ही दिनों तक मैं उनका अतिथि था। वह संस्कृत के, विशेषकर मीमांसा आदि दर्शनों के गम्भीर विद्वान् हैं। आजकल अपने पुत्रों के साथ दिल्ली में रहते थे। मैंने चाहा, कि वह भी परिभाषा के काम में आ जाएँ लेकिन पुत्रों को छोड़कर वह यहाँ से नहीं जा सकते थे। प्रयाग में कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं किया जा सकता था। गंगादत्त शास्त्री मिले। उन्होंने काम करने और चलाने की इच्छा प्रकट की। डा० सत्यकाम भारद्वाज दिल्ली में कान, नाक और कंठ की बीमारियों के विशेषज्ञ साथ ही हिन्दी के प्रेमी हैं। अपनी बढ़ी हुई प्रैक्टिस में से समय निकालना बड़ा मुश्किल था, लेकिन उन्होंने अपने विषय की परिभाषाओं पर सारा काम किया पर उसका उपयोग नहीं लिया जा सका।

५ तारीख इतवार के दिन चन्द्रगुप्तजी के यहाँ ही साहित्य गोष्ठी हुई। यह चलती फिरती गोष्ठी मुझे बहुत पसन्द आई। गोष्ठी में जैनेन्द्रजी, नवीन, श्री सियारामशरण गुप्त अज्ञेय और उर्दू के महाकवि जोश आदि आए थे। कवियों ने अपनी कविता सुनाई दूसरों ने भाषण दिये और कुछ वार्तालाप हुए। राजेन्द्र एक तरुण मद्रासी थे, जो अंग्रेजी में ही लिखते हैं। वह भी बोले। किसी भी तरुण का अपनी भाषा छोड़कर पराई भाषा में लिखने का प्रयत्न करना मैं अच्छा नहीं समझता। यदि प्रतिभा है तो अपने साहित्य में उसे स्थान मिलेगा। अंग्रेजी में जब माइकेल मधुसूदन दत्त सरोजिनी नायडू, तारदत्त को नहीं पूछा गया तो दूसरा को कौन पूछता है?

इधर कितने ही दिनों से दिमाग में खिचड़ी-सी पक रही थी, और "आज की राजनीति" पुस्तक द्वारा देश की समस्याओं को रखना चाहता था। इसी समय उसकी भी सामग्री जमा करने और अगले साल गर्मियों में उसे लिखने की सोचने लगा। हमारी सरकार कितनी सुस्त और ढीली है [illegible] देखकर दुःख होता था। मैं पाकिस्तान भाग गए मुसलमानों के मकान [illegible] ही में एक जगह रखा हुई थी। सारा बरसात और सारा गर्मी उन्होंने वहीं बिताई। [illegible] के तीन हाथ में बदा दर था।

क्या उनका नीलाम कर रुपया जमा नही किया जा सकता था, इससे उनका उपयोग भी होता, और पीछे दावेदार को रुपया मिल जाता। क्या उनका नाश राष्ट्र की सम्पत्ति का नाश नही था ? नौकरशाही सचमुच काठ की मशीन है, उससे क्या आशा हो सकती है।

उस समय अपनी लिखी हुई पुस्तको के प्रकाशित होने मे देर देखकर मन मे आने लगा, कि पुस्तको को पत्रिका के रूप म प्रकाशित करें। पत्रिका के रूप मे तो नही पर तीन पुस्तको को प्रकाशित करके प्रकाशन का भी कडवा मीठा तजबा पीछे कर लिया। मुझे तो यही लगा कि लेखक को इसम नही पडना चाहिए। यह एक स्वतन्त्र व्यवसाय है जो पूजी क साथ साथ आदमी का पूरा समय लेना चाहता है।

६ दिसम्बर को पुराने सेक्रेटेरियट मे पब्लिकेशन डिवीजन देखने गए, जहा स "आजकल" "विश्व दर्शन" तथा दूसरी और भी कितनी ही पत्र-पत्रिकाएँ निकला करती है। युद्ध के समय अग्रेजो ने ही इस विभाग की स्थापना की थी, जिसका ध्येय था पत्रिकाओ-पुस्तिकाओ द्वारा प्रचार करना। उस समय भारतीय ही नही, रूसी और चीनी भाषाओ मे भी पत्रिकाएँ निकला करती थी। प्रेस मे अब भी रूसी और चीनी टाइप थे। मेरे मित्रो ने रूसी स्वय शिक्षक लिखने के लिए कई बार कहा था, जिसके लिए बडी दिक्कत थी रूसी टाइप का न मिलना। यहाँ रूसी टाइप थे पर उनका कोई उपयोग नही हो रहा था, और न कम्पोजिटर मिलने वाला था। शायद ही वह बाहर की पुस्तक को छापना पसन्द करते।

वहा से हरिजन निवास म राष्ट्रभाषा समिति की बैठक म पहुँचे। एक बार तो उलटी दिशा की बस पकड ली, और दो मील जाने पर जब पता लगा, तो उसे छोडकर दूसरी बस पकडी, जो बिगडकर कुछ देर के लिए खडी हो गई। चली भी तो उससे धुआँ निकलने लगा। आग का डर था खैर दूसरी बस पकडकर हरिजन निवास पहुँचे। राष्ट्रभाषा समिति का सालाना बजट अब पाँच लाख का था। डेढ लाख अब के साल मकानो पर और ३५ हजार प्रेस पर खर्च करना था। प्रान्तीय समितियो को भी हजारो

रुपये सहायता मे देने थे। राष्ट्रभाषा हिन्दी की हमारे देश का आवश्यकता है इसका ज्वलन्त प्रमाण यह बजट था। उसी दिन डा० मोतीचन्द ने पश्चिम भारत चित्रकला के विषय में मैजिक लालटेन पर सारगर्भित व्याख्यान सिंधिया भवन के पास एक स्थान मे दिया। मैं उसका सभापति था, जिसके कारण अन्त मे मुझे बोलना पड़ा।

७ दिसम्बर को प० भगवद्दत्तजी मुझे भारत सरकार के सिंचन विभाग के प्रमुख इजीनियर खोसला साहब के यहा ले गए। रास्ते म उन्होने बतलाया कि कल नेहरूजी इनके यहा आए थे, इन लोगो ने जब अपने हिन्दी परिभाषा निर्माण के नमूनो का दिखलाया, तो इसे अनधिकार चेष्टा कहकर उन्होने बहुत फटकारा, और अग्रेजी रखने पर ही जोर दिया। बचारों का उत्साह सारा ठण्डा हो गया। खोसलाजी मिले पर अब कल ही घड़ा पड़े पानी का असर इतनी जल्दी कैसे दूर हो सकता है?

मुझे दिल्ली का वायुमडल दमघोटू सा जान पडता था। वहा के इन्दो आग्लियना की हर हरकत से नफरत होती थी। ईसाई न होते साटी धोती मे भी एग्लो इडियन मनोवृत्ति के लोग पैदा हो सकते हैं, यह इनके देखने से मालूम होता है। अधिकतर तो बल्कि धोती पर नाक भौं सिकोडते, और कोट पैट, टाई कालर लगाकर पूरे साहेब बनने का स्वांग रचते हैं। लिफाफा अधिक रखना तरक्की के लिए और रोब दाब के लिए भी आवश्यक था। इसी कारण आय से अधिक व्यय करना पडता था, जिसके लिए येनकेन प्रकारेण धन कमाने की कोशिश करते हैं। फिर इस वर्ग मे आचारिक पतन घोखाधडी, व्यभिचार आदि क्यो न फैले? इन इन्दो आग्लियना की जड न जनता म है, न इतिहास मे इनके लिए स्थान है। भारतीय संस्कृति का नाम समय असमय ले लेना यह जरूरी समझते है। इन्हे अग्रेजी चाहिए हिन्दी या दूसरी प्रादेशिक भाषा नहीं। ये अग्रेजी के कूपमडूक हैं। इन्हें अग्रेजी से बाहर की विशाल दुनिया का कोई पता नही। अंग्रेजी राज्य न इनका प्रेम है, अंग्रेजी रीति रिवाज का ये सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। ब्रिटिश विरोधिया के ये विरोधी हैं, अंग्रेजो के जाने का इन्हे बहुत खेद है। अंग्रेजी

पढ़ने में दस-पन्द्रह साल लगाने के लिए तैयार है, लेकिन हिन्दी साहित्य को बिना पढ़े ही जानना चाहते हैं। भारतीय जनता से ये उसी तरह भयभीत हैं जैसे कि अंग्रेज थे। इन्हें भारतीय हित की कोई पर्वाह नहीं। इस सारे वर्ग को नेहरू का संरक्षण मिला हुआ है, इसलिए इन्हें दूसरे की क्या पर्वाह हो सकती है ?

उसी दिन डा० अनन्तराम भट्ट से मुलाकात हुई। अभी तक सफल नहीं हुए। किसी सरकारी नौकरी की तलाश में थे। लेकिन, सरकार में योग्यता की थोड़े ही जरूरत है, वहाँ तो सिफारिश चाहिए। अब भी निराश नहीं हुए थे। मैं भी चाहता था कि यदि दिल्ली में उन्हें काम मिल जाय, तो यह उनके लिए अच्छा होगा। यहाँ रहते वह हमारे परिभाषा के काम में भी सहायता कर सकते थे। जिस होटल में रह रहे थे, उसका सात सौ कर्ज हो गया था, जिसके लिए चिन्तित थे।

कृषि प्रतिष्ठान में उस दिन फिर गए। इन्टोमोलोजिस्ट सत्यसाधन मुखोपाध्याय और मैकोलाजिस्ट श्री राय चौधरी ने बहुत अच्छी तरह बात-चीत की, किन्तु परिभाषा के निर्माण में उनकी विशेष रुचि नहीं थी। हाँ, उन्होंने बतलाया, कि अमेरिका में छप परिभाषाओं के विशेष शब्दकोश मौजूद हैं। हमारा काम उससे कुछ हो सकता था, पर हम अपनी परिभाषाओं की कसौटी विशेषज्ञ विद्वानों को बनाना चाहते थे।

मेरठ—अब की साहित्य सम्मेलन मेरठ में हो रहा था, जिसके सभापति सेठ गोविन्द दास हुए थे। मेरा कार्य काल बीत रहा था। ७ तारीख को मोटर से चलकर हम ६ बजे शाम को प्रो० धर्मेन्द्र शास्त्री के यहाँ पहुँचे, जहाँ हमें ठहरना था।

८ दिसम्बर को सबेरे गढ़मुक्तेश्वरवाली सड़क के ऊपर टहलने निकले। सड़क पर कण्डे बेचनेवाले शहर की ओर जा रहे थे। उनकी बातचीत मैं गौर से सुनने लगा। हिन्दी आखिर इन्हीं की भाषा है। जमुना के दोनों तरफ फैले कुरु और कुरुजांगल देश की वह जनभाषा है, इसलिए कौरवी भाषा की जिज्ञासा उठनी स्वाभाविक थी। कितने ही समय से मैं सोचता था,

प्रेमचन्द का कुरु देश में पैदा होना चाहिए था, ताकि वह अपना अनमोल कृतियों द्वारा बाल चाल की हिन्दी कैसी होती है इसके नमूने पेश करते। उपलवाले एक दूसरे से बात कर रहे थे। मैंने पूछा—"घर स उपले ला रहे हो?" जवाब मिला—"नहीं जी, मोल के लाते हैं।" पीछे रुडकी में भूमिया खेडा में बैठे एक दस वर्ष का लडका 'क्या करते हो' पूछने पर बाला—'रखवाली करूँ।" और दूसरा लडका अपने आप से बोल रहा था—"जाक्के जाना।"

कौरवी बोली बडी मधुर और लचकीली है। यह जानकर अफसोस होता था कि जहा और भाषाओं क हजारो गीत और कहानिया जमा करके प्रकाशित कर दी गई हैं वहा कौरवी के बारे मे कौरव भी उदासीन हैं।

उस दिन कुमार आश्रम मे भी गये। पहले वह किराये के बगाचे म था, जब कि मेरे मित्र श्री बल्देव चौबे ने उसे स्थापित किया था, अब वह अपनी भूमि मे है, और उसमे कालेजो तथा स्कूलो म पढनेवाले ३० ३२ हरिजन विद्यार्थी रहते है।

३ बजे (८ दिसम्बर) स्थायी समिति की बैठक हुई। बहुत बुरा लगा, जब देखा कि सम्मेलन नियमावली के सशोधन के काम का टडनजी ने फिर खटाई म डलवा दिया। अब अगले अधिवेशन तक सशोधन होता रहगा। लेकिन १९४९ मे भी यही ढीलम-ढाल तरीका रहेगा इसमे स देह नही। सभी कामो म ढील हो जाती है अगर सस्था के किसी एक काम मे ढील पडती है। परिभाषा के काम मे दिलोजान से पडा था, लेकिन अब हिचकिचाने लगा था कि इसे आगे बढायें या नही। जिन विद्वानो से मैं परिभाषा-सग्रह का काम करने के लिए कह रहा था, आखिर उनका भी ख्याल होना मेरे लिए जरूरी था। सत्याग्रह के जमाने मे टडनजी का नाम लोगो ने कफूजनदास रख दिया था। सचमुच ही किसी बात के बारे मे यह समय पर निर्णय नहीं कर सकते। स्थायी समिति विषय निर्वाचिणी समिति के रूप मे बदलकर रात के साढे ८ बजे बैठी। प० बालकृष्ण शर्मा नवीन' ने प्रस्ताव रखा कि हमारे विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम हिन्दी होनी चाहिए। यह

कारण स्त्रियों में शिक्षा बढ़ी। आय भाषा तक सीमित रहनेवाली महिलाओं की लड़कियाँ हाई स्कूल तक पहुँची, और पोतियाँ कालेजों में चली गई। आज की तरुणी अपनी दादियों से बहुत आगे हैं, आधुनिक रूप में दिखाई पड़ती हैं। उनकी माताओं ने कांग्रेस में भाग लिया, और जनता में नेतृत्व की शिक्षा प्राप्त की। सम्मेलन के मण्डप का तिहाई भाग स्त्रियों से भरा रहता था।

अब के प्रधान मन्त्री प० बल्भद्र मिश्र चुने गए, जिनके लिए मैंने भी अपना वोट दिया। उसी दिन (१२ दिसम्बर) की रात को कवि सम्मेलन हुआ। पिछली रात के कवि-सम्मेलन में कुछ गडबडी हो गई थी, इसलिए मुझे आज का सभापति बनाया गया। मैंने बिना पहले देखे कविता पढ़ने की इजाजत नहीं दी। शान्तिपूर्वक सम्मेलन होकर ११-१२ बजे रात को समाप्त हो गया। "अचल" और "मुकुल" की कविताएँ बहुत पसन्द की गई। सभापति का ही श्रेय नहीं मिलना चाहिए, बल्कि जनता का विवेक भी इसमें सहायक हुआ, जो अनधिकारी का दुस्वागत करने के लिए तैयार थे।

सवा ११ बजे रुडकी पहुँच गए, और ३ बजे वहाँ के इन्जीनियरिंग कालेज के विद्वानों से मिलने गए। अब तो यह इन्जीनियरिंग विश्वविद्यालय है। टामसन इन्जीनियरिंग कालेज के रूप में इसकी स्थापना १८४७ में—आज से १०१ वर्ष पहले—हुई थी। यहाँ अध्यापकों में मेरा कोई परिचित नहीं था। विद्यार्थियों में वासुदेव पाडे मिल गए। वासुदेव की स्मृति बड़ी दुखद है। वह पढने में हमेशा तेज रहे और अपनी कक्षा में प्रथम होते रहे। इलाहाबाद में एम० एस-सी० प्रीवियस शायद कर चुके थे, किन्तु उससे अधिक उपयोगिता इन्जीनियर की थी, इसलिए वह यहाँ दाखिल हो गए। अपने पिता श्री गणेश पाडे से साहित्य प्रेम उन्हें वरासत में मिला था। परिभाषा के काम उन्होंने बड़ी तत्परता से भाग लेना शुरू किया था। इन्जीनियर हो देश के लिए बड़ी बड़ी उमगें लेकर कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हुए लेकिन, जीप की दुर्घटना में उनका देहान्त हो गया, और अपनी विद्या तथा योग्यता से देश का कोई उपकार नहीं कर सके। वह सामान्य इन्जीनियर नहीं थे, न वैसा रहना चाहते थे। आज की स्थिति ने योग्य व्यक्तियों को काम करने में कितनी अड़चन है, इसका तजर्बा उन्हें हो रहा था, लेकिन वह निराश नहीं थे।

वासुदेव ने हमारी बड़ी सहायता की। उनके द्वारा औरों से भी परिचय हुआ। प्रिंसिपल नृपेन्द्रनाथ चक्रवर्ती से बातचीत हुई। उन्होंने हमारे काम से सहमति प्रकट की। अध्यापकों में उतना उत्साह तो नहीं देखा, लेकिन उम्मीद थी कि कुछ काम दाम देने पर वह भी हाथ बटाने के लिए तैयार होंगे। ६ बजे विद्यार्थियों के सामने मुझे बोलना पड़ा। मैंने बतलाया, कि देश का आर्थिक उद्धार इन्जीनियर टक्नीशियन और साइन्सवेत्ता ही कर सकते हैं, जिनमें भी इन्जीनियरों की जिम्मेवारी सबसे अधिक है। इस समय वहाँ दो-सौ विद्यार्थी पढ रहे थे। मैं समझता था, कि नव निर्माण के लिए हम हजारों नहीं लाखों इन्जीनियरों की जरूरत होगी, जिनको पैदा करने में रुडकी को सबसे अधिक हाथ बटाना चाहिए। रुडकी में दो सौ नहीं हजार विद्यार्थी आसानी से पढ सकते हैं। उसकी प्रयोगशालाओं और

यन्त्रशालाओ का और भी अधिक उपयोग किया जा सकता है। क्या नही यहाँ तीन शिफ्ट म पढाई हो, इजीनियरिंग कालेज मे इमारत और प्रयाग शालाएँ सबसे अधिक व्ययसाध्य चीज है, जिनका तिगुना उपयोग उतने ही खर्च मे हो सकता था। पर पीछे जब मुझे बतलाया गया, कि इनन पास करनवाल इन्जीनियरा से भी कितना को काम नही मिलता ता बहुत धक्का लगा, और अपनी बेवक्त की शहनाई पर अफसोस हुआ। हमारे यहा जब तक सभी आयोजना का एक दूसरे से सम्बद्ध नही हागी, तब तक प्रगति की यही स्थिति रहगी कही विशपनो की जरूरत होगी और कही वह बेकार रहग। जरूरत क अनुसार समय पर उनको तैयार नही किया जाएगा, और योजनाएँ ढीली पड जाएँगी। रुडकी कालेज बडे ही उपयुक्त स्थान पर है, यहा चार हजार विद्यार्थिया के रहन का स्थान बनाया जा सकता है। पहले किसी समय भारत का यह एकमात्र इन्जीनियरिंग कालेज था, पर अब भारत म प्राय हर बडे प्रान्त मे इन्जीनियरिंग कालेज खुल गए हैं। यहा के विद्यार्थिया म सबस अधिक हिन्दीभाषी थे इसलिए हिन्दी के माध्यम द्वारा उनकी पढाई आसानी से हो सकती थी।

अगले दिन (१८ दिसम्बर) को टहलने के लिए हम गगा की महानहर क किनारे किनारे दूर तक गए। उस पुल को भी देखा, जिसके नीचे सालानी नदी और ऊपर नहर बहती है। आगे महिवड गाव मिला, विचित्र नाम बतला रहा था यह पुरान कुरुदेश का गाँव है—महिषवाट या महा वाट अथवा महावट हा सकता है। नाम से आकृष्ट हो आशा हुई, कि यहाँ कोई पुरानी चीज मिलेगी। लेकिन, जितनी अधिक पुरानी चीज है, वह उतनी ही अधिक पृथ्वी के नीचे होगी। गाव मे मुसल्मान भी हैं और हिन्दू भी। स्यान राजपूत थे। मुसल्मान मिठाई(मली) बना रह थे।

आज कालेज क सग्रहालय और प्रयागशालाओ को अच्छी तरह देखने का मौका मिला। प्रा० गरदे न बतलाया कि अध्यापक चाहिए, जिनके मिलन मे कोई दिक्कत नही। हम एक हजार विद्यार्थिया को यहाँ पढा सकते हैं। हाँ, योग्य अध्यापको के मिलन म सुभीता तभी हागा, जबकि

वेतन का ग्रेड चार सौ से नौ सौ रुपया तक कर दिया जाय। वह और प्रा० जयकृष्णजी हमारी सहायता के लिए तैयार थे। उस दिन चाय पार्टी हुई और विद्यार्थियों ने निबन्ध और कविताएँ पढ़ी। सभी ग्रेजुएट थे, यहा की तीन साल की पढाई म कितने ही अन्तिम कक्षा म थे। तरुणो म बहुत उत्साह देखा। नाम का डा० हृदस्प कुलश्रेष्ठ के यहा गए। उनसे कितनी ही देर तक बातचीत होती रही। उनकी सुशिक्षिता सुपुत्री ने कुलश्रेष्ठा की विवाह प्रथा के बारे मे कुछ करने का विश्वास दिलाया था, पर काम आगे नही बढ सका।

देहरादून—१८ दिसम्बर को डाक की बस पकडी और देहरादून चले। रुडकी सहारनपुर जिले म है, जिसकी उत्तरी सीमा पर सिवालिक पहाड है। सिवालिक के उस पार देहरादून शहर और उसका जिला है। सिवालिक सवा लाख सपादलक्ष का अपभ्रंश है। यह सवा लाख पहाड हिमालय की जड मे ह, लेकिन आयु म उससे पुराने और प्रकृति मे उससे भिन्न है। यहा वह हिमालय म काफी हटकर ह, और दोनो पर्वत-श्रेणियाँ दून (द्रोणि) बनाती है, जिसको ही देहरा शहर से जोडकर देहरा-दून कहा जाता है। सिवालिक की ऊँचाई बहुत ज्यादा नही है, लेकिन पर्वत पार तो करना ही पडता है। पहाड को जहा-तहा पार नही किया जा सकता। शताब्दियो से देखते हुए आदमियो ने सुगम रास्ते निकाल लिए हैं, जिनसे होकर लोग आवा-जाही करते है। सिवालिक म भी ऐसे रास्ते हैं। यहाँ की तरह सभी जगह हिमालय और सिवालिक का फासला दून नहीं बनाता। गगा और जमुना के बीच इस सिवालिक की कोई चोटी तीन हजार फुट स ऊँची नही है, और मसूरी से देखने पर तो यह बिलकुल कीडे-मकोडे सा मालूम होता है। शायद इसीलिए पुराने समय म इसे कीटागिरि कहते थे। रुडकी और सहारनपुर से आनेवाली सडक मोहना डाडे से सिवा-लिक को पार करती है। रुडकी से देहरादून २८ मील है। पहाडी म राजा जी के नाम से एक रक्षित प्राणिखण्ड है, जिसम जानवर का शिकार करना मना है। किसी समय जब सिवालिक दोनो तरफ घने जगलो से ढँका था,

तो यहां हाथी और बाघ रहा करते थे। पर अब तो बाघ ही कभी कभी दिखाई पड़ते हैं।

देहरादून में सैनिक स्कूल है। यहाँ इस आशा से आए थे, कि सैनिक परिभाषाओं के संग्रह करने के लिए लाभ हो सके। यह तो मालूम हो था कि यह काम तब तक कोई सैनिक अफसर अपने हाथ में ले नहीं सकता, जब तक सरकार की ओर से उसकी प्रेरणा न आए। और उसके लिए आजकल के दिल्ली के देवताओं से कोई आशा ही नहीं हो सकती थी। रामराय दरबार में गए। महन्त लक्ष्मणदास का नाम बहुत सुन रखा था। अब उनके उत्तराधिकारी महन्त श्री इन्द्रेशदास थे, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एम० ए० और श्री विद्यानिवास मिश्र के सहपाठी रह चुके थे। महन्तजी बड़े प्रेम से मिले। अपने साथ ले जाकर मिलिट्री, एकाडमी फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीटयूट सर्वे आफ इण्डिया के कार्यालयों को दिखलाया। अकाडमी में आजकल छुटि्टयां थीं, लेकिन मेजर ए० एम० चटर्जी ने सैनिक परिभाषाओं के बारे में कुछ आशा दिलाई। फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट में श्री जगदम्बाप्रसाद का नाम बतलाया गया पर वह वहां मौजूद नहीं थे। सर्वे में इस बात से किसी को दिलचस्पी नहीं थी। ऊपर से हुकुम आए, तो चींटी की चाल से चलने के लिए तैयार थे। शाम को प० गया प्रसाद शुक्ल और सन्त निहालसिंह से मिलने गए, पर दोनों ही अनुपस्थित थे। देहरादून की यात्रा से कोई काम नहीं बना। हां, आगे देहरादून के साथ जो घनिष्ठता बढ़नेवाली थी उसका श्रीगणेश इस समय जरूर हो गया। देहरादून में पहले किसी समय १६ हजार मुसलमान रहते थे, अब दो-तीन हजार भी मुश्किल से रह गए। कणपुरा सारा मुसलमानों का मोहल्ला था जिसमें एक या दो बूढ़े बच रहे थे। वह भाग नहीं सकते थे और लोगों ने भी उन पर दया दिखलाई इसलिए रह गए। अब कणपुरा पश्चिमोत्तर सीमा के हिन्दुओं का मोहल्ला है वहाँ पश्चिमी पंजाबी बोली जाती है। शरणार्थियों की संख्या ५० हजार बतलाई जा रही थी। व्यापार और दूकानें उनके हाथ में थीं। पुराने व्यापारियों ने अपनी दूकानों को

मुहमांगा दाम मिलते देख लालच में बेच दिया, और अब हसरत से देखते हैं। जो बहुत तरह की अच्छी और सस्ती चीजें देने के लिए तैयार हो उस दूकान पर ग्राहक क्यों न जाएँगे ?

लखनऊ—१६ दिसम्बर की सवा ५ बजे की गाडी से देहरादून से चले और अगले दिन सवेरे ७ बजे लखनऊ पहुँच गए। स्टेशन से सीधे महास्थविर बोधानन्द के पास रिसालदार बाग के बिहार में पहुँचे। बहुत लट गए थे, लेकिन बोलने अब भी थे उसी तरह जीवट के साथ। अंत पर पहुँचकर क्यो निराशा हो ? मृत्यु से क्या डरा जाए ? मृत्यु तो अभाव रूप है जीवन में प्रतिकूल परिस्थिति में डरने का कारण भी हो सकता है। लखनऊ में विशेषकर चिकित्सा-सम्बन्धी परिभाषाओ के लिए मेडिकल कालेज के अध्यापकों से मिलना था। यहा के काम की जिम्मेवारी श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी ने लेना स्वीकार किया। वह रिटायर हो चुके थे, और हिंदी प्रेम के कारण कुछ करना चाहते थे। उनके घर पर गये, लेकिन विद्यार्थीजी मौजूद नही थे। नातिदूर मेडिकल कालेज था। वहा डा० सुरेशचन्द्र कपूर से भेंट हुई। वह कानपुर के श्री कैलाश कपूर के सुपुत्र हैं। तरुण और उत्साही है, और परिभाषा के महत्व को भी समझते है। उनके साथ डा० मालवीय और डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त से मिले। डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्त ने सबसे अधिक उत्साह दिखलाया। पीछे मालवीयजी ने तो जीव रसायन का कोश तैयार करके दिया और वह प्रकाशित भी हो गया। एक डाक्टर सुनने के लिए तैयार नही थे कि मेडिकल साइन्स की शिक्षा हिन्दी माध्यम में हो। वह चुंझलाकर बोले—कम से कम इस साइन्स को बरबाद न कीजिये। उनके खयाल से अग्रेजी छोड़ दूसरी भाषा में मेडिकल साइन्स का पढ़ना उसे बरबाद करना है। लेकिन क्या किया जाए ? दुनिया के बहुत से बडे-बडे देश इस बरबादी के काम में लगे हुए हैं। जापान में अँग्रेजी में मेडिकल साइन्स नही पढाया जाता, रूस, जर्मनी, फ्रास, इतालो भी साइन्स को बरबाद करने का उतारू हैं। लखनऊ के मेडिकल कालेज के कई अध्यापक काम करने के लिए तैयार

थे, यदि वह कर नही सके, तो उनमे सम्मेलन का दोष है, जो उनसे काम नही ले सका।

मेडिकल कालेज से फिर विद्यार्थीजी के यहाँ गए, और वह हमारी प्रतीक्षा हजरतगज मे कर रहे थे। उनसे मुलाकात हुई। अगले दिन १८ दिसम्बर को साढे ८ बजे ही उनके साथ निकले। डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्त ने डायबटीज़ की बात सुनकर मेरे खून की परीक्षा की, पर उसमे चीनी नही मिली। उस दिन डा० र० न० मिश्र, डा० याज्ञिक और डा० माथुर से भी मिले। याज्ञिक और माथुर साहब ने अपने विषयो की परिभाषाओ को फरवरी तक देना स्वीकार कर लिया, और तकाजा करने के लिए विद्यार्थीजी वहा मौजूद ही थे। लखनऊ के काम से बडी प्रसन्नता हुई।

उसी दिन रात की ट्रेन पकडकर १९ को सवेरे ही प्रयाग पहुँच गए। डा० बदरीनाथ प्रसाद के यहा ठहरे। अभी उजाला नही हुआ था, इसलिए फाटक नही खुला था। मुझे बाहर ही कुछ देर प्रतीक्षा करनी पडी। प्रयाग मे सम्मेलन कार्यालय मे जाकर काम को देख सुन लेना था। इतवार की छुट्टी थी, लेकिन प० भगवद्दत्त शर्मा अपने काम मे लगे हुए थे। अगले दिन प्रधान मन्त्री प० बलभद्र मिश्र से मिले और उनसे काम के बारे मे बातचीत हुई। अब कलकत्ता जाना था।

**कलकत्ता**—२० दिसम्बर को दिल्ली मेल को सवा ८ बजे पकडना था। सेकड क्लास मे वहा खडे होने की भी जगह नही थी, और रात भी बितानी थी। प्रथम श्रेणी का टिकट बदलवाया। साथी मुसाफिर एक फौजी डाक्टर थे। उनकी बदली हुई थी इसलिए सारे घर के सामान को लगेज के तौर पर कम्पार्टमेन्ट मे भरे लिए जा रहे थे, पर उसके कारण हमारे सोने मे कोई विघ्न नही हुआ। अगले दिन पौने १२ बजे दोपहर को हावडा स्टेशन पर पहुँचे। श्री मोहनसिंह सेगर के साथ ५०, विवेकानन्द स्ट्रीट के राम भवन मे श्री रामेश्वर टाटिया के यहाँ जाकर ठहरे। उस दिन कुछ मित्रो से मिलना जुलना भर रहा। अब ३० दिसम्बर तक के लिए यही ठहरना था। उस समय मोटर का पेट्रोल बहुत दुर्लभ था लेकिन हम राज सवरे किल के

मैदान म टहलने के लिए ले जाने वाली कार मिल जाती थी। विक्टोरिया स्मारक और उसके आस पास चहलकदमी करते थ। एक वष से ऊपर अंग्रेजो को गए हो गए थे, लेकिन उनकी सारी करामत को ढाल के लिए हमारे राष्ट्र कणधार तैयार थे। फोर्ट विलियम का पलासी गेट, अब भी हमारी पलासी की पराजय को अक्षुण्ण रखे था। मैदान की मूर्तिया उसी तरह अपनी जगहो पर विराजमान थी। दिल्ली के देवताओ को उनसे कोई ग्लानि नही थी, पर हमारी जनता पहले ही से उनमे से कितनो का नामकरण कर चुकी थी। औटरम उनके लिए सन् ५७ के विद्रोह के यशस्वी वीर कुवरसिंह थे।

उस दिन १२ बजे सुनीति बाबू से जाकर मिले। हमारे परिभाषाओ के काम को उन्होंने देख लिया था। दो घटे तक बातचीत होती रही। यद्यपि वह अंग्रेजी का कायम रखने के पक्ष मे थे पर तो भी अपनी भाषाओ के प्रति दया दिखाना चाहते। यही राय डा० सत्येन्द्र बोस की भी थी जिनसे मैं अगले दिन मिला। वह हमारे देश म चोटी के साइन्सवेत्ताओ म से हैं, साइन्स के गम्भीर गवेषक भी है। लखनऊ के डा० चन्द्रशेखर तो साइन्स के लिए हिन्दी का नाम भी सुनना नही चाहते थे डा० बोस मातृभाषाओ पर दया करने को लिए तैयार थे, क्योकि उनके द्वारा विज्ञान का प्रचार साधारण लोगो म हो सकता है। इसके लिए बल्कि बगला मे ज्ञान विज्ञान' पत्रिका निकाल रहे थे।

२२ तारीख को श्री वीरेन्द्रदास गुप्त से मिले। वह अपने साथ एक वृद्ध वृद्धा साहित्य प्रेमी दम्पती से मिलाने के लिए ले गए, और फिर यादवपुर के इजीनियरिंग कालेज म भी गये। २४ तारीख को फिर उनसे मिलने का मौका व्यापारियो के सम्मेलन म मिला। वीरेन्द्र बाबू ने बगालियो की क्लर्कपिसाई की मनोवृत्ति को छोडकर उद्योग धधे म कदम रखा और उसमे जम गए थे। सास्कृतिक प्रेम बगालो शिक्षित म होना आवश्यक है, इसलिए वह अपने को सिर्फ पैसा कमाने तक ही सीमित नही रखना चाहते थे। उन्होंने उसी समय बतलाया था कि जापान के एक बौद्ध विहार मे

नेताजी की अस्थियां मैंने देखी हैं और उनके निधन के बारे में मुझे सन्देह नहीं है।

श्री सुरेशचन्द्र सेनगुप्त से पहले ही से पत्र द्वारा सम्बन्ध स्थापित हो गया था, और वह प्रत्यक्षशारीर (अनाटोमी) की परिभाषाओं के संग्रह में डट गए थे। उन्होंने यह भी बतलाया कि यहां के बंगाली विद्वानों से सहायता प्राप्त करने में हमें कोई दिक्कत नहीं होगी। दरअसल परिभाषा का जो काम हम कर रहे थे वह केवल हिन्दी भाषा का नहीं था। असमिया, बंगला, उड़िया, तेलगु, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी, नेपाली ही नहीं, बल्कि सिंहली, बर्मी, स्यामी और कम्बोजी के लिए भी यह काम हो रहा था। इसलिए मालूम होने पर सभी जगह से सहायता मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं मुझे विश्वास था, यदि हम आधे दर्जन अच्छे पारिभाषिक कोश प्रकाशित करके दिखला सकें, तो हमारे काम में सभी जगह से सहायता मिलने लगेगी।

कलकत्ता बंगाल की राजनीतिक ही नहीं सांस्कृतिक राजधानी भी है। बंगभाषी सबसे पहले यूरोप और आधुनिक युग के सम्पर्क में आए, उन्होंने सबसे पहले जाना कि हमारे लिए मुक्ति और आगे बढ़ने का वही एक रास्ता है, जिसे यूरोप ने अपनाया है। यूरोपीय संस्कृति और ज्ञान विज्ञान का गम्भीर अध्ययन पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में ही यहां के मनीषियों ने करना शुरू किया, और उससे बहुत कुछ लिया, जबकि हिन्दीवाले पचास वर्ष से भी अधिक पिछड़े रह गए। इस बात का प्रभाव बंगभाषी समाज पर पड़ा है। साहित्य और संस्कृति के प्रति उनका अनुराग देखकर ईर्ष्या होती है। हमारे यहां आज भी अभी हिन्दी रंगमंच का कहीं पता नहीं है। बंगाल में यह दशाब्दियों से बल्कि शताब्दी से अपनी जड़ जमा चुका है और [illegible] कि सिनेमा भी उसे उखाड़ नहीं सका। इस यात्रा में मुझे श्रीरंगम और स्टार के दो रंगमंचों में जाने का मौका मिला। २३ को शिशिर भादुड़ी द्वारा अभिनीत 'माइकेल मधुसूदन' नाटक देखने गया। दर्शकों की कमी नहीं थी, कि लोगों का नाटकों में प्रेम है। अभिनय भी अच्छा था। मायना

की कमी थी और आजकल तो उसकी कमी सभी देशों में देखी जाती है, सिवाय सोवियत रूस के, जहाँ सरकार सहायता देने में जरा भी संकोच नहीं करती, और जनता नाटकों के देखने के लिए टूट पड़ती है। अगले दिन स्टार में 'गोलकुण्डा' नाटक देखा। कल के नाटक में गम्भीरता थी, किन्तु गति की कमी। आज के नाटक में गति अधिक थी, किन्तु गम्भीरता कम। इसीलिए इस नाटक में मनोरंजन का अंश भी अधिक था।

उस दिन बीकानेर के एक ज्योतिसी हस्त सामुद्रिक (हस्तरेखा) का चमत्कार दिखाने के लिए आये। बतला रहे थे कि आयुर्वेद से जो चीजें मालूम होती है, वह हस्तरेखा से भी देखी जा सकती हैं। मेरे पास ऐसी फजूल बातों के लिए समय नहीं था, नम्रता से किसी तरह पिंड छुड़ाया।

२५ तारीख को श्री सुरेशचन्द्र सेनगुप्त के घर भोजन करने के लिए ढाकुरिया जाना पड़ा। इसकी एक अलग छोटी सी नगरपालिका है। कलकत्ता के उपनगर में ऐसी और भी नगरपालिकाएँ हैं जिनको कलकत्ता में ही सम्मिलित हो जाना चाहिए। सुरेश बाबू चार भाइयों में सबसे बड़े हैं, इसलिए घर के सरदार वही हैं। यद्यपि उन्होंने रसायन में एम० एस-सी० की, लेकिन वह असाधारण रुचि के पुरुष हैं। उनके विषय से संस्कृत, ग्रीक, लातिन, रूसी से क्या सम्बन्ध है और फलित ज्योतिष में माथापच्ची करना क्या पसन्द किया जब उससे पैसा नहीं कमाना है? पर असाधारण प्रतिभाओं में कुछ बेतुकी बातें हुआ ही करती हैं। उनको पुस्तकों का बहुत शौक है, और अपनी कमाई में से वह बराबर उन्हें खरीदते ही रहते हैं। रूसी की भी बहुत-सी पुस्तकें उनके यहाँ देखी। पिता नहीं हैं, और माता के वह अनन्य भक्त हैं। अविवाहित रहते भी घर भर की आर्थिक चिन्ता वह अपने सिर पर ढोते हैं।

शान्तिनिकेतन—'बौद्ध संस्कृति' के लिखने के लिए कुछ समय शान्तिनिकेतन आकर रहना था, इसलिए २७ को हम वहाँ पहुँचे। पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी और शान्ति भिक्षु के साथ हिन्दी-भवन में गये। भोजन के बाद चीना भवन देखा यहाँ काफी चीन-सम्बन्धी पुस्तकें थीं। फिर विश्व

भारती के पुस्तकालय मे गये, पौने दो लाख पुस्तके हमारे कम ही विश्व विद्यालयो मे है। वृहत्तर भारत तथा भारत के सम्बन्धी की पुस्तको का भण्डार तो यहा बहुत विशाल है। बाईस साल पहले प्रथम बार लका जाते हुए मैं यहा आया था। उस समय से अब भारी परिवर्तन हो गया है। रात को छोटी सी गोष्ठी मे भाषण देना पडा। अगले दिन सबरे ६ बजे सबेरे की गाडी पर पहुँचाने के लिए द्विवेदीजी शान्ति भिक्षु श्री प्रह्लाद प्रधान और रामकिंकरजी स्टेशन तक आये। इन्टर मे बैठे। डब्बो मे बहुत जगह खाली पडी हुई थी।

११ बजे के बाद गाडी स्यालदह पहुँची। गगा का पुल उस पार कर पडा, अर्थात् उस रास्ते दिल्ली की ट्रेन स्यालदह पहुच सकती है।

२८ तारीख को युगान्तर क्लब मे मुरारकाजी और दूसरो के निमन्त्रण पर गये। अग्रेजो के समय मे यह भव्य भवन किसी क्लब का था। उन्हे कल कारखाना को लेनेवाले मारवाडी धन कुबेरो को अब इसे भी सभालना था। इमारत बहुत ही सुन्दर थी, और सफाई और व्यवस्था का क्या कहना इस क्लब के मेम्बर वही हो सकते है जो पत्नी सहित आने के लिए तैयार हैं। मारवाडी सेठो के लिए इसमे एक पीढी पहले भले दिक्कत रहे लेकिन अब तो वह मारवाडी ही मिटने जा रहे है। हा, भोजन सारा शाकाहारी था, पर नफीस और अच्छे छुरे काटो तथा बरतनो के साथ। एक पीढी की देर है, फिर यहा वही वातावरण आ जायेगा, जिसका अभ्यास इस भवन को एक पीढी पहले था।

२९ दिसम्बर को बगाल एसियाटिक सोसायटी के हाल मे भारतीय सस्कृति पर भाषण देना था। आर्यावर्त सस्कृति सघवालो ने इसका प्रबन्ध किया था। मेरे विचार सभी मीठे कैसे हो सकते हैं। लोगो ने कड़वी बातो को भी धैर्य से सुना।

वहा से युगान्तर क्लब की ओर से दिये भोज मे शामिल होने के लिए आज भी साडे ७ बजे शाम का हिन्दुस्तान क्लब मे जाना पडा। आज भी बहुत से भद्रपुरुष अपनी पत्नियो के साथ आये थे। पर्दा तोडने मे श्री मुरा

याजी मारवाडी समाज के नेता हुए थे। उस समय उन्हें बहुत-सी दिक्कतें उठानी पडी थी, पर अब उन्हें चारो ओर सफलता दिखाई पड रही थी। भोज म आधी दजन महिलाएँ थी।

३० दिसम्बर को सवेरे टहलने के लिए घुडदौड के मैदान म जाकर फिर टालीगज म पचीसियाजी के यहाँ जलपान करने गये। पचीसियाजी श्री घनश्यामदास बिडला के साढू हैं, उनकी पत्नी और सोमानी-दुहिता सरस्वती बहनें हैं। किसी ज्योतिसी ने भाख दिया था, कि कन्या के भाग्य मे सौभाग्य विरोधी दुष्ट ग्रह है। उससे बचने के लिए पिता ने एक बिल्कुल साधारण सी स्थिति के लडके से अपनी पुत्री का ब्याह कर दिया, लेकिन करोडपति ससुरकुल दामाद को एसी स्थिति मे कैसे रख सकता था। सरस्वतीजी लक्ष्मी को साथ लिए पतिकुल म आई। उनका सम्मान होना ही चाहिये। स्त्री जब आर्थिक तौर से स्वतन्त्र हो तो उसकी पूछ सब जगह होती है। सरस्वतीजी के ब्याह के पद्रह साल बाद तक सतान नही हुई, लेकिन यह बहाना दूसरा ब्याह करने के लिए पर्याप्त नही हो सका। अब उनका साढे तीन वर्ष का एक बहुत ही सुन्दर, स्वस्थ और समझदार पुत्र था। शहर से बाहर पचीसिया दम्पती का यह अपना बगला था। कार होने पर दस-बारह मील की दूरी कोई चीज नही। बच्चे को एक अग्रेज महिला डेढ घटे तक सँभालती हैं। उसमे अपने दादा परदादा के पिछडेपन की कही गध भी नही रह गई है। पचीसियाजी के पडोस मे एक रूसी इजीनियर कानिलाफ—कार्नेली—रहते थे, जो जारशाही जेनरल कानिलाफ के ही कोई सम्बन्धी थे और बोल्शेविक क्रान्ति के समय भाग आये थे। जहाँ तहाँ भटकते यहाँ अब जम गये थे, और आर्थिक तौर से बहुत अच्छी हालत मे थे। पचीसियाजी हम उनसे मिलाने के लिए ले गये। इजीनियर साहब के लिए बाल्शेविक शैतान थे, उनके राज्य मे कोई गुण नही थे—इन्होंने लाखो बच्चो को मार डाला। हाल मे ही पोलैड से भागकर आये एक दूसरे सज्जन भी वहाँ मौजूद थे, जो हर बात मे कार्नेली के समर्थक

थे। लोग सोवियत रूस को बदनाम करने के लिए सालों से दुनिया के कोने कोने में प्रचार कर रहे है।

उस दिन रात के साढे ७ बजे बगीय हिन्दी परिषद में गोष्ठी था। मैं भी बोला, और उस्ताद अलाउद्दीन ने सितार सुनाकर मुग्ध किया। मुझे अफसोस था कि जल्दी जल्दी हावडा पहुचकर पजाब मल पकडना है।

१६४८ की अन्तिम तारीख लखनऊ मे बीती। सेकड क्लास में जगह काफी थी। और अब वही सेकड क्लास फर्स्ट क्लास में बदलनेवाला था। फिर इटर को सेकड कहा जायेगा।

# १५

# नये वर्ष का आरम्भ

लखनऊ—१ जनवरी को भी लखनऊ म रहे। उस दिन शाम को शहर म निकले, तो देखा पत्रो के विशेष सस्करण बिक रहे हैं। कश्मीर मे पाकिस्तान के साथ छिपी हुई लडाई चल रही थी, और डर था कि वह किसी समय खुली लडाई म न बदल जाए। अचानक आक्रमण करके पाकिस्तान न काम बनाना चाहा था। भारत को अभी उसकी आशा नही थी। लेकिन, जब भारतीय सेनाएँ कश्मीर म रक्षा के लिए पहुँच गइ और जोजीला पार कर हमारे टैंको ने असभव को सभव कर दिया, यही नही, बल्कि लद्दाख की तरफ से बढती हुई हमारी सेना गिलगित की ओर धावा बोलने लगी, तो पाकिस्तान और उसके मुरब्बियो को सुल्ह करने के लिए तैयार होने मे ही खैरियत मालूम हुई। भारत और पाकिस्तान ने अब हथियार रखकर बात करना स्वीकार किया। यही बाते पत्रो के विशेष सस्करणो म छपी थी, इसके अनुसार पुणछ, मीरपुर, मुजफ्फराबाद और गिल्गित पाकिस्तान के हाथ मे रहेगे। सक्षेप म जो भूमि जिसके हाथ म है, वह उसके हाथ मे रह जाएगी।

लखनऊ के मित्रो ने बतलाया, कि पिछली बार जब मैं यहाँ से चला गया था, तो खुफिया पुलिस के इसपेक्टर बडी सरगर्मी से मेरी खोज लगा रहे थे। भारत को स्वतत्र हुए एक साल से ऊपर हुए पर सी

आई० डी० के पास मेरी फाइल तो वैसी ही मौजूद है, इसलिए उन्हें क्यों नही परेशानी होती। अब तो य पुरानी फाइल नई रिपोर्टों से और मोटी होती जाएगी, क्योंकि अंग्रेजो के जाने के बाद भी देश को जिस रास्ते ले जाया जा रहा है, उससे हमारी जनता को जो दुख हो रहा है, उसे चुपचाप बर्दाश्त करना मेरी शक्ति से बाहर है।

**सीतापुर**—सीतापुर म हिंदी साहित्य का एक सम्मेलन हो रहा था। मुझसे उसमे चलने का आग्रह हुआ, और लखनऊ के प्रसिद्ध वैद्य तथा राष्ट्रकर्मी प० शिवरामजी अपनी मोटर मे २ जनवरी को ले चले। वैद्य जी म प्राचीनता और नवीनता का विचित्र मिश्रण है। सफल वैद्य है स्वय अपनी मोटर चलाते है। आज पचीसो वर्ष हो गए उन्होने अपने शरीर को जल से अपवित्र नही किया। प्राकृतिक जीवन का उन्होंने अपने ऊपर तजबा किया। पसीने और बदबू को शरीर से अलग करने के लिए जल के अतिरिक्त और भी उपाय ह इसलिए उनके पास बैठने से यह नही मालूम होता था, कि उनका शरीर चिरकाल से जल-स्पर्श विरत है। लखनऊ मे सीतापुर ५२ मील है, और सडक अधिकतर सीमेन्ट की है। रास्ते मे कमालपुर मिला वहा एक वृद्ध सस्कृत पण्डित से थोडी देर बातचीत होती रही। फिर चलकर पौने २ बजे हम सीतापुर पहुँच गए। बादशाही जमाने मे हमारे जिलो को सरकार कहा जाता था। बडी सरकारो मे से किसी किसी के अंग्रेजी काल मे एक के दो जिले भी हो गए है। अकबर के प्रधानमन्त्री अबुल फजल रचित 'आईने अकबरी" मे मुगल-साम्राज्य की सरकारो का नाम दिया हुआ है। सीतापुर उस समय खैराबाद सरकार म था। अंग्रेजी जमाने मे सीतापुर को जिला बना दिया गया, और रेल आदि के सुभीते के कारण सीतापुर खैराबाद को पीछे छोडकर आगे बढ गया। शहर की आबादी ४० हजार के करीब है। लडकियो का इन्टर कालेज अब डिग्री कालेज होनेवाला था। उसमे एक हजार लडकियाँ (पाचवें दर्जे तक एक हजार और आगे पाँच सौ) लडकियाँ पढ रही थी। यह बतला रहा था, कि यहाँ के नाग

रिका का स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान है। साहित्यिक रुचि भी यहा के लोगो मे है।

मुझे जिले के डिप्टी कलक्टर रा० न० चतुर्वेदी के पास ठहराया गया। चतुर्वेदी जी काव्य प्रेमी और स्वय भी कवि है, और कट्टरता के पक्षपाती नही हैं यह तो इसीसे मालूम है, कि पुराने आई० सी० एस० सर जगदीश प्रसाद की कन्या इनसे ब्याही हैं।

उसी दिन नगर मे सभा के लिए जलूस निकला, जिसमे सभापति होने के कारण मुझे भी जाना पडा। ४ बजे सभा शुरू हुई। स्वागताध्यक्ष के भाषण के बाद मैं एक घटा बोला। भाषण लिखकर लाने का अवसर नही था, क्योकि उसी दिन मुझे सभापति होने के लिए कहा गया था। रात को कवि-सम्मेलन हुआ, जिसमे वशीधर शुक्ल की चुभती और सुन्दर कविताओ का रसास्वादन बडे प्रेम से लोगो ने किया। वशीधर जी की अवधी कविताओ को दूसरे भाषा-क्षेत्रो मे भी बहुत पसन्द किया जाता, और यहा तो अवधी का अपना क्षेत्र था। कही भी कवि-सम्मेलन मे जाने पर उनकी कविताओ को बार-बार सुनाने का आग्रह होता है। वह बिल्कुल स्वाभाविक कवि है और आज की विषमता से जैसी यातना लोग भोग रहे हैं, उसके भुक्तभोगी और प्रत्यक्षदर्शी हैं। उनके कोमल हृदय को यह सहा नही जाता और वही वेदना उनके मुह से फूट निकलती है। शुक्ल जी की कविताएँ बहुत सी बिखरी और लिखी पडी हैं, जिनका उनके सामने प्रकाशित हो जाना अत्यावश्यक है, पर इस अन्धेर नगरी मे कौन पूछता है ? कवि सम्मेलन मे चतुर्वेदी जी ने भी अपनी कविता सुनाई।

यही मेरे फुफेर भाई रमेश के पुत्र चन्द्रभूषण पाडे से भेंट हुई। वह पुलिस मे कान्सटेबल है। रमेश मेरी सगी बूआ के और मेरे प्रथम सस्कृत गुरु प० महादेव पाडेय के पुत्र हैं। उनकी स्वर्गीया प्रथम पत्नी चन्द्रभूषण को छोडकर मर गई थी। चन्द्रभूषण को अपने ननिहाल की जगह मिली थी। जो काफी थी। समझ मे नही आया, कि उसे छोडकर उन्हें नौकरी

की क्या फिक्र पडी ? यह भी मालूम हुआ, कि वाप-वेट म मल नहीं है। समाज के वाहरी खाल के भीतर इस तरह की वातें आजकल अगर काफिर मिलें, तो अचरज की वात नहीं है।

३ जनवरी को जलपान के वाद हरगाँव गए। हरगाव म बिडला की चीनी मिल है, जिसमे चीनी के साथ स्पिरिट, स्टाच भी बनाया जाता है। मिल बहुत विशाल है। मिल के प्रधान सचालक के यहाँ ही भोजन हुआ। वात के दौरान उन्होंने वतलाया, कि हमने ऊख का खाई का कागज वनाने के लिए अपनी सवल्पुरवाली मिल म भेजा था, और कागज अच्छा वना था। पीछे बिडला के दूसरे अफसर ने वतलाया, कि कागज मे थोडा-सा दाग रह जाता है, जिसके दूर करने का अभी कोई उपाय नही है। सवसे वडी वात तो यह है, कि सीतापुर से उडीसा के सबल्पुर मे कागज वनाने के लिए खाई भेजना बहुत व्ययसाध्य है। यदि यहा कागज बनाने की मिल खडी की जाए, तो एक मिल की खाई से क्या बननेवाला है ? फिर खोई को बहुत से मिलवाले इधन की तरह झोक दते हैं, यह भी एक दिक्कत है। अंग्रेजो के जमाने म सिफ अंग्रेजों की ही कुछ मिलो को अलकोहल मद्यसार वनाने की आज्ञा थी। अब उसके लिए छूट कर दी गई है। चीनी से निकल बहुता-सा सीरा बेकार जाता था, जो अलकोहल वनकर चौथाई मात्रा म पेट्रोल म मिलाकर मोटरो म इस्तेमाल किया जा सकता है। हमारा देश पट्रोल म दरिद्र है, इसलिए इस तरह एक चौथाई की वचत कम नही होना। मिल के स्वामी बिडला आने वाले थे। यहाँ की सभी सस्थाएँ उनसे दान माँगने की तयारी कर रही थी।

हरगाव म सातवी से ग्यारहवी शताब्दी की टूटी फूटी मूर्तियाँ मिलीं एक पाँच फण का नाग लाल पत्थर का था। क्या कुषाण-काल म भी यह स्थान विशेषता रखता था ? हरगाँव क्या मौखरी हरिवर्मा से कोई सम्बन्ध रखता है।

कानपुर के कम्युनिस्ट नेता और मजदूरो मे जिन्दगी लगा देनेवाले

कर्मी साथी मतसिंह यूसुफ यही पर नजरबन्द हैं, जब यह मालूम हुआ, तो मैं उनसे मिलने गया। बात-बात में नजरबन्द करके स्वतन्त्रता का अपहरण करना आजकल के जमाने में अंग्रेजों के समय से भी आसान हो गया है। अंग्रेज अपने विरोधियो के साथ जो कडा बर्ताव करते थे, आज भी उसमे ढिलाई करने की सरकार बर्दाश्त नही करती। और बातो मे चाहे चीटी की गति हो, लेकिन दमन मे वह बडी चुस्त है।

नीमसार मिसरिख—भारत का एक परम पुनीत तीर्थ नैमिषारण्य सीतापुर जिले में ही है। ऐसे स्थान पर पुरातात्विक अवशेष भी हो सकते हैं, यह सोचकर मेरी इच्छा वहा जाने की हुई। ४ जनवरी को पौने १० बजे चतुर्वेदी जी अपने साथ ले चले। मिसरिख पहुंच मिला। ३९ वर्ष पहले भी मैं नीमसार मिसरिख होते उत्तराखण्ड गया था। उस समय की स्मृति बहुत क्षीण रह गई थी। तो भी इतना याद था, कि मिसरिख में एक तालाब है, जिसे बहुत पुनीत माना जाता है। तालाब अब भी था और सारे तीर्थ उसी के किनारे थे। पुरानी चीजो के ढूंढने में ग्यारहवी-बारहवी सदी की मूर्तिया मिली दो एक उससे पहले की भी। और भी मूर्तिया मिलती, लेकिन पिछले सौ साल से मूर्तियो को ढो ले जाने में लोग व्यस्त है, ऐसी चीजो के व्यापारियो ने तो पिछले पचास साल से गजब ढाया है। दधीचि मन्दिर के संस्थापक नाननाथ गिरि शाहजहापुर से आए थे। और भी बातें मालूम हो सकती थी, जो सभी ऐतिहासिक महत्व की नही हो सकती पर कुछ काम की भी होती हैं। चार-पाच मील और आगे बढने पर नीमसार का चक्रतीर्थ मिला। चक्रतीर्थ गोल गहरा कूप है, जिसका थोडा सा पानी ऊपर से बराबर निकलता रहता। ऐसे बहनेवाले कुओ की कमी नही है। सराइन नाम की छोटी-सी नदी इसी जिले के एक कुएँ पर निकलती है। कथा है, कि एक चमार तरुणी नरनी जेठ के मजबूर करने पर तालाब में जल न पा कुएँ पर गई। उसके पास रस्सी नही थी। सारे कपडो को जो[illegible]

पानी निकालना चाहा, लेकिन वह पानी तक पहुँच नही रहा

करते देख जेठ आया। लज्जा के मारे तरुनी कुएँ मे कूद पडा। उसकी कुर्बानी से कुएँ का भी दिल पसीजा और उसके मुह से पानी निकल कर बहन लगा। हिमालय की तराई मे ऐसा बहुत जगहो पर देखा जाता है, वरसात के धरती मे सोखे जल का जितना ही भाग कुआ के मुह से बाहर निकलने लगता है।

लौटत समय रामकाट के बडे डीह का देखा खण्डित मूर्तिया इसका प्राचीनता को बतलाती थी। बडी बडी ईंटें भी है, पर उस दिन देखने म नहीं आईं।

शाम को जिले के अधिकारियो के साथ चाय पान और परिचय का मौका मिला, और रात को कला प्रदशन। १ बजे तक चलता रहा। दशक १० हजार रह होग, अथात् नगर की जनता का चौथाई भाग इसमे दिलचस्पी ले रहा था।

६ जनवरी को सवेरे ओइल जाना था। ओयल पुराना स्थान और एक अच्छा कस्बा है। लेकिन, मोटर आने मे देर हो रास्ते म विघटन वाली हुई, इसलिए वहाँ जाने का ख्याल छोडना पडा। श्री रूपनारायण चतुर्वेदी अच्छे कवि और साहित्य प्रेमी हैं। पत्नी भी शिक्षिता हैं। तीन लडके और तीन लडकिया है। आजकल के मध्यवित्त परिवार मे आधे दजन सन्तान अपने और माता पिता को कठिनाइया पैदा करते हैं।

सीतापुर १३ लाख आबादी का जिला है, जिसमे चार तहसीलें हैं। खैराबाद कैसे उजडा और सीतापुर कैसे बसा, यह बतला चुके हैं। जिल म किसानो की आमदनी का नया रास्ता निकला। यहा मूगफली बहुत पैदा होती हैं, जो नियात का एक बडा साधन है। गन्ने के सदुपयोग के लिए तो मिलें खडी हो गईं, लेकिन मूगफली अभी प्राकृतिक रूप म ही बाहर जाती है, किसी न तल निकालने के उद्योग की ओर अभी ध्यान नहीं दिया है।

पौन ५ बजे रेल से चले। पुराना इन्टर क्लास सेकन्ड बन चुका है, और फस्ट क्लास को तोडकर सकन्ड क्लास को फस्ट क्लास बना दिया

गया या। ट्रेन मे वडी भीड थी सैकडा लाग पायदान पर लटक रहे थे। ८ बजे लखनऊ पहुचे। उम्मीद तो कम थी, लेकिन प्रयाग वाली गाडी मे ऊपर की सीट (सेकन्ड क्लास) रिजव हा मकी इसलिए मात हुए रात की यात्रा हुई। नीद एसी आई, कि प्रयाग म जाकर ही खुली।

प्रयाग—पौ फटत ही मैं श्रीनिवासजी क घर पर पहुँचा और सवेरे घूमने के लिए त्रिवणी तक गया। परिभाषा निमाण के काय को कमे आगे वढाया जाये, इसकी वडी चिन्ता थी। दिल्ली से आने वाले तरण न आ सक, और न उनका पत्र ही आया। डा० भट्ट अभी द्विविधा मे थे। एक तरह अभी सहायक क जान का कोई निश्चय नही था। इमी बीच मैंने "बौद्ध सस्कृति" पर हिन्दुस्तानी एकेडमी म भाषण करना स्वीकार कर लिया था जिसे पुस्तक के रूप म भी लिखना था। लिखन के लिए १५-१६ साल का मेट्रिक पास एक यादव तरुण (लल्लन) मिला। उसका अभी पढन का समय था, उसे इस तरह काम म लगाकर आगे का रास्ता रोकना मुझे खटकता था। पर उसे कोई काम नहीं मिल रहा था, इसलिए तव तक के लिए रख लेना ही मैंने पसन्द किया। इस साल और विशेषकर इन दिना सर्दी बहुत बढी हुई थी। दिल्ली मे वह ३० डिग्री तक पहुँच गई थी। वर्फ जमने मे चार ही डिग्री की तो कसर थी। मैं सोच रहा था यह सर्दी का तापमान भी कसी बला है ? अगर हमारे यहाँ का औसत तापमान चार ही पाच डिग्री कम हो जाय तो सवेरे तालाब जमे मिलेंगे नदिया के किनार बर्फ की सफेद मगजी दिखाई पडेगी सारे वृक्ष पत्ता को गिरा कर नग हा जाएँगे, खडी फसल झुलस जाएगी, और जाडा रोकने के प्रबन्ध म असमथ लाखा आदमी मर जाएँगे, पशुआ और पक्षिया की तो बात ही क्या ? त्रिवेणी तट पर माघ मेला क यात्री थे। इस समय एक महीने के लिए यहा हर साल जगल मे मगल हा जाता है। अगले दिन डा० उदयनारायण तिवारी और नागार्जुन जी के साथ फिर टहलने गए। मेले की तैयारी हो रही थी। अभी तक पेशाब पाखाने की समस्या हमारे मेला की हल नही हो सकी

है। पहले तो ऐसी जगहों का यथेष्ट संख्या में प्रबन्ध नहीं किया जाता, और फिर हमारे पवित्रता प्रेमी देश के लोगों की सार्वजनिक सफाई की ओर ध्यान ही नहीं है।

यद्यपि हमारे पास दो चार हजार रुपये से ज्यादा नहीं था, किंतु बैंक में रखे रुपये के बारे में ख्याल आता था, कहीं रुपये का मूल्य बुरी तरह से न गिर जाय, और संख्या में हजार रुपये का चौथाई भी मूल्य न रह जाए। आखिर लड़ाई के पहले का एक रुपया अब चवन्नी से भी कम का रह गया था।

सारनाथ—८ जनवरी के सबेरे ७ बजे छोटी लाइन की गाड़ी पकड़ी। छोटी लाइन में भी १ जनवरी से पुराने फर्स्ट क्लास को खतम करके बाकी को पहला दूसरा और तीसरा दर्जा बना दिया गया था। ट्रेन में बहुत भीड़ नहीं थी। ल्हासन इसी ट्रेन से चलने वाला था, लेकिन किसी कारण गाड़ी छूट गई। इधर अपने हाथ से लिखने का अभ्यास कम हो गया था और जो मैं लिखता था वह लोगों के पढ़ने लायक भी नहीं होता था इसलिए लिपिक की जरूरत थी। सारनाथ में जाकर "बौद्ध संस्कृति" लिखना था इसलिए लिपिक के छूट जाने से चिन्ता हुई। १२ बजे सारनाथ पहुँच गया। यहाँ के अधिकांश भिक्षु सारिपुत्त मोग्गलान की धातुओं के स्वागत के लिए कलकत्ता चले गए थे। धर्मशाला के एक कमरे में ठहर गया। स्वामी सच्चिदानन्द भी आजकल तीन सप्ताह से यहीं ठहरे हुए थे। पहिले पहल १९२३ ई० में उनसे मिला था, वह संस्कृत के गम्भीर विद्वान् और उदार विचारों के थे। जीवन को निश्चित रूप से ले चलने के लिए आदमी को कुछ और कामों को भी हाथ में लेना होता है नहीं तो खाली समय में चिन्ताएँ पछाड़ने लगती हैं विशेषकर जीवन की संध्या में तो उनका वेग और भी बढ़ जाता है। स्वामी सच्चिदानन्द ने न लिखने का काम सभाला, न पढ़ने का ही। इस समय उन्हें निराशा ही निराशा दिखलाई

पन्ती थी। कभी-कभी उत्तरकाशी में जाकर स्वामी रामतीर्थ का अनुकरण करने की बात करते थे।

६ तारीख को सवेरे कुहरा पड रहा था, जब कि रेल के साथ साथ मैं टहलने गया। लौटकर देखा, ल्लन आ गया था। ट्रेन छूट गई थी, दूसरी ट्रेन पकड कर १० बजे रात को ही सारनाथ स्टेशन पहुँच गया था। खैर आज से पुस्तक लिखवाना शुरू किया। उस समय निश्चय किया था कि दो सप्ताह यहीं रहकर लिखवाने का काम करूँ और फिर एक मास के लिए शान्तिनिकेतन चला जाऊँ। अपेक्षित पुस्तकों की सुविधा वहाँ ज्यादा थी। ल्लन धीरे धीरे लिखता था, तो सुपाठ्य रहता, जल्दी करने पर दुष्पाठ्य हो जाता।

१० तारीख को सवेरे टहलने लाट भैरव की तरफ गया। लाट भैरव बनारस के उत्तरी छोर पर आजकल मुसलमानी कब्रा और दरगाह के रूप में परिवर्तित होकर मौजूद है। महमूद गजनवी ने ११वीं शताब्दी में जब बनारस को लूटा था तो उस समय नगरी का मुख्य भाग यहीं था यह भैरव भी तभी के हैं। जमीन के ऊपर पुरानी चीजें क्या मिलती, किन्तु नीचे उनके मिलने की बहुत सम्भावना है। सारनाथ से सीधे लाट भैरव होकर चौक आने का रास्ता है, जो उस समय अधिकतर कच्ची सडक के रूप में था। वरणा के किनारे पैगम्बरपुर गाव है। पुराने समय में कोई और नाम रहा होगा, जिसे बदल कर मुसलमानी नाम दे दिया गया। यहाँ ७वीं-८वीं सदी की स्त्री और पुरुष मूर्तियाँ एक सुन्दर प्रस्तर स्तम्भ पर खुदी देखी, जो शिवालय के सामने खडा है। आगे वरणा में अस्थायी पुल है जिसके पास कभी स्थायी पुल था, यह उसके अवशेष से मालूम होता है। अब सारनाथ के साथ इस भू भाग का भाग्य फिर जग रहा है। बुद्ध-जयन्ती की २५वीं शताब्दी मनाने के लिए जो तैयारी हुई, उसमें वरणा पर पुल भी बना। इस पर से शहर से सीधी पक्की सडक सारनाथ जा रही है। रास्ता खुल जाने पर इधर नए मकान भी बनने लगेंगे। पर आजकल के जमाने में वही

शहर दृढता के साथ आगे बढ सकता है, जहाँ उद्योग धंधे बढ रहे हो बनारस म ऐसी कोई बात नही देखी जाती । पुराने धनी नागरिक शहर से बाहर बगीचे वाले मकानो और बगलो के शौकीन थे, लेकिन जमीदारी के उठ जाने तथा दूसरी कठिनाइयो—जैसे शहर म बाहर बगले मे रहना अरक्षित होना—के कारण जिनके ऐसे बगले हैं, वह भी उन्हें बेचकर पिण्ड छुडाने के लिए तैयार हैं। तो भी इस सडक के कारण शहर और सारनाथ मकानो की पक्ति से मिल जाएँगे, इसकी सम्भावना जरूर है। वरणा म नीचे की ओर थोडी दूर पर रेल के पुल को देख कर क्रूर कथा याद आई—उस समय ठेकेदारो ने सारनाथ म पत्थर की टूटी फूटी मूर्तियो और खम्भो को सुलभ देखकर छकडो म उठवा कर पुल की नीव मे फेंकवा दिया था जो कितनी ही ऐतिहासिक बातो को अपने साथ लिए वहा पुल के पाव के नीचे डूबी हुइ हैं।

वरणा पार हो हम एक पुराने तालाब पर पहुचे, जिसके किनारे एक मस्जिद के हाते म लाट भैरव है। हिन्दू अब भी जब-तब यहा पूजा के लिए आते है। पहले यह झगडे की जड रही। शायद इसलिए उसके चारो तरफ लोहे का कटघरा बना दिया गया है। मस्जिद कब बनी, यह कहना मुश्किल है, पर मन्दिर तोडकर बनाई गई थी, यह उसकी दीवारो मे जहा-तहा लगे अलकृत उत्कीर्ण पत्थर बतला रहे थे। दीवारो और आगन मे पडे पत्थरो मे कुछ मूर्तिया भी जरूर मिलेंगी। पगम्बरपुर से अलईपुर तक मुसलमानो की बस्तिया हैं और जुलाहे है। सारे देश के लिए कपडा मुहैया करना जिस जाति का काम था, उसकी सख्या बहुत अधिक हो, इसम क्या सन्देह ? और बनारस अपने सुन्दर कपडे के लिए युगो से प्रसिद्ध रहा है। बुद्ध के समय यहाँ के बारीक सूती कपडो की देश-देशान्तर म ख्याति थी, और पीछे अपने रेशम और कमखाब के लिए भारत मे बाहर-बाहर भी प्रसिद्ध हुआ। इन कपडो के बनाने वाले यही जुलाहे तो थे। मुसलमानी आक्रमण की पहली अर्द्ध शताब्दी मे ही, जान पडता है, उत्तर भारत के सारे तन्तुवाय मुसलमान

बनकर जुलाहो के नाम से प्रसिद्ध हो गए। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय सारनाथ से लेकर यहां तक का यह भाग बहुत घना बसा हुआ था और उस समय उजड़ने के बाद फिर इसके दिन नहीं लौटे। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि यहां मुसलमानों के साथ पंजाब का सा बर्ताव नहीं हुआ, नहीं तो एक भी मुसलमान देखने के लिए आँखें तरसतीं।

११ तारीख को सबेरे की ६ मील की टहलाई गाजीपुर सड़क पर की। इस भूमि में प्राचीन इतिहास की परिचायक सामग्री जगह-जगह अन्तर्हित है, इसीलिए मैंने रास्ता बदल बदल कर टहलना शुरू किया था। कुछ दूर जाने पर कई ईंटों के भट्टे और कितने ही उद्यानगृह थे। धनिक काशीवासियों के उपवन उपनगर में होने ही चाहिए। प्राचीन काल में इसका और भी शौक था। मेरे विद्यार्थी जीवन के समय में लोग अक्सर उद्यान भोज करने के लिए अपनी या दूसरे की बगीचियों में चले जाया करते थे। दूधिया भंग छनती, कंडे पर गेहूँ के आटे की बाटी पतली हँडिया में एक पानी से दाल पकती। पक कर विदीर्ण हो गई बाटियों को घी में डुबा दिया जाता। फिर मित्र लोग बैठकर भोजन करते। अब जीवन उतना निश्चिन्त नहीं रहा, इसलिए यदि उद्यानगृह श्रीहीन थे, तो कोई ताज्जुब नहीं। हालांकि तब से अब आने-जाने का और अधिक सुभीता है। मोटर से दस मील पहुँचना भी बीस पचीस मिनट का काम है। और आगे सड़क से दाहिने थोड़ा हटकर एक ऊँची जगह देखी। यहां कोई स्तूप रहा होगा, लेकिन विशेष जानने के लिए उसकी खुदाई की जरूरत थी।

सारनाथ में जाड़ों में देश देशान्तरों के बौद्ध यात्री आया करते हैं। लंका और तिब्बत के यात्रियों से मिलने की मेरी आकांक्षा रहा करती थी। पुरानी मधुर स्मृतियों को इस तरह जाग्रत किया जा सकता था। हमारे यहाँ की गर्मियाँ और बरसात भी दुस्सह होते हैं, इसलिए दूसरे देशों के यात्री वैशाख पूर्णिमा के महापर्व का लालच होने पर भी नहीं आते।

आज चारों ओर जो स्थिति मैं देख रहा था उसमें बुद्ध का

"आदीप्त पर्याय" याद आ रहा था। सभी चीजें आदीप्त हैं, जल रही हैं। पुराना ढाँचा जलकर ढह रहा है, यह बुरा नहीं, पर नए की नींव पड़ती नहीं दिखलाई देती, यह चिन्ता की बात थी। १२ तारीख को मालूम हुआ, आज से पन्द्रह दिन के लिए महाबोधि हाई स्कूल बन्द कर दिया गया। ग्राम पंचायतों के चुनाव कराने के लिए वोटरों की सूची पटवारियों ने जो तैयार की थी उनके संशोधन का काम अध्यापकों को दिया गया है। १० से ४ बजे तक रोज वह इस काम के लिए गावों में जाया करते थे। मुझे यह सुनकर अचरज होता था, १० से ४ बजे का तो वह समय है, जब कि किसान घर से अनुपस्थित रह अपने खेतों में काम करते हैं। तो क्या संशोधन की रस्म ही पूरी होगी। आजकल रबी की सिंचाई का समय था, जिसमें जरा सा चूक होने पर किसान को साल भर पछताना पड़ता है। बनारस के पास होने से गाव के बहुत से लोग दूध रही, कंडा या दूसरी चीजें बेचने-खरीदने के लिए शहर चले जाते हैं। इसी समय यह भी पता लगा कि दालदा से घी बनाने का उद्योग यहा के गावों में बड़े जोर शोर से चल रहा है। दाल्दा को वह भैंस के दूध में डाल देते हैं, फिर कुछ उससे घी और मक्खन तैयार होकर बनारस बिकने जाता है। दाल्दा खाने से परहेज करके दालदा को घी के नाम पर खाने वाले लोगों की बुद्धि पर मुझे तरस आता था। उनकी बुद्धि पर और भी, जो दालदा बन्द करवाने के लिए कानून बनवाना चाहते हैं। दालदा में विटामिन की कमी हो सकती है, लेकिन वह जहर नहीं है। आदमी के लिए स्निग्ध वस्तु की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति इससे होती है विटामिन की कमी टमाटर या दूसरी चीजें खाकर पूरी की जा सकती है। यदि घी दाल्दा के भाव होता, तो कौन उसे नहीं खाता। घी के आधे दाम में मिलने वाली यह वस्तु मध्य वर्ग के लोगों को बड़ी सहायता कर रही है। आज जिस तरह चाय अतिथि सत्कार का एक सस्ता और सुन्दर साधन है, उसी तरह दाल्दा भी है।

पटवारियों ने जैसा मन में आया वैसी वोटर सूची बनाकर तैयार कर दी थी। स्त्रियों के वोट का कोई महत्व नहीं था, इसलिए उनके नाम के

दर्ज करने मे बडी गडबडी की गई थी। गडबडी तो बडी जात वालो की धाधली से भी हुई थी। शिक्षा उन्ही मे कुछ है, और वही पचायत के महत्व को कुछ जानते भी हैं। वह जानते थे, कि गाँव मे कही-कही दो तिहाई तक छोटी जाति के लोग बसते हैं। पचायतो म यदि वह अपनी सख्या के अनुसार चुनकर आए, तो बडी जाति वालो की युगो से स्थापित तानाशाही चली जाएगी। पटवारी भी बडी जाति—ब्राह्मण, क्षत्री, लाला—के थे। नाम क्या लिखाया जा रहा है, इसका अर्थ ऐसा उल्टा समझाया गया कि लोगो म आशका उठ खडी हुई। कोई कहता, कण्ट्रोल मे कपडा मिलने के लिए नाम लिखा जा रहा है तो बिचारे कहते—"बडे लोग कट्रोल का कपडा पाएँगे हमे क्या मिलेगा।" यद्यपि मास्टर लोग पचायत के कुछ गुणो को समझाने की कोशिश करते थे, लेकिन लोगो की उदासी हटती नही थी। अब कुछ छोटी जाति के पढे लिखे पचायत के महत्व को समझाने लगे थे, वह भी घूमकर समझाने लगे। कुछ दिनो बाद हवा का रुख पलटा और छोटी जात वाले भी पचायत के लिए खडे होने लगे। उस समय पचायत के निर्वाचन होने तक ऐसी हवा बदल गई थी, जैसी उससे पहले कभी नही देखी गई। बडी और छोटी जातिया के सीधे दो दल हो गए थे। बडी जाति मे ब्राह्मण, क्षत्री लाला (बनिया या कायस्थ) और भूमिहार थे और छोटी जातियो म छूत अछूत सारे लोग। शताब्दियो बाद पहले पहल समाज मे इस तरह की स्पष्ट दरार आँखो के सामने दिखाई पडने लगी। एक तरफ धन अधिकार के स्वामी—शोषक—थे, और दूसरी तरफ उनसे वचित शोषित। आज भी यह दरार मिटी नही है, लेकिन जिनके पास धन और प्रभुता है, वह भिन्न भिन्न तरह से लोगो की आँखो म धूल झोकते हैं और शोषितो के नेताओं को खरीदकर अपना काम बनाते हैं। आखिर बहुजन के अपने ही लोग तो शोषको के सैनिक बनकर अपने भाइयो को हजारो वर्षों से गुलाम रखते आए हैं।

सागर—सागर विश्वविद्यालय से साहित्यिक समारोह मे आने के लिए निमत्रण आया। वैसे होता, तो काम छोडकर एक सप्ताह को खून करने के

लिए मैं तैयार न होता, पर विश्वविद्यालय के अध्यापकों से परिभाषा-निर्माण में सहायता की आशा थी, इसलिए मैंने स्वीकार कर लिया। दो पहर बाद की छोटी लाइन से प्रयाग पहुँचा। फिर वहा से सोने के लाल्च से सागर के लिए प्रथम श्रेणी का टिकट कटवाया। ट्रेनो मे मकर मकांति के लिए लोगो की भीड थी। रात भर चलकर ५ बजे सवेरे कटनी पहुँचा। आगे जाने वाली ट्रेनें दो ही थी, पौने ११ बजे तक यही प्रतीक्षा करनी था। स्टेशन से बाहर देखा, सडक के दोना तरफ शरणार्थियों न चाय, मिठाई और दूसरी दूकानें खोल रखी है। ल्ल्लन भी साथ था, लेकिन अभी वह मा के आचल से बँधा ल्टका था। इधर-उधर गया नहीं था, यात्रा मे कच्चा था। खैर, बीना की ट्रेन मिली और हम उससे रवाना होकर पौने ४ बजे सागर पहुचे। सागर कस्बा है, विश्वविद्यालय स्टेशन से तीन मील पर है। युद्ध के समय अग्रेजो ने सेना के लिए यहा बहुत से अस्थायी बर्के बनवाई थी उनके लोभ के कारण भी विश्वविद्यालय वहा स्थापित किया गया। लेकिन, ये मकान कितने दिनो तक ठहरेंगे, और यदि इसी लोभ के कारण और भी मकान यहाँ बनाने लगें, तो इसका अर्थ है, जगह पसन्द करने मे बुद्धि से काम नही लिया गया। विश्वविद्यालय मे उस समय सात सौ छात्र-छात्राएँ पढ रह थे। छात्रावास का प्रबन्ध नही था, इसलिए बाहर से विद्यार्थी यहा कैसे आ सकते थे? हम प्रो० नन्ददुलारे वाजपेयी जी के यहा ठहर।

१४ जनवरी के सवेरे तीन मील उस जगह तक जबल्पुर वाली सडक पर टहलने गए, जहाँ से कानपुर और दमोह की सडकें अलग होती हैं। पहले ही चालीस घरो का एक छोटा सा गाँव बहेरिया मिला। बजरग (महावीर) के स्थान पर १०वी शताब्दी की एक छोटी सी पत्थर की मूर्ति मिली। वहाँ छोटा-सा शिवलिंग और कुछ बडा सा नादिया भी मौजूद था। पत्थर की मूर्ति द्विभुज थी, और उसका कटि स ऊपर का ही भाग बचा था। एक हथेली छाती पर और दूसरी खड्गधारी की तरह ऊपर उठी थी। शायद यह पुरुषमूर्ति नृत्य मुद्रा मे हो। लेख भी था जिसमे केवल स पढा

जाता था। इसका अथ हुआ, बहेरिया गाव कम स कम दसवी सदी म मौजूद था।

ढाई बजे हिन्दी परिषद् का और रात का साढे ७ बजे छात्र सघ का भी उद्घाटन करते हुए मुझे भाषण देना पडा।

उस दिन शाम का सागर की बस्ती की आर गए। कचहरी के पास विशाल सरोवर है, जिसके ही नाम पर बस्ती का नाम सागर पडा। इस सागर को किसन खुदवाया, इसका पता नही। इसे अपौरुषेय मानना चाहिए। सरोवर काफी पुराना है, और किनार पर मिट्टी पडने से पानी सूखता गया है। तोपखाना अफसरा के भोजनालय के बगल के हाते म चार नये बन स्तूपो म चिपकाई गई पत्थर की मूर्तियाँ दखी। इसम शको (ईसा पूव प्रथम शताब्दी) से बारहवी शताब्दी तक की मूर्तियाँ थी। सागर दशार्ण क केन्द्र म अवस्थित है। समुद्रतल से दो हजार फुट से भी ऊँचा होन के कारण यहाँ की गर्मी असह्य नही होती। यहा लू नही चलती। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह स्थान बहुत अच्छा है। विश्वविद्यालय को यहाँ अभी अस्थायी तौर से ही रखा गया है। उसे पथरिया पहाडी पर ले जाना चाहते हैं, जहाँ प्राकृतिक सौन्दय भी अच्छा है, और पानी की चिन्ता भी नही है।

उस दिन विश्वविद्यालय के वनस्पति उद्यान, भूगर्भशास्त्रीय प्रयोगशाला और दूसरी चीजें देखी। नया नया विश्वविद्यालय खुला था, जिसके लिए श्री हरिसिंह गौड ने अपनी कई करोड की सम्पत्ति दी थी। अपनी कमाई का इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकता था? हरिसिंह का जन्म यही हुआ था, इसलिए उनकी आकाक्षा थी, कि वह विश्वविद्यालय उनकी जन्मभूमि मे ही बने। सागर विश्वविद्यालय केवल शिक्षालय ही नही है, बल्कि मध्य प्रदेश के हिन्दीभाषी भाग की शिक्षा सस्थाओ का परीक्षालय भी है। १५ तारीख का समावतन सस्कार हुआ, जिसमे भाषण के लिए केन्द्रीय मन्त्री श्री जयरामदास दौलतराम आए। बिल्कुल अग्रेजी वातावरण था, लेकिन जयरामदास हिन्दी म बोले। अग्रेजी को जरा भी नीचे उतारना बूढे हरिसिंह का बर्दाश्त नहीं हो सकता था लेकिन, करें क्या?

विश्वविद्यालय वाले भी इतने बडे दाता को नाराज करना नही चाहते थे। जयरामदास जी के भाषण म इस अचल मे जूट की (पाट) खेती के लिए प्रसन्नता और उसकी उन्नति के लिए सुझाव बतलाये गए। श्रोता इसे आश्चर्य से सुन रहे थे। सागर ऐसी जगह है, जहा न जूट की खेती होती है, और न उसके विकास की कोई गुजाइश है। लेकिन, मन्त्री को इसका दोष क्या दिया जाए? बराबर ही उन्हे कही न कही सभाओ मे उद्घाटन, सभा वतन मस्कार या किसी दूसरे समारोहो म बोलने के लिए कहा जाता है। वह अपने देह को वहा किसी तरह पहुँचा सकते है, लेकिन सभी जगह के लिए भाषण तैयार करने लगे, तब तो हो गया। किसी ने भाषण तयार कर दे दिया होगा, और वह वहा पढ दिया गया। और भी मत्रियो को ऐसा करते देखा गया है। उत्तर-प्रदेश के मुख्य मत्री ने तो एक बार हमीरपुर के भाषण का झाँसी मे और झासी के भाषण को हमीरपुर मे पढ दिया, जिसे सुनकर लोगो को बडा आश्चर्य हुआ। उसी दिन शाम को नगर मे एक सावजनिक सभा मे बोलना पडा, और हिन्दी परिषद् ने मुझे और प० रविशकर शुक्ल को मान पत्र दिए।

इधर से दो ही ट्रेने जाती है इसलिए बडी मुश्किल से भाग-दौडकर रात साढे ११ बजे की ट्रेन पकडी। रास्ते मे तीन घटे लेट थी, इसलिए प्रयाग जाने वाली ट्रेन के मिलने से निराश हो गए। १६ तारीख को ६ बजे हम कटनी पहुँचे। सारे दिन के लिए कटनी मे पडे रहने के सिवा और कोई चारा नही था। कटनी हमारे देश के अद्भुत इतिहासवेत्ता और पुरातत्वज्ञ डा० हीरालाल की जन्मभूमि है। उन्होने कितनी ही बार मुझे यहा आने के लिए निमन्त्रित किया था। डा० जायसवाल और डा० हीरालाल समानधर्मा थे। सयोग था जो दोनो एक ही बिरादरी के रत्न थे। उनके जीवन म मैं उनके घर नही जा सका। अब इस अवसर से लाभ उठाकर मैंने वहाँ जाना जरूरी समझा। कल्चुरी इतिहास के वह अद्भुत ममन थे। अफसोस, कि वह अपनी ज्ञानराशि को कागज पर उतार नही सके। उनका पुस्तकालय देखा। हीरालाल जी के भतीजे अब उसके स्वामी हैं। वह भी सोच रहे थे

और मैंने भी जार दिया, कि इन पुस्तकों को सागर विश्वविद्यालय मे जाना चाहिए, जहा इनका सदुपयोग हो सकता है और जहा ही इनकी और इनके सग्राहक के नाम की रक्षा हो सकती है। लोगा का मालूम हुआ, तो साहित्य-प्रेमियो की गोष्ठी जमा हा गई, जिसमे बोलना पडा। अत म रात को सावजनिक सभा मे बोला। कितनी बार कटनी से गुजरा, लेकिन कटनी शहर को देखने का अबकी बार ही मौका मिला। यहा पास मे सीमेंट के कारखाने थे, और भी औद्योगिक सम्भावनाएँ है। बीना, प्रयाग, जबलपुर, बिलासपुर की रेलवे लाइनो का जक्शन हाने से इसे यातायात के बहुत सुभीते प्राप्त है।

१७ जनवरी को सवेरे ६ बजे पहुँचकर श्रीनिवासजी के यहा गए। आज ही सारनाथ चला जाना था। कल स्थायी समिति की बठक हुई। सम्मेलन मे दल बदी कुछ उग्र रूप ले रही थी, अधिकारारूढ दल पैसे से लाभ उठाना चाहता था। प० बलभद्र मिश्र बडे खरे और कडे आदमी थे बस उन पर ही आशा थी। परिभाषा कोश के काम म भी अडचन की सभावना थी, लेकिन भावी का ख्याल करके अभी से हाथ-पैर छोड देना मैंने पसन्द नही किया, और निश्चय किया कि जब तक काम चल सकता है, तब तक निभाएँगे।

शाम को ६ बजे की गाडी पकडी। नाटककार प० लक्ष्मीनारायण मिश्र भी उसी ट्रेन से चल रह थे। उनका महाकाव्य सेनापति कर्ण और आगे बढा था। ट्रेन म उसके कितने ही स्थल उन्होने सुनाए। बहुत अच्छे लगे। शिकायत थी तो यही, कि इसे मिश्रजी जल्दी समाप्त क्यो नही कर देत। सारनाथ ११ बजे रात को पहुचे। इस समय सामान ले जाने वाला आदमी कहाँ स मिलता? अपन सामान का उठाकर धर्मशाला तक पहुँचाना आसान नही था। किसी तरह रास्ते की छावनी के दरवाजे तक पहुँचे, वही चबूतरे के बाहर सो गय। १८ को सवेरे ल्ल्लन को भेजकर आदमी बुलवाया सामान लेकर ठहरने के वासे पर पहुँचे। ल्ल्लन की चिट्ठी बीमार थी, वह चला गया। अब फिर लिपिक की समस्या उठ

श्री अवधविहारीसिंह सुमन ने आने की इच्छा प्रकट की थी, उन्हें भी आने के लिए चिट्ठी लिख दी। इस बीच में महाबोधि सभा के पुस्तकालय से अपेक्षित पुस्तकें लेकर देखते रहे। स्वामी सच्चिदानन्दजी से भी बात होती रहती। उनके निराशावाद को जबानी हटाया नहीं जा सकता था, लेकिन तो भी कोशिश करता था। वह अपने से भी अधिक दुनिया से निराश थे। कह रहे थे धर्म पर अब किसी की श्रद्धा नहीं है, सबमें कोरी वंचना देखी जाती है। उन्हें फिक्र थी, कैसे जल्दी जीवन समाप्त हो जाए। मैं तो समझता हूँ, फिक्र होनी चाहिए जीवन की, जीवन समाप्ति की क्या फिक्र? अबकी ग्राम पंचायतों के चुनाव के बारे में जो बातें सुनने में आईं, उससे मालूम हुआ, कि हवा पलटी हुई है। कम से कम शहर के पास वाले इन गांवों के पिछड़े लोगों में कुछ आत्म चेतना आ गई है। एक गाँव के ११ पंचों में ४ अछूतों में से थे (अछूतों के लिए पहले ही से सीट रिजर्व था), बाकी सात में से भी छूत अछूत दोनों शोषित एक जैसी वाणी बोल रहे थे।

२० जनवरी को सबेरे सुमन जी आ गए। लिखने का काम फिर शुरू हो गया, और पहले से भी अच्छी तरह।

बक्सर—बक्सर में जिला हिन्दी सम्मेलन हो रहा था, जिसका सभापति बनकर मुझे जाना था। २१ तारीख को एक्के से चलकर बनारस छावनी में २ बजे दिन की ट्रेन पकड़ी और हम साढ़े ४ बजे के करीब बक्सर पहुँच गए। सुमनजी इसी जिले के रहने वाले थे। मैं बक्सर में दो बार अपनी जेल-यात्रा के सम्बन्ध में आया था, जिसको २६ वर्ष हो चुके थे। उस समय रेल की यात्रा सुखद नहीं थी, खासकर तीसरे दर्जे की। पहले दर्जे में भी एक पुराने सेठ सफर कर रहे थे, जो सारा घर लादकर चल रहे थे। सामान के मारे वहाँ किसी के डालने का अवकाश नहीं था। हम सम्मेलन से एक दिन पहले पहुँचे थे। अभी पण्डाल भी तैयार नहीं हुआ था। २६ वर्ष पहले हुई गया कांग्रेस की याद आने लगी। वहाँ भी पण्डाल बनने में ऐसी ही ढिलाई हुई थी और एक बार डर लगा था, शायद मंच का चबूतरा बन ही न पाए। महाराजकुमार दुर्गाशंकर सिंह सम्मेलन के कर्ता

घर्ता थे, उनका पता ही नही था। हमे उसी दिन आना चाहिए था। खैर, जाकर डाकबगले म ठहर गये। बक्सर मे भी एक गिरा पडा पुराना दुग है, जिसके पास दूर तक पुरानी आबादी के अवशेप हैं। साथ म सुमन जी और दूसरे भी थे। पुराने अवशेप मे जगह-जगह कुछ मन्दिर और कुछ ढहते से मकान थे। चरित्रवन क्या नाम पडा लाग इसे चितरथवन (स्वर्गोद्यान) बतलाते हैं। इधर आचारियो के भी कुछ स्थान हैं। उत्तर का तो वरागियो ने सभाला था, फिर यह रामानुजी आचारी कहा से आ घमके ? सूयपुरा के राजा आर डामाराय के मन्दिर जमीदारी उठने के पहले ही ढहने लगे थे, अभी न जाने किन किन को ढहना होगा। गगा के किनारे किनारे नाव से चले। जगह-जगह एक मेखला वाली कुइयो को दिखलाकर हमारे साथी बतला रहे थे, विश्वामित्र ऋषि के जिस यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण आए थे, उस यज्ञ के यही कुण्ड हैं। मेरे लिए हँसी रोकना मुश्किल हो गया था। इतनी कुइयों की यज्ञ के लिए क्या आवश्यकता थी ? मैंने बतलाया कि यह यज्ञ-कूप नही, गूथकूप हैं। उस समय के लोग हमसे ज्यादा सफाईपसन्द थे, इसलिए पास पडोस को गन्दा न कर अपने घर के भीतर इन्ही सडासो मे पाखाना फिरा करते थे। श्रोता बडे हताश हुए। विश्वामित्र के यज्ञ की बडी मेहनत से तैयार की गई निशानी दूसरी ही साबित हुई।

२२ तारीख को टहलते दो मील पूर्वोत्तर कतकौलिया गए। यही पर अंग्रेज कम्पनी ने पलासी के युद्ध के सात वष बाद दूसरा निर्णायक युद्ध जीता था, जिसका स्मारक यहाँ खडा था। स्मारक पर लिखा था—"अवध नवाब वजीर शुजाउद्दौला के ऊपर मेजर हक्टर मनरो के बक्सर के युद्ध मे विजय का स्मारक, जो कि इस मैदान मे २३ अक्तूबर १७६४ को लडी गई, और जिसके द्वारा अंग्रेजो ने अन्तत बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी प्राप्त की।" (To commemorate the victory of Major Hector Munrow over Shuza u-daulo Nawab-Wazir of Oudh in the battle of Buxar fought on this field on 23rd October 1764 A D by which the Diwani of Bengal, Bihar and Orissa was finally won for the British )

स्मारक के चारो ओर अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और बंगला में यह लेख लिखा हुआ है। इस स्मारक पर १५ अगस्त १९४७ को अंग्रेजो के जाने, जनता के युद्धों और कुँवरसिंह के पराक्रम की बातें लिखी जा सकती हैं। हमारे ठहरने के बंगले से नातिदूर अंग्रेजो का पुराना कब्रस्तान था, जिसमें १७८४ ई० तक की पुरानी कब्रें थी। चौकीदार को ४२ रुपया महीना मिलता था, मुर्दों की रखवाली के लिए कितने दिनों तक चौकीदार यहाँ रखा जायगा ?

३ बजे से सम्मेलन आरम्भ हुआ। बाबू दुर्गाशंकर जी ने अध्यक्षीय भाषण दिया, और मैंने सभापति का मौखिक भाषण। रात को संगीत-मण्डली का आयोजन था, बनारस के प्रख्यात तबलावादक कंठे महाराज का तबला सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उस्तादी कलाबाजियों से मुझे चिढ़ है, इसलिए उसका रस नहीं ले सका। बक्सर में वानरों के मारे लोगो की नाक में दम था। कई साल पहले किसी सबडिवीजनल अफसर ने कहा था, कि बानरों को यहाँ से हटाना चाहिए। उस समय धर्म धुरन्धरों ने हनुमानजी की सेना के साथ ऐसे अत्याचार के होने को पसन्द नहीं किया, और विरोध के डर से अफसर ने ख्याल छोड दिया। तब से सूद दर सूद के साथ वानरों की संख्या बढी है। अब बक्सर शहर से उनकी आबादी कम नहीं है। सम्पन्न हारी बन्दरों के मारे टूट चुकी हैं। पहले रात को बन्दर पेड़ पर दुबक कर सोए रहते थे, अब वह रात को भोजन की खोज में निकलते हैं। जरा-सी गफलत हुई, कि गूँधा आटा या जो भी हाथ लगा, उसे ले भागते हैं। कई छोटे बच्चों को उन्होंने काटा भी है। पास पडोस के गाँव वाले किसानों की फसल की खैरियत नहीं थी। कितने ही खेतों के बीज को ही वह खुनकर खा जाते, और जमने पर हनुमानजी की सारी पल्टन वहाँ डेरा डाल देती। मैंने अपने भाषण में वानर-यज्ञ करने की बात की। इन्हें सिर्फ एक जगह से दूसरी जगह छोड़ने से काम नहीं चलेगा, बल्कि पूरा वानरमेध ही इसके लिए एक मात्र रास्ता है। जान पड़ता है पुराने धर्म धुरन्धरों का कोई नामलेवा भी नहीं रह गया है नहीं तो वानर-यज्ञ के विरोध में आवाज तो उठते।

सवेरे के वक्त किरतपुरा की ओर टहलने गए। सुमनजी भी साथ थे। सुमनजी राजनीतिक कर्मी और भोजपुरी के ग्रन्थकार हैं। किरतपुरा में सकरवार भूमिहार रहते हैं, वह अपने को फतेहाबाद से आया बतलाते हैं। भूमिहार एक ऐतिहासिक जाति है, इनकी परम्पराओं से इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। लेकिन, वहाँ तो किसी के जीवन-भर का काम है। एक-एक गाँव में जाकर उनके उद्गम-स्थान और पुरानी मौखिक परम्पराओं को जमा करना पड़ेगा, और हजारों पृष्ठ लिख जाने पर कुछ ऐतिहासिक तत्व निकलेंगे।

२३ जनवरी इतवार का दिन सम्मेलनों की धूम का था। कहानी-सम्मेलन, राजनीति इतिहास-सम्मेलन, शाहाबाद भोजपुरी-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन सभी होते रहे। भोजपुरी-सम्मेलन का उद्घाटन मुझे करना पड़ा, और सभापति परमहंसराय थे। डा० उदयनारायण तिवारी भी बोले। कवियों में बाहर से आने वाले श्री बच्चनजी और बिस्मिल इलाहाबादी विशेष तौर से उल्लेखनीय थे। दूसरे कवियों ने अपनी कविताएँ पढ़ी, चार घंटे तक सम्मेलन रहा। बच्चनजी की कविताओं का मैं बहुत प्रशंसक हूँ, सवग्राह्य भाषा में कविता करना जानते हैं। वह संस्कृत से लदी हुई भाषा के मोह में नहीं पड़े, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। संस्कृत लादने और तुक जोड़ने से अच्छी कविता नहीं होती। बिस्मिलजी के शेर बड़े फड़कते हुए थे, और उनके कहने का ढंग और भी अच्छा था। मुझे तो उसमें ईरानियों के अपने फारसी गजलों के पढ़ने का ढंग भासित होता था—बिस्मिल शायद कभी फारसी के मुशायरे में शामिल नहीं हुए होंगे, ईरान जाने की तो बात ही क्या। बिस्मिलजी का निमन्त्रण अब भी इन्तजारी कर रहा है। निरालाजी ने अपने मांस पाचन की कला का एक से अधिक बार प्रयोग मेरे लिए किया था। बिस्मिलजी जब तारीफ करते थे तो मुँह में पानी भर आता था। सभी खाने वाले मांस की पहचान नहीं रखते। बकरे का मांस खास-खास जगह का विशेष महत्व रखता है, फिर उसके पकाने में भी विशेष विधान है। बिस्मिलजी ने कहा कि एक दिन आइए, मैं गोश्त

खिलाऊँगा। तब से इलाहाबाद पच्चीसा मतबे गया, महीनो रहा लेकिन कभी नदिया नाव सयाग नही बना, कि मैं बिस्मिल के हाथ का गोश्त खाता।

बक्सर के सम्मेलन पर कम पैसा नही खर्च किया गया था, लेकिन वहीं कोई व्यवस्था नही थी। भोजन समय पर नही मिलता था, जो मिलता था, वह भी ऐसा ही वैसा। अत मे तो हद कर दी गई। १२ बजे तक कवि सम्मेलन होता रहा। अतिथियो को स्टेशन पर जाकर गाडी पकडनी थी, लेकिन कोई खोज खबर लेने वाला नही था। यह एसी उपेक्षा थी, कि उनमे से कोई फिर बक्सर आने का नाम नही ले रहा था। दिन म छुट्टी होती, तो एक्का भी खोजने पर मिल जाता, सामान ले जाने वाले आदमी भी मिल जाते, लेकिन आधी रात को क्या किया जा सकता था। मैं इसकी तुलना मेरठ से कर रहा था। भोजन का कितना सुदर प्रबध महिलाओं ने किया था। बिस्मिल ने अपने गुरु नूह नारवी की बात दोहराते हुए कहा —कि सात आदमियो की अत म बुरी गति होती है जिनमे कविता पढ़ चुके कवि और विदा हुए बराती भी शामिल है। लेकिन, मैं समझता हूँ कि उस दिन के कारण बक्सर के प्रति यह भाव नही रखना चाहिए। आखिर, बक्सर की वही पीढी सदा नही रहेगी। क्या हरेक पीढी पहली के पीढी के दुगुणा को होती है?

सारनाथ— रात को सभी कवि और दूसरे अतिथि स्टेशन पर बैठ ट्रेन की प्रतीक्षा करते खट्टे मिट्ठे शब्दो मे बक्सर सम्मेलन की आलोचना कर रहे थे। इसी समय रात ही को ट्रेन मिल गई। बनारस छावनी म विश्राम किया और सुमनजी के साथ मैं ६ बजे से पहले ही सारनाथ पहुँच गया। पढना और लिखना ही काम था। सुमनजी बडे मुस्तैद थे। हर वक्त काम मे जुटने के लिए तैयार थे लिखते भी साफ थे और हिदी की योग्यता के कारण गल्ती करने के लिए बहुत गुजाइश नही थी। मैं अब 'बौद्ध सस्कृति' के पूरा करने के लिए निश्चित था।

इस समय चीन मे जो घटनाएँ घट रही थी, उसके बारे म सभी जगह

इसीलिए यह झूठी "अन्न मे स्वावलम्बन की बात है।"

२६ जनवरी को १६-१७ वर्ष बाद सिंहल भिक्षु भदन्त देवानन्द स्थविर मिले। अब बहुत वृद्ध हो गए थे। वह मुझसे संस्कृत पढ़ने वाले उन विद्यार्थियों में थे, जो नियमपूर्वक समय देते थे, अपने पढ़ने में भी और मुझे पालि पढ़ाने में भी। भारत की तीर्थयात्रा के लिए अकेले निकले थे। अपनी मातृभाषा सिंहली, पालि और संस्कृत के अतिरिक्त बहुत थोड़े से हिंदी के शब्द जानते थे, उन्हीं के सहारे कलकत्ता से सारनाथ पहुंच गए। सिंहल में यद्यपि लाखों भारतीय रहते हैं, लेकिन सभी तमिल भाषाभाषी हैं, इसलिए उनके सम्पर्क से हिंदी जानने का सुभीता नहीं है। उत्तरी भारत के मजूर कलकत्ता बम्बई तक छाए हुए है, द्वीपान्तरों में भी लाखों की संख्या में चले गए है, पर पड़ोस के मद्रास के सस्ते तमिलभाषी मजूर सैकड़ों वर्षों से वहां जाते रहे, इसलिए उत्तरभारतीयों की गति वहां नहीं हुई।

२७ जनवरी की सबेरे टहलने के लिए हम लमही-ललाम की ओर गए जो सारनाथ से दो ढाई मील पश्चिम है। लालो (कायस्थों) की बस्ती होने से इसको लमही ललान भी कहते हैं। अमर कथाकार प्रेमचन्द की यह जन्मभूमि है। यद्यपि काम के सुभीते के लिए वह बनारस में रहते थे, लेकिन अपनी लमही से उनको बड़ा प्रेम था। इसलिए दोमंजिला मकान बनवाया था। अब छठे छमाहे कभी कभी शिवरानी देवी आ जाती हैं। अमृत और श्रीपति के बारे में तो लोग शिकायत करते थे, कि वह कभी नहीं आते। गांवों में पैदा हुए योग्य पुरुष इसी तरह अपने गांवों को त्याग कर चले जाते हैं लेकिन करें क्या। हमारे गांवों में सांस्कृतिक जीवन बिताने का कोई साधन नहीं है, और नगरों में उस प्रकार का सुभीता है। प्रेमचन्द जी के दोनों सुपुत्रों का जब बनारस से भी काम नहीं चला तो प्रकाशन की आसानी देखकर वे प्रयाग चले गए। शिवरानी जी अब भी बनारस ही में रहती हैं। लमही पुराना गांव मालूम होता है, यह उसके विचित्र नाम से भी पता चलता है और वहां पर १०वीं ११वीं शताब्दी

की एक छोटी सी खण्डित स्त्री मूर्ति का सिर भी इसी को बतला रहा था, जो कि अब पटना म्यूजियम म है लौटते वक्त बडहरवा बावा के नाम से खडी एक गुप्तकालीन छोटी-सी बुद्ध मूर्ति देखी। सारनाथ के आसपास सौ वर्ष पहले सैकडा मूर्तियाँ रही होगी। अब कही-कही उनम से कुछ बच रही हैं। रूमही के पास मढवा गाँव है यह भी अपने नाम से प्राचीनता को बतलाता है।

उसी दिन ल्हासा के जेनरल शोगाड्, अपनी पत्नी पुत्र, बहिन भाजे और परिचारको के साथ सारनाथ आए। चीन म चाङ-काई शेक का सफाया हो रहा था। यह निश्चित ही था, कि तिब्बत भी चीनी गणराज्य का अभिन्न अग बनेगा। चाङ् काई शेक के रहते यदि चीन ऐसा करता, तो पश्चिमी साम्राज्यवादियो का कोई उज्र न होता। लेकिन कम्युनिस्ट चीन आ जाए इसे अमेरिका और इग्लैड बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही थे। उन्होने अपने आदमी अब भी वहाँ बैठा रखे थे जो अब भारत के भीतर से ही हाकर जा सकते थ। तिब्बत के भी जागीरदार और धनिक कम्युनिस्म के साथ रहने के लिए तैयार नही थ, इसलिए वहा के कुछ प्रभावशाली लोगो का प्रतिनिधि मण्डल अमेरिका और इग्लैड दोहाई देने क लिए गया था। जेनरल शोगाड इसी प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य थ। अमेरिका, इगलैड फाम होकर जब वे बम्बई मे उतरे, तो उनके स्वागत के लिए सारा घर गया हुआ था। शागाड परिवार तिब्बत का सबसे धनी और सबसे पुराना सामत परिवार है। उनके पिता अब भी जीवित थे यद्यपि स्वेच्छाचार को रखकर बाद म पत्नी ने घर से दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया था। जेनरल शोगाड का बडा भाई ल्हासा सरकार के चार मन्त्रियो म सबसे प्रभावशाली मंत्री था सबसे छोटा भाई भिक्षु था। ल्हासा की यात्राओ मे यह परिवार हमेशा मेरी सहायता के लिए तैयार रहता यह कहने की जरूरत नही, कि इस परिवार से मेरी घनिष्ठता थी। ल्हासा शहर के केन्द्र म उनका लम्बा चौडा और बहुत ऊँचा प्रासाद है। ल्हासा निवास म स्नान के लिए मैं प्रति सप्ताह उनके — जाया करता था। पन्द्रह वर्ष बाद मैं

उनसे मिल रहा था, बहुत सी बातें जाननी सुननी थी।

पश्चिमी साम्राज्यवादी बहुत चिन्तित थे, और चाहते थे, कि किसी तरह तिब्बत चीन में विलीन न हो। पर चाहने से क्या होता है? चाहने मात्र से चीनी मुक्ति सेना का तिब्बत में आना रुक थोड़े ही सकता था? तिब्बत के पास न कोई शिक्षित सेना थी, न गिनने लायक हथियार और न पैसे ही। पश्चिमी साम्राज्यवादी पैसा और हथियार देने के लिए तयार थे, लेकिन उनको इस्तेमाल कौन करता? और यह सहायता भी तिब्बत तभी पहुँच सकती थी, जब भारत सहमत होता। पश्चिमी साम्राज्यवादी विशेषकर इंग्लैंड अब भी समझता था, कि भारत हमारे प्रभाव में है, वह हमारी बात मानेगा। इसलिए हमारे नेताओं को बहुत ऊँचा नीचा समझाता रहा—"तिब्बत में जो विशेषाधिकार हमने प्राप्त किए हैं, उन्हें हमने तुम्हें दे दिया है। यह दो सौ वर्षों की कमाई है, इसे आसानी से कम्युनिस्टों के हाथ में न जाने दो। तुम्हारे ऊपर कोई आर्थिक बोझा नहीं पड़ेगा। पैसे और हथियार हम देते हैं आदमी तुम दो।" लेकिन भारतीय नेता क्या भाग खाए हुए थे कि आधे आसमान पर टंगे इस दुर्गम देश में अपने आदमियों को भेजकर कटवाते। जितनी सेना भेजते, उससे दूने तिगुने मजदूरों को सामान ढोने में लगाना पड़ता। दस बीस हजार सेना से वहां कुछ काम भी नहीं बनता। चाङ-काई-शेक की लाखों की सेना जिसके सामने धूप में मक्खन की तरह विला गई, वहां थोड़ी सी भारतीय सेना क्या कर पाती? इस बारे में भारत की बेरुखी से तिब्बती प्रतिनिधि मण्डल को बहुत शिकायत थी, पर जेनरल शोगाङ् भारत की स्थिति को अच्छी तरह समझते थे।

मेरे मित्र गेशे धर्मवर्धन के बारे में मैं समझता था, कि वह अपने प्रगतिशील विचारों के लिए अब भी ल्हासा के जेल में पड़े हैं। जेनरल ने बतलाया—"वह अब जेल से बाहर है। हां, उन्हें ल्हासा से बाहर जाने की आज्ञा नहीं है। वह तिब्बत का इतिहास लिखने में लगे हुए हैं।" मैंने जेनरल को समझाया, कि यह साहित्यकार, चित्रकार और दार्शनिक अद्भुत विद्वान् है। ऐसा जैसा इस समय तिब्बत में दूसरा नहीं है।

हमारी जनता उससे आसानी से और जल्दी परिचित हो, उसी तरह सिंहल मे सिंहली भाषा मे भी काम करने की जरूरत है। मेरे समय मे तो भारत से भी अधिक वहाँ अंग्रेजी का बोलबाला था, लेकिन जिस समय (२१ फरवरी १९५६) मैं इन पंक्तियों को लिख रहा हूँ, उस समय वहाँ का शासक-दल सिंहली को ही श्री लंका म सर्वेसर्वा भाषा बनाने के लिए तुला हुआ है। डा० अधिकारम् को अपने काम के लिए अब अधिक सुभीता होगा, इसमे शक नही। सिंहल मे रहते भी अधिकारम् से मेरी मुलाकात होती रहती थी, और लन्दन मे १९३२ मे रहते वक्त तो हम एक ही मकान म रहते थे।

इसी दिन एक शिक्षित पागल आ गया। पहले उसकी बातें प्रकृतिस्थ जैसी मालूम होती थी। उसने एक रुपया माँगा, दे दिया, वह फिर ऐसी बातें करने लगा, जिससे मालूम हो गया, कि दिमाग हाथ से बेहाथ हो गया है। हटने का नाम नही लेता था। सचमुच एक आदमी दिमाग के विकृत होने से कितना विद्रूप हो जाता है, उसका मूल्य कितना तुच्छ और वह लोगो पर कितना भार हो जाता है। बैलो भैंसो की नाक मे नाथ डालकर काबू करते है, घोडे के मुह मे लगाम उसे काबू रखने मे सहायक होती है। विशालकाय हाथी के लिए भी महावत के हाथ मे अंकुश होता है, पर आदमी के लिए अपनी बुद्धि छोडकर नियन्त्रण का कोई दूसरा साधन नहीं है।

३१ जनवरी तक मै सारनाथ म रहा। रोज सवेरे भिन्न भिन्न दिशाओ मे ६ मील टहलने के लिए चला जाता था। एक दिन पहाडियो की ओर घूमने गए। इसे ओडाझार भी कहते है, अर्थात् असुरो ने बडे बडे टोकरा म किसी काम के लिए मिट्टी ढोई, एक ओडा (टोकरा) कही पर झाड दिया, जिससे इतना विशाल टीला बन गया। यहाँ नीचे के खेतो मे कुषाण काल की ईंटें दीख पडी।

अन्तिम दिन महेशजी आए। उनसे पहले ही से पत्र व्यवहार था। और वह मेरे साथ रह कर लिखने के साथ कुछ सीखना चाहते थे। सुमनजी के

आने से पहले आए होते, तो रह जाते। जब तक वह स्वयं न हटे, तब तक मैं उन्हें हटाना पसन्द नही करता था। महेश घर न लौटने की कुछ प्रतिज्ञा सी कर आए थे। क्या करना चाहिए, यह पूछने पर मैंने कहा, या तो कमा के खाते हुए अपना अध्ययन जारी रक्खो। यदि इससे बचना चाहते हो, तो साधु हो जाओ। कठिनाइयो की परीक्षाओ की भट्ठी मे जो नही तपा, वह पक्का नही हो सकता। महेश के लिए बनारस वाले मित्रो के पास कुछ परिचय पत्र लिख दिए। उस समय तो वह साधु बनने के लिए भी कुछ कुछ तयार हो गए थे, लेकिन पीछे वह रास्ता उन्हें अच्छा नही मालूम हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध मे सारनाथ के आसपास के गाँव पक्के कोठो और ईंट के मकानो वाले हो गए थे। यहाँ की रेशमी साडियाँ और जरी के काम की बडी माग थी। देश मे भी युद्ध के कारण आई पैसे की बाढ ने हमारी ललनाओ के लिए इनकी जरूरत पैदा की थी, और विदेशी भी कुतूहलवश उनकी माग करते थे। काम करनेवालो को मुह माँगा दाम मिल रहा था। कोइरिया ने साग सब्जी बोना छोडा और बुनाई स्वीकार की। जिसके पास थोडी भी पूजी थी, उसने कुछ दिनो शहर मे सीखकर अपने घर मे करघे बैठा दिए। दस बारह वर्ष के लडके काम सीखने और डोरा उठाने के लिए बनारस के कारीगरो के पास चले जाते, जो उन्हे १४ १५ रुपया मासिक दे दिया करते। अब यह रोजगार ठडा पड गया था, और नये बने कोठो की खैरियत नही थी।

सारनाथ मे रहते "बौद्ध संस्कृति" का प्राय दो तिहाई मैंने लिख डाला, बाकी एक तिहाई को शान्तिनिकेतन मे लिखना था। उस समय यही मालूम था लेकिन शान्तिनिकेतन जाने पर पुस्तक और बढ गई।

१ फरवरी की शाम को हम प्रयाग पहुचे। तीसरे दिन बसन्त पचमी थी, सगम स्नान के लिए लोगो की भारी भीड थी। रेलो मे बहुत से बेटिकट यात्रा करनेवाले चढ जाते थे। अब टिकट कलक्टरो की सख्या बढा दी गई, और साथ मे पकडकर सजा देने के लिए मजिस्ट्रेट भी चलते थे। अगर

यह प्रबन्ध नहीं हुआ होता तो पहले दर्जे मे भी शायद जगह न मिलती। इधर एक और भी भार सिर पर आ गया था। जीवन-यात्रा का दूसरा भाग प्रेस में था, और उसके काफी पन्ने मुद्रक या प्रकाशक की कृपा से लुप्त हो गए थे। लुप्त ग्रन्थ को फिर से लिखना लेखक के लिए सबसे बडी मुसीबत की बात है। लेकिन, क्या करता?

डा० बदरीनाथ प्रसाद के यहा सीवान डी० ए० वी० स्कूल के सस्थापक और हेडमास्टर दाढी बाबा मिले। उनका जीवन सचमुच त्याग और तपस्या का जीवन रहा। उन्ही के अदम्य उत्साह से सीवान (छपरा) मे दयानन्द स्कूल खुला, और बढते हुए डिग्री कालेज बन गया।

फोटोग्राफी काम की चीज भी है, और बडा खर्चीला शौक भी। 'आय को फ्लेक्स' हम खरीद चुके थे। रूस से लाया 'लायका' (फेद) खो गया था, इसलिए उसी तरह के कैमरे का ख्याल दिमाग मे चक्कर काटा करता था। श्री कृष्ण प्रसाद दर ने जब कहा, कि कौडक्का लायका हमारे पास है, यदि लेना चाहे तो ले लीजिए, मैं और कीमती कैमरा लेना चाहता हूँ। मैंने पाच सौ रुपये मे उसे खरीद लिया। सात वर्ष मेरे पास रहते हो गया, लेकिन उसका बहुत कम ही इस्तमाल मैंने किया। खरीदने के बाद जब इलाहाबाद मे ढूढने पर भी उसके लिए फिल्म नही मिली और यही बात पटने मे हुई, तो मुझे अपनी गलती मालूम होने लगी।

३ फरवरी को डा० बदरीनाथ प्रसाद की बडी लडकी इन्दुप्रभा का ब्याह था। इसीलिए मैं विशेष तौर से प्रयाग में आकर ठहरा था। डा० बदरीनाथ प्रसाद आजमगढ जिले के कस्बा मुहमदाबाद के रहने वाले हैं। मेरा भी पितृग्राम मुहमदाबाद तहसील ही में है, इसलिए हमारा घर का सा सम्बन्ध था। बारात में १८ आदमी थे। वर मेरठ का रहनेवाला एक होनहार मेधावी साइन्स का विद्यार्थी था। उस समय भी वह एम० एस सी० हो चुका था, और आगे उसने नुक्लियर (नाभिकीय) भौतिकशास्त्र मे डाक्टर की उपाधि ले अपने विषय में अनुसन्धान का काम किया। बरातियों से घरातियों का अधिक होना स्वाभाविक था, मुहमदाबाद के ता

सारे परिवार के लोग चले आये थे। पहली लडकी का ब्याह था, इसलिए उसे बडे उत्साह के साथ किया गया। आगन म मण्डप खडा कर उसे सजाया गया था। दोनो ओर के परिवार आर्यसमाज से प्रभावित थे, लेकिन सुधारक समाजो मे कला पक्ष की बडी अवहेलना होती है। उसी की पूर्ति के लिए कर्मकाण्ड मे कुछ बातें बढा दी गई थी।

पटना—४ फरवरी को सम्मेलन-भवन मे जाकर परिभाषा निर्माण की गतिविधि देखी। डा० नखाने दर्शन-परिभाषा का काम करीब करीब समाप्त कर चुके थे और अग्रेजी शब्दो के कितने ही प्रतिशब्द भी बना लिए थे। उसी दिन प्रयाग से पटना के लिए रवाना हुए। सुमनजी साथ थे। पानी बरस रहा था। हमे भीगते-भीगते गाडी बदलनी पडी। ५ तारीख को ५ बजे सवेरे भी वर्षा हो रही थी। १० बजे हम पटना पहुँचे। रिक्शा लेकर दाना वीरेन्द्र बाबू को ढूढने निकले, लेकिन वह घर पर नही थे। सयोग से पास ही म प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा का घर निकल आया। सारे कपडे करीब-करीब भीग चुके थे। देवेन्द्र जी के यहाँ हम ठहरे। देवेन्द्र छपरा के रहनेवाले, वहा के एक बहुत बडे सस्कृत पण्डित के पुत्र तथा मेरे घनिष्ट मित्र प० गोरखनाथ त्रिवेदी के दामाद थे। वह अपने पिता के योग्य पुत्र थे। सस्कृत के साहित्याचार्य तथा साहित्य मे विशेष योग्यता रखनेवाले थे। सभी सस्कृत के पण्डित जानते थे, कि आजकल इज्जत पैसे मे है, और पैसा कमाना हो, तो लडका को अग्रेजी पढानी चाहिए। देवेन्द्रजी ने अपा कुछ रेडियो-नाटक सुनाए। कादम्बरी की "पारिजात मजरी" लेकर उन्होने बहुत सुन्दर एकाकी लिखा था, जिसमे बाण के काव्य-सौदर्य की बहुत अच्छी तरह रक्षा की गई थी। शाहजादा सलीम (जहाँगीर) द्वारा "अबुल फजल वध" भी बहुत मार्मिक नाटक था। उनकी लेखनी मे शक्ति है, शब्दो के मूल्याकन मे सूक्ष्म निर्णय की प्रतिभा असाधारण है। सस्कृत के विद्वान् होने से वह सस्कृत के शब्दो का अनुचित मूल्याकन करने के लिए नही करते।

शाम के वक्त पटना के कवि और साहित्यकार केसरी, नवलकिशोर

और नलिनजी से बातचीत होती रही। ६ तारीख को पटना शहर के गांधी सरोवर पर बिहार हितैषी सभा की ओर से नगर-साहित्य सम्मेलन का वार्षिकोत्सव हुआ। उत्सव का उद्घाटन मुझे करना पडा। इसमे कवियो ने कविता, कहानीकारो ने कहानियाँ पढी। पटना एकान्तत हिंदी की नगरी है, इसलिए यदि वहाँ के तरुणो म इतना उत्साह देखा जाए, तो स्वाभाविक ही है। नगर के धनी धोरी भी इस बारे म चुस्त हैं। अभी अग्रेजो को गए डेढ वर्ष भी नही हुए है कि उन्होंने सडको के अग्रेजी नाम हटाकर उनकी जगह भारतीय नाम रख दिए। पटना की प्रधान सडक अब अशोक राजपथ है, जो गगा के समानान्तर और समीप पटना शहर से बाकीपुर के छोर तक चली गई है। मगल रोड अब गुरु गोविन्द पथ है। सिक्खो के दशम गुरु गुरु गोविन्द पटना म ही पैदा हुए थे, इसलिए पटना को अपने सुपुत्र का सम्मान करना ही चाहिए। अगले दिन १० बजे सीनेट हाल म एम० ए० के छात्रो के सामने राजनीति पर भाषण दिया। विद्यार्थियो की स्वच्छन्दता से बूढे और सरकारें असन्तुष्ट हैं। पटना के कालेजो को तो इसके लिए बन्द कर दिया गया था और सरक्षको से यह लिखकर देने के लिए कह रहे थे, कि लडके अनुशासन को मानेंगे। अग्रेजो के समय की बाते इतनी जल्दी दोहराई जाएँगी, इसकी आशा नही थी।

७ फरवरी को ६ बजे शाम को हमने दिल्ली स्याल्दह एक्सप्रेस पकडी। हमारे पहले दर्जे के कम्पार्टमेन्ट म मैं ही अकेला था। सुमनजी दूसरे डब्बे मे बैठे थे। रात भर की यात्रा थी। ट्रेन हावडा से स्याल्दह पहुँचती थी और इसी लाइन पर शान्तिनिकेतन का स्टेशन बोल्पुर पडता था, इसलिए हमारे लिए यह ट्रेन अनुकूल थी। अगले दिन साढे ७ बजे गाडी बोलपुर पहुँच गई।

१६

# शान्तिनिकेतन मे

स्टेशन से हम सीधे शान्तिनिकेतन पहुँचे, और पहले काम की फिकर म पडे। शान्तिनिकेतन म वहत्तर भारत के सम्बन्ध म जितनी पुस्तक हैं, उतनी कलकत्ता यूनिवर्सिटी का छोडकर भारत मे और कही नही मिलेगी। तो भी इन पुस्तका का पर्याप्त नही कहा जा सकता। अब हम २५ तारीख तक के लिए प० हजारीप्रसाद द्विवेदी क अतिथि थे। द्विवेदीजी के साथ इतनी घनिष्टता क साथ रहन का यह पहला अवसर था, लेकिन उसका यह अर्थ नही कि मेरी इससे पहले उनके साथ कम घनिष्टता थी। मैं उनकी विद्या, लेखनी और निणय शक्ति का भारी प्रशसक हूँ। कहा करता था, हिन्दी के साहित्यकार जब ऐसी गम्भीरता प्राप्त करेंगे, तब हिन्दी तेजी से आगे बढेगी। द्विवेदीजी के परिवार के सभी लडके लडकियाँ मेरे मनारजन और सहायता के लिए तैयार रहते थ। द्विवेदी स्वय सरजूपारी कुलकलक हैं, बाँह उठा उठा कर जिनके लिए ऋषियो ने कहा, "तुम्ह मछली मास खाना चाहिए," और वह आज ऋषि वाक्य क विरुद्ध जाएँ, यह काई अच्छी बात है? पर अगली पीढी फिर ऋषियो के रास्ते पर चली आई है, यह देखकर बडी प्रसनता हुइ। "नामासो मधुपर्को भवति" (बिना मास के पूज्य अतिथि की सेवा नही की जा सकती) ऋषियो की इस बात से द्विवेदीजी सहमत थे। बगाल मे मास से ज्यादा बगाली ढग से बनाई मछली

अच्छी लगती है। मैं वहां उसी को तर्जीह दे रहा था। ऐसे समानधर्मा बन्धुओं के साथ इतना कम रहने का मौका क्यों मिलता है, मुझे तो यही शिकायत थी।

गर्मियों के आने में अब बहुत देर नहीं थी। दिमाग में यही बात चक्कर काटती थी कि अब के साल किधर जाएँ। डा० भगवानसिंह का निमंत्रण अनी के लिए था। बंगाल के एक अंचल में होने के कारण कलिम्पोंग भी अपनी ओर खींचने लगा था। ९ तारीख की डायरी में मैंने लिखा था—'गर्मियों में कलिम्पोंग जाया जाय। कलिम्पोंग बिना पाकिस्तान जाए भी जा सकते हैं। वहां शायद नगरवासियों को भी समय देना पड़े किन्तु लाभ होगा—घरबारी होने के पाप से बच जाएँगे। धर्मोदय सभा का मकान है।—अनी में रहने पर मिट्टी के तेल, नौकर-चाकर तथा पुस्तकों की रक्षा की चिन्ता से भी मुक्त हो जाएँगे। तिब्बती-संस्कृत का भी कुछ काम होगा। अनी में जा एक जगह घर बनाकर बसने को मैंने घरबारी होना कहा था लेकिन असली अर्थ में यह बात कलिम्पोंग में ही हुई।

उस समय मिट्टी का तेल एक समस्या थी, वह दुर्लभ था। शान्ति निकेतन में उसकी आवश्यकता नहीं थी। यदि १२ बजे रात के बाद पढ़ने लिखने का काम न हो। अब टहलने का नियम रोज सवेरे पूरा होने लगा। हम पाँच छ मील चले जाया करते थे। १० तारीख को श्रीनिकेतन से एक मील और आगे तक गए। सुमनजी साथ रहते थे, कभी कभी दूसरे विद्यार्थी भी साथ हो जाते थे। १६ फरवरी को अजय नदी की ओर गए। एक शताब्दी पहले यह नदी बहुत गहरी थी, और बडी बडी नावें इसमें होकर आती थी। समुद्र के पास बालू मिट्टी के भर जाने से नदी का मुंह बन्द हो गया, और फिर सारी धार पट गई। नदी भी अन्त सलिला हो गई, जिसके कारण जहाँ एक ओर यातायात का एक सस्ता साधन हाथ से जाता रहा वहाँ मलेरिया का प्रकोप भी बढ़ गया।

सोचा था कि दस घण्टा लिखने और छ घण्टा पुस्तकों को पढ़कर सामग्री एकत्रित करने का काम किया जाए। १० तारीख को मालूम हुआ,

गाधीजी के हत्यारे गोडसे को फासी की सजा हुई, और दूसरे कितनो को कडी सजाएँ हुइ। गोडसे तो वस्तुत दूसरा के हाथ का हथियार बना था। वह दूसरा की पेशवा बनन की आकाक्षा का बलिदान बना। पशवा जब डेढ-सौ साल पहले भारत की समस्या को हल करने म सफल नही हुए और और इसी के कारण रसातल गए, तो क्या अब पेशवा को पुन स्थापित किया जा सकता है? हिन्दीभाषी क्षेत्र मे शहर के उच्च जाति के लागो मे बहुत जगह जो प्रसार हुआ है, उसका कारण पहले तो मुस्लिम लीग के बढत हुए प्रभाव के विराध के कारण था, और अब काग्रेस के प्रति असतोष ही उसका सबल रह गया है।

१२ फरवरी की रात को भाजन प्रा० तान्यूशान के यहा हुआ। वह वर्षों से विश्वभारती मे चीनी पढाते है, और चीन तथा भारत के प्राचीन सम्बन्ध को दृढ करने का व्रत लिये हुए है। उनका परिवार इस समय चीन गया हुआ था जिसे लाने के लिए वह जाने वाले थे। चीना भवन म चीनी और चीन सम्बन्धी दूसरी भाषाओ की पुस्तका का बहुत अच्छा सग्रह है। प्रो० तान्यू के प्रयत्न से बहुत अधिक लोग चीनी साहित्य म प्रगति नही कर सके इसका कारण चीनी अक्षरो की कठिनाई है। जिस भाषा की पुस्तको के पढने के लिए पाँच छ हजार अक्षरा का जानना अत्यावश्यक हो, उसमे कैसे आदमी की रुचि और प्रगति हो सकती है? मैंने स्वय चार पाँच सौ अक्षरो को सीखते-सीखत हिम्मत हार दी थी। सम्भव है, यदि चीन म रहता तो आगे बढ जाता। लेकिन, चीन की इस वणमाला से एक बडा लाभ यह है, कि यदि हम अक्षरा के अथ को सस्कृत मे समझते हो, ता बहुत कुछ उसी तरह पढ सकत है जैसे अको के सकेता से थी शान्ति भिक्षु न तिब्बती और चीनी मे काफी प्रगति की है। यह खुशी की बात थी। मैं अपने नियम के अनुसार इतवार को छुट्टी मनाया करता था, जो शान्तिनिकेतन मे बुधवार को हाती थी, इसलिए अब मुझे भी वही के नियम को पालन करना चाहिए था। गर्मी बढ गई, और उसके साथ साथ मच्छरो की भर-मार हो गई। मसहरी के भीतर लिखना पढना आसान काम नही है पर

किसी तरह गुजारा करना पडता था। एक दिन अपन और सुमनजी के लिए कुरते, चादर, तौलिया के कपडे लिए। दर्जी ने कुर्तों का चार दिन म सीकर देने के लिए कह दिया। मँहगा होने पर भी हमारा देश दूसरे देशों से अब भी सस्ता है।

१५ फरवरी को प० हजारीप्रसाद द्विवेदी के लखनऊ से डाक्टर उपाधि पाने के उपलक्ष मे सभा हुई। शान्तिनिकेतन की इस सभा से मैं बहुत प्रभावित हुआ। उसे न आधुनिक कहना चाहिए, और न प्राचीन, अथवा वह दोना की कितनी ही बेकार की रूढिया से मुक्त थी। एक कलापूण ढग से सु दर चौक पूरा गया था, जिस पर आम्रमजरी के साथ मिट्टी का सु दर कलश रक्खा गया था। उससे जरा सा हटकर एक पतला लम्बा सा तख्त पडा था, जिसके ऊपर पुरोधा (सभापति) और दो एक और व्यक्ति बैठे थ। सभा का आरम्भ और समाप्ति शखनाद से हुई। आचाय क्षितिसेन पुरोधा थे। बीच बीच मे भाषण के साथ साथ मधुर सगीत भी होता था। इस एक सभा से ही रवी द्र की महत्ता साफ दिखाई पडती थी। सवतोमुखीन सास्कृतिक प्रगति कैसे की जा सकती है, इसका उदाहरण उ होने विश्वभारती के रूप म रक्खा था। मुझे इस बात का अफसोस रहा, कि निमत्रित होने पर भी महाकवि के जीवन मे मैं यहा नही आ सका। और न अवसर मिलने पर भी उनके दशन कर पाया।

शान्तिनिकेतन की चादनी मुझे बहुत प्रखर और सु दर मालूम होता थी। शायद वहा के वातावरण से बहुत प्रभावित होने के कारण, तथा महा कवि के सामने उपस्थित न होने के अपराध के ख्याल से यह बात थी। रात भर पक्षिया के मनोहारी कलरव के बारे म क्या कहा जाए ? कोयलो ने तो अखण्ड व्रत ले रक्खा था। यह सद मुल्क की चिडिया यहाँ गर्मी मे मरने क्या आती है ? आम्रकानन म इस वक्त चारो ओर मजरी ही मजरी दिखाई देती थी, जिसके पास जाने से उसकी मधुर गध सचमुच ही मन को मस्त कर देती थी।

मैं "बौद्ध-सस्कृति" के लिखने मे त मय था। पुस्तकाध्यक्ष तथा

वृहत्तर भारत के गम्भीर विद्वान् श्री प्रभातकुमार मुखोपाध्याय मेरी हर तरह की सहायता करने के लिए तैयार थे। तो भी परिभाषा निर्माण की ओर से मेरा ध्यान हटा नहीं था। बनारस युनिवर्सिटी के प्रोफेसर रामचरणजी ने जब अपने पत्र मे बतलाया कि काय सम्बन्धी (ग्लास टक्नालोजी के) पारिभाषिक शब्द जमा हो गए, तो बडी खुशी हुई।

प्रयाग और पटना मे अभी जाडा खतम नही हुआ था, लेकिन यहाँ तो आने के साथ ही वह विदा हो चुका था। शांतिनिकेतन के वातावरण मे "बौद्ध संस्कृति" लिखने के समय मुझे खयाल आया, अब हमारे दूसरे चार धाम बनने चाहिएँ, जिसमे उत्तर मे तुन्हुआंग, पूर्व मे अंकोरवाट, दक्षिण मे बोरोबुदुर और पश्चिम मे बामियान हो। फिर ६८ तीर्थ भी बनाने होगे, जो सभी भारतीय संस्कृति से प्रभावित देशो मे बिखरे रहे। श्रद्धालु भारतीय इन तीर्थों और धामों के दरस परस के लिए जाएँ।

हम मलेरिया की भूमि के नजदीक थे मच्छरो का प्रहार चल ही रहा था इसलिए २२ फरवरी को यदि बुखार झाकने के लिए आया, तो अनहोनी बात नही थी। मैने कुनैन की दो टिकिया उसे थमा दी, सोचा, देखें वह इतने से तृप्त हो जाता है, या कल फिर आता है। दरअसल उस वक्त बुखार या किसी चीज का स्वागत का समय नही था। ८ बजे सवेरे से लेकर १२ बजे रात तक, बीच के दो घटे छोडकर १६ घंटा जुता हुआ था। मुझे सुमनजी को भी बहुत धन्यवाद देना चाहिए, जो कन्धे से-कन्धा मिला कर डटे हुए थे। बैल की जोडी मे यदि एक गरियार निकल जाए, तो काम नही बनता। लिखी हुई कापियो को शांतिजी दोहराते, भाषा के दुबारा भाजने और हैडिंग आदि का सुझाव देते जाते थे।

२३ तारीख को कला भवन के नए घर मे बने भित्तिचित्रो को देखने गए। कविगुरु का आश्रम कविता और कला के लिए विशेष तौर से महत्व रखता है। कला का प्रेम मेरा शायद गम्भीर नहीं था, इसीलिए इस पवित्र स्थान के देवता रुष्ट हो गए थे। एक चित्र को देखने के लिए मैं मेज पर चढा, उतरने लगा, तो देवताओ ने धीरे से स्टूल को टगा कर दिया और मैं

लिए दिए जमीन पर गिर पड़ा। पर, देवता अपने शाप को केवल मजाक से ही पूरा करना चाहते थे, इसलिए सिर्फ तीन चार जगह चमड़ा छिला और दो जगह खून की बूदें टपकी। सचमुच वह स्थान इतना सकरा था, और नीचे जैसी चीजे थी, उसमें अचानक गिरने पर मेरा सिर फूट सकता था हड्डी भी टूट सकती थी। कविगुरु के सम्पर्क मे आकर यहाँ के देवता इतने क्रूर नही हो सकते थे। वर्षों से उनमे कवि ने मानवता का प्रचार किया था फिर इसका फल क्या न होता? शान्तिनिकेतन मे रहते जिस तरह मैं अपने काय म व्यस्त था, उसके कारण दिल खोलकर सभी चीजो को देखना मुश्किल था। पर मैंने उधर से अपनी आखें मूद नही रक्खी थी। प्रभात बाबू के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मैंने कहा, यह पुस्तक आपको ही अर्पित करूँगा। प्रभात बाबू ने अपने अमुद्रित बहुत से लेख मुझे इस्तेमाल करने के लिए दिए, जिन्होने मध्य एशिया के बारे मे बहुत सी जानकारी प्रदान की।

२४ फरवरी की शाम को आद्यश्रेणी (१२ वर्ष तक के बच्चो) की सभा देखी। इसम भाषण, निबन्ध, कहानी, स्वरचित पररचित कविता का पाठ हुआ। काफी बडी श्रोतृ मण्डली थी। बच्चो ने गीत भी गाए, नृत्य भी किए। हर्ष प्रकट करने के लिए ताली पीटने की जगह शान्तिनिकेतन मे "साधु साधु" कहा जाता। प्राचीनकाल मे भी ऐसा ही किया जाता था इसीसे साधुवाद शब्द हमारे यहा चला। धन्यवाद भी प्राचीनकाल मे हर्ष और कृतज्ञता प्रकट करने के लिए "धन्य धन्य" के भावोद्रेक का ही परिचायक था, जिसके अर्थ को हम पूरी तरह न समझकर "धन्य, धन्य" कहने की जगह धन्यवाद कहते है। शान्तिनिकेतन मे चतुरस मानवता की शिक्षा देने का प्रयत्न हो रहा है। यहा प्राचीनता है पर मूढता नही, नवीनता है किन्तु छिछलापन नही, कला है, किन्तु कामुकता नही, स्वतन्त्रता है किन्तु उच्छृङ्खलता नही। इन्ही भावो को लेकर मैं २५ फरवरी को वहा से विदा हुआ।

**वर्धा**—उस दिन सात बजे सबेरे बोलपुर स्टेशन गया। कवीन्द्र के एक

मात्र पुत्र रथीन्द्र बाबू भी उसी ट्रेन से जाने वाले थे। वह देर से पहुँचे, और सामान न चढ पाया। रेलवे के एक साधारण नौकर न कहा—"जिसके कारण सब कुछ है, उसका सामान छूट कैसे जाएगा ?" सचमुच ही गाडी खडी रही। बोलपुर की महिमा रथीन्द्र के पिता न ही तो स्थापित की थी, फिर उनके लिए क्या इतना भी नही किया जाता। उसी डिब्बे मे रथीन्द्र बाबू अपनी पत्नी प्रतिमादेवी के साथ चढे। शान्तिनिकेतन मे रहते भी मैं उनसे मिलने नही जा सका था, इसके लिए खेद प्रकट करना जरूरी था। मैं कवीन्द्र के ही वृद्ध चित्रो के देखने का आदी था अब उनके पुत्र और बधू का भी वृद्ध देख रहा था। कैसे एक पीढी दूसरी पीढी का चुपचाप पदानुकरण करती है ? मुझे उस समय ख्याल आता था, विश्व भारती मे रथीन्द्र कलकत्ता विश्वविद्यालय मे श्यामाप्रसाद मुखर्जी, हिन्दू विश्वविद्यालय मे गोविन्द मालवीय इस तरह पिता के स्थान पर पुत्र का स्थान ग्रहण करना क्यो हो रहा है ? क्या हमार देश की अपनी यह कोई बीमारी है। साधुओ के यहा, विशेषकर प्राचीनकाल के नालन्दा, विक्रमशिला आदि के विद्यापीठो म योग्य गुरु के स्थान पर योग्य शिष्य बैठते थे, और यह सभव भी था। किन्तु योग्य पिता का पुत्र भी योग्य हो, यह कोई नियम नही है। मैं यह नही कहता, कि तीनो अपने पिता की योग्य सन्तान नही है, पर यह प्रथा मुझे खटकती थी। कलकत्ता पहुचकर फिर हावडा से वर्धा के लिए ट्रेन पकडनी थी। भीड बहुत थी। सुमनजी को भी जगह मिल गई, और ४ बजे शाम को हम वहा से रवाना हुए। २६ के सबेरे गाडी विलासपुर मे खडी थी। और मैं समझ रहा था, विलासपुर से रायपुर पहले आएगा। खैर, छत्तीसगढ की हरी भरी पहाडी भूमि से होते हम पश्चिम की ओर बढने लगे। ४ बजे नागपुर और ६ बजे वर्धा पहुच गए। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सम्मेलन हो रहा था, जिसके ही लिए आनद जी के आग्रह पर मैं आया था। हिन्दी नगर मे पहुँचने पर देखा सभा चल रही है। विनोबा नागरी के पक्ष म बोले और संस्कृत के शब्दो को लेना भी वह अच्छा समझते थे। मश्रूवाला गाधीवाद के दार्शनिक हैं। दार्शनिक की बात

यदि स्पष्ट हो तो वह दार्शनिक ही क्या ? हिन्दी हिन्दुस्तानी, नागरी उर्दू के सम्बन्ध मे उनका कहना था हम नेहरू को मध्यस्थ मान लें। मुझे भला कैसे पसन्द आता, जिस बात मे नेहरू का ज्ञान नही के बराबर है, और जिस विषय म उनका निर्णय पहले ही से मालूम है, उसे यह काम कैसे सौपा जाए ? हाल म नेहरू और राजेन्द्र बाबू के कुछ लेख प्रकाशित हुए थ, जिससे लिपि और भाषा सम्बन्धी मतभेद के कम होने का सकेत मिल रहा था। वस्तुत अब सविधान म हिन्दी को मान्यता देने की बात तय-सी हो गई थी जिसके कारण भी कुछ विचारो मे परिवर्तन होना ही चाहिए था। सम्मेलन म २५० प्रतिनिधि आए थे, जिनमे इम्फल (मणिपुर) से भावनगर (सौराष्ट्र) तक के राष्ट्रभाषा के कार्यकर्ता भी थे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति प्रतिवर्ष आगे बढती जा रही है। देखा और भी कितने ही नए मकान बन गए ह। १३ एकड भूमि समिति के पास है, एक दोमजिला और कितने ही एकमजिला मकान तैयार हो गए हैं। प्रेस भी बढा है, किन्तु उतने से मुझे सतोष नही था। मैं तो समझता था, आगे चलकर प्रकाशन और प्रचार को मुख्य स्थान देना होगा। समिति प्रान्तीय साहित्य और विश्व साहित्य के अनमोल ग्रन्थो को हिन्दी मे लाकर बहुत बडा काम कर सकती है।

प्रयाग—२८ को ही ट्रेन पकडी। अगले दिन १ मार्च को सवेरे वह इटारसी मे थी। हम उसी पसिंजर से साढे ११ बजे जबलपुर पहुचे। कल कुछ हल्का-सा ज्वर था किन्तु आज बिल्कुल नही था। दाँत मे दर्द हो रहा था, शायद उसके कारण बुखार आया। बनारस से ली दाँत की दवा बडी उपयोगी सिद्ध हुई। दाँत के दर्द म भोजन के लिए मन क्यो करता ? रेस्तोरा कार म भारतीय भोजन केवल निरामिष मिलता था।

रात के १० बजे कलकत्ता मेल प्रयाग पहुचा, और साढे १० बजे हम डा० बदरीनाथ प्रसाद के यहाँ पहुँच गए। प्रयाग मे अब २ अप्रल तक के लिए अर्थात् एक महीना तक जमकर परिभाषा का काम देखना और बौद्ध संस्कृति को दोहराने उसके कितने ही अशो को हिन्दुस्तानी एकडमी की सभाओ म पढना था।

२ तारीख को टहलने गए तो देखा किले का झडा झुका हुआ है। मालूम हुआ सरोजिनी देवी का देहान्त हो गया। सरोजिनी ने देश की सेवा की, स्वतन्त्रता का स्वप्न देखा, और अब स्वतन्त्र भारत म मरी।

इनकम टैक्स अफसर ने सिरदर्द पैदा कर दिया। हमारे जैसा की आमदनी ही कितनी थी, और उनको भी उतना ही परेशान किया जाता है, जितना चारबाजारी करोडपति सेठो को। सबसे बडी समस्या थी, इस म अपने प्रवास के समय की आमदनी पर टैक्स देना।

डा० बद्रीनाथ प्रसाद इधर कुछ दिनो मे प्रयाग विश्वविद्यालय से असन्तुष्ट थे। गणित म वह भारत के आधे दजन सर्वश्रेष्ठ विद्वानो मे से है, जब योग्यता मे उनसे कम लोग तिकडम के बल पर आगे बढा दिए जाएँ, तो मन मे विरक्ति आनी स्वाभाविक थी। पटना विश्वविद्यालय ने उन्हे बुलाया और वह वहाँ जाने के लिए अब तैयार थे। यद्यपि वहा सर्वोच्च स्थान मिला था, लेकिन दरबारी वातावरण था। मन्त्रियो और दूसरो के दरबार मे हाजिरी देना बद्री बाबू के बस की बात नही थी, इसी कारण पीछे वह वहाँ ठहर नही सके, और फिर प्रयाग लौट आए।

कलिम्पोग जाना ही निश्चय हुआ। अभी जाने के ख्याल से हम शिमला म अपनी कितनी ही चीजें छोड आए थे, उन्हे अब नागार्जुन जी को भेजकर मगाना था।

**पचायतो का चुनाव**—उत्तर प्रदेश म बालिग मताधिकार के अनुसार ग्राम पचायतो का चुनाव हुआ था। पूर्वी जिलो मे चहल पहल नही, बल्कि कहना चाहिए बडी जाति वाले बडे सकट म पड गए। श्री रामनाथ त्रिवेदी ने अपने गाव दुमौरी (गाजीपुर) के तीन गावो के चुनाव के बारे म कह रहे थे—३६ मेम्बरो मे ४ ब्राह्मण और १ भूमिहार, केवल ५ ही बडी जाति के आ पाए बाकी सभी नीच जाति के हैं। घोडा लादनेवाला भानू भुल्ई साहु सभापति बन गया, भूमिहार उनके नीचे उप-सभापति कैसे बने ? महीने भर समझौता करने की कोशिश होती रही। वोटो की संख्या मालूम ही थी। वोटदान का क्या परिणाम होगा, यह भी स्पष्ट था। बडी जात

वाला के पास पैसा था और नाहा के पास उसका अभाव। हरेक पच को जमानत जमा करनी थी, बेचारे कहा से लाएँ। कानून बनानेवाले जान-बूझकर इस तिकडम का रक्खे हुए थे। भुलाई साहु ने १५ के लिए ६० रुपया जमा कर दिए। बडी जात वाले धमकी देन लगे—तुमसे हम खेत नही कटवाएँग हल नही जुतवाएँगे, तुम्ह खलिहान रखन के लिए जमीन नही देंगे। तुम किस रास्ते चलोगे, हम अपने रास्ते मे चलने नही देंगे। उप सभापति वासुदेव राय चुने गए, जो कि बहुजन के पक्ष मे थे। अदालती पचा म एक ब्राह्मण और एक भूमिहार बाकी तीन नाह जाति के चुने गए। उनके पडास के बंदाबर गाव मे बडी जात वाला ने गुस्से म आकर चुनाव का बायकाट कर दिया। प० गणेश पाडे न अपने बलिया जिले की बात बडे करुण शब्दो मे बतलाई—"नाह जाति," "सोरह जतिया," "बेज-नेवहा' सब जगह उठ खडे हुए थे। ग्राम सभाआ के चुनाव मे उन्ही की जीत हुई। डा० उदयनारायण तिवारी अपने गाँव की खबर उतनी शोक-पूण नही बतला रहे थे। वहा उनके अनुज तथा हाई स्कूल के अध्यापक विश्वनाथ तिवारी ग्राम-सभा के सभापति बने, शायद अदालती सरपच भी वही बने। गणेश पाडे को बडी मुश्किल से अपने यहाँ के राजपूत सूबदार-मेजर को सभापति बनान म सफलता मिली। बडी जात वाला का चार हजार वर्ष से भगवान् की आर से अधिकार-पट्टा मिला था। मैंने कहा—अब वह अधिकार पट्टा जाली साबित हा रहा है। इस तरह से असफल हान के बाद अब बडी जात वाल और तरह के तिकडम रचन म लगे हुए थे। कभी कहते थे सरकार पचायती कानून का ताड डालने वाली है। कभी कहत कलक्टर और जिला-बाड के सभापति सेक्रेटरी नियुक्त करेंगे, इस-लिए अब भी हमारी बात रहगी। यह भी मालूम हुआ, कि लागा न बूढा को नही, बल्कि तरुणा का अधिक पच चुना। मैंने गणेश पाडे जी स पूछा—बडी जाति की स्त्रिया न ता पर्दे से निकलकर वोट नही दिया हागा। उन्हाने कहा—लाकर वाट न दिलवाते, ता क्या करत ? नाह जातवाला

मे तो पदा नही था, वह खुले मुह आकर वोट दे देती, फिर तो रही-सही आशा भी चली जाती।

परिभाषा के काम म श्री सेनगुप्त का आना निश्चित सा था। ६ माच को डा० भट्ट का भी पत्र आया। दिल्ली मे उनका कोई प्रबंध नही हुआ, इसलिए वह आने को तैयार हैं।

१० माच को मेरे अनुज श्यामलाल अपने वृद्ध मित्र डीहा के बाबू पलकधारी सिंह के साथ आए। पलकधारी बाबू उस इलाके के ७५ साल के एक सम्मानित पुरुष। पुराने जमाने को उन्होने देखा था, अब नए जमाने को भी देख रहे थे। पोती की शादी करनी थी। लड़का यही यूनिवर्सिटी मे पढ रहा था, उसे ही देखने के लिए आए थे। श्यामलाल से आजमगढ जिले की पचायतो के बारे म कुछ मालूम हुआ। वह बहुत वर्षों से सरपच होते आए थे। पुराने युग के लिए वह योग्य व्यक्ति थे। मिडल पास थे और मुकदमेबाजी म नाम भी निकला हुआ था। अब नए चुनाव मे सभापति गाव का ही भर तरुण हुआ। मैंने उनसे एक बार कहा था—अपने मजदूरो को भूखा न रहने देने के लिए गर्मी मे परती पड़े खेतो को मुफ्त चीना बोने के लिए दे दो। पर यह तो नातजर्बेकार आदर्शवादी की बात थी। सिंचाई के लिए उन्होने लाकर लोहे का रहट लगवाया था—बाप ने पहले पहल गाव म "विदेशी" ऊख लगाई थी। पहले-पहल पत्थर कोल्हू की जगह पर लोहे का कोल्हू लाए, फिर बेटा अगर रहट सी नई चीज लाए, तो अचरज की बात नही। पर कोई अब अकेले समृद्ध होने की आशा करे, तो उसका माग अकटक नही रह सकता। आखिर सिंचाई के लिए रहट गाव से दूर के कुए पर लगाया गया था, जरा सा वहा से हटने से लोग रहट को बिगाड देते। उनके यहाँ ३५ पचो म सिर्फ ७ बडी जात के चुने गए थे। बाबू पलकधारी सिंह कह रहे थे, नीच जाति के पास राज काज चलाने के लिए बुध कहा से आएगी? श्यामलाल जी राय दे रहे थे—छोटी जात वाले शासनयत्र को खबर कर देंगे।

यह तो बेचारे गाँव के लोग थे। डा० अमरनाथ झा जैसे जानकार

लाग भी जब वयस्क मताधिकार खतरे की चीज बतला रहे थे, तो कहना पडेगा—"विग व्यापक तम" (वग स्वाथ, तेरा वेडा गक हा)।

१०, २० और २१ तारीखो का तीन दिन "बौद्ध सस्कृति' पर मैंने भाषण दिए। उस समय एक तरह का दिमाग मे खुमार सा मालूम होता था, जो कि डायबटीज के कारण हो था पर मैं इसे अभी पूरी तौर से समझ नही पाया था। मतलब था रोज नियमपूर्वक इन्सुलिन लेना।

अबके साल की भी होली (१५ माच) यही पडी। रग डालने का काम लडको ने एक दिन पहले ही से शुरू कर दिया था। सेनगुप्त की भी चिट्ठी आ गई, कि मैं १८ तारीख का प्रयाग पहुच रहा हू। सम्मेलन अभी इसके बारे मे २० तारीख को फैसला करने वाला था। मुमनजी आगे काम करने मे असमथ थे। महन्तजी काशी मे साधु बनने के बारे मे सोच रहे थे, इसलिए उन्हे आने के लिए लिख दिया। १६ तारीख को शिमला से सामान लेने के लिए नागार्जुनजी चले गए। २० को स्थाई समिति की बैठक मे परिभाषा कोश के सम्बन्ध मे बातें हुई, और मुख्य सहायको को तीन सौ रुपया मासिक सफर मे सेकड क्लास का टिकट और दस रुपया रोज भत्ता देने का निश्चय हुआ। डा० भट्ट का पत्र कही गुम हो गया इसलिए उनका पता नही मालूम था, कि सूचित कर सकू। उनके पत्र आने की उत्सुकता मे रहा।

२२ को नागार्जुनजी शिमला से सामान ले आए। कलिम्पोग मे भिक्षु महानाम और श्री मणि हर्ष ज्योति को लिख दिया कि हम ३ अप्रैल को यहा से चल रहे है। कलिम्पोग रवाना होने से कानपुर और लखनऊ मे जो काम दे आए थे, उनके बारे मे जानने के लिए सेनगुप्त जी को २५ को भेज दिया। श्री मणि हर्ष ज्योति के पत्र से मालूम हुआ, कि उनके पिता साहु भाजुरत्न और भिक्षु महानाम कलिम्पोग मे है, कटिहार से गाडी नक्सलवारी तक ही जाती है। अभी आसाम को जोडने वाली लाइन तयार नही है। लेकिन नक्सलवारी मे सामान के लिए उनकी मोटर आई रहेगी। डा० भट्ट की भी चिट्ठी आ गई, वह आने के लिए तयार थे।

२८ तारीख को अनुज से भी बढ़कर मेरे प्रिय यागेशदत्त पाडे आए। छ ही वष पहले उन्हे मैंने अपनी जन्मभूमि म देखा था। मुझसे कुछ महीने छोटे थे, लेकिन अब बूढ़े और दुबले पतले हो गए थे। कहाँ वह बचपन और तरुणाई का शरीर और कहा यह ढीला-ढाला ढाचा। बहुत देर तक बातें होती रहीं। पचायत के चुनाव म छाटी जातियो के आगे बढने से वह भी निराश थे। उनके गाव बछवल म भी "नान्हो" का ही बोलबाला था। उनमे शिक्षा नही है, लूट पाट की आदत है। कैसे बेडा पार हागा। उनके अपने घर मे चचेरे भाई विभूति अपने सगे भाइया से न पटने के कारण इनके साथ रहते थे। हमारे यहा हल म भैसा जोतना बुरा समझा जाता था— 'भैसा जोते लाहिया खाय' लक्ष्मी के नाश का सीधा उपाय माना जाता था लेकिन अब बैल बडे मँहगे हो गए, इसलिए भैसा जोना जाने लगा। कह रहे थे, अब ब्राह्मणो का हल भी जोतने के लिए मजबूर हाना पडेगा।

२९ का सेनगुप्त आए। सबसे अच्छा काम कानपुर मे कौशल जी ने किया था। कोशलजी को उसकी लगन भी थी। लखनऊ मे थाडा-सा काम हुआ था। उसी दिन महशनारायण भी चले आए। १ अप्रैल का डा० भट्ट भी पहुँच गए। अब हमारे तीनो साथी प्रयाग मे थे। परिभाषा-सबधी पुस्तकों को सम्मेलन पुस्तकालय स और दूसरी जगहो स जमा किया जाने लगा। छोटे बडे १६ ट्रक हमारे साथ थे। २ अप्रैल को ६ बक्सो को बुक करा आए, ३ अप्रैल को हम कलिम्पोग जाने के लिए तैयार थे। मुझे गर्मी परेशान कर रही थी, और डायबटीज से मिलकर वह दिन मे एक तरह का खुमार पैदा किए रहती थी।

# १७

# कालिम्पोंग मे

३ अप्रैल को श्री लक्ष्मीदेवी ने चारो मूर्तियो को जलपान कराया, और हम अपने सामान के साथ लदे फदे रामबाग स्टेशन पर छोटी लाइन पकडने गए। सामान लद गया। सीट रिजर्व थी, इसलिए उनकी दिक्कत नही थी। बहुत से मित्र मिलने आए। दारागंज स्टेशन पर डा० उदयनारायण तिवारी आ गए। गाडी चली। बनारस मे भोजन कर लिया, बलिया से आगे बकुल्हा स्टेशन मे अँधेरा हो गया। पहले ही से मालूम था, इसलिए छपरा स्टेशन पर धूपनाथ जी भोजन के साथ आए, कुछ देर तक बातचीत होती रही। वह रह थे अब सारे परिवार का साथ रखना मुश्किल हो गया। सयुक्त परिवार मे गुण भी हैं और दोष भी। गुण यही है, कि जिसको काम न मिले उसका भी गुजारा हो जाता है, पर, यदि सभी पैर से पैर मिलाकर चलने के लिए तयार न हो, तो अडचन भी हो जाती है। उसका चलना मुश्किल भी है। वह साम्यवाद चाहता है, जब कि आधुनिक सामाजिक व्यवस्था हरेक व्यक्ति को दूसरे को छोडकर आगे बढने की प्रेरणा देता है। पुराने समय से चला आया कानून भी असल मे सयुक्त परिवार का पक्षपाती नही है अगर ऐसा होता तो उसे चाहिए था, कि एक परिवार मे पैदा होने वाले सभी बच्चो को बापो के सम्बन्ध का ख्याल न करके घर की सम्पत्ति मे बराबर का हक दिलाता है। एक भाई के पाच लडके और

दूसरे का एक होना है, एक भी मा समझने लगती है कि मेरा तो आधे का हक है, और यह पाँच उसमे से खा रह है।

बहुत दिनो तक इनके परिवार मे एक साथ काम चला आया था। धूपनाथ जी के चचेरे भाई और घर के मुखिया बाबू दवनारायण सिंह घर भर के बच्चा पर एक-सी दृष्टि रखते थे, धूपनाथ जी का भी वैसा ही ख्याल था, और उनके और भाइया का भी। पर अगली पीढी का निभना मुश्किल था।

१२ बजे के आसपास हमारी ट्रेन मुजफ्फरपुर पहुँची। यहा स घरम-हल्ला शुरू हो गया। शायद नेहरू जी आए थे। फिर क्या ? आसपास के कई मील के दशनार्थी मुफ्त मे रेल मे चढकर आए थे, अब वह लौट रहे थे। किराया नही देना है, सो जैसा ही पहला दर्जा वैसा ही तीसरा दर्जा। हमारे डब्बे भी भर गए, और मुश्किल से अपने बैठने भर की जगह हमारे पास रही। डर लग रहा था, सामान मे से किसी चीज को उठाए कोई चल न पडे। सचमुच ही एक आदमी चप्पल पहन कर चलने लगा। नजर पड गई टोक दिया, नही तो वह चला ही गया था। सिर्फ डब्बे के भीतर ही लोग भरे नही थे, बल्कि छतो पर भी लदे हुए थे। आखिर स्प्रिग इतने बोझे के लिए बना नही था। आगे जाकर उसने जवाब दे दिया और गाडी बडी मुश्किल से समस्तीपुर पहुँच सकी। कम्बरत हमारे ही डब्बे का ऐसा होना था, उसे काट दिया गया। सामान निकालकर प्लेटफार्म पर बैठ गए। सोचा था प्रयाग से बैठकर आराम से सीधे कटिहार पहुँच जाएगे, लेकिन नैया मझधार म फँस गई। ४ अप्रेल का सवेरा हुआ। जल्दी ही लोगो को पता लग गया, और कितने ही परिचित आ मिले। रेल के दरोगा बाबू रामावतार नारायण ने घर चलने के लिए बहुत आग्रह किया, लेकिन हमारे कहने पर वही उन्होने आतिथ्य किया। इसमे शक नही कि अगर उन्होने सहायता न की होती, तो गोरखपुर के एक्सप्रेस के पहले दर्जे म भी जगह न मिलती, भीड बहुत ज्यादा थी। बरौनी मे कुछ भीड कम हुई, बेगूसराय म वह छँट गई। यहीं कटिहार निवासी श्री महावीरप्रसाद माव-

डिया और श्री विश्वनाथ शर्मा वकील हमारे डब्बे म आए। परिचय हुआ कटिहार भी अज्ञात स्थान नही रह गया। मावडियाजी अपने घर ले गए। आगे की गाडी १२ बजे रात को मिलने वाली थी। मावडिया जी के यहा भोजन हुआ, और कुछ देर तक गोष्ठी भी। उनकी तेल और आटे की जमना मिल है। मकान भी पास ही मे है। मारवाड छोडकर मनस्वी कार्यार्थी लोग कहा कहा तक फैल गए ह और वतमान पीढी का तो मारवाड भी परदेश मालूम होता है।

रात का ट्रेन पकडने पहुँचे। कटिहार मे तो मालूम होता है, बारहो महीन ही भीड रहा करती है। पहले दर्जे म भी जगह मिल जाने पर हम अपन भाग्य को सराहना पडा। रेलो की व्यवस्था अभी बहुत गडबड थी। डब्बे पुराने हो गए थ, और लोग भी रेलवे की सम्पत्ति को बरबाद करने मे आनन्द अनुभव करते है। बिजली के लट्टू और स्विच गायब कर देते है। हमारे डब्बे मे अधेरा गुप्प था। किशनगज मे ३ बजे रात को हमारी ट्रेन पहुँची। किशनगज अच्छा बडा व्यापारिक कस्बा, और पूर्णिया जिले के पूर्वी भाग का सदर मुकाम है इसी को बगाल म मिलाने पर लोगो म भारी उत्तेजना फैली थी। भीड कुछ कम हुई। रात को वर्षा हो रही थी जिससे जमीन भीग गई थी। किशनगज से नक्सलबाडी की लाइन वस्तुत दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे की थी, जिसको ही काम लायक बना दिया गया था। कटिहार से आसाम जाने वाली रेल पाकिस्तान म पड गई थी, इसलिए उधर से रेल का यातायात रुक गया था। आसाम मे जोडने के लिए सिलिगुडी होकर रेल बन रही थी, जिसे कुछ महीने बाद हमने लौटते वक्त इस्तेमाल किया। गाडी भी धीमी धीमी चल रही थी, ५ अप्रैल को हम वहा पौन ११ बजे पहुँचे।

भिक्षु अनिरुद्ध स्टेशन पर मोटर लिए मौजूद थे। कलिम्पाग पहुँचने के लिए हम निश्चिन्त थे। ब्रेक म रखवाए छ बक्सो म एक बक्सा तोड दिया गया था। रेलवे वाले किसी चीज की क्या पर्वाह करने लगे, और रेलवे कम्पनी कोई गारटी देने के लिए तैयार नही। मोटर पर सामान

रखवाया, हम चारो आदमी बैठ गए। रास्ते म रेल्वे सडक पर काम होते देखा। बागडोगरा का हवाई अड्डा सडक से दाहिनी ओर छूटा, जहा रोज कलकत्ता और आसाम से विमान आत-जात रहते है। रेल की सडक बनाने वालो म पजाबी मिस्त्री काफी सख्या मे थे। सिलिगुडी पहुँचते पहुँचते अब चाय के बडे बडे बगीचे आ गए। मैदान म भी चाय होती है और परिमाण म प्रति एकड बहुत अधिक, पर मूल्य उसका उतना नही मिलता, जितना दार्जिलिंग के पहाडो की चाय का।

सिलिगुडी म पौने पाच रुपए मे चारो आदमियो का भोजन हुआ जिनमेस एक ही निरामिष भोजी थे। इसे सस्ता ही कहना चाहिए। इस शहर को तिब्बत जाते-आते कई बार मैं देख चुका था। अब की ११ वष बाद आया था। देश के विभाजन के कारण शरणार्थियो का रेल भी आ गया, फिर सिलिगुडी की जनसख्या क्यो न बढ जाए? कलिम्पाग जाने वाली सडक पर दूर दूर तक दूकाने मोटर मरम्मत के मिस्त्रीखाने और छोटी मोटी फैक्टरिया बन गई थी। पहले सिलिगुडी शाम को बैठते थे, और शाम सोये सवेरे कलकत्ता पहुँच जाते थे। अब सिलिगुडी से कुछ ही मील पर पाकिस्तान की सीमा थी, इसलिए इस लाइन से जाना विदेश से होकर जाना था, तो भी अभी जाने आने म रुकावट नही थी।

कलिम्पोंग—पौने ४ बजे हम कलिम्पाग पहुँच गए। वही पहाडी पक्की सडक थी, जिसे कई बार हमने देखा था, और उसम कोई परिवर्तन नही था। बाजार से पहले ही धर्मोदय विहार आया। यहाँ के श्रद्धालु बौद्धो—जिनम श्री मणिहर्ष ज्योति का विशेष हाथ था—ने एक बगले को खरीदकर उसे विहार का रूप दे दिया। यही हमारे रहने का प्रबन्ध था। तीन चार भिक्षु पहले से रहते थे, और अब हम चार और अभ्यागत आ गए। बक्स सभाल लिए गए, किताबें उपयोग के लायक सजा दी गईं। अपने काम म अगले ही दिन से लग गए। अगले दिन से ही टहलने का भी हमने नियम पूरा करना शुरू किया, और उस दिन दूरबीन तक प्राय पाँच मील की चहलकदमी हुई। सडको पर मोटरो के आने का निषेध नही है,

लेकिन आबादी के विरल होने के कारण वे कम आती हैं। उस दिन हम तीनों ने रसायन की परिभाषाओं के निर्माण पर बातचीत की, और तत्वों तथा प्रत्ययों के बारे में कुछ निश्चय किए।

उसी दिन बुधवार को कलिम्पोंग की हाट थी। शनीचर को भी वह लगा करती है। दार्जिलिंग और कलिम्पाग में हाटों का यह रिवाज किसानों और खरीदारों दोनों की दृष्टि से अच्छा है। जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ बिचवई किसानों से मिट्टी के मोल साग सब्जी खरीदकर मनमाने दाम पर ग्राहकों को बेचते हैं। शाम को कुछ बूदाबांदी हुई। बगाल की खाडी नजदीक है, डर लगा, वर्षा ने कही छेडखानी तो नहीं की थी। दार्जिलिंग अंग्रेजों के हाथ में आने से पहले सिक्किम वालों के हाथ से गोरखों के हाथ में चला गया था। गोरखों को हराकर ही नेपाल से पूर्व में यह इलाका और नेपाल से पश्चिम अल्मोडा जिले से लेकर सतलुज तक की हिमालय भूमि को अंग्रेजों ने लिया। उस समय दार्जिलिंग जिले की आबादी बहुत कम थी। किरात जाति से सम्बन्ध रखने वाले लेप्चा लोग यहाँ के निवासी थे। नेपाल में जनसख्या का दबाव अधिक था, इसलिए वहाँ के मेहनती लोग पड़ोस के इन पहाडो की ओर बढने लगे जिसमें अंग्रेजों ने भी प्रोत्साहन दिया। ऐसा क्यों न करते, क्योंकि नेपालियों की वीरता को देखकर वह उनके सामरिक महत्व को समझने लगे थे, और समय बीतते-बीतते अंग्रेजों की भाडे की सेना में नेपालियों की काफी संख्या हो गई। पिछली शताब्दी के अन्त में ही दार्जिलिंग नेपालीभाषी हो गया था, आज तो भाषा और जाति के तौर पर उसे नेपाल का एक टुकडा कहना चाहिए। पहले सभी नेपाली अनपढ कुली या किसान थे, अब उनमें भी कुछ शिक्षित हो गए हैं। देर की निद्रा के बाद आँख मलकर अब वे देखते हैं, तो मालूम होता है, अपनी अर्जित भूमि में उन्हे कुली किसान से आगे बढने का रास्ता नहीं है। पहले ही से शिक्षा में आगे बढे हुए बगाली हैं वह सभी नौकरियो को सभाले हुए हैं, और चाय के बगीचे अंग्रेजों के हाथ में है। आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से पिछडी हुई जातियाँ जब अपनी अवस्था से असंतुष्ट होकर उसे बेहतर

बनाने के लिए जद्दोजहद करती हैं, तो इस उनके प्रतिद्वन्द्वी नीचे दर्जे की प्रान्तीयता, भाषीयता, जातीयता, सकीर्णता आदि नाम देकर बदनाम करते हैं। लेकिन, जिस भावना का आधार ठोस आर्थिक होता है, वह प्रचार के फूक से नही उड़ाई जा सकती। विशेषकर आजकल, जब कि लोगो का कुछ जनतान्त्रिक अधिकार प्राप्त है, और वह अपने असतोष को दिखला सकते हैं। दार्जिलिंग की काग्रेस कमेटी बगाल प्रान्तीय काग्रेस कमेटी की शाखा है, और वह उसी के इशारे पर चलती है। जब कुर्बानी करने का जमाना था, तब वैमनस्य होने की गुजाइश नही थी किन्तु अब काग्रेस स्वतत्र भारत के लाभ की भागीदार है, इसलिए अपने स्वार्थो के लिए लोगो मे छीना झपटी होनी स्वाभाविक थी। दार्जिलिंग की नेपाली जनता—जनसाधारण—का विश्वास काग्रेस पर नही था और अग्रेजो ने पहले ही से राष्ट्रीयता के विरुद्ध गोरखा-लीग को प्रोत्साहन देना शुरू किया था। अब गोरखा लीग और काग्रेस का यहा द्वन्द्व था। अभी-अभी एसेम्बली का चुनाव हुआ था जिसमे काग्रेसी उम्मीदवारो को हराकर गोरखा-लीग का आदमी चुन लिया गया।

कलिम्पोग मे टहलना दूरबीन की ओर ही अच्छा मालूम होता था, क्योकि उधर सडक प्राय सूनी रहती। साथ मे कोई एक दो आदमी जरूर रहते। कभी महेश होते, कभी अनिरुद्ध और कभी छपरा जिले का कोई तरुण या प्रौढ। कलिम्पोग अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्प्रान्तीय नगर है। नगर की बुनियाद १९०४ मे पडी, जब कि ल्हासा भेजी गई अग्रेजी सेना के लिए रसद भेजने का यह अड्डा बना। उसी समय रसद के लिए कम्सरियेट मे काम करने वाले ठेकेदार-दूकानदार यहाँ पहुँचे। उनका सम्बन्ध भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता मे था, इसलिए मारवाडियो का पहले पहुच जाना स्वाभाविक था। आज बडी-बडी दूकानें मारवाडियो के हाथ मे हैं। उनके बाद के दूकानदार नेपाल से आए नेवार हैं जिनमे से कुछ की शाखाएँ तिब्बत मे भी हैं। उनके बाद दूसरे नेपाली दूकानदार आते है। कुछ तिब्बती और चीनी दूकानदार भी हैं, पर अधिकतर वह खाने-पीने की

दूकानें करते है। उनके व्यापारी दो-तीन तिब्बती सेठ भी है। इनके अतिरिक्त काफी संख्या भोजपुरियों की है, जो छपरा, बलिया और आरा जिला के रहने वाले है। इनमें से कुछ छोटी छोटी दुकान करते हैं पान बीडी वाले भी इन्हीं में से है, दो चार ने सस्ते जेवरो की दूकानें भी खोल रक्खी है, और एकाध ही ऐसे है जो प्रथम श्रेणी के व्यापारियों की पंक्ति में पहुंच चुके है। मेरे लिए भोजपुरी अपने ही थे। उनमें से कोई न कोई सबेर की चहलकदमी में शामिल रहता।

प्रत्यक्ष शारीर (अनाटोमी) के नौ हजार शब्द सनगुप्त जमा कर लाए थे। दूसरे विषयों के भी बहुत से शब्द जमा थे, या उनके कोश मौजूद थे। शब्दों को अकारादि क्रम से लगाने के लिए उन्हे कार्डों पर लिखना आवश्यक था, इसलिए हमे कितने ही लिपिकों की आवश्यकता थी। कलिम्पोंग हिमालय में ईसाई धर्म प्रचार करने का बड़ा अड्डा था, और मिशनरियों ने इन्टर कालेज, लड़कियों का हाई स्कूल गोरे और अधगोरे लड़को की शिक्षा के लिए छात्रालय सहित ग्रेहेम्स होम्स और एक कोन्वेन्ट कायम कर रक्खे है। इनके कारण शिक्षा का यहा काफी प्रचार हुआ है। पर दर्जनों मेट्रिक पास लड़के लड़कियां बेकार है, लड़के लड़कियां प्राय सभी नेपाली भाषाभाषी थे पर इससे हमें अड़चन नहीं थी। नेपाली भाषा हिन्दी से बहुत नजदीक है वह नागरी अक्षरो में लिखी जाती है, और सभी शिक्षित नेपाली हिन्दी समझ लेते है। हमने कुछ लड़के लड़कियों को इस काम में लगा दिया।

६ अप्रैल को हम दूरबीन की परिक्रमा करते जरा एक तरफ बढ गए। वहा एक सुन्दर छोटा सा बंगला—'कुन्तर विला''—मिला। पता लगा, किसी अंग्रेज ने इसे अपने लिए बनवाया था और अब दार्जिलिंग के अधिकांश बंगलों की तरह यह बिककर किसी मारवाड़ी सेठ के हाथ में चला गया है। इस बंगले पर मैं तो मुग्ध हो गया। सीमेंट की छोटी छत के नीचे लम्बी पांती में कई कमरे थे। पीछे की ओर भी कोठरियों की एक पांती थी। कमरे बहुत साफ थे, और फर्नीचर भी साफ सुथरे तथा बहुत

अधिक नही थे। सचमुच आदमी मे कितना अह है। यहा भीतर जाकर आदमी ना नही जाना है, उसका अपना व्यक्तित्व बल्कि बडा मालूम होता है। शायद यह भी कारण था इस बगले की मनोहारिता का। वसे बना भी ऐसी जगह था जहा से सुदूर हिमालय और उसके नीचे की हरी भरी पर्वत श्रेणिया दिखाई देती थी। वहा जा रहा था ३०-३५ हजार का बिका है। और उस समय अभी मालिक इस दाम से नीचे उतरनेवाले नही थे। इस-लिए इसे लेकर मर यहा रहने का सवाल नहीं हो सकता था।

आज मेरा ५६ वां साल पूरा हुआ, ५७ वे मे मैंने कदम रखा। पिता और पितामह म कोई इस उमर तक नही पहुँचा था इस विषय म मैं अपनी दो पीढिया स आगे था। माता यद्यपि और भी कम उमर म मरी, लेकिन उनका कुल दीर्घजीवियों का था।

१० तारीख को टहलते वक्त एक पूरी जमात साथ चल रही थी। बात सडक क पास के अंग्रेजो के बगलो पर हो रही थी। अंग्रेजो न जाने से पहले ही अपने बगलो को बेच डाला, जिन्होंने नही बचा, पीछे मिट्टी के मोल बचकर पछताए। बगले के खरीदनेवाले अधिकतर मारवाडी सेठ हैं। किराय पर आजकल वह लग नही रह थे, और मालिक साल म एक-दो महीने से अधिक यहाँ आकर नही रहते। एक बगले को दिखलाकर बतलाया गया कि पिछले साल साहब इसका दाम तीन लाख मागता था, और अब की साल डेढ लाख पाकर भी सताप के साथ चला गया। अंग्रेजो म से अब बहुत कम ही रह गय थे।

उस दिन दोपहर को भोजन साहु भाजुरत्न के यहाँ था। पूरा भोज हो गया था, जिसम तिब्बती सेठ, नेपाली व्यापारी और तिब्बती सरकार के विदेश म भेजे गए कमीशन क सदस्य भी थ। कमिशन के मुखिया तिब्बती सरकार के अध्यक्ष—रिजेंट क भतीजे शकापा भी थ। सबसे बडे तिब्बती व्यापारी पनदा छांग और भूटान की रानी दार्जे अपने पुत्र-पुत्रिया और बधुओ क साथ भोज म आई थीं। भोज के पहले और भोज के बाद भी देर तक बातें होती रही, साहु भाजुरत्न न इस कोठी को ३० हजार मे खरीदा

था। काठी बहुत बडी है, उसके साथ नारगिया का एक सुन्दर बगीचा भी है। फसल के वक्त केवल गृह और स्थान की सुषमा देखकर ही आख और मन तृप्त होते है, बल्कि मधुर नारगिया भी मुह मीठा कराने के लिए तैयार रहती हैं।

अगले दिन दोपहर को शकापा हमारे निवास पर आए। यूरोप, अमरिका और भारत की खाक छान आए थे। चीनी कम्युनिस्टो से घबराये हुए थे। आशा थी, अमेरिका, इगलैंड सहायता करेंगे, पर उन्होने निराश किया। नहरू ने भी आशा नही दिलाई। अब क्या करना चाहिए, यही प्रश्न था। मैंने कहा—तिब्बत मे अब भी प्रचलित अर्धदासता वहा के लिए सबसे खतरे की चीज है। उसमे चिपके रहना सबसे बडा अनिष्ट का हेतु है। चीन का तिब्बत से पहले भी सम्बन्ध रहा है। अग्रेजो ने बीच मे पडकर उसमे बाधा डाली। क्या चीन फिर अपने पुराने सम्बन्ध को स्थापित करना चाहेगा। लेकिन, कम्युनिस्टो को तिब्बत मे चीनी सैनिक भेजने की जरूरत नही है। आपके पडोस मे अम्दो, खम और गोलाक के तिब्बती-भाषा भाषी लोग चीन की सीमा के भीतर हैं, वे नये रास्ते को अपनाकर अपने तिब्बती भाइयो को अर्धदासता के कोल्हू के नीचे पिसने नही देंगे। साधारण जनता अपने प्रभुओ के खिलाफ हो जाएगी, इसमे सन्देह नही। क्या आप गाँवो मे तुरन्त स्कूल खुलवा सकते हैं, और तिब्बत को आगे बढने मे जो रुकावटे हैं उनको दूर कर सकते हैं? तिब्बत मे आधुनिक ढग की शिक्षा की जरूरत है, उसे खनिज विशेषज्ञो की, सडक और नहर के इजीनियरो की और सैनिक विशेषज्ञो की भी जरूरत है। यूरोप और अमेरिका वालो से सावधान रहे, वह बनी बात को भी बिगाडने ही के लिए हाथ डालेंगे। उस दिन थोडे दिन के लिए जेनरल शोगार भी आए, पर अधिक तर बात शकापा के साथ हुई। पहले तिब्बत मे लाई संस्कृत की पुस्तको पर बात शुरू हुई, लेकिन फिर वह राजनीति की तरफ मुड गई।

१३ तारीख को ल्दाखी हाजी व्यापारी का लडका मिलने आया। वह पाँच-छ साल से ल्हासा मे रहता है और कलिम्पोग मे भी उसका

दुकान है। लदाख से तिब्बत के भीतर-भीतर ल्हासा जाने का रास्ता है, किन्तु वह दो-तीन महीने का तथा चारा और लूट-मार की कठिनाइयो से भरा है इसलिए उधर जाने की अपेक्षा लदाखी व्यापारी कश्मीर (श्रीनगर) तक पैदल या घोडे पर आकर फिर मोटर और रेल द्वारा कलिम्पोग पहुचते हैं, और यहाँ से तीन चार हफ्ते म ल्हासा पहुँच जाते है। तरुण बनला रहा था, कि ल्हासा वाले डर रहे है। सोच रहे हैं—यदि चीनी कम्युनिस्ट ल्हासा पहुचे, तो हमारा क्या होगा ? अगर गडबडी हुई तो व्यापारी लुट जाएँगे। मैंने उन्हे बतलाया कि तिब्बत के बडे व्यापारी और तुम एक ही नाव पर हो, और चीनी कम्युनिस्ट गडबडी नही होने देगे। हा, उनके आने से पहले यदि गडबडी हुई, तो दूसरी बात है। उनसे यह भी मालूम हुआ, कि अब शासन म लदाखियो को अधिकार मिला है। मेरे परिचित और सहायक नाना छेरतन् फुन् छोग् अब तहसीलदार हैं, और नायब-तहसील दार भी लदाखी है। नाना बडे श्रद्धालु बौद्ध थे पीछे व्याह करके ईसाई बन गए। अग्रेजो के जमाने म इसमें कुछ लाभ भी था, लेकिन अब तो वह घाटे का सौदा था, क्योंकि लदाख के बहुजन बुद्ध भक्त ह और वह उनकी तरफ सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।

१२ अप्रैल को पता लगा भारतीय सविधान के मसौदे के अनुवाद के लिए राष्ट्रपति न एक समिति बना दी है, जिसम मेरा भी नाम है। समिति के अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह गुप्त, और सदस्यो मे सुनीति बाबू, श्री जयचन्द्र विद्यालकार मेरे परिचित थे। इस काम के लिए अब दिल्ली जाने की जरूरत थी और मैं दिल्ली से सबसे दूर की पहाडी पर था।

कलिम्पोग के अपने कुछ गुण हैं जिनमे वह मुझे अच्छा लगा। यहा भी दूसरी पहाडी शीतल पुरियो की तरह ही पसीने की नौबत नहीं आती, बर्फ पडने लायक सर्दी भी नही होती, और तिब्बत का प्रवेश-द्वार होने से यहा तिब्बती विद्वानो के समागम का भी सुभीता है।

प्राय चार वर्षों से दिमाग म "मधुर स्वप्न" चक्कर काट रहा था। उसकी सामग्री मैंने तेहरान और लेनिनग्राद मे जमा की थी। अब मन

कर रहा था, उस कागज पर उतारा जाए। पिछले साल से ही दिमाग में यह बात समा गई, कि अब कहीं एक जगह बैठकर काम किया जाए। यात्रा करना डायबेटीज के कारण सुखद नहीं है। रहने की जगह ऐसी होनी चाहिए जहाँ बारहों महीने काम किया जा सके। ऐसी जगह पहाड़ ही पर हो सकती थी। कई जगहों पर मैंने नजर दौड़ाई और अब कलिम्पोंग पर भी मन जा रहा था। मेरे नये प्रकाशक अग्रिम रुपया देने के लिए तैयार थे, इसलिए उसकी कठिनाई नहीं थी। मित्रों ने कई जगह दिखलाईं। महाप्रज्ञा प्रधानजी ने एक घर दिखलाया, जो बिजली के क्षेत्र से बाहर था। जगह भी गन्दी, हां उसमें खेत अधिक थे। पर खेत लेकर हमें क्या करना था? दाम १५ हजार बतलाया जाता था जो उस पुराने मकान के लिए बहुत अधिक था। यह तो हम जानते थे कि इतने में कम में अनुकूल मकान नहीं मिल सकता। वहां से लौटते समय रोमन केथलिक कान्वेन्ट मिला। यूरा-पियन मिशनरी अपने कितने ही मकानों को बेचकर जा रहे थे। उस समय उनकी बड़ी संस्थाओं की भी हालत डावाडोल थी। लेकिन, केथलिक शायद ही कहीं अपनी इमारतों को बेंचते या अपने मिशन को बन्द कर रहे थे। दूसरे ईसाई मिशनरियों से उनको सबसे बड़ा सुभीता यह है कि उनके कार्यकर्ता परिवार मुक्त आजन्म सेवक साधु-साधुनियां थे।

अप्रैल के मध्य में पता लगा, मोहन शम्शेर भी अब दिन गिन रहे हैं। उनके अनुज बबर शम्शेर का कहना है शम्शेर से हमने राज्य पाता है, और उसी शम्शेर के बल पर हम उसे रक्खेंगे। भारत सरकार भी अभी नेपाल के बारे में कोई निश्चय नहीं कर पाई थी, बल्कि राणाशाही ने यूनो की सदस्यता के लिए जब इच्छा की तो भारत सरकार उसमें सहायता देने के लिए तैयार थी।

स्थायी निवास बनाने के ख्याल ने एक बार सिक्कम के अन्तिम गाँव लाछेन की ओर भी मन खींचा। तिब्बत से लौटते वक्त दो बार मैं इस गाँव से गुजरा था। इधर सेवा के लिए वह कोटगढ़ और कुल्लू बन गया है। एक फिनिश मिशनरी महिला ने इस शताब्दी के आरम्भ में वहाँ आना

अडडा जमाया। साचा, और मिश्नरिया की तरह शायद वह भी अपन बगले का बेचे उस ही क्या न ले लिया जाए। न बेचे तब भी देवदारो की सुदर छाया म साई इस भूमि म मकान बनाने के लिए जगह मिल सकती है।

२२ अप्रेल का हाम्म की आर टहलन गये। उसके एक छोर पर एक एग्लो इडियन का मकान था, जिसके साथ एक एकड से कुछ अधिक जमीन थी। खास मह्ल स बाहर की भूमि सिफ नपाली ही खरीद सकते थे। मकान बहुत पुराना था, और फर्नीचर भी बहुत घिसा टूटा। दाम २८ हजार बतलाया गया। उसी दिन पता लगा, कि डा० जाज रायरिक यही है। उनके यहा आने का पता पहले भी पत्र से मालूम हो चुका था। शाम का उनके निवास "कुक्टी" मे गए। मा अब अस्वस्थ थी, इसलिए उनसे नही मिल सके। तीन घट तक हमारी बातचीत होती रही। १९४७ मे कुल्लू म जो खराबी हुई, उसके कारण उनके परिवार का मन उखड गया। वह अपन पिता और अनुज की तरह चित्रकार कलाकार नही हैं उनका विषय भारत तिब्बत मगालिया के इतिहास का अनुसधान है। युरोप मे उनके इतना बडा तिब्बती और मगाल भाषा का विद्वान् शायद ही कोई हो। कलिम्पाग मे रहने पर तिब्बत के विद्वाना के साथ सम्बध स्थापित करने म सुभीता था इसलिए भी उन्हे यह स्थान पसन्द आया। उन्होंने तिब्बती इतिहास के एक बहुत बडे ग्रथ "देब्नेर डोनपो" (नील पुस्तक) का अनुवाद अँग्रेज़ी मे किया, जो आजकल बगाल एशियाटिक सोसायटी से छप रहा था। पिछले ही साल कलिम्पोग म उनकी माता का देहान्त हा गया। जाज अपनी साहित्यिक साधना मे लगे हुए हैं।

२० अप्रेल को टहलते समय भिक्षु अनिरुद्ध साथ मे थे। भिक्षु अनिरुद्ध श्रद्धालु नेवार बौद्ध पिताके पुत्र हैं, पिता भी धर्मालाक के नाम से भिक्षु बन गए, और चाहा अपने दोनो पुत्रो को भी भिक्षु बनाकर आगेकी परम्परा ही तोड दें। लेकिन, छोटा लडका इसके लिए तैयार नही हुआ। उसकी बात सुनकर हँसी आती थी। वह भिक्षु बनने के लिए ही सिहल गया था। पर कहता था — मेरे दो ब्याह लिखे हैं, इसलिए मैं भिक्षु नही बनूगा। वह भिक्षु न

बनकर तिब्बत का व्यापारी बन गया। बड भाई ने सिंहल म श्रामणेर दीक्षा ली, और अब भिक्षु हाकर भी अनिरुद्ध क नाम से ही प्रसिद्ध हैं। बर्मा म थे, उसी समय महायुद्ध छिडा और बर्मा जापान के हाथ मे चला गया। सारे युद्ध भर वही रहे। जापानी भाषा बोलने भर के लिए ता सीख ली, लेकिन उनका मन किसी भाषा के पढने म नही लगता। उनके भीतर अब भी बचपन अधिक था, लेकिन स्वभाव से अच्छे थे।

दिल्ली—सविधान के मसौदे का अनुवाद करना था, इसलिए उसकी परिभाषाओ के बारे मे मैंने इधर कुछ तैयारी की। छोटी लाइन की गाडी से खूब परेशान हा चुके थ, इसलिए उसके द्वारा दिल्ली जाने की हिम्मत नही हुई। तै किया कि बागडोगरा से कलकत्ता और कलकत्ता स दिल्ली विमान से जाएँ। कलिम्पाग के एक मारवाडी मित्र ने टिकट खरीदने का भी प्रबन्ध कर दिया। भोजन का प्रब ध महेशजी न सँभाल लिया था, हमारे दाना मित्र परिभाषा के काम म लग गये थे। २३ अप्रल को मोटर से हम रवाना हुए। सिलिगुडी ४२ और वहा से ८ मील चलकर १२ बजे बागडोगरा पहुच गए। यात्रा म तीन घटे लगे। हवाई अडडा अस्थाई-सा था। खाली पडी जमीन पर लोहे की जालिया बिछा करके अवतरण भूमि तैयार की गई थी, और आफिस के लिए लकडी के झोपडे थे। काठियान राव (छपरा) के श्री रघुवश प्रसाद भी साथ चल रहे थे। पहले पहल विमान मे चढना था, इसलिए बहुत डरे रहे थे। हमने हिम्मत दिलाते हुए कहा—"रघुवश बाबू, डरने की जरूरत नही। यदि कभी ऐसा होता भी है, तो विमानवाले का योगियो की मौत मिलती है। बस, कुछ ही मिनटो म आदमी इस पार से उस पार पहुँच जाता है।" लेकिन, योगियो की मौत मरने के लिए भी कितने तैयार होगे। आजकल तो जब से डाक्टरो ने इसे हृदय की गति बन्द होना (हार्टफेल) का रोग कहना शुरू किया है तब से आकर्षण और भी कम हा गया है। खैर, मैं भी चल रहा था, इसलिए रघुवश बाबू को कुछ ढारस आया। हम ३ बजकर २० मिनट पर अडडे पर पहुचे थे और एक घटे बाद विमान उडनेवाला था। सामान तोला गया और

शरीर भी। सामान २० सेर से अधिक होता, तो किराया देना पडता, लेकिन शरीर का वजन इस ख्याल से लिया जाता है ताकि उतना ही बोझ रखा जाये, जितना कि लोह का गरुड उठा सकता है।

विमान दौडकर आसमान मे उड चला। कान म जोर की आवाज आ रही थी, पर वह उतनी कष्टकर नही मालूम हुई, जितनी कि तेहरान से मास्को जाने वाले विमान पर। वह था भी बाबा ढोने वाला विमान। वसे सवारी न मिलने पर यह भी नारगिया और दूसरी चीजें लादकर छकडा ही बन जाता था। पहाड पीछे छूटा, आगे नीचे सब मैदानी जमीन थी। विमान दक्षिण की ओर जा रहा था। भूमि म छोटी छोटी बहुत सी नदिया हैं, और ज्यादा वर्षा होने के कारण वह बिल्कुल सूखती नही। देखने म साप सी टेढी मढी मालूम होती थी। गाव मकानो के नही घरोंदे के पुड मालूम पडते थे, और वृक्ष घास। जगह जगह चरते ढोर चीटिया से दिखाई पडते थे। विमान पाच और छ हजार फुट की ऊचाई पर उड रहा था। कही-कही बादलो क कुछ टुकडे उसके नीचे से भागत जान पडते थे। ५ बजे के करीब जो चिट मिली, उसस पता लगा, कि हम हजार फुट ऊपर उड रहे हैं, और गति है १६९ मील प्रतिघटा। ४ बजकर ५७ मिनट पर विमान इगलिश बाजार के ऊपर उड रहा था। कोसी तो जान पडता था सहस्र धारा बन गई थी, और गगा इतनी पतली थी कि हमे पार करते भी पता नही लगा। समझ ही नही पाए, किस वक्त बिहार की सीमा पार कर हम बगाल मे चले आए। विमान की सोलह सीटो मे एक तिहाई खाली थी। भारत मे यह पहली बार विमान-यात्रा का मौका मिला था। पुष्पक विमान का ख्याल आता था। चाह कल्पित ही हो, लेकिन कवियो ने आसमान से पृथ्वी कैसे दीखती है, इसकी ओर कल्पना दौडाई थी। वह कल्पना इतनी आकर्षक नही हो सकती थी, जैसी कि हमारे देश की यह पूर्वी भूमि दीख पड रही थी।

६ बजे शाम को दमदम हवाई-अडडे पर उतरकर टैक्सी से हम मणि-बाबू के घर ४ नम्बर रामजीदास जेटिया लेन पहुचे। यात्रा के बाद और

विशेषकर रात का स्नान करने की मेरी आदत भी है । गर्द गुबार के कारण रेल यात्रा मे तो यह आवश्यक भी है, पर विमान मे कोई वैसी बात नही थी । पर अब गर्मी आ गई थी, इसलिए स्नान आनन्दकर था ।

२४ तारीख का सवेरे ६ बजे ही फिर हवाई अड्डे पर पहुचा । बाग डोगरा से कलकत्ता तक किराया ७४ रुपया था, और दिल्ली तक का २०३ रुपये था । इडियन नेशनल एयरवेज का विमान "सतलुज" हमे मिला, जिसमे २४ सीटें थी, और सभी पर मुसाफिर बैठे हुए थे । यह विमान अधिक स्वच्छ और सजा मालूम होता था । था भी यह अन्तर्राष्ट्रीय विमान पथ पर चलने वाला । इसकी चाल दो सौ मील से अधिक थी, और उड रहा था छ हजार फुट पर । कलकत्ता से ७ बजकर ४० मिनट पर हम रवाना हुए, और दिल्ली पहुँचने मे चार घटा २० मिनट लगे । यातायात के नवीन साधन दूरियो को कितना कम कर रहे हैं ? इस विमान मे ४४ पौंड पर किराया नही था, चार पौंड अधिक होने का चार रुपया और देना पडा । कलकत्ता से दिल्ली तक का सारा नक्शा हमारे पैरो के नीचे पडा था । कही-कही धुध अधिक थी, जिससे साफ नही दिखाई देता था । अच्छी तरह देखने के लिए दूरबीन की आवश्यकता थी । हवाई जहाज से फोटो लेना मना है । नदिया नीचे सर्प गति से चल रही थी । जगल बाग गाव और शहर जगह जगह छूटते जा रहे थे । मकानो की ऊँचाई किसी गिनती ही मे नही थी । कितनी ही दूर तक गगा, फिर सोन आई, फिर कुछ दूर चल गगा को पार हो गोमती के सहारे चले । फिर रामगगा और गगा पार होते जमुना आई और विमान दिल्ली मे पालम के अड्डे पर १२ बजे उतर गया । अड्डे से टैक्सी ले कुछ ही मिनटो मे १३ फिरोजशाह रोड पर श्री चन्द्र गुप्त विद्यालकार के यहा पहुँच गए । कलिम्पोग से दिल्ली पहुचने का यह रास्ता बहुत टेढा मेढा था । यदि बागडोगरा से सीधे दिल्ली की विमान व्यवस्था होती, तो कल ही हम कलिम्पोग से दिल्ली पहुँच गए होते ।

कलिम्पोग मे टहलने पर भी डायबटीज़ की शिकायत कम नही हुई । यहा वह कुछ कम हो गयी थी । शायद चावल और सर्द जगह के कारण हो,

लेकिन यह दिल बहलाने का ही ख्याल था। वजन अब भी १७२ पौंड अधिक मालूम होता था। दिल्ली मे १०३° गर्मी थी, परेशानी तो होनी ही चाहिए। २५ तारीख को शाम के समय पार्लियामेंट भवन के उस कमरे म गए, जहा हमे काम करना था। सातो विशेषज्ञ—जयचन्द्रजी, सुनीति बाबू दाते घनश्यामसिंह गुप्त, प्रो० मुजीब, सत्यनारायण जी और मैं—वहाँ मौजूद थे। अभी हम पहली बार मिले थे, इसलिए भाषा और परिभाषा के बारे म विचार विनिमय हुए। प्रो० मुजीब को छोड सभी ने अपने विचार प्रकट किए। प्रो० मुजीब तो तभी बोल सकते थे, जब उर्दू परिभाषाओ के लिए भी कोई गुजाइश हो। लेकिन परिभाषा के सम्बन्ध मे भारत की बाकी सारी भाषाएँ एक तरफ थी, क्योंकि सभी संस्कृत के शब्दो को लेने के लिए तैयार थी जबकि उर्दू की परम्परा उसे अरबी से जोडे हुए थी। इस बात मे सभी सहमत हुए, कि अनुवाद की भाषा सुगम होनी चाहिए, अज्ञात और कठिन शब्दो से बचना चाहिए। परिभाषाएँ भारत की दसो भाषाओ म एक सी होनी चाहिए और निर्माण मे सबकी सहायता लेनी चाहिए। मुझे यह जानकर भी बडी प्रसन्नता हुई, कि हमारे सचिव बालकृष्ण भाषा और परिभाषा के सम्बन्ध मे बडे ही योग्य व्यक्ति थे। वहाँ से उठकर श्री गुप्त-जी और बालकृष्णजी के साथ हम ठेकेदार नारायणदास के घर पर पहुँचे। हम तीनो को अनुवाद करके अगले दिन लाने का काम सौंपा गया था। बहुत रात तक हम काम करते रहे।

२६ अप्रल को फिर समिति की बैठक हुई, और कल जिन अनुच्छेदो का अनुवाद हमने किया था, वे स्वीकार कर लिए गए। यह भी निश्चय किया गया कि मैं और प्रो० बालकृष्ण अनुवाद करें, और अगली बैठक म १० मई को उसे पेश करें। उस दिन भी रात के ११ बजे तक हम दोनो अनुवाद करते रह। हमने जो रास्ता अपनाया था उसमे छ सदस्यो म किसी का भी मतभेद नही था, यह जानकर बहुत सतोष हुआ।

२७ अप्रल को डा० भारद्वाज स मिले। उनसे मेडिकल परिभाषाओ के काम के बारे म बात हुई। यह जानकर आश्चर्य होना ही चाहिए, कि

इनके जैसे आधुनिक ढग के सुशिक्षित दम्पति विधवा विवाह के विरुद्ध थे। उस समय हिन्दू विवाह व्यवस्था म स्त्रियो को तलाक के लिए भी अधिकार मिलनेवाला था। वह उन लोगो मे से थे जो समझते थे, कि तलाक की छूट होने पर स्त्रिया वेतहाशा अदालतो की ओर दौड पडेंगी। यह ख्याल नही था, कि पुरुप ने चादी के धागो से स्त्री को वाध रक्खा है। जव तक स्त्री का आर्थिक स्वतन्त्रता नही है, तव तक वह पुरुप की सव तरह की गुलामी करने के लिए तैयार रहगी। उस दिन ९ बजे रात तक का सारा समय वालकृष्णजी के साथ मिलकर अनुवाद करन मे लगा। रघुवीर शाही ने एक विचित्र क्लिष्ट तथा नई भाषा तयार की थी, जिससे पिण्ड छडाना जरूरी था। श्री सत्यनारायण जी हिन्दुस्तानी क पक्षपाती थ, लेकिन वह भी हमारे अनुवाद से सतुष्ट थे।

दिल्ली मे रात तो अच्छी थी, पर दिन मे पखा ही जीवनाधार था।

२८ तारीख का मध्याह्न भोजन श्री सत्यनारायण जी के यहा किया, पुन आने के ख्याल से गद्दे मसहरी को यही छाड १२ वजे डाल्मिया की इडियन नेशनल एयरवेज़ के आफिस मे गये। लू चल रही थी, टिकट लिया १ बजे विमान उडा। कहा धरती पर गर्मी के मारे खोपडी भन्ना रही थी और कहा ६५०० फुट पर दो सौ मील की चाल चलत विमान पर मौसम वडा सुहावना था। बनारस पर उडत समय वहा की गर्मिया याद आने लगी, और उसी के ६००० फुट ऊपर ऐसा सुखद मौसम। पौने पाच वजे हम कलकत्ता के दमदम अड्डे पर पहुँचे, और १८ आना टैक्सी का द ६ बजे मणिहृप जी के घर पर पहुँच गये। उस समय कम्युनिस्टो को उच्छिन्न करने पर सरकार तुली हुई थी। उस दिन कम्युनिस्टो की भूख हडताल क समथन मे जुलूस निकाला था जिस पर गाली चलाई गई।

**कलिम्पोंग**—२९ अप्रैल को सवेरे दमदम के अडडे से पहुचकर ६ वज कर १० मिनट पर हम उडे। रास्ते म बादल था, विमात उससे ऊपर उठा, और अधिक समय तक भूमि दिखलाई नही पडी। एक तरह आँख मूदकर अन्दाज से चलना था। विमान मे मुसाफिर कम और माल अधिक

भरा था। एक मारवाडी सहयात्री शक्ति हृदय से बैठे थे और दूसरे वमन मे व्यस्त। विमान अधिक हिल्ता-डालता नही था, न पेट की चीजे हिल सकती थी, फिर वमन क्यो ? मनोवैज्ञानिक कारणा से हो ? बादलो के कारण हिमालय का देख नही सके। दो घटे उडान के बाद बागडोगरा पहुँचे। फिर विमान कम्पनी की मोटर बस ने हम सिलिगुडी स्टेशन पर पहुचा दिया। मुस्लिम होटल का मालिक भोजन कराते बतला रहा था—यहा दाना आर की भूमि भारत की है, किन्तु रेलवे लाइन पाकिस्तान की है। बगाल के गवनर डा० काटजू आने वाले थे, उनके स्वागत के लिए लोग जमा थे। १० रुपए मे मोटर की अगली सीट मिली और साढे १२ बजे धर्मोदय पहुँच गए। आनन्दजी मौजूद मिले। वैशाख पूर्णिमा की तैयारी हो रही थी। दिल्ली से लौटने के बाद घर लेने का उत्साह कुछ मन्द हो गया। सोचने लगे, सपवत्ति से दूमरे के घर मे रहना ही ठीक है, क्या घर म बँधें और क्या रुपया के तरद्दुद म पडें ? दिल्ली फिर जाना था। और इस खबर का सुनकर प्रसन्नता हुई, कि दिल्ली से सीधे बागडोगरा आने का प्रबन्ध किया जा रहा है। लेकिन, मेरे समय यह नही हो सका। दिल्ली म वर्षा नही थी, अब दिन और रात कडी लग गई थी।

टहलने का नियम फिर पाला जाने लगा। बोलते समय बराबर बोलते रहना पडता था। सोचा एक घटा मौन रखा जाए, ताकि "मधुर स्वप्न" के बारे मे लिखा कराया जा सके। उपन्यास मैं एक छोडकर ऐतिहासिक ही लिखता आया हूँ, और आगे यदि लिखना होगा, ता ऐतिहासिक ही लिखूगा। इसम काफी मेहनत पडती है। देश काल पात्र सम्बन्धी कोई अनौचित्य न हा, इसके लिए सभी तरह की प्राप्य सामग्री को अध्ययन करके नोट कर लेना पडता है। अध्याय के अनुसार उपन्यास का ढाचा तैयार करना, फिर उसमे सामग्री को यथास्थान रखना। इसके बाद बडी-बडी घटनाओ का भी सन्निवेश करना। फिर कहानी सामने आती है जो कितनी ही जगह लेखक की इच्छा के न रहते भी दूर खीच ले जाती है। "मधुर स्वप्न" का कुछ अश लिखवा दिया गया था। महेश लिखने का काम

मर रहे थे। ५ मई को आठवा अध्याय लिखवाया। उसी दिन शाम को दार्जिलिंग के डिप्टी-कमिश्नर श्री निमलजी आए। वह सेनगुप्त के सहपाठी भी थे। देर तक देश की स्थिति पर बातचीत होती रही। अगले दिन शाम का धर्मोदय के नीचे श्रीमती स्काट के अन्ध विद्यालय मे गए, जिसम २४ लडके शिक्षा पा रहे थे। उनका सारा प्रबन्ध श्रीमती स्काट करती हैं, इस तरह के निरवलम्ब आदमियो को स्वावलम्बी बनाना बडा काम है। उनसे पता लगा, कि लड्येन की मिशनरी बुढिया मर गई है, लेकिन फिनलैण्ड मिशन ने वहाँ अपना काम छोडा नही है।

७ मई को मलेरिया रानी न सूचना भेजी,—'यह मेरी भूमि है, मैं आपसे मिलना चाहती हूँ।' भला यह उनके स्वागत का समय था। पैरो मे सुरसुराहट हुई, पेट म कुछ गडबडी मालूम हुई। मैंने कुनैन की दो गोलिया देकर छुट्टी लेनी चाही। अगले दिन टहलना रुक गया। भूख भी नही थी, पर ज्वर का अभी स्पष्ट पता नही था। उस दिन भी दो टिकिया थमाइ। मसहरी दिल्ली मे छोड आने का पछतावा होने लगा, क्योकि अब मच्छर बढ गए थे।

प्रत्यक्ष शारीर की परिभाषाओ को अन्तिम रूप देने मे हम लोग लगे हुए थे।

११ मई को अब की वैशाख पूर्णिमा पडी। कलिम्पोग म काफी बौद्ध है, और उनके एक से अधिक मन्दिर भी है। धर्मोदय विहार म सवेरे बुद्ध पूजा हुई, दोपहर को भिक्षुओ को भोजन कराया गया। काफी स्त्री-पुरुष आए। विहार को अच्छी तरह सजाया गया था। डेढ बजे आनन्दजी के सभापतित्व मे सभा हुई। एस० डी० आ० श्री प्रधान ने धर्मोदय सभा के पुस्तकालय का उद्घाटन किया। बादल उमड घुमडकर आ रहे थे, लेकिन उन्होने यत्न म बाधा नही डाली। मैं भी बोला। डा० भट्ट अपनी भाषा (कन्नड) म बोल नही सकते थे, अँग्रेजी और जर्मन पर उनका पूरा अधिकार था, लेकिन वह सस्कृत म बोले। उनकी स्वाभाविक सस्कृत का मैं पहले भी प्रशसक था। अब इतने वर्षो बाद भी वह उसी तरह अधिकार

रख सकते हैं, इसकी कम आशा थी। कलकत्ता यूनिवर्सिटी म इस समय तिब्बती के अध्यापक एक वुर्यत मगाल भिक्षु भी वहा आए। उनमे बात चीत हाती रही।

तिब्बत मे पाँच विषयो—दशन, तकशास्त्र, विनय, महायानसूत्र और माध्यमिक शास्त्र—ये पाँच ग्रथ पढाए जाते है —अभिधमकोश, प्रमाण-वार्तिक, विनयसूत्र, अभिसमयालकार और मध्यमाकावतार। इनम अन्तिम को छोडकर सभी सस्कृत म प्राप्य है। पहले दाना को मैं सम्पादित करके प्रकाशित कर चुका हूँ, तीसरा सम्पादित हाकर छप चुका है लेकिन प्रकाशक अचार बनाने मे लगे हुए है। चौथी पुस्तक रूस मे छप चुकी है, और अन्तिम अभी तिब्बती भाषा मे ही उपलब्ध है। मैं सोच रहा था, यदि सस्कृत और तिब्बती अनुवाद को आमने सामने रखकर प्रकाशित किया जाए, ता इसमे दोना भाषाओ के जानने वालो को लाभ हागा। पहली पुस्तक क मुद्रण के खच का जिम्मा मेरे मित्र श्री भिरलमान न ले भी लिया, लेकिन सबसे बडी दिक्कत तिब्बती टाइप की हुई। कलकत्ता मे एक प्रेस का चाज चौगुना पचगुना था, दूसरा प्रेस फँसाकर रखने वाला था, उसके ही कारण महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचाय द्वारा सम्पादित असग की "योगचर्या भूमि" अभी तक नही निकल सकी, और सम्पादक बिल्कुल निराश हा चुके हैं। कलिम्पाग म श्री थचिन का प्रेस काम कर सकता था, लेकिन वह भी पर्वाह नही रखते। इन्ही दिक्कतों से यह काम रह गया, नहीं ता दो-तीन पुस्तक तो जरूर निकल गई हाती।

अगले दिन ( १२ मई को ) टाउन हाल म बुद्ध-जयन्ती मेरे सभापतित्व म मनाई गई, जिसम मगोल, भारतीय, तिब्बती, नेपाली, स्विस और रूसी श्रद्धालु आले थे। बौद्ध धम का अन्तर्राष्ट्रीय रूप यहाँ आँखो के सामने था।

तिब्बत के भविष्य क बारे म मैं निश्चिन्त और प्रसन्न था। लेकिन, एक बात की चिन्ता मुझे जरूर हाती थी, कि तिब्बती भाषा के प्रकाण्ड पडित कही सुनी-सुनाई बातो का सुनकर देश मे भागने के लिए तैयार न हो जाएँ,

और उनकी विद्या का कोई मोल न रह जाए। १३ मई को एक ऐसे ही मंगोल पंडित आए। अपने देश से आकर मेरा विहार में वर्षों रहकर पढ़ते रहे। अब ५५ साल के हो गए थे। कुछ चित्रकला भी बनाना जानते थे। कलिम्पोग में आए साल भर हो गया, और चित्र ही से कुछ जीविका कमा लेते थे। बहुत कष्ट में थे। उनकी विद्या का यहाँ कोई उपयोग नहीं हुआ। मैं जानता था, पाँच रुपया देकर मैं अपनी पीड़ा दूर कर रहा हूँ, उनकी पीड़ा दूर करने का रास्ता तो यही था, कि वह तिब्बत लौट जाते। और कुछ दिनों बाद उन्हें पढ़ाने लिखाने का काम जरूर मिल जाएगा।

तिब्बत में उत्तर ह्वांग हो उपत्यका में तुगन (चीनी मुसलमान) लोगों की ओर कम्युनिस्ट मुक्ति सेना बढ़ रही थी। वहाँ के मुस्लिम नेता अपने *लोगों के सर्वेसर्वा होकर शाहाना ठाठ से रहते थे। वह क्यों कम्युनिस्टों के* स्वागत के लिए तैयार होते? पर हारकर उन्हें भागना जरूर था। मुझे इस बात की चिन्ता थी, कि कहीं वह भारत भागने का सीधा रास्ता न पकड़ें, और ल्हासा होते कलिम्पोग न आएँ। ऐसा होने पर उनकी लूट पाट में रेडिड, ल्हासा आदि के प्राचीन बौद्ध विहार नष्ट हो जाते, जिनके साथ हमारी सहस्रों अनमोल सांस्कृतिक निधियाँ भी ध्वस्त हो जातीं। मैंने इस खतरे के बारे में राष्ट्रपति को लिखा, और "विश्व दर्शन" में एक लेख भी लिखा। राष्ट्रपति ने चीन स्थित अपने राजदूत को इसकी सूचना दी, और इन निधियों की ओर चीन सरकार का ध्यान दिलाने के लिए कहा। सौभाग्य से तुगन हारकर इस रास्ते नहीं भागे, वे और पश्चिम *की तरफ हटते गए, और अन्त उनके नेता सिङक्याग से कश्मीर में चले* आए।

कलिम्पोग में और सब ठीक हो गया था, लेकिन अभी भोजन का अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ था। भोजन में भिन्न भिन्न रुचि रखने वाले लोग थे, तो भी ऐसे नहीं थे, कि वह उसमें हेर फेर करना न पसन्द करते। पर कोई अच्छा रसोइया नहीं मिल रहा था। कई रसोइये बदलने पड़े थे।

धर्मोदय की ऊपरी मंजिल को करीब करीब हमने दखल कर लिया

था। बहुत अच्छी जगह थी—शहर से बाहर भी और समीप भी। नीचे से कलिम्पोग जाने वाली सडक जाती थी। यहाँ गर्मी का भय नही था, लेकिन परिचितो की सख्या कम नही थी, इसलिए मिलने जुलने के कारण समय बहुत बरबाद होता था। पर यह अवस्था शुरू म ही रही, जब लोगो को मालूम हो गया, कि रविवार को आने म हमे सुभीता है, तो वह उस दिन आने लगे। उस समय मैं सवेरे साढे ५ बजे उठता, १५ मिनट मे हाथ मुह धोकर छुट्टी लेता, डेढ दो घटा टहलने के लिए निकल जाता। ८ बजे के बीच कभी नाश्ता करता, फिर लिखने या वाश के काम मे लग जाता, साढे ८ साढे ६ के बीच कभी आध घट के लिए सो भी जाता, फिर काम म लगकर मध्याह्न भोजन करके दैनिक पत्र को कुछ मिनट देकर साढे ७ बजे रात तक कोश का काम करता। रात्रि भोजन क बाद साथियो के साथ कुछ देर वार्तालाप होता फिर दो घट "मधुर स्वप्न" को लिखवाता। इसक बाद कोई हलकी चीज पढता, और फिर डा० भट्ट के साथ काफी रात करके सो जाता।

डा० भट्ट का १८ वष का जमनी का प्रवास बडी मनोरजक आपबीतियो से भरा था। वह सस्कृत के पुराने पडित थे, जब जमनी के लिए रवाना हुए, अण्डा खाना भी उनके लिए मुश्किल था। पण्डिताऊ दृष्टिकोण साथ गया था। जमनी म पहुँचने के बाद उनके पास मुश्किल से सौ रुपये रह गए होगे। मेरे लिखने पर टुबिंगन विश्वविद्यालय के सस्कृत के प्रोफेसर ने काम के बदले उन्हे कुछ आर्थिक सहायता देने के लिए कहा, और दी भी। पर वह सहायता इतनी कम थी कि बडी मुश्किल से काम चला सकते थे। मैंने मत्र बतला दिया—आदमी को छलाग मारना चाहिए। आखिर वह जहा भी छलाग मारेगा, वहा मानव समुद्र ही रहेगा, और मानवता हर जगह मनुष्य की रक्षा के लिए तयार है। अजान अपरिचित स्थान म भी आदमी के मित्र बन जाते है, फिर गाडी चल पडती है। छलाग मारने वाला म हजार म एक ही डूबता है, और हमे ६६६ छाडकर एक की श्रेणी म नाम लिखाने की क्या जरूरत? डा० भट्ट ने सस्कृत

के किसी विषय को लेकर तुबिंगन मे पी एच० डी० की। फिर उन्ह प्राचीन विद्या से सतोष नही हुआ, अथशास्त्र-राजनीति लेकर बर्लिन यूनिवर्सिटी के डा० बने। उनकी विद्या और प्रतिभा न सहायता की, और बर्लिन यूनिवर्सिटी म वह प्रोफेसर बन गए। कलम के भी धनी होकर भारत के बारे म लिखते रहे। पीछे भारत सम्बन्धी आकडो के सहित उनका परिचय ग्रथ इतना अच्छा था, कि उसका लाखा का सस्करण निकला। पुस्तका और लेखा की रायल्टी भी मिलन लगी।

द्वितीय महायुद्ध छिडा। डा० भट्ट अपने देश की आजादी के लिए अधीर थे, और उसके लिए काम कर रहे थे। जब नेताजी वहा पहुँचे और उन्हाने जमन अग्रेजी मे पत्र निकालना चाहा—तो उसके मुख्य सम्पादक क लिए उनकी नजर डा० भट्ट के ऊपर पडी। फिर वह नेताजी के दाहिने हाथ के तौर पर तब तक काम करते रहे, जब तक कि नेताजी वहा मे अलोप होकर पूव म पहुँच नही गए। उसक बाद भी भट्टजी अपने काम मे डटे रह।

जमनी की पराजय हुई। मित्र शक्तिया उनका किस तरह स्वागत करती, यह उन्ह मालूम ही था। इसलिए दक्षिणी जमनी के एक देहात म चले गए, और किसी किसान के यहा खेती और सूअरो के पालन मे सहायता लेने लगे। जमन भाषा पर अधिकार था, पर अपने का जमन कस कह सकते थे, जब कि उनका रग हमारे यहा के रयाल से भी पूरा गोरा नही था। उन्होन इस कमी का अपने को पूर्वी यूरोप का रोमनी (जिप्सी) कह कर पूरा किया। तीन वष तक इसी तरह उन्हाने अपना समय काटा यह बौद्धिक मृत्यु का समय था। अभी वह जमनी जल्दी छोडने के लिए मजबूर नही थे। इसी बीच उन्ह हृदय का रोग हो गया। दवाइया मिलना मुश्किल थी। इसके साथ जन्मभूमि और उसकी आजादी न अपनी ओर खीचा। किसी तरह चुपचाप वह जमनी की सीमा पार कर स्विट्जर्लैण्ड म आने म सफल हुए। हमारा दूतावास मौजूद था जिसकी सहायता से बडी-बडी उमगें लेकर वह अपनी जन्मभूमि म आए। पर यहा अभी गुणा के ग्राहक कहा थे?

डा० रायरिक चाहते थे, कि भारतीय और तिब्बती भाषाओ और संस्कृति के अनुसंधान के लिए एक प्रतिष्ठान कायम किया जाए। इसके लिए कलिम्पोग सबसे उपयुक्त स्थान था पर प्रतिष्ठान के लिए रुपयो की आवश्यकता होती। प्रकाशन के लिए ही नही, बल्कि तिब्बती, मगोल या भारतीय विद्वानो के लिए भी खर्च की जरूरत थी। सिक्कम के महाराज से अकवल तो आशा नही हो सकती थी, क्योकि वह इसके वैज्ञानिक महत्व को समझने मे असमर्थ थे। और सहायता देने पर गन्नाक मे रखने का आग्रह करते। चन्दा और पैसा जमा करना मैंने सीखा नही, इसलिए उसके बारे मे कोई भी सहायता नही कर सकता था। हाँ, प्रतिष्ठान मे मैं अपनी लेखनी से योग देने के लिए तैयार था।

२४ मई को हम टहलते-टहलते चीनी स्कूल की तरफ गए। कुछ सालो पहले चीनी लडको के पढाने के लिए यह स्कूल खोला गया था। उसके पास एक एकड जमीन मे एक लकडी की झोपडी थी। मैं उसको भी देखने गया था। वह पाच हजार मे मिल रही थी, लेकिन अभी खूटे से बधना मैं नही चाहता था। बडे-बडे मकान मिट्टी के माल बिक रहे थे, पर मैं तो उनके बारे मे सोच भी नही सकता था। डा० रायरिक जिस बंगले मे रहते थे उसके पास ही किसी अंग्रेज का बहुत विशाल बंगला था। लडाई के दिनो मे उसके सात लाख मिल रहे थे, और अब सूरजमल-नागरमल ने पौन दो लाख मे खरीद लिया।

प्रत्यक्ष शारीर की परिभाषाओ का काम समाप्त हो गया था, और अब दूसरे कामो मे हाथ लगा था।

दिल्ली—२५ मई को फिर हम १० बजे मोटर मे बागडोगरा के हवाई अड्डे पर पहुँचे। कलिम्पाग मे बतलाया गया था, कि टिकट तैयार है, पर यहाँ आने पर मालूम हुआ, कोई टिकट नही लिया गया। खैर, जगह खाली थी, टिकट मिल गया और १ बजे रवाना होकर ढाई बजे के कुछ बाद कलकत्ता पहुँच गया। मणिहरूपजी के यहाँ रात को ठहरा। तिब्बती-संस्कृत पुस्तक छापने की धुन थी, इसलिए प्रेमो से बात करने

गए। आरियन्टल प्रेस छापने के लिए तैयार था, पर उसके पास साधन कम था। उसका टाइप भी बहुत बडा था, जिसके कारण "अभिधम कोश" १६ फाम म छप पाता। बाप्टिस्ट मिशन अपने छोटे टाइपो म सात फाम छाप सकता था, किन्तु बहुत कडे चाज पर भी उसके काम लेने मे सन्देह था।

२८ मई को साढे ७ बजे दमदम से विमान पर चढकर ठीक १२ बजे दिल्ली पहुँच गया। नीचे जमीन पर उतरते ही धूप से खोपडी भन्नान लगी। आज पत्रो मे यह हर्षदायक समाचार मिला, कि शघाई का बिना लडे ही कम्युनिस्टो न ले लिया। उस विशाल नगर का बहुत ध्वस होता यदि लडाई नगर के भीतर हुई होती।

श्री सत्यनारायणजी के घर मे ताला बन्द था, इसलिए श्रीमती कमला चौधरी के मकान १३ फीरोजशाह रोड मे श्री जयचन्द्रजी के पास ठहरे। आने पर पता लगा, कि बठक १ तारीख के लिए मुलतवी हो गई, अर्थात् मै पाच दिन पहले आ गया। लेकिन, इस बीच मे श्री बालकृष्ण के साथ मिलकर कुछ काम कर सकते थे, चाहे उसके लिए हमे पास से खाकर ही काम करना पडता। २७ मई को ९ बजे कौंसिल चेम्बर म जा १६ नम्बर के कमरे मे बालकृष्णजी के साथ बैठे। कमरा वायु नियन्त्रित है, इसलिए इसमे न गर्मी का डर था न सर्दी का। सविधान-सभा ने अब तक सविधान के ९२ अनुच्छेद पास कर दिए थे, उन्ह हमने देखा। अनुवाद का काम करने लगे। इस बीच बालकृष्णजी बहुत-सा अनुवाद कर चुके थे। मालूम हुआ, प्रोफेसर मुजीब ने इस्तीफा दे दिया। आखिर उर्दू की ता कोई बात यहा सुनी नही जा रही थी, इसलिए वह अपना रहना बेकार समझते थे। उर्दू की तरफ इस बेरुखाई के लिए अनुवाद समिति की शिकायत नेहरूजी के पास पहुची, और उन्होने इसके खिलाफ एक पत्र राजेन्द्र बाबू को लिखा। लेकिन, यह समिति के सदस्यो का दोष नही था जो कि वह परिभाषाओ के निर्माण और भाषा के प्रयोग मे एक ही रास्ता ले रहे थे। हिन्दी की उर्दू स वमनस्य की बात कही जा सकती है लेकिन मराठी,

क न्नड, मलयालम, तलुगू, बगला के ऊपर ता यह लाछन नही लगाया जा सकता। अगर परिभाषाओ के निर्माण की दो हजार वष की परम्परा सारे देश मे एक सी है, तो इसका दोष समिति के सदस्यो पर नही लगाया जा सकता। पर नेहरूजी और उनके जसे लोगो को समझाया कैसे जाए ?

क्या मुझे नगर से अधिक ग्राम मैदान से अधिक पहाड पसन्द आता है ? यह तो नही कहता, कि नगर और मैदान काट खाने के लिए दौडते हैं। कलिम्पाग ग्राम नही है लेकिन वह मुझे पसन्द है। हाँ, उससे भी अधिक पसन्द होता। भारत की सीमान्त का अन्तिम गाँव लाछेन्, क्योकि वहाँ प्राकृतिक सौंदय बहुत है, विश्व के सवसुन्दर वृक्ष दवदार की बहुतायत है, और साथ ही मेरे लिए भारी आकषण तिब्बत की सीमा नजदीक है, वहा की भाषा बोलने वाले लोग भी वहाँ मिलते हैं जो मूलत किरात जाति से सम्बन्ध रखते हैं। शायद दिल्ली के १०८ डिग्री के ताप म झुलसते हुए मुझे ठण्डे स्थानो की ज्यादा याद आती थी।

१ जून से अनुवाद समिति की बैठक होने लगी और २ बजे साढे ५ बजे तक हम उसके काम म लगे रहते। सविधान-सभा सविधान के जितने अनुच्छेदो को पास करती जाती, उनका ही हम अनुवाद करना था। गाडी चल निकली थी, इसलिए न कोई दिक्कत होनी थी न देर। इतने दिनो बैठे-बैठे 'मधुर स्वप्न" की प्रेस-कापी तैयार करता रहा। यदाकदा गायत्रीजी अपने पिता श्री हरभगवानजी के साथ आती, उनको पालि पढा देता। अनुवाद के काम म श्री घनश्यामसिहजी सबसे अधिक मेहनत करते थे। वह वकील भी थे और अग्रेजी सविधान को अक्षरश मिलान का परिश्रम उठाने के लिए तैयार थे।

दिल्ली के लिए कहना चाहिए तीन लोक से मथुरा न्यारी। वैसे सभी नगर देहात से अलग अलग रहने का भाव रखते हैं, पर दिल्ली तो मालूम होता था, भारत की भूमि पर है ही नही। यहाँ के श्रेष्ठ लोग जो आचरण करते, उसी पर इतर लोग भी आँख मूदकर चलने की कोशिश करते थे। दिल्ली कहने से वहाँ के गरीब आदमियो को नही लिया जा सकता।

तो वहा के दरोदीवारो, वहाँ की सडको और नारियो की तरह बहुत कुछ निर्जीव से थे। उन्हे वहा का नागरिक नही कहा जा सकता था, और काफी तादाद का नाम मतदाताओ के रजिस्टर मे भी नही था। दिल्ली भारत की सर्वोपरि विलासपुरी है। यहाँ की हरेक बात पर पाश्चात्य प्रभाव है—अचकन और चूडीदार पायजामा नाम के लिए ही भारतीय है। वेशभूषा और साज सज्जा पर पेट काट करके भी लोग खर्च करने के लिए तैयार है। जब तक कार न हो, तब तक समाज मे कोई पूछ नहीं हो सकती थी, और न दूर दूर पर होने वाले समारोहो मे उपस्थित हुआ जा सकता। इसलिए चाहे कर्ज करना हो या रिश्वत लेनी पडे, इस सर्वविश्यक चीज को अपने पास रखना ही था। न रखने पर खतरा भी था। हरेक तरुणी सुन्दरी केवल पौडर और लिपिस्टिक के बल पर सम्मानित नहीं हो सकती और अपने घर मे कार न हुई, तो दूसरे की सहायता लेने के लिए मजबूर है। पढा सुना करते थे, कि वसन्त म लन्दन मे कुमारियो का जमा वडा इसलिए होता था, कि वह वहाँ के नाच और पान गोष्ठियो मे सम्मिलित होकर अपने लिए वर तलाश करें। अब पेन्शन पाने वाले या दूसरे नगरो मे बसने वाले माता-पिता अपनी तरुण पुत्रियो को इसी के लिए दिल्ली मे लाने लगे हैं। क्या दुनिया मे हर जगह का गुजरा इतिहास हमारे यहाँ भी दोहराया जायगा।

इसी समय श्री नवीनजी के व्याह की चर्चा थी। बाल सफेद होने पर व्याह करने की तमादी नही लग जाती, यह मैं मानता हूँ, फिर डा० प्राणनाथजी वधू के गुण और रूप की प्रशसा करते नहीं थकते थे। नवीनजी भी कवि है, उनकी दृष्टि धोखा नही खा सकती।

६ जून तक हमारा अनुवाद का काम रहा, ७ को यहा से चलना निश्चित हो गया था। भारतीय सविधान म हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के प्रश्न पर विचार होने वाला था, अहिन्दी भाषाभाषियो को हिन्दी विरोधिता क पूरी तौर से भडकाने की कोशिश की थी, इसलिए उसके बारे म भी हिन्दी वालो को कुछ काम करना था। ८ तारीख को फीरोजशाह रोड

पर अवस्थित दीवानचन्द हाल मे शाम को उसी सम्बन्ध मे सभा हुई। प्रा० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय और प० जयचन्द्र विद्यालंकार दो दो घंटे बोले। मैंने भी आध घण्टा हिन्दी का समर्थन किया। बाहर निकलने पर एक आन्ध्र तरुण मिला, जिसका जोर था कि संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाया जाए। गोया संस्कृत को राष्ट्रभाषा के आसन पर बैठाने मे हिन्दी से कम दिक्कत का सामना करना पडता। फिर अप्रचलित भाषा को भारत की बडी जनता को सिखलाया कैसे जा सकता है? कितने ही मिलने वाले आए, डा० किरणकुमारी गुप्ता से यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि वह अग्रवाल विवाह प्रथा पर सामग्री जुटाने मे लगी हुई है।

६ जून को शरणार्थियो की जगह देखने गया। डेढ वर्ष से ऊपर हो गया, लेकिन अभी भी वह उसी तरह की बेसरो सामानी की जिन्दगी बिता रहे है। कपडे फटे मैले, झोपडिया गन्दी, पेशाब पाखाने का उचित प्रबन्ध नही, जिसके कारण उनकी बस्तिया भी गन्दी। जिस तरह वे रह रहे थे, उसमे यदि बच्चे मोटर के नीचे चले आएँ, तो क्या ताज्जुब। जिन्होंने अपने पैरो पर खडे होने की कोशिश की, उनकी हालत कुछ बेहतर हो गई, पर शत प्रतिशत लोगो से यह आशा नही की जा सकती थी। नई दिल्ली मे कई जगह फुटपाथो पर से उन्हे हटा दिया गया। हटाकर किसी रहने लायक स्थान पर पहुँचाया होता। यह नही, खुले आसमान मे वर्षा और धूप मे मरने के लिए उन्हे छोड दिया गया। उसी दिल्ली मे वायसराय (राष्ट्रपति) का इस्टेट है, सैकडो सजे हुए विशाल कमरे ही नही, बल्कि विस्तृत गोशालाएँ और भैंसशालाएँ हैं, साग-तरकारी के खेत और मेवा के बाग लगे हुए है। मन्त्रियो और दूसरो के भवन-वैभव को देखकर इन्द्र को ईर्ष्या हो सकती है, लेकिन वही ये नगे भूखे लोग अपने घरो से निर्वासित नरक की जिन्दगी बिता रहे थे।

१८

# कालिम्पोंग में शेष काम

७ जून को सवा १२ बजे पालम के हवाई अड्डे पर गया। घंटे बाद विमान ने धरती छोड़ी। आज आधी सीटें खाली थीं। विमान साढ़े ग्यारह हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ रहा था। गर्मी के यौवन का दिन था, और हम उत्तर प्रदेश के भिन्न भिन्न शहरों—बनारस आदि के ऊपर से उड़ रहे थे। जब मैंने अपने साथियों को पैरों पर कम्बल रखते देखा, तो नीचे धरती पर झुलसते आदमियों का खयाल आने लगा। मुझे इतनी सर्दी नहीं मालूम हो रही थी, कि कम्बल लेता। यह वाईकिंग विमान था। शायद इतने ऊपर उठने के कारण ही धुंध ज्यादा थी, और चीजें बिलकुल साफ नहीं दिखाई देती थीं। सोन पार कर लेने पर तूफान की सूचना मिली। रोशनी से संकेत हुआ और सब लोगों ने अपनी कमर में कुर्सी से बाँधने वाली बेल्ट बाँध ली, जिसमें तूफान में विमान के उछलने से आदमी लुढ़क न जाए। चार घंटे में सारी यात्रा पूरी करके हम सवा ५ बजे कलकत्ता के हवाई-अड्डे पर उतरे, और वैमानिक कम्पनी की टैक्सी पर मणि बाबू के घर पहुँच गए।

८ जून को भी कलकत्ता में रह जाना था। पत्रों में देखा, सिक्किम के शासन को प्रजा के प्रतिनिधियों से भारत सरकार ने ले लिया। राजा के निरंकुश शासन से तंग आकर प्रजा ने अपना प्रजामण्डल कायम करके शुरू

किया, जिससे मजबूर होकर राजा ने उसका मन्त्रिमण्डल बना शासन के कितने ही कामो को मन्त्रियो के हाथ मे दे दिया था। राजा अब भी बाज नही आता था। जब मन्त्री काबू मे नही आए तो उसने भारत सरकार पर प्रभाव डाला, और मन्त्रिमण्डल भग करके सरकार से प्रबन्ध के लिए एक दीवान माँग लिया। भारत सरकार ने राजा पर अनुग्रह दिखाया। यद्यपि सिक्कम भी भारत की दूसरी सैकडो रियासतो की तरह ही एक रियासत था, जो स्थिति बाकी रियासतो की हुई, वही सिक्कम की भी होनी चाहिए। ऐसी स्थिति मे उसे दार्जिलिंग जिले के साथ मिला देना चाहिए था, जिसके ही निवासियो के भाईबन्द सिक्कम भी रहते है। पर यह नही किया गया, सिक्कम को भारत सघ से बाहर रक्खा गया। उसे भूटान और नेपाल की तरह अलग राज्य माना गया। इस प्रकार एक और राजा को अब प्रजा को अगूठा दिखाने का मौका दिया गया, दूसरी तरफ भारतीय नौकरशाही का निरकुश शासन वहाँ पर स्थापित कर दिया गया। किसी ने इधर ध्यान देने की जरूरत नही समझी, यदि भारत की भूमि से वह बाहर का राज्य है तो उत्तर के पडोसी भी उससे स्वतन्त्र सम्बन्ध स्थापित करना चाहेगे। वस्तुत वर्तमान शताब्दी के आरम्भ होने तक सिक्कम और भूटान तिब्बत के अधीन माने भी जाते थे।

कलिम्पोग—६ तारीख को सवा १० बजे विमान उडा और १२ बजे से पहले ही हम बागडोगरा पहुँचे। आसमान साफ था, इसलिए हिमालय का दृश्य बडा सुन्दर दिखाई पड रहा था। चोमालुगमा (एवरेस्ट) की छटा निराली थी। पीछे श्वेत पर्वतमालाएँ और आगे की ओर हरे भरे पहाड थे। बागडोगरा मे मणि बाबू की मोटर मिली और थोडी देर सिलिगुडी मे ठहरकर हम ३ बजे धर्मोदय पहुँच गए।

दोपहर के वक्त कुछ गर्मी भी मालूम हो रही थी। कलिम्पाग ४००० फुट ऊँचा है। गर्मी से बिल्कुल बचने के लिए ६००० फुट की ऊँचाई चाहिए जहा जाडो मे बर्फ भी पड जाती है। "मधुर स्वप्न" समाप्त हो गया था। ११ जून से "आज की राजनीति" लिखना शुरू किया। जून के

मध्य मे वर्षा भी पूरी तौर से आरभ हो गई थी, और बाहर सवेरे घूमने जाना तभी हो सकता था, जब आसमान साफ हो।

कलिम्पोग आए डेढ़ महीना हो गया था। आने के साथ जितने शब्दो को लिखवाना था, उन्हे तरुण तरुणिया लिख चुके थे। हम जब तब जमा होने वाले शब्दो के लिखाने के लिए एक ही की आवश्यकता थी। श्री परमहस मिश्र १९३० से ही मेरे परिचित थे। वह यहाँ मिशन स्कूल मे अध्यापक थे। लिखने वाले लडके लडकियो का प्रबन्ध उन्होने ही किया था। मैंने उनसे कहा—कि कोई सबसे चतुर लिखने समझने वाले लडके या लडकी को भेजें। काम किए हुए लडकियो मे कमला परियार भी थी। परमहस जी ने उसकी ही सिफारिश की और वह १४ जून से आकर काम करने लगी। उसके अक्षर भी साफ थे। मेट्रिक पास होने से अग्रेजी भी ठीक, और हिन्दी का भी ज्ञान अच्छा था। मेट्रिक पास लडके लडकियो को काम मिलना आसान नही था। कमला शरीर मे बहुत दुर्बल और बेकारी से चिंतित थी उसकी पढने की इच्छा बहुत थी, लेकिन गरीबी की मार आगे कैसे बढने देती? वह हमारे यहा से पुस्तकें ले जाकर पढा करती।

१४ जून को शाम के वक्त टहलते हुए हम चन्द्रालोक म गए। आरा के श्री निर्मलकुमार जैन ने बडी साध मे अपने लिए यह मकान ऐसे कोने पर बनवाया था, जहा दूरबीन से पहाडी की दोनो तरफ की भूमि दूर तक दिखाई पडती है। जब तक सम्पर्क मे न आये तब तक आदमी के बारे म क्या पता लगता है, विशेषकर उसका, जो लेखनी का धनी नही हो। हमारी कई पुस्तकें उन्होने पढी थी, और सबसे पीछे निकली जो दास थे' को भी। इसलिए अपने बारे म परिचय देने की आवश्यकता नही थी। मुझे वह बडे ही अध्ययनशील और सुसस्कृत पुरुष मालूम हुए। सास्कृतिक वातावरण उनके सारे परिवार म था। उद्योग धधे के लिए बडे-बडे स्वप्न देखे। चीनी की मिलें ही नही स्थापित की, बल्कि अलमोनियम पैदा करने के लिए सबसे पहला कारखाना उन्होने ही स्थापित किया। पर आखिर मे सभी चीजो पर सटोरी सेठो का अधिकार हो गया। वह आर्थिक क्रान्ति को शका की दृष्टि

से नहीं देखते थे। दोनों भाई आजकल यहीं थे। कितनी ही देर बातचीत करने के बाद रात का साढ़े ६ बजे हम धर्मोदय लौट आये।

१५ तारीख से 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिखना शुरू किया। महेशनारायण लिखने में चुस्त और अक्षर भी उनके साफ बनते थे। घुमक्कड़ होने से सैकड़ों तरुण मुझसे घुमक्कड़ी के बारे में पूछते रहते, और जानना चाहते, कि उन्हें उस पथ पर कैसे आरूढ़ होना चाहिए। घुमक्कड़ होने की जिज्ञासा को इतनी बड़ी चढ़ी देखकर मुझे प्रसन्नता भी हुई और साथ-साथ मैं यह भी अनुभव करने लगा कि चिट्ठियों में उत्तर देने या ज्यादा से ज्यादा बात करने पर भी जिज्ञासा पूरी नहीं हो सकती, इसलिए इस पर एक पुस्तक लिखनी चाहिए। पुस्तक लिखते वक्त मुझे यह विश्वास नहीं था, कि उसके कदरदान तरुणों से बाहर भी काफी मिलेंगे। सबसे पहले श्री कन्हैयालाल मुन्शी के मुंह से इस सातवें शास्त्र की तारीफ सुनी। उसके बाद बिहार के दोनों विश्वविद्यालयों ने अपनी पाठय-पुस्तकों में उसके कुछ अंशों को स्थान दिया। मेरा तो बल्कि इसमें माथा ठनका। यह तो 'आ बैल, मुझे मार'' जैसी बात थी। तरुण तो घर छोड़कर भागने के लिए तयार बैठे रहते हैं। पाठय पुस्तक में यदि उसी के लिए उत्तेजना दी गई, तो यह विद्यार्थियों के माता पिताओं के भले की बात नहीं हो सकती।

इसी समय दक्षिणी कलकत्ता में पार्लियामेंट की एक सीट का पुन-र्निर्वाचन हुआ। श्री शरतचन्द्र बोस चौगुने वोटों से कांग्रेस उम्मीदवार को हराकर चुन लिए गये। कांग्रेस वाले कभी आशा नहीं कर सकते थे कि नेता जी के अग्रज और स्वयं भी देश के एक बड़े राष्ट्रीय नेता को वह हरा सकेंगे। फिर भी अपनी भद कराने के लिए उन्होंने कांग्रेसी उम्मीदवार खड़ा करा ही दिया।

इस वक्त 'मधुर स्वप्न' और 'घुमक्कड़ शास्त्र' दोनों की साथ साथ लिखाई हो रही थी, कभी कभी 'आज की राजनीति' पर भी लिखा जाता था।

महेशजी अभी नवतरुण थे। पढ़ने की उनमें तीव्र इच्छा थी, और

शक्ति भी रखते थे। यह सिर्फ हिन्दी जानते थे। आगे चक्कर संस्कृत या अंग्रेजी न जानने के लिए उन्हें अफसोस होता। यह सोचकर मैं उनसे कहता, आगे पढ़ो। वह भी इसे पसन्द करते थे, लेकिन साथ में रहते इतने काम थे, कि इच्छा होने पर भी काफी समय नहीं दे सकते थे। पहले भी मैंने कहा था यदि निर्द्वन्द्व होकर पढ़ना चाहते हो, तो साधु बन जाओ। साधु बनने का अर्थ महेशजी के जैसे लोग यह लगाते हैं, कि एक मर्तबे उस जाल मे पड़ा, तो फिर निकला नहीं जा सकता। लेकिन, यदि जाल इतना पसन्द आ जाए, तो निकलने की जरूरत ही क्या? मैं देखता था, साधु होकर आदमी विद्या के लिए आजीवन विद्यार्थी रह सकता है। बर्फ़ीमें कौडी के घुमक्कड़ी करने का उससे बढ़कर कोई रास्ता नहीं। महेशजी को कभी-कभी बात पसन्द आती और कभी बिदक जाते। विवाहित भी थे, और पत्नी से प्रेम भी था। शायद यही मार्ग मे बाधा थी। वह जब पाच छ वर्ष घर छोड़कर चले गए, तो पिता निराश होकर उनकी पत्नी को लिए एक दिन मद्रास पहुँच गए, और द्विपाद महाराज को चतुष्पाद बना दिया। खैर, उनमे हिचकिचाहट थी। मैंने इच्छा प्रकट करने पर एक बार अपने मित्र स्वामी सत्यस्वरूप जी को उनके बारे मे लिख दिया। यह भी निश्चय हो गया, कि दो-तीन मास के खर्च का कोई प्रबन्ध हो जाएगा। १८ जून को यह निश्चय कर लिया, कि जुलाई म महेशजी बनारस जाएँ।

पुस्तकों के लिखन का सवाल था। यह समस्या डेढ साल से सामने थी। कभी अनुकूल लिपिक नहीं मिलता। अनुकूल मिलता, तो वह अधिक दिनों तक साथ रहने के लिए तैयार नहीं होता, या हमे ही उसके भविष्य का ख्याल करके मामूली कलमघिसाई म उसके तरुण जीवन को बेकार करना पसन्द नहीं आता। महेशजी के जाने पर फिर वही परेशानी उपस्थित हुई। आखिर लिपिकों के बल पर ही भारत लौटने के बाद आधे दर्जन से ऊपर (कुछ काफी बडी बडी) पुस्तक मैंने लिखी। लिपिक के अतिरिक्त डायबेटीज भी एक समस्या थी। यद्यपि अब उसके छूटने की आशा बहुत कम रह गई थी, और यह भी हो गया था, कि इसकी परेशानी

से बचने के लिए हमे रोज इन्सुलिन लेना चाहिए। पर अभी तक उससे मैं बचता आया था। बहुत दिना तक बचा जाएगा, इसकी आशा नही थी। इसी समय हमारे यहा कमला भी काम कर रही थी। महेश जी के बाद लिखने का काम वह अच्छी तरह कर लेगी, और टाइप करना भी सीख लेंगी, जिससे हरेक पुस्तक की दा दा कापिया तैयार हा जाएँगी। इस तरफ से अब निश्चिन्तता हो गई।

धर्मोदय म जिस मकान म हम रहते थे, वह बहुत ही स्वच्छ और रहने के अनुकूल भी था। पर शहर के नजदीक हाने से कितना ही करन पर भी लोगो का आना जाना होता रहता था, जिसके कारण समय बरबाद हाता था। वैसे रविवार को मैं सारा समय भेंट मुलाकात के लिए देन को तैयार था। हम ढूढ रहे थे, कि कोई एकात अनुकूल मकान मिले।

१६ जून का रविवार था। सवेरे डा० रोयरिक के पास गया। किसी शायर का कहना ठीक ही है—"खूब निबहेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।" हम दाना एक ही मज के मरीज थे। तिब्बत के सम्बन्ध म हमारी न तृप्त होने वाली जिज्ञासा थी और उसी के लिए काम करना चाहते थे। डा० रोयरिक के साथ तै हुआ, कि धर्मकीर्ति के महान ग्रन्थ 'प्रमाणवार्तिक' का अग्रेजी मे अनुवाद किया जाए। उस समय यह काम पूरा नही हा सका। निश्चय हुआ, डा० रोयरिक तिब्बती अनुवाद से अग्रेजी मे करें और पीछे मैं सस्कृत से उसको मिलाऊँ। एक परिच्छेद का कुछ अनुवाद कर भी चुके थे, और तीन परिच्छेद रह गए थे। किसी को भी इस महान ग्रन्थ का अनुवाद करना ही होगा।

शाम का श्रीमती ज्योत्स्ना चटर्जी आई। वह विदुषी महिला कितनी ही बातो की जिज्ञासा रखती थी। उनकी भाभी श्रीमती बुलबुल दे प्रयाग विश्वविद्यालय म अध्यापिका हैं, उनकी भी कितनी ही जिज्ञासाएँ थी। आज की गोष्ठी म तो बल्कि ननद अधिकतर श्रोता रही। उस समय अभी यह मालूम नही था, कि हमे ज्योत्स्ना जी के बँगले को ही किराय पर लेना पडेगा।

उसी दिन स्वामी सत्यस्वरूप जी की चिट्ठी मिली, और उन्होंने महेश जी का प्रबन्ध कर देने के लिए लिखा था। महेश जी के जाने से हम कुछ हिचकिचाहट भी होती थी, क्योंकि कमला मुस्तैद थी, लेकिन बहुत अस्वस्थ सी दुबली पतली। इतने काम को सँभाल भी सकेगी, इसमे सन्देह था। महेश जी भोजनशाला की व्यवस्था और चीजो के खरीद फरोख्त का हिसाब भी रखते थे। इसी समय श्री रामेश्वरसिंह भी हमारे परिभाषा निर्माण के काम म सहायता देने के लिए चले आए थे। जिसको आदमी बचपन से देखे रहता है, बडे होने पर भी उसका बचपन का रूप ही सामने आता है। रामेश्वर जी छपरा जिले मे स्टेशन से दूर पोखरपुर गाव के एक बडे भद्र और सुसस्कृत परिवार मे पैदा हुए है। यह केवल शिष्टाचार के लिए मैं नही कह रहा हू। उनके पहले की पीढी ने अपने जीवन, शिक्षा और खेतीबारी म इतना परिवर्तन किया था, जिसकी उस गाँव मे आशा नही हो सकती थी। नागरिक-रुचि उनके परिवार म देखी जाती थी। परिवार न लडका ही नहीं, लडकिया तक को उच्च शिक्षा दिलाई। यद्यपि वह सामाजिक तौर से उतनी आगे नही बढी, लेकिन शिक्षित और सस्कृत बना देने पर अगली पीढी अपने आप रास्ता निकाल लेती है। अगर पहली पीढी छूत छात, श्राद्ध-मूर्तिपूजा से मुक्त हुई तो अगली पीढी जात पात से भी मुक्त हो जाए, इसम आश्चर्य या क्षोभ प्रकट करने की जरूरत क्या ? इस परिवार की एक लडकी न पिछले ही साल अपनी राजपूत बिरादरी छोडकर दाना कुला की पर्वाह न करके ब्याह किया। रामेश्वर जी बडे ही योग्य तथा आदर्शवादी तरुण है। सबसे मुश्किल यह है, कि वह बतासपखी हैं, किसी एक जगह दो-चार महीने स अधिक रहना उनके लिए मुश्किल है। पर, अभी वह भारत से बाहर नही गए। महेश जी के जाने पर रामेश्वर जी और सेनगुप्त भी कुछ काम सँभाल लेंगे, इसका भरोसा था।

२१ जून को पटना से धीरेन्द्रजी आए। अब और कामो के साथ हम नए घर की तलाश मे भी थे। धर्मोदय मे साल बिताने मे कोई दिक्कत नही होती। उस समय तो मालूम होता था कई साल यही रहकर काम करना

वाल ता मैं दाट्रा नही सकना था, क्याकि मेरी उमर या ही खतम नही हा रही थी। हफ्ते के साता दिन काम मे जुटा रहता था, और इसके कारण ही पता नही लगता था कि कब सुबह हुई, कब शाम और कब हफ्ता समाप्त हा गया ? हाँ, जिन्दगी के आखिरी सालो मे ता यह खच-खाने म जमा हो जाते थे। २७ जून को मैंने दाशनिक उडान भरते हुए लिखा था—"आदमी का शक्ति की सीमा समझ कर उसी के अनुसार काय अपने सामने रखना चाहिए और उतनी ही की चिन्ता करनी चाहिए। लोग खीचना चाहते है, किन्तु खिचाव म नही आना चाहिए।"

२८ को "आज की राजनीति" के प्रथम अध्याय को कमला न टाइप कर दिया। दूसरे की लेखनी की सहायता से लेखक को कितना सुभीता हाता है इसका अनुभव मेरा कई वर्षों का है। अब यह एक कदम और आगे था। यदि पुस्तक टाइप हो, ता उससे प्रेसवाले को भी आराम रहता है और कार्बन से एक कापी कराकर अपने साथ भी रखी जा सकती है। मेरी जीवन यात्रा के पचास पृष्ठ खोकर प्रेसवाला ने सिखला दिया था कि प्रेस कापी की एक नकल अपने पास जरूर रहनी चाहिए। मैं कभी रेकाडर पर बोल कर डिक्टेट करने की बात सोचता था। पर जब देखा, रिकाडर फिर उसी गति से ही दोहराता है, जिसका अथ है कि उसे द्रुतलिपि मे ही लिखा जा सकता है, और इसके बाद टाइप करने की नौबत आती है। यह अपने बस की बात नही मालूम हुई। अभी लिखकर टाइप करान की ही बात सोच रहा था, पर आगे तजर्बे ने बतला दिया कि टाइपराइटर पर बोल करके लिखाने म और भी सुभीता है। इसलिए पीछे उसीको अपनाया। ३० जून को 'घुमक्कड शास्त्र' समाप्त हो गया फिर "आज की राजनीति" नियमपूर्वक लिखना शुरू किया। १ जुलाई को फिर 'पार्वती' देखने गए। उसी दिन से अब कमला को साहित्य-सहायिका के तौर पर रखने का निश्चय कर लिया। २ तारीख को पार्वती" के देखने पर मालूम हुआ कि हम पाचो आदमी यहा रह सकते है। फर्नीचर कम थे, और मकान भी उतना अच्छा नही है। श्री निर्मलकुमार जी का एक मनका

इससे बेहतर मिल रहा था, लेकिन उसका किराया दो सौ रुपया मासिक था। हमने अन्त मे छ महीने के लिए पावती को ही लेने का निश्चय किया और उसके लिए लिखा-पढी कर ली।

"पावती"—३ जुलाई का सामान बाध बूधकर १२ बजे हम नए मकान मे पहुच गए। अब उसके दोष भी मालूम होन लगे। वस्तुत एक ओर माने के लिए एक बडा कमरा और एक कोठरिया थी। दूसरी तरफ दो कमरे भोजन और बैठक के लिए थे। इनके अतिरिक्त एक छोटी सी बराडे वाली कोठरी थी, दो छोटे-छोटे गुसलखाने भी। रसोईघर और भण्डारघर की कोठरियाँ एक साथ अलग थी। बगला कलिम्पोग के क्षेत्र मे पडता था, जहा हरेक मकान के लिए फ्लशवाला पाखाना होना अनिवाय था। आसपास चारो तरफ छोटी सी फुलवारी थी। खुली जगह थी। हमने बैठक के कमरे को काम करने का कमरा बना दिया। भोजन की मेज खुले बराडे मे लगा दी और उसके कमरे को शयनकक्ष म बदल दिया। बडे कमरे म भदन्त और सेनगुप्त का आसन लगा, अद्धे कमरे मे मैंने अपना आसन लगाया, उसकी बगल की बराडेवाली कोठरी महेश न दखल की। रामेश्वर जी अभी आए नही थे, पर, उनका आना निश्चय हो गया था। उस समय उनको कहा रखा जाए इसके लिए भी सोच लिया था— फोल्डिग चारपाई वाचनालय म बिछा देंगे। कुछ दिनो के लिए श्री विद्यानिवास जी आने वाले थे, दूसरे भी आ सकते थे। उनके लिए भोजनशाला की कोठरी तैयार थी। पहले दिन के तजर्बे से यह तो मालूम हो गया कि वहा स्थान हमारे लिए पर्याप्त नही है। मकान लेने पर अब अधिक अनुकूल बगले भी मिलने लगे थे लेकिन अब तो छ महीने के लिये "पावती' मे हम जम जाने के लिए मजबूर थे। 'पावती" से थोडा ही हटकर थोडी-सी चौरस कराई जमीन थी। सेठ जालान ने उसे सार्वजनिक उपयोग के लिए बना दिया था इसीलिए मैंने उसका नामकरण "जालान-स्थल" रख दिया। वह इतना छोटा था कि उसे मदान नही कहा जा सकता था और फल इतने नगण्य कि उसे फुल-

वारी भी नही कह सकते थे। मेरे लिए वह बडा ही उपयुक्त स्थान था। बरसात के कारण दूर टहलने के लिए नही जा सकता था, यहा उतने ही म सौ-पचास फेरे करके टहलने का काम पूरा कर लेता था। वहा से आसमान साफ रहने पर दूर हिमालय की हिमशिखर-पंक्तियाँ दिखाई पडती थी, रगित और तिस्ता नदियो की हरी-भरी उपत्यका का नयनाभिराम दृश्य सामने पडता था।

रसोइया एक लेप्चा-ईसाई प्रौढ मिल गया, जिसे हमने बिना भोजन के ३५ रुपए पर रख लिया। उसका काम इतना सतोषजनक रहा कि हम कलिम्पोग छोडते समय उसे साथ लाना चाहते थे, लेकिन वह अपना घर छोडने के लिए तैयार नही था। खैर, भोजन की किच किच हमारे लिए खतम हो गई। भट्ट जी हृदय की बीमारी से जमनी मे ही पीडित थे। यहाँ हर वक्त दवाई खाते रहते। ४ जुलाई की रात को उनकी तबीयत बहुत खराब हो गई हम लोग बडी चिता म पड गए। शहर से दूर रहना हमेशा नफे का सौदा नही रहता। शहर के पास रहे होते, तो डाक्टर को आसानी से बुला सकते थे। अब यहाँ से मील डेढ मील जा आधी रात को कैसे डाक्टर को बुलाया जाता। वर्षा जार शोर की होने लगी थी। क्या जाने उसका प्रभाव डा० भट्ट के स्वास्थ्य पर पडा हो।

६ जुलाई को श्री विद्यानिवास जी अपने भाई के साथ दस ग्यारह दिन के लिए आए। परिभाषा के काम करते हुए उन्ह सम्मेलन का वेतनभोगी कायकर्ता रहना पडता, जिसे उन्हाने पसन्द नही किया, क्योकि वह सम्मेलन का सरगम सदस्य रहना ज्यादा अच्छा समझते थे। इसी समय रेडियो से शब्दकोश बनाने का काम मिल गया था। वह शायद ज्यादा स्थाई हाता इसलिए उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया था। पुस्तको के लिखने से इतना उत्साह बढ गया था कि मैं सोच रहा था "मेरी जीवन-यात्रा" की तीसरी पोथी भी लिख डालू। पर उसे लिखने का मौका अब सात वष बाद मिला है। "पावती" आने का यह लाभ ता अब जरूर मिल रहा था कि मिलने-जुलने वालो के कारण समय अधिक बरबाद नही होता था। १० जुलाई

सोमवार को भी पाँच ही सात आदमी आ सके थे। ११ तारीख को राम स्वरूप जी भी आ गए। उन्होंने फार्मेसी विज्ञान लेकर हिन्दू यूनिवर्सिटी से बी० एस-सी० किया था। वह उसी की परिभाषाओं में लग गए। इसके लिए वह कितनी ही पुस्तकें भी साथ लेते आए थे। महेश जी का कुछ दिनों के लिए और रोक लिया, उनके जाने से काम की अड़चन मालूम होती थी। कमला लिखने का काम कर रही थी। टाइप पहले तो बेकायदा ही काफी सीख लिया था, पीछे बाकायदा सीखकर उन्होंने अपनी गति भी बढ़ा ली। लेकिन स्वास्थ्य बहुत दुर्बल था, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता था। वजन बिलकुल कम (९२ पौंड) था, और जब तक वजन न बढ़े तब तक शरीर में काम करने की पूरी शक्ति नहीं आ सकती थी। वैसे बुद्धि बहुत अच्छी थी। स्वास्थ्य पर सबसे अधिक ध्यान रखने की जरूरत थी, किन्तु उसकी तरफ से वह बेपर्वाह थी। स्वभावतः वह अस्वस्थ नहीं थी। घर की भीषण गरीबी ने बेचारी को ऐसा बना दिया था। ऐसी दरिद्रता की मार शायद ही किसी शिक्षिता तरुणी को खानी पड़ी होगी।

१२ जुलाई को तिब्बत के सबसे बड़े व्यापारी पन् इा-छाग् आए। यह उनके परिवार और घर का नाम है। वैयक्तिक नाम याद रखने का और लोग अधिक ख्याल नहीं रखते। देर तक उनसे बात होती रही। उनकी कोठियाँ तिब्बत के कई शहरों और कलिम्पोंग ही में नहीं है, बल्कि पूर्वी तिब्बत (खम् प्रदेश) और चीन में भी कई शाखाएँ है। चाग-काई शेक और कूमिन्ताग के शासन का उनको वैयक्तिक अनुभव था। वह नहीं चाहते थे, कि कूमिन्ताग चीन में और रहे। चीन से चाग-काई शेक का पतरा कट ही गया था। पूछ रहे थे—तिब्बत को क्या करना चाहिए? मैंने कहा—बाहर की सहायता की आशा रखना बेकार है, चीन ही तिब्बत का अपना है, और सदा से रहा है। चाग-काई शेक का राहु अब सिर से उतर गया है। कम्युनिस्ट तिब्बत की भलाई के लिए सब कुछ करेंगे। पुरानी व्यवस्था अब चल नहीं सकती। बाहर भागने का भी ख्याल छोड़कर आप लोगों को अपने देश में रहना चाहिए। आपकी योग्यता देश की सेवा के लिए आवश्यक है,

कम्युनिस्ट उसे उपेक्षित नहीं करेंगे। पीछे पन्-ड्रा छाग कलिम्पाग में कम्युनिस्ट चीन की ओर से कौंसिल जेनरल बने। इसी से मालूम होगा कि नवीन चीन गुणों का कितना कदरदान है। और तिब्बती व्यापार के लिए उनसे बढ़कर योग्य आदमी मिलना भी मुश्किल था। उस दिन पन् ड्रा-छाग ने कम्युनिस्ट चीन के प्रति सद्भाव दिखलाया था, वह केवल अपने हृदय के भावों को प्रकट करता था, क्योंकि मेरे सामने उन भावों के प्रकट करने से उन्हें कोई लाभ नहीं था।

१७ तारीख को जेनरल सोमाङ (सुर-खङ्=कोने का घर) से मुलाकात हुई। अफवाह उड़ी थी कि ल्हासा में चाग काई शेक के प्रतिनिधि को मार डाला गया। ल्हासा से डाक तार का सम्बन्ध टूट गया था, इसी कारण यह अफवाह उड़ी थी। जेनरल ने बतलाया, कि चीन से सम्बन्ध विच्छिन्न करने के लिये तिब्बती सरकार चीनियों को ल्हासा से विदा कर रही है। अर्थात् अभी ल्हासा सरकार नवीन चीन से बात करने के लिए तैयार नहीं थी।

कलिम्पोग में जिन परिवारों से हमारा हेलमेल हुआ, उनमें एक आयरिश महिला श्रीमती क्रिस्प भी थी। वह आयरिश होने के कारण अपने अग्रेज कर्नल पति के भावों के विरुद्ध भारतीयों के साथ सहानुभूति रखती थी। अग्रेज अपने मकानों को बेचकर चले गए थे, वह भी अपनी कोठी को बेचकर आयरलैंड चली जाना चाहती थी, और उनका इकलौता बेटा आस्ट्रेलिया में जाकर बसना चाहता था। १३ जुलाई को हम घूमते हुए उनके बगले को देखने गए। दोमंजिला विशाल बगला था, जिसमें आठ कमरे दो भोजनशालाएँ और डायनिंग रूम भी थे। किराया चार-सौ रुपया मासिक माग रही थी, और पास के बगले को १६० हजार रुपए में बेचना चाहती थी। अब विशेष आमदनी रह नहीं गई थी, कभी सीजन में एक दो अपने खर्च से रहने वाले मेहमान आ जाते उनसे क्या बनता? हमारे रहते मकान नहीं बिक सका, पर पीछे प्राय डेढ़ लाख में सरकार ने उसे खरीद लिया।

कमला का शाम को डेढ मील चलकर लौटना बहुत मुश्किल था, इसलिए उनके रहने का भी कोई इन्तजाम करना था साच रहे थ कि महेश के जाने पर वही कोठरी उनको मिल जाएगी। कमला की चचेरी बहिन छाता (बलिया) के कलिम्पोग म बस गए वकील बाबू राधा माहन की पत्नी थी। एक दिन वह अपने ननद के साथ आई। ननद हमारे छपरा के महमूदपुर म व्याही हुई थी, जहा मैं कितनी ही बार गया था। डा० भट्ट और सनगुप्त दोना ही योग्य और दाना ही मरे प्रिय थ, लेकिन दानो के स्वभाव म कुछ असाधारणता थी इसलिए कभी कभी खटपट हा जाती थी। १४ का दाना म बहुत झगडा हो गया। यही अच्छा समझा कि उनकी चारपाइयाँ अलग-अलग कमरो म रख दी जाएँ।

१६ तारीख को "पावती" से सेनगुप्त के साथ महेश कलकत्ता के लिए और विद्यानिवास जी प्रयाग के लिए रवाना हो गए। इतन दिना तक चहल पहल रही, अब उनका अभाव कुछ दिना तक खटकता रहा। उसी दिन कजाकों की बनाई मामा आई, और इतनी अधिक कि हम लाग उसे खा नही सके। मामो समोस की तरह आटे के भीतर गोश्त का कीमा डालकर भाप म उबाला चीनी भोजन है। मुझे यह बहुत प्रिय है। चीनी तुर्किस्तान से भागे हुए कजाका म से एक दो परिवार यहाँ बस गए थे। वह भी मोमो के प्रेमी है। उन्होने बडे प्रेम स हमारे लिए भोजन भेजा था।

१८ तारीख को वर्षा हो रही थी उसी समय कही स होते भीगती हुई श्रीमती क्रिम्प अपन पुत्र और एक और अंग्रेज महिला श्रीमती आइरिन राय क साथ आइ। श्रीमती राय ने इगलैंड म पढते एक भारतीय डाक्टर से ब्याह किया था। इस समय गर्मिया म यहाँ आकर क्रिश्चियन परिवार म रह रही थी। मालूम हुआ वह बहुत अच्छा टाइप कर लेती हैं। पीछे उनकी गति असाधारण मालूम हुई। हम अब काम क अंग्रेजी शब्दा को पुस्तकाकार टाइप कराना था, जिसके लिए उनसे कहने म हिचकिचाहट मालूम होती थी। क्योंकि उनका पारिश्रमिक भी कम देना नही होता और शायद ही वह इसके लिए तैयार होती। मालूम हुआ, पति से कुछ अनबन

है। (पीछे दोना का प्रेम पूववत् स्थापित हो गया) श्रीमती राय न खुशी से काम को स्वीकार कर लिया, किन्तु पारिश्रमिक स्वीकार करान म हम काफी कठिनाई पडी। वह जब टाइप करती, तो खटखट की आवाज इतनी जल्दी जल्दी आती कि विश्वास नही होता था, इतनी तेज गति से टाइप पर अगुलिया चल सकती है। उनके आने से कमला को भी एक बडा लाभ हुआ। कमला हिन्दी टाइप करने लगी थी, लेकिन उन्होने टाइप करने की विधि को बाकायदा सीखा नही था। आइरिन जैसा गुरु उन्हे दूसरा कहा से मिलता? उन्होने बडे प्रेम से कमला को टाइप करना सिखाया, यद्यपि यह नागरी टाइपराइटर था, लेकिन टाइपराइटरा की कुजिया और उन पर अगुली रखने की विधि तो एक ही तरह की है। कुछ दिनो म कमला उसे सीख गई और उसकी टाइप करने की गति भी बढ गई।

२४ जुलाई को कोमिन्ताग रेडियो से पता लगा ल्हासा मे कम्युनिस्टो का प्रभाव बढ गया है और हमारे प्रतिनिधि को निकाला जा रहा है। विरोधियो के नेता सुर खङ चाङ से हैं। सुर खङ चाङ् से हमारे परिचित जेनरल के बडे भाई थे। उस दिन मध्याह्न का भोजन मैंने उनके ही साथ किया था। अब ल्हासा मे यह सोचा जा रहा था कि कोमिन्ताग के आदमियो का उत्तर मे तुगनो के इलाके म या भारत मे भेज दिया जाय।

**तीसरी बार दिल्ली**—२५ को फिर अनुवाद समिति के काम के लिए बागडोगरा जाकर ११ बजे का विमान पकडा। मालूम हुआ कि चश्मा भूल आए। चश्मे के बिना दिल्ली मे जाकर कैसे क्या करता? पढने के लिए वर्षो से उसकी अनिवाय आवश्यकता थी। दोपहर बाद कलकत्ता पहुच पहले ही चिन्ता हुई कि एक चश्मा लिया जाये। धमतल्ला म एक चश्मेवाली दूकान पर गए। पर वह विधि विधान बतलाने लगे—पहले आँख मे दवाई डालेंगे फिर जाँच करके नम्बर का पता लगाया जायगा तब चश्मा देंगे। मैं 'नौ मन तेल' की राह मानने के लिए तैयार कैसे हो सकता था? अगले ही दिन मुझे दिल्ली पहुँचना था। मैंने कहा, जो चश्मा मेरे आख मे लगता है तडाक फडाक उसे मुझे द दीजिए। ५० रुपये पर

चश्मा खरीद लिया। बडी दूकान थी, नही तो दूसरी जगह वह इससे चौथाई दाम पर भी मिल जाता। सेनगुप्त कुछ दिनो के लिए छुट्टी पर घर गये थे। वह भी मिले, और सेंगरजी भी। कलकत्ता पहुचने पर सेंगर जी के साथ रहने का घटा अवसर न मिले यह हो नही सकता था। २६ जुलाई को ७ बजे सवेरे रवाना होने वाला विमान जाकर पकडा। यह बिडला कम्पनी का था, जो पटना, बनारस, लखनऊ म रुकता साढे छ घंट म दिल्ली पहुचने वाला था। छोटा विमान पाँच हजार फुट ही तक ऊपर उडते है, धरती के नजदीक उडने के कारण विमान के भीतर गर्मी मालूम हो रही थी। डेढ बजे मैं दिल्ली पहुँचा। उसी दिन ३ बजे अनुवाद समिति म उपस्थित हुआ, वह काम रोज चलता रहा।

२९ जुलाई को मेरे सबसे छोटे अनुज श्रीनाथ अपने दोनो पुत्रो ओमप्रकाश और जयप्रकाश को साथ ले आये। अभी भी वह किसी मिठाई की दूकान से मिठाइयाँ लेकर फेरी करते थे। दस-बारह वष दिल्ली मे रहते हो गए लेकिन वह फेरी म ही लगे रहे। यदि खानदानी बनिए होते, तो इतने समय म दूकान खडी कर लिए होते। कह रहे थे अगर रुपये होते, तो हम अपनी दूकान इस वक्त खडी कर सकते थे। मैंने २१०० रुपये उन्हे इसके लिए दिये भी, परन्तु व्यवसाय की बुद्धि कुछ दूसरी ही होती है। वह फिर फेरीवाले ही बने रहे। हाँ, शहर म रहने से उनके लडको को कुछ पढने का सुभीता था, पर वह तो घर के दूसरे लडको को भी हो रहा था।

दिल्ली म चारो ओर अंग्रेजी का वातावरण है। २६ तारीख को एक महिला को अपने कुत्तो के साथ अंग्रेजी म बात करते सुना। सुना भी था कुत्ते अंग्रेजी ही मे बोलने पर समझते हैं। मेरा विश्वास ऐसा नही है। मसूरी आने पर मैंने चार हफ्ते के भूतनाथ को अपने पास रक्खा। वह पाँच बरस का हो गया है, लेकिन अंग्रेजी का एक अक्षर भी नही समझता। इस वक्त संविधान-सभा म अंग्रेजी का स्थान हिंदी ले या न ले, इस पर विवाद छिडा हुआ था। जिन नौकरशाहो की रोटी अंग्रेजी पर चल रही थी, अपनी जिंदगी भर उससे महरूम होने की गारंटी देने पर भी वह हिंदी को आगे

बढ़न देना नहीं चाहते थे। दिल्ली में सभी कार्यालयों में केवल अंग्रेजी के बल पर जो लोग छाये हुए हैं, वह हिन्दी के सख्त विरोधी हैं, और अफसोस तो यह कि नेहरू का भी बल उनको प्राप्त था। आजकल अंग्रेजी और भाई भतीजा भाजा या बहिन भतीजी भाँजी यह दो धाम्यनाएँ ही आदमी का ऊँचे दर्जों पर पहुचा सकती हैं। यह पक्षपात अत्यन्त भयंकर है। लोग कड़ी आलोचनाएँ करते हैं उनके दिलों में आग जल रही है। हमारे एक महा पुरुष की बहिन के समधी की लड़की एक विभाग में ऊँची नौकरी पर थी। ब्याह होने के बाद उसे नौकरी से अलग कर देना चाहिये था। लेकिन जब देवातिदेव के सम्बन्ध की बात हो, तो उसे हटाने की कौन हिम्मत कर सकता है? ऊपर एक जगह यदि ऐसा अन्याय हो रहा हो, तो नीचेवालों को उससे क्या न प्रोत्साहन मिले?

"घुमक्कड शास्त्र" के लिए राजकमल वालों ने एक हजार रुपया अग्रिम भी दे दिया। अब वे उसके तीन फार्म छपे भी मिले। शास्त्र १९४९ में ही छप गया था लेकिन उसकी तीन हजार कापियाँ १९५६ में समाप्त हुई। यह बतलाता है कि हिन्दी पुस्तकों की खपत कैसी है? इसी यात्रा में हिन्दी के लिए अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया गया था, उसमें भी भाग लेना था। सेठ गोविन्ददास जी ने सुझाव दिया था—वही सम्मेलन के सभापति थे—कि भारत के सभी प्रान्तों के विद्वानों का सम्मेलन करके उसमें हिन्दी के पक्ष का समर्थन कराया जाए, तो उसका असर पार्लियामेंट के ऊपर बहुत पड़ेगा। सम्मेलन ने इसके लिए बीस पच्चीस हजार रुपये खर्च किये, लेकिन वहां जैसी मूर्तियाँ आई थीं उनमें से कितनों को देखकर निराशा होती थी। डा० नीलकंठ शास्त्री हिन्दी और उर्दू दोनों को राष्ट्र भाषा बनाने के पक्षपाती थे, क्योंकि दोनों के काले अक्षर उनके लिए भैंस बराबर थे। इसके साथ ही वह यह भी जानते थे कि शिक्षा विभाग के देव आजाद और भारत सरकार के महादेव उर्दू के समर्थक हैं। उर्दू हिन्दी भाड़ में जाये, उन्हें तो देवों महादेवों की कृपा कटाक्ष की आकांक्षा थी। विश्व विद्यालयों और कार्यालयों में तो वह अनन्तकाल तक के लिए अंग्रेजी को

चाहते हैं। सुनीति बाबू हिन्दी भाषा और देवनागरी का स्वतन्त्र देश के लिए अलकार की चीज रखना चाहते थे। दूसरे देशों के साथ दौत्य सम्बन्ध स्थापित करने में इनका मर्यादित व्यवहार होना चाहिए लेकिन सरकार और विश्वविद्यालयों का माध्यम अंग्रेजी ही रहे। डा० खाडे का विचार बहुत सुधरा हुआ था, और वह संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी जानते थे कि हिन्दी ही हमारे देश की सम्मिलित भाषा हो सकती है। डा० कुन्हन राजा संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनी देखना चाहते थे।

६ अगस्त को सवेरे ८ बजे इम्पीरियल होटल में भिन्न भिन्न प्रदेशों से आये विद्वानों की एक बडी गोष्ठी हुई। ९ बजे से साढे ११ बजे तक लोगों ने अपने विचार प्रकट किए। अधिकतर लोग हिन्दी के पक्ष में थे और दस पन्द्रह साल की अवधि के भीतर अंग्रेजी को पूरी तौर से हटा देने के पक्षपाती थे। लोगों ने अंग्रेजी में भाषण दिए। मैं देख रहा था, सभी प्रातों से आये हुए विद्वान् संस्कृत जाननेवाले थे इसलिए मैंने अपने विचारों को संस्कृत के माध्यम से रक्खा जिसे लोगों ने पसन्द भी किया। खैर, इस गोष्ठी से हवा का क्या रुख है, इसका पता लग गया। दोपहर बाद कान्स्टिट्यूशन भवन में विद्वद् परिषद् की बैठक हुई। डा० काणे आ नहीं सके थे सुनीति बाबू अंग्रेजी की ओर ज्यादा खिसक गये थे, इसलिए डा० गोडबाल को सभापति चुना गया। डा० राघवन डा० नीलकण्ठ शास्त्री तमिलनाड के, मलाबार के महाकवि वल्लतोल और चन्द्रहासन, कन्नड के नागप्पा और इसी तरह दूसरे विद्वानों ने भी भाषण दिये। मुझे संस्कृत में बोलने का आग्रह किया गया, मैं उसमें ही बोला। फिर महामहोपाध्याय गिरधर शर्मा ने कहा, राहुलजी ने रास्ता दिखला दिया, इसलिए मैं भी संस्कृत में ही अपने विचारों को प्रकट करता हूँ। उस परिषद् में कितने ही ऐसे विद्वान् थे जो हिन्दी नहीं समझते थे। परिषद् ६ बजे तक रही। बहुत अधिक संख्या में लोगों ने हिन्दी का समर्थन किया। अगले दिन फिर परिषद् हुई जिसमें प्रस्ताव पास हुए—भारत की राष्ट्रभाषा नागरी लिपि में हिन्दी होना चाहिये, अन्तर्राष्ट्रीय कामों के लिए हिन्दी तुरन्त अपनाई जानी चाहिए

अन्तर्प्रांतीय तथा केन्द्र के कामो मे दस साल के भीतर हिन्दी को हो जाना चाहिए, सभी विद्यार्थियो को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी और हिन्दी भाषियो को कोई एक दूसरी भाषा अनिवार्य रूप से पढाई जानी चाहिये। आदर्श वाक्यो के लिए संस्कृत भाषा का भी इस्तेमाल करना चाहिये। शाम को दो बजे से साढे ७ बजे तक की परिषद् मे उक्त प्रस्ताव एक मत से पास किये गए।

उस दिन रात को श्री शिब्बनलाल सक्सेना से बहुत देर तक बात होती रही। उस समय रूस मे देर तक रहकर लौटनेवाले भारतीय कम ही थे। सक्सेना जी ने मुझसे रूस के बारे मे बहुत सी बाते जाननी चाही। उसके बाद उन्हे कम्युनिस्ट चीन और कम्युनिस्ट रूस को अपनी आखो अच्छी तरह देखने का मौका मिला, और समझ गये कि वहा कितनी शीघ्रता से परिवर्तन हुआ है, लोगो की हालत बेहतर होती जा रही है। उसी दिन श्री महेश प्रसाद श्रीवास्तव भी आ गए। उनके साथ तो आधी रात के बाद तक बात चलती रही। मैं श्रोता ज्यादा था और वक्ता महेश प्रसाद जी थे। वह काग्रेस मे भाग लेते कई बार जेल गये थे। उसी समय मे विजय-लक्ष्मी और दूसरे नेताओ के सम्पर्क मे आये थे। रहनेवाले रीवा के किसी गाव के है। जब विजयलक्ष्मी जी भारत की राजदूत बनकर रूस जाने लगी, तो महेश प्रसाद जी के कहने पर उन्हे चपरासी बनाकर ले गई। श्रीवास्तव साल भर उनके साथ मास्को मे रहे। हिन्दी अच्छी जानते थे और हिन्दी टाइप करना भी जानते थे। वह चपरासी बनकर गए लेकिन मास्को मे जाने पर उनको अवसर मिला, जब कि सोवियत सरकार के रुख को देखकर भारतीय दूतावास को अपनी लिखा पढी मे हिन्दी को अपनाने के लिए मजबूर होना पडा। वहा जो आई० सी० एस० और दूसरे महानौकरशाह गये थे, वह सभी अग्रेजी का दूध बचपन से पिये हुए थे। हिन्दी से उनका कोई वास्ता नही था। एक रूसी सहायिका श्रीवास्तव से पूछ रही थी—अमुक महाशय अपने छोटे छोटे बच्चो से अग्रेजी मे क्यो बोलते है? यह शका उस अल्पशिक्षित रूसी महिला के दिमाग मे उठ सकती थी, लेकिन

हमार इन्डो आग्लियन लोगो की समझ मे आने की यह बात नही थी। काम तो तब आय जब आदमी कुछ समझ पाये । श्रीवास्तव न उनसे कहा— वह भाषा का अभ्यास करा रहे हैं। यह गलत बात थी। अभ्यास नही करा रहे थे, बल्कि अपने साहबजादे और साहबजादियो का आभिजात्य वर्ग मे रखने के लिए यह जरूरी है कि अपनी भाषा का तिरस्कार किया जाये और अग्रेजी का अपनाया जाए। विजयलक्ष्मी जी के साथ एक हरिजन रसोइया भी प्रयाग से गया था। हमारे देशी साहब मेम यूरोपीय पक्वाना को भी खा लेते हैं लेकिन बचपन की मसालेदार चटपटी चीजें उनके मुह से नही छूटती, इसलिए भारतीय रसोइय की भी जरूरत पडी। हमारे देश मे काम करनेवाले नौकर-चाकरा के ऊपर यदि मालिक की बडी दया हुई तो वह कभी कभी कुछ मीठी बातें बाल देते है। वह आदमी होने के नाते बराबर मान जाए इसकी ता कल्पना भी नही हा सकती। वहा रूसी विदेश-विभाग का कोई बडा अफसर आता और यदि अवसर होता तो रसोइय के साथ मेज पर बैठ के चाय पीता, और दिल खोलकर बातें भी करता। रसोइया रूस से खुश क्या न हाता ? एक बार तो किसी अभद्र बर्ताव से असतुष्ट होकर वह सोचने लगा था कि वही का हो जाये। भारतीय दूतावास के सभी छोटे नौकर रूस से खुश थे, क्योकि वहा के बडे आदमी भी उनके साथ समानता का बर्ताव करते थे, पर घुट नौकरशाह रूसियो की हरक बात पर नाक-भौ सिकोडते थे। वह रूसियो से मिलते भी नही थे। भाषा की दिक्कत थी, लेकिन उसे वह काफी दूर कर सकते थे। उनका उठना बैठना ज्यादातर इगलण्ड और अमेरिका के दूतावासियो से होता था, जिसे रूसी बडे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। विजयलक्ष्मी अपने सारे काल म रूस का भारत क नजदीक नही ला सकी, इसका यही कारण था।

प्रयाग—६ अगस्त को अनुवाद समिति का काम करके उसी दिन रात को प्रयाग की ट्रेन पकडी। दिल्ली की इतनी दौड धूप गर्मियो म हो रही थी। यद्यपि हम अधिकतर कलिम्पोग म रहते थे, लेकिन पहाड से नीचे

उतरने मे राआ गिर जाता था। अब सोचना था, अच्छा हो यदि फिर जाडों से पहले दिल्ली जाने की जरूरत न पडे। १० अगस्त को साढे ६ बजे प्रयाग पहुँच गए। स्टेशन पर सेनगुप्तजी मिले। श्रीनिवासजी के यहा भाजन करके सम्मेलन कार्यालय म पहुँचे। "प्रत्यक्षशारीर" और दूसरे भी कई कोश अब प्रेस के लिए तैयार थे। यहाँ देखा, छापने की गति अत्यत मन्द है। यह बडी निराशाजनक बात थी, क्योकि कम से कम आधे दजन कोशो के प्रकाशित होने पर ही हमारी गाडी तेजी से चल सकती थी।

कलिम्पोग—१२ अगस्त को सवेरे रामबाग मे कटिहार जाने वाली छोटी लाइन की ट्रेन पकडी। ट्रेन मे पहले दर्जे का डब्बा नही था, इसलिए दूसरे दर्जे का टिकट बदलवाना पडा। १३ तारीख के सवेरे गाडी बरौनी से आगे बढी और साढे ११ बजे कटिहार पहुँची। समय नही था इसलिए उतर कर मित्रो से नही मिल सका। आगे जाने की गाडी तुरन्त तयार थी, धीमी-धीमी चलती १० बजे रात को नक्सलबाडी पहुँची। वहाँ से एक रुपया दे बस पर चढ सिलिगोडी स्टेशन पहुँचा। एक टैक्सी से बात कर उसी मे रात को सो गए। जल्दी थी, इसलिए मनमाना किराया देना मन्जूर किया। २८ रुपया दो आदमियो का भी बहुत होता था टैक्सी भी बहुत पुरानी थी और डर लगने लगा, रास्ते मे ही कही बैठ न जाए। खैर किसी तरह ८ बजे हम "पार्वती" पहुँच गए।

कमला ने टाइप करने मे बडी प्रगति कर ली थी। अपने मन से हिन्दी की पुस्तके पढ भी रही थी। हमने सोचा कि इसी साल सम्मेलन की विशारद परीक्षा दे दें लेकिन कलिम्पोग या पास मे उसका केन्द्र नही था, इसलिए उस साल वह नही हो सका। श्री सेनगुप्त लखनऊ म डा० मालवीय और दूसरी जगह के विद्वानो से परिभाषाएँ लेने के लिए रह गए थे। "पार्वती" डा० भट्ट और रामेश्वरजी काम म लगे हुए थे। एक दिन बारिश मे कमला बहुत भीग गई, इसलिए १८ अगस्त से उन्हें भी यहीं रहने का इन्तजाम करके परीक्षा की तैयारी करने के लिए कह दिया। कमला के पिता मर गए थे और पाँच भाई-बहिनो के परिवार म बडा भाई मुश्किल

से अपने रान बच के लिए कमा पाता था। माँ दर्जी का काम करती थी, लेकिन उसके पास किराय की मशीन थी। मैंने कमला से कहा, एक मशीन खरीदकर अपनी माँ को दे दो। वह दे आई। बेटे ने जो नहीं किया, वह बेटी ने किया, इससे माँ को खुशी होनी ही चाहिए थी।

कमला अब बहुत नजदीक आ गई थी। बतला चुका हूँ कि डायबटीज मे इन्जेक्शन और लिखने के काम म सहायता की। इधर कितने ही समय से मुझे बडी चिन्ता थी कोई स्थायी व्यवस्था करनी आवश्यक थी। यह कमला कर सकती थी। फिर उनके स्वभाव को देखा। पढने की लगन तथा तीव्र बुद्धि थी, इसलिए और घनिष्ठ होना स्वाभाविक था। श्रीमती राय ने अब टाइप करने मे उन्हे पण्डित बना दिया था, और दो घन्टे म एक लेख टाइप कर डालना उनके लिए आसान था।

चीन मे कम्युनिस्ट मुक्ति सेना ने लचाउ शहर को लेकर ८ सितम्बर तक तुगन के नादिरशाह की राजधानी सिनिंग को भी ले लिया था। पकिंग रेडियो ने घोषणा की तिब्बती भाइयो को भी हम प्रतिगामियो के हाथ मे नही छोड सकते। यह भी पता लगा कि ४० खच्चरो पर सामान लादकर दो अमेरिकन ल्हासा जा रहे है। यह किसलिए ? चीन मुक्ति सेना का ल्हासा म आना वह कैसे पसन्द कर सकते थे ? वह चारो तरफ हाथ पैर मार रहे थे। लेकिन, इसका अन्त मे कोई फल होगा इसकी सभावना उस वक्त भी नही मालूम होती थी। मैं तो एक तरह वैसे ही खुफिया पुलिस की दृष्टि म खतरनाक आदमी था। अब कलिम्पोग मे आकर तिब्बत की सीमा के पास बैठ गया था। इगलण्ड के किसी पत्र ने इसका उल्लेख भी किया था, लेकिन, बातो के सिवा मेरा और किसी काम स कोई सम्बन्ध नही था। मेरी पूरी सहानुभूति चीन के साथ थी। मैं जानता था, तिब्बत की भलाई चीन के साथ रहने म ही है, और वह छोडकर उसके लिए कोई रास्ता भी नही है। इस बात को छिप छिपकर कहता या सोचता था, यह बात नही थी। मैंने इसके सम्बन्ध मे "नवीन चीन स्वागत" आदि लेख भी लिखे थे। जो आदमी अपनी सब बातो को साफ खोलकर रखता है, उसके

ऊपर खुफिया को रखकर हजारों रुपये खर्च करने की क्या जरूरत ? इस प्रश्न का जवाब तो दिल्ली के देवता ही दे सकते हैं।

१० सितम्बर को श्री सेनगुप्त का जन्म-दिवस था। घर भर की एक पार्टी हुई। आसपास के कई पडोसी भद्रपुरुष और महिलाएँ भी शामिल हुए। वर्ष के आरम्भ ही से सेनगुप्तजी अपने ज्योतिष के बल पर घोषित कर रहे थे कि इस साल तो मुझे मर जाना है। श्री विद्यानिवास जी भी फलित ज्योतिष के विद्वान् हैं। यह मैं मानूँगा कि सेनगुप्त इस विद्या में उनसे कम पारगत नहीं थे। जब विद्यानिवास जी ने यह बात सुनी, तो कहने लगे—भारी बेवकूफी है, ज्योतिष के ग्रहों को अपने ऊपर थोड़े ही घटाया जाता है। मैंने सेनगुप्त से वर्ष के आरम्भ ही में कह दिया था, "इस साल ग्रहों से बचाने की जिम्मेवारी मैं ले रहा हूँ। लेकिन, अब फिर तुम अपने ज्योतिष के नाग को अपने ऊपर मत लगाना।" और सेनगुप्तजी अब स्वस्थ और प्रसन्न हैं। उस साल तो बड़े ही निराशावादी थे, स्वास्थ्य भी उनका अच्छा नहीं था। पेनिसिलिन की दादी स्ट्रेप्टोमेसिन अभी दुर्लभ थी, लेकिन उसके भी इन्जेक्शन वह ले रहे थे। ऊपर से शंका का भूत सवार था।

रामेश्वरजी बड़े कमठ तरुण थे। काम में जुट जाना उनके स्वभाव में था। लेकिन, लकवा का असर उनकी एक आँख पर था, जिसके कारण देर तक पुस्तकें देखने पर उनकी आखों से पानी बहने लगता और दर्द शुरू हो जाता। घन्टा-भर भी पुस्तक देखना उनके लिए मुश्किल था। ऐसी अवस्था में काम में उनका मन नहीं लग रहा था। ऐसे तरुण का खोना हमारे लिए अफसोस की बात थी। धीरे धीरे यह भी पता लग रहा था कि शायद परिभाषा का काम हम ज्यादा दिनों तक न कर सकेंगे। जब तक पं० बलभद्र मिश्र सम्मेलन के प्रधानमंत्री थे, तब तक हम हर तरह की सहायता मिल सकती थी तैयार परिभाषा-कोषों के छपाने के बारे में वह भी विशेष नहीं कर सके थे। अब तो सम्मेलन के अपने प्रेस में मोनो टाइप भी आ गया था, लेकिन तब भी श्री सीताराम गुठे जैसा कोई प्रबन्धक नहीं मिला था,

जिसके कारण सारे साधना के रहते भी काम आगे नही बढ सकता था। सोचता हूँ, यदि प्रेम न मुस्तैदी से काम करना शुरू किया होता, तो हम परिभाषा के काम को आगे बढा सकते थे। सम्मेलन की भीतरी राजनीति से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था। मैं सभी दलो को साथ लेकर चल सकता था। पर परिस्थितियाँ बतला रही थी, कि अब ज्यादा आशा नही रखनी चाहिए।

परिभाषा के काम के ही लिए अनुकूल ठण्डी जगह ढूढकर हम कलिम्पोग म आये थे। यहाँ से हटने पर मुझे किसी दूसरे स्थान की तलाश भी करनी थी। कोटगढ से डा० भगवानसिंह अब भी पत्र लिख रहे थे। उन्होंने एक अच्छा-सा बगला भी ठीक किया था, पर वहाँ बिजली पानी का करीब-करीब अकाल पड जाता था, नौकर मिलना और भी मुश्किल था।

१८ सितम्बर के एक पत्र से मालूम हुआ, कि सविधान सभा ने हिन्दी और देवनागरी लिपि को राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि स्वीकार कर लिया, हाँ, अग्रेजी अको के साथ। आजाद खुलकर और उनके साथ नेहरू भी पहले जी-जान से कोशिश करते रहे, कि हिन्दी को स्वीकृति मिले ही नही। पर लोग उनके साथ नहीं थे, इसलिए चलते चलते खिसियानी बिल्ली की तरह उन्हे अग्रेजी अको को मत्थे मढने म सफलता हुई। हरेक लिपि के लिखने की अपनी विशेष कलम होती है। उसी से अक्षर भी लिखे जाते हैं और उसी से अक भी। कोई सुलेखक हिन्दी लिखने की कलम से अग्रेजी अको के लिखने म असमर्थता दिखा सकता है? हिन्दी के मजूर होने पर आजाद ने वह विलाप शुरू किया, जो मन्दोदरी ने भी रावण के मरने पर नहीं किया होगा। और लारी साहब ने तो मेम्बरी से इस्तीफा ही दे दिया। और अन्त मे पाकिस्तान हाई कोर्ट की जजी सभालने चले गए। सविधान ने पन्द्रह साल तक के लिए अग्रेजी की नीव मजबूत कर दी, सविधान के निर्माताओ को उस समय भी विश्वास था, कि पन्द्रह साल बीतने के बाद हमारी जिन्दगी बरकरार रहे, हम दूसरे पन्द्रह साल की अवधि बढवा लेंगे।

एक दिन हम सब कई और मिश्रा के साथ पिकनिक के लिए दूरबीन डाडे पर गये। डाडे का यह सबसे ऊँचा स्थान ऐसी जगह पर है, जहाँ से नीचे दूर मैदानी भूमि भी दिखाई देती है, तिस्ता और उसके साथ मिलने वाली दूसरी नदी की घाटी भी। डा० रोयरिक, श्रीमती त्रिस्प, श्रीमती आयरिन राय और दूसरी भी कितनी ही महिलाएँ और पुरुष साथ थे। यद्यपि हम कलिम्पोंग छोड़ने का विचार कर रहे थे, लेकिन यह तो मानना पड़ेगा, कि वहा कुछ व्यक्तियो से नही, बल्कि सैकड़ो परिवारो से एसी आत्मीयता मिली थी, जिससे उसका आकर्षण कम नही था।

कभी-कभी आदमी कैसी बुरी तरह फँस जाता है, ऐसी घटना सितम्बर मे घटी। शहरो मे कई तरह के लोग होते हैं, जो भिन्न भिन्न तरह से अपनी जीवन-यात्रा करते हैं। अच्छे छपे हुए लेटर पेपर पर किसी लम्बे-चौड़े नाम वाली सस्था का निमत्रण पत्र आए, तो आदमी उस पर क्या शका की दृष्टि डाल सकता है। मैं आने-जाने से बहुत बचता था, और किसी सभा या अधिवेशन मे मजबूरी होने पर ही जाता था। कलकत्ता के एक सज्जन ने अपनी जेबी सस्था के अधिवेशन के लिए निमत्रणो का ताता बाँध दिया। मुझे भी न जाने क्या खयाल आया, कि अन्त मे उसे स्वीकार कर लिया।

**कलकत्ता**—अब को मैंने रेल से ही कलकत्ता जाने का निश्चय कर लिया। पाकिस्तान बनने के बाद इस रास्ते मैं नही गया था। उस समय कलकत्ता से सिलीगुड़ी सीधी ट्रेन आया करती थी। २८ सितम्बर को ६ बजे मै सिलीगुड़ी पहुँचा। दार्जिलिंग की ट्रेन के आने पर ही यह ट्रेन खुलती थी, इसके कारण ट्रेन दो घंटा लेट हुई। स्टेशन पर ही पाकिस्तान के कस्टम का आफिस था जहा से एक सर्टिफिकेट ले लिया। उसके मिलने मे कोई दिक्कत नहीं हुई। अभी पासपोर्ट आदि का झझट नही था। सेकण्ड क्लास मे सोने से काफी अधिक जगह मिल गई। हमारे साथ कलकत्ता जाने वाले श्री कपुरियाजी भी थे। वसे तो वह लखनऊ के कश्मीरी पण्डित थे लेकिन अब वर्षों से कलकत्ता मे रह रहे थे। वृद्ध थे और उर्दू ही नही

हिंदी की भी कविता करते थे। परिचय होते ही कण्ठ खुल गया। हमने गद्य म कुछ बातें की और उन्होंने अपने पद्य के नमूने सुनाए। कितने ही घट तक हमारा सत्सग चलता रहा। वह दार्जिलिंग मे आ रहे थे। होती होगी कुछ सस्ती चाय अच्छी किस्म की चाय वहाँ पैदा करने के बहुत से बगीचे दार्जिलिंग मे है। कपुरियाजी ने अपने सारे होलडाल का चाय के डब्बो से भर रखा था। पाकिस्तान के रास्ते जाना था, लेकिन वह पाकिस्तान की चीज तो नही थी, तो भी डर तो था ही। मैं तो कभी ऐसा खतरा मोल लेने के लिए तैयार नही हो सकता था। पाकिस्तान सरकार ने ऐसा नियम बना दिया था, कि कोई यात्री पचास रुपये से अधिक पैसा नही ले जा सकता था। यह नियम कहाँ तक पालन होता था, इसे मैं नही कह सकता। शायद मेरे पास भी पचास रुपये थे। रात-भर तो हमने नही देखा, पाकिस्तान के स्टेशन, लोग और भूमि कैसी है। सवेरे ट्रेन छोआडागा स्टेशन म खडी थी, और तीन घटे लेट थी। स्टेशनो पर अधिकाश मुसलमान ही दिखाई पडते थे, यद्यपि हिंदुओ का अभाव नही था। पूर्वी बगाल के बडे बडे जमीदार प्राय सभी हिंदू थे, और किसान मुसलमान। इसलिए जमीदारी के वास्ते कोई रोने वाला नही था। हमारे डब्बे म चार हिंदू चढे। उनसे वहाँ की बातें मालूम हुईं। बतला रहे थे हिंदू व्यापारी खूब मौज मे अपना व्यापार कर रहे हैं, बस उन्हे इतना ही करना पडता है, कि अपने नफे मे पाकिस्तानी अफसरो को शामिल करना पडता है। घूसखोरी और चोरबाजारी का और दौरा है, उससे कहीं अधिक जितना कि भारत मे हम देखते हैं। हिंदू तरुणियो के अरक्षित रहने की भी बात बतलाई गई।

जिस समय पौड-स्टर्लिंग के दाम गिरने पर हिन्दुस्तान ने अपने रुपया का दाम गिरा दिया था, उस समय पाकिस्तान ने अपने रुपये के मूल्य को पहले ही के बराबर रखा। लेकिन, वैसा करने से जूट के दाम को आधा गिरने से रोका नही जा सका। पाकिस्तान मे बडे-बडे सैनिक या असैनिक अफसर अधिकतर पजाबी थे, इसके कारण अब वहाँ पजाबी और

बगाली का सवाल बडे जोर से उठ खडा हुआ था। पल्टन म ७५ सैकडे पजावी थे, जो मतखार बगालियो को बडी नीची दृष्टि से देखते थे। अब गाली अफसर और केन्द्र मन्त्री लोग भी इस धुन मे थे, कि जैसे पश्चिमी पाकिस्तान मे उर्दू का बोलबाला है, वैसे ही बगाल म भी कर दिया जाए। लेकिन बगाली मुसलमानो को कभी उर्दू से पाला नही पडा था, और न उनके दिल म कभी ख्याल आया था, कि बगला हिंदुओ की भाषा है। अपनी भाषा के साथ उनका अपार प्रेम था। बहुत से मुसलमान साहित्यकारो ने बगला साहित्य को अपनी लेखनी से समृद्ध किया। वह कैसे बर्दाश्त कर सकते थे, कि उनकी भाषा को हटाकर उर्दू रखा जाए। लेकिन, ऊपर के अफसर यह करने के लिए तुले हुए थे। बगाली मुसलमानो को अपनी मातभाषा का प्रेम साबित करने के लिए खून से नहाने मे अभी चार-पाँच वर्षों की दर थी, जिसके बाद ब्रह्मा भी बगाल को हटान की हिम्मत नही कर सकते थे। लेकिन, उस वक्त तो अभी मुस्लिम लीग की तूती पूर्वी बगाल म बोल रही थी। उसक नेता कह रहे थे—हमारे ही प्रयास से पाकिस्तान बना है, इसलिए कयामत तक तुम्ह हमारे नेतृत्व को मानना पडेगा। कयामत तक प्रतीक्षा करने की जरूरत नही पडी, और बगाली मुसलमानो ने दिखला दिया कि हम मुस्लिम लीग की कोई आवश्यकता नही। चुनाव मे साढे तीन सौ मेम्बरो मे से एक दजन को भी कौसिल मे भेजना मुस्लिम लीग के लिए मुश्किल हो गया। लेकिन, अभी यह दिन बहुत दूर मालूम होता था। तो भी अपनी भाषा की अवहेलना मुस्लिम तरुण बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही थे। हमारे डब्बे मे एक कार्टून चिपका हुआ था, जिसमे बगला वर्णमाला के कागज को फाडकर जमीन पर फेका दिखाया गया था, और कुल्हा-साफा बाधे एक सण्डा मुस्टडा पजाबी आदमी ल्बे जाते एक दुबले पतले मुसलमान के मुह मे छपी हुई उर्दू वर्णमाला का ठूसते कह रहा था—"तुमी गिलिबे, गिल्बे" (तुम्ह निगलना होगा, निगलना होगा)। लेकिन अन्त मे बगाली मुसलमानो ने उर्दू को निगलने से इन्कार कर दिया।

पाकिस्तान से होते साढे १० बजे हमारी ट्रेन स्यालदा पहुची। सभा के

प्रबन्ध करने वालो ने ग्राण्ड होटल म ठहराया। श्री मणिहपजी के यहाँ ठहरना अधिक अनुकूल था, इसलिए १ बजे सभापति का भाषण पढकर मैं उनके यहाँ चला आया।

आजकल दुर्गा-पूजा की धूम थी। नवरात्रि या दशहरा भारत के सभी भागो मे पुण्य पर्व माना जाता है, लेकिन बगाल का वह एकमात्र राष्ट्रीय त्यौहार है। उत्तरी भारतीयो के लिए दशहरा, दीवाली और होली भी है, जिनमे हरेक आदमी बडे उत्साह से भाग लेता है। हम भी उसका आनन्द लेते रहे। श्री भँवरलाल जी नाहटा से भेंट हुई। उनके कामो का मैं अदृष्ट प्रशसक वर्षो से रहता आया था। जैन ग्रथो तथा राजस्थान की साहित्यिक निधियो का दोनो चचा भतीजे (अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल नाहटा) का असाधारण ज्ञान है। हस्तलेखो और दूसरी सामग्री का उनका सग्रह बीस हजार तक पहुँच गया है। साहित्य उनके लिए केवल साधन की चीज है, जीविका के लिए वह व्यापार करते है, जिसमे ही से निकालकर हजारो रुपया इस साधना म भी लगाते है। अभी समय अनुकूल नही है, इसलिए उनके कामो को बाहर से उतना प्रोत्साहन नही मिलता, जितना कि मिलना चाहिए। लेकिन, उससे जरा भी निरुत्साहित न होकर वह अपने काम को करते जा रहे है। कितनी ही पुस्तकें उन्होने अपने खर्च से प्रकाशित की, लेकिन सभी आवश्यक सामग्री को प्रकाशित करने के लिए लाखो रुपये चाहिए। मैंने उससे कहा, कि इन्हे टाइपकरके डुप्लिकेटर पर सौ-दो सौ कापियाँ निकलवा ले, जाकि उन्हे अधिकारी विद्वानो क पास भेजा जा सके।

जिस सम्मेलन का सभापति बनकर मैं गया था, उसके बारे मे १ अक्तूबर को मैंने लिखा था—" ने सम्मेलन का खेल किया। अज्ञात कुलशील पर विश्वास नही करना चाहिए।" अपने टिकट से आया था और अब अपने टिकट पर ही लौटना था। अगर पहले बतला दिया होता, तो टिकट मिलने मे आसानी होती। खैर, हमने विमान से लौटने का टिकट मँगवा लिया, और ६ दिनो को लडको के खिलवाड मे स्वाहा समझ लिया। जिन्होंने यह काम किया था, उन्हे कुछ लाभ जरूर हुआ होगा, क्योकि इस

पडोसिन श्रीमती मिना के यहा चायपार्टी थी। कितने ही मेहमान आए थे, जिनमे एक डाक्टर भी थे। उन्होने बतलाया चाय मे चीनी बिल्कुल छोडने की आवश्यकता नही, उसे कुछ लेना चाहिये। उन्होने बतलाया—आलू, चावल, मीठा, फल आदि नही खाना चाहिए, खीरा, टमाटर, प्याज और नीबू खूब खाने चाहिए। भोजन की मात्रा कम रखनी चाहिए। मुर्गी या चिडिया का मास ज्यादा लाभदायक है। हल्की चहल कदमी भी करनी चाहिए और पेट सदा साफ रखना चाहिए। लेकिन, हमारे इतने सालो के तजर्बे से तो यही मालूम हुआ, कि बिना किसी से पूछे-ताछे रोज खाने से पहिले इसुलिन ले लेना चाहिए, खाने मे किसी चीज का परहेज नही करना चाहिए, और मात्रा को कावू मे रखने के लिए रात का भोजन छोड देना चाहिए।

आयरिश महिला श्रीमती क्रिस्प भी हमारे घनिष्ठ परिचितो मे से थी। डा० भट्ट को लेकर "काबुल गए मुगल होइ आए, बोले मुगली बानी। आब-आब कहि पुतऊ मरिगै, खटिया तर धरा पानी।" यह लोकोक्ति मुझे बराबर याद आती थी। वह बिल्कुल ही यूरोपीय मनोवृत्ति के हो गए थे। भारतीय जीवन मे वह पानी मे मछली की तरह तरसते थे। उन्हे उदासी होती। हम हर तरह से उनको भुलवाने की कोशिश करते। स्वस्थ होते, तो सफलता मिलती पर बेचारे हृदय के रोग मे बुरी तौर से फँसे थे। पीने मे अति तो नही करते थे, लेकिन मदिरा उन्हे चाहिए जरूर थी। हमारे यहाँ कोई उसमे हाथ लगाने वाला नही था, पर उनके पीने मे कोई बाधा भी देना नही चाहता था। मुझे उन्हे देखकर अचरज आता था। उनके ऐसा अँग्रेजी, जर्मन, सस्कृत पर अपनी भाषा कन्नड के समान ही अधिकार रखने वाला परिवार के बोझ से मुक्त प्रतिभाशाली व्यक्ति क्यो जीवन की चिन्ता करे? लेकिन उनकी चिन्ता का कारण यही था, कि इतने साल बाद भारत मे लौटने पर वह अपने को पानी से बाहर फेंकी मछली-सा समझते थे। अँग्रेजी लेख कभी कभी वह पत्र-पत्रिकाओ मे लिख भेजते थे। उन्हे मेरे कहने पर भी उत्साह नही होता था, कि कन्नड लेख लिखे। यदि वह अपने जर्मनी के

वहान ही से उन्हे चन्दा मिल सकता था। अखबारो मे मेरे सभापति होने की बात सुनकर और भी कितने ही आ फँसे। झाँसी के कवि डा० आनदजी बेचारे उतनी दूर से आए थे। उन्हे भी अब बैरग लौटना था। उस दिन एक करोडपति के यहा मध्याह्न भोजन करना पडा।—"महल तो बन गया, किन्तु हाथ धोने का नलका नदारद, और थालिया तथा दूसरी चीजें मैली। २ अक्तूबर को उच्चतर क्लब के वन भोज मे गए। इस क्लब के रहरवाँ साहसी पुरुष थे, जिन्होने मारवाडी स्त्रियो मे पर्दे के खिलाफ जहाद बोला था। वनभोज मे स्त्रियाँ भी थी। भोज मारवाडी ढग का था। चूरमा और रायता अच्छा बना था। मुझे भी वहा कुछ बोलना पडा।

कलिम्पोंग—३ को ८ बजे सवेर विमान उडा और ६ बजकर ५० मिनट पर बागडोगरा मे उतर गया। ११ बजे सिलीगुडी पहुच गए। कभी-कभी सिलीगुडी स्टेशन पर टैक्सी बडी आसानी से मिल जाती है और चार पाँच रुपये से अधिक एक सीट का देना नही होता लेकिन जब आदमी गरजू हो और टैक्सियाँ कम हो, तो वे मनमाना किराया वसूल करते हैं। एक और तिब्बती तरुण सहयात्री मिल गया। हम दोनो ने चौदह चौदह रुपये पर ड्राइवर को राजी किया। दो बार तो उसने सामने से आती लारी से टकरा सा दिया था। बडी बेपर्वाही से हाक रहा था। ३ बजे हम पावती" पहुँच गए। ४ तारीख से श्रीमती आइरन राय का टाइप का काम जारी था। वह बहुत ही शुद्ध और बडी शीघ्रता से टाइप करती थी। १८० रुपया पारिश्रमिक देते हुए हम बहुत हिचक रहे थे। यदि परिभाषा का काम वही रहकर करना पडता, तो वह हमे इस टाइप कराने की चिंता से मुक्त कर सकती थी।

डायबेटीज़ तो बराबर के लिए साथ थी। कभी मुह सूखता, पेशाब कभी कम हो जाता और कभी ज्यादा। पेशाब ज्यादा होने पर ध्यान उधर जाता। चावल को सिर्फ हफ्ते म दो दिन के लिए रखा, क्योंकि दो दिन हमारे यहाँ मास बनता था, जिसके साथ चावल अच्छा लगता। केला भी छोड दिया, लेकिन आलू अभी विचाराधीन था। ६ अक्तूबर को हमारी

पड़ोसिन श्रीमती मित्रा के यहां चायपार्टी थी। कितने ही मेहमान आए थे, जिनमें एक डाक्टर भी थे। उन्होंने बतलाया, चाय में चीनी बिल्कुल छोड़ने की आवश्यकता नहीं, उसे कुछ लेना चाहिये। उन्होंने बतलाया—आलू, चावल मीठा, फल आदि नहीं खाना चाहिए। खीरा, टमाटर, प्याज और नींबू खूब खाने चाहिए। भोजन की मात्रा कम रखनी चाहिए। मुर्गी या चिड़िया का मांस ज्यादा लाभदायक है। हलकी चहल कदमी भी करनी चाहिए, और पेट सदा साफ रखना चाहिए। लेकिन, हमारे इतने सालों के तजर्बे में तो यही मालूम हुआ, कि बिना किसी से पूछे-ताछे रोज खाने से पहिले इन्सुलिन ले लेना चाहिए, खाने में किसी चीज का परहेज नहीं करना चाहिए, और मात्रा को काबू में रखने के लिए रात का भोजन छोड़ देना चाहिए।

आयरिश महिला श्रीमती मिस्प भी हमारे घनिष्ठ परिचितों में से थी। डा० भट्ट को देखकर "काबुल गए मुगल होइ आए, बोले मुगली बानी। आब-आब करि मरिगे, खटिया तर धरा पानी।" यह लोकोक्ति मुझे बराबर याद आती थी। वह बिल्कुल ही यूरोपीय मनोवृत्ति के हो गए थे। भारतीय जीवन में वह पानी में मछली की तरह तैरते थे। उन्हें उदासी होती। हम हर तरह से उनको मुस्कवाने की कोशिश करते। स्वस्थ होते, तो सफलता मिलती पर बेचारे हृदय के रोग में बुरी तौर से फँसे थे। पीने में अति तो नहीं करते थे, लेकिन मदिरा उन्हें चाहिए जरूर थी। हमारे यहाँ कोई उसमें हाथ लगाने वाला नहीं था, पर उनके पीने में कोई बाधा भी देना नहीं चाहता था। मुझे उन्हें देखकर अचरज आता था। उनके ऐसा अंग्रेजी, जर्मन, संस्कृत पर अपनी मातृभाषा कन्नड़ के समान ही अधिकार रखने वाला परिवार के बोझ से मुक्त प्रतिभाशाली व्यक्ति क्यों जीवन की चिन्ता करे? लेकिन उनकी चिन्ता का कारण यही था, कि इतने सालों बाद भारत में लौटने पर वह अपने को पानी से बाहर फेंकी मछली-सा समझते थे। अंग्रेजी लेख कभी-कभी वह पत्र-पत्रिकाओं में लिख भेजते थे। उन्हें मेरे कहने पर भी उत्साह नहीं होता था, कि कन्नड़ लेख लिखें। यदि वह अपने जर्मनी के

अनुभव का ही धारावाहिक रूप से किसी कन्नड पत्रिका मे लिख डालते, तो कर्णाटक के लोग उन्हे हाथोंहाथ उठा लेते। इनके ऐसा योग्य विद्वान् वहाँ कौन था? श्रीमती किम्प और उनके परिवार के साथ वह अधिक आत्मीयता अनुभव करते थे, और कभी-कभी दो चार दिन के लिए वहाँ चले भी जाते थे।

कलिम्पोग के हमारे सहृदय भद्रजनो मे वहाँ के सब डिविजनल आफिसर श्री मोतीचन्द प्रधान भी थे। जब तब उनसे मुलाकात हो जाती थी। वह हमारे परिभाषा के काम मे भी दिलचस्पी रखते थे। ६ तारीख को दर्शन के अध्यापक श्रीमुख जी से "अनामी" मे मिलने गए। दर्शन के सबध मे बात होती रही। हम इस उद्देश्य से गए थे कि मनोविज्ञान की परिभाषाओ के सग्रह का वह काम उनसे लें। वह तैयार थे, पर थे अस्वस्थ। एक आपरेशन हो चुका था और दूसरा होने वाला था, इसलिए निश्चयपूर्वक क्या कह सकते थे। बगाली परिवार सास्कृतिक परिवार होता है। हमारे यहाँ अभी सस्कृति ऊपर ऊपर का पुचारा है और बहुत कम परिवारो मे वह भीतरी स्तर तक घुस आई है। इसके निदर्शन मुखर्जी महाशय की तीनो पुत्रियाँ थी जो सगीत कला मे निपुण थी। अजली ने लखनऊ के मेरिस कालेज मे सगीत की शिक्षा प्राप्त की थी और वहा रेडियो पर कभी-कभी गाया भी करती थी।

परिभाषा निर्माण विभाग के लिए कभी आशावान् होना पडता और कभी हताश। १० अक्तूबर को पता लगा, कि सम्मेलन ने मार्च १९५० के लिए १३ हजार रुपया मजूर किया है। ६० हजार शब्दकोश आगे बनने चाहिए। हम सोचने लगे, मार्च तक काम करके छोड देना चाहिए, पर डा० भट्ट के लिए सबसे अधिक चिन्ता थी।

कमला अब काम करने मे बहुत आगे बढ चुकी थी। टाइप कर लेती थी, सारा प्रबन्ध का काम भी सँभाले हुई थी, लेकिन उनके स्वास्थ्य मे कोई सुधार नही हो रहा था, जिसके ही कारण बराबर सिरदर्द बना रहता था। मैंने १४ अक्तूबर को ही मान लिया था— कमला बहुत समझदार है, साथा-

रण बातों ही में नहीं, विद्या की बातों में भी। लेखन-साधना का भी पूरा ध्यान रखती है।" ऐसी होनहार लड़की गरीबी के कारण आगे पढ़ न सके, न अपने आंतरिक गुणों को विकसित कर सके, यह बड़े खेद की बात होती। खासकर जब कि मैं उनसे पूरी तौर से परिचित हो गया था। भीतर ही भीतर मैंने निश्चय कर लिया, कि उन्हें आगे बढ़ाना होगा। टाइप करने में कितनी प्रगति हुई थी, यह इसीसे मालूम होगा, कि १८ अक्तूबर को उन्होंने फुल्स्केप के १४ पृष्ठ टाइप किए। बहुत सी तालिकाएँ भी टाइप करती थीं। नहीं तो और भी कर सकती थीं। १६ को उनकी आँखें दुख रही थीं, तब भी वह टाइप करने में लगी थी। मना करने पर भी नहीं मानती थीं, शायद समझती होंगी, चुप बैठे रहना अच्छा नहीं है।

देश विदेश की खबरों की जानकारी के लिए श्री सेनगुप्त भी उतने ही व्यग्र थे, जितना मैं। उन्होंने २६ अक्तूबर को खबर दी, कि तुंगन (चीनी मुसल्मान) कम्युनिस्ट सेना के दबाव के कारण तिब्बत की सीमा पर पहुँच गए हैं, और तिब्बती सेना के साथ उनका युद्ध हो रहा है। मेरे लिए बड़ी चिन्ता की बात थी, क्योंकि तुंगनों के इधर बढ़ने पर तिब्बत की सांस्कृतिक निधियों का विनाश निश्चय था। यह बड़ी ही भयानक घटना होती। अगले दिन खबर मिली, कि डा० राजेन्द्रप्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति होंगे। बड़ी प्रसन्नता की बात थी, विशेषकर यह ख्याल करके, कि राजेन्द्र बाबू हमेशा जनता के आदर्श रहे हैं, और उन्हें शहर की अपेक्षा किसानों की भीड़ में अधिक आत्मीयता मालूम होती है।

## १९

# कलिम्पोंग के अन्तिम मास

अनुवाद समिति के काम के लिए फिर मुझे दिल्ली जाने की जरूरत पड़ी। २४ अक्तूबर को ढाई बजे चलकर साढ़े ५ बजे सिलीगुड़ी पहुच गया। कटिहार मे तिलक पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव म भी सम्मिलित होना था, इसलिए कलकत्ता का रास्ता नही ले सकता था। सिलिगुड़ी से लोगो से भरी बस मे जगह मिली। ६ बजे नक्सलबाडी पहुचे। बडी मुश्किल से पहले दर्जे म जगह मिली। कम्पार्टमेन्ट सैनिको के लिए रिजर्व था। मैं और एक और सहयात्री उसम डरते डरते बैठ गये थे, और सचमुच ही मेरे साथी को कर्नल के आने पर जगह छोड़नी पडी। रेल के लिए अभी यह कोई असाधारण बात नही थी फिर यह लाइन तो बहुत ज्यादा चलती थी। पहाड के लोग नौकरी की तलाश म कलकत्ता जाते, और फिर वहाँ से लौटते। २५ अक्तूबर को पूर्वाह्न मे ही कटिहार पहुँच गया। कटिहार जूट के कारखानो का केन्द्र है, आबादी भी ६० हजार है। पर यहाँ के दरो दीवारो से गाँव का दरिद्रता बरस रही थी। म्युनिसिपैलिटी भी दरिद्र है। जो कर दे सकते हैं, वह न देने मे समर्थ हैं, जो दरिद्र हैं वह क्या देंगे? मावडिया जी के यहाँ ठहरे, जो मूलत शेखावाटी मे उदयपुर के रहने वाले हैं। तिलक पुस्तकालय क अधिवेशन म शामिल होन पर सबसे बडी प्रसन्नता हुई बडे सीधे-सादे किन्तु मेधावी प० सूर्यनारायण चौधरी से मिलकर।

अश्वघोष के काव्य ग्रन्थो का सुन्दर अनुवाद करके उन्होने हिन्दी की बडी सेवा की है। उनके "हर्षचरित" के हिन्दी अनुवाद को भी देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई।

वैसे तो उस समय रेल की यात्रा का नाम सुनकर भी तबीयत घबरा उठती थी, यह छोटी लाइन तो सासत देने मे सबसे बढ-चढ कर थी। अब उमीसे हमे प्रयाग तक जाना था। २६ अक्तूबर का प्रयागवाली ट्रेनपर बैठे। यही वह कुछ लेट हो गई। छपरा २७ के सवेरे पहुचे। पहले से खबर नही दे सके थे। दो एक परिचित चेहरे स्टेशन पर दिखाई पडे पर पुराने चेहरे तो कम होते जा रहे थे और नए आ रहे थे, इसलिए परिचित चेहरे कहा से अधिक होते। श्री नर्मदा प्रसाद वकील का नौजवान क्लर्क दिखाई पडा। अब वह बूढा हो गया था। कितनी जल्दी परिवर्तन हो गया। औढियार पहुचे, तो वहा बाबू गया प्रसाद सिंह के भतीजे मिल गए। छोटी लाइन म उनके कई रेस्तरा चलते हैं। उन्होने आग्रह करके भोजन कराया। बनारस तक वह साथ चले। यहा तक छोटी लाइन मे आते तग आ गया था। यद्यपि छोटी लाइन का टिकट प्रयाग तक का था, किन्तु मैंने यही दिल्ली जाने वाली बडी लाइन की ट्रेन पकडी। प्रयाग जा करके भी इसी ट्रेन को पकडना था, इसलिए उसके लिए उतर गए। टिकट लिया, जब पहले दर्जे के डब्बे मे बैठा तो सचमुच ही मालूम हुआ, कि मैं नरक से स्वर्ग मे आ गया। कम्पार्टमेंट की चार सीटो मे एक खाली थी। दो पर कप्तान भट्टाचार्य अपनी पत्नी के साथ थे, और एक पर मै। जहा छोटी लाइन मे न सोने का नाम था न गद्दे का सब गदगी और अस्तव्यस्तता देखी जाती थी, वहा इस कम्पार्टमेंट मे सभी चीजे स्वच्छ मौजूद थी।

२८ अक्तूबर को ढाई बजे दिल्ली पहुँच तागा ले श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार के घर पर गया। दम्पति किसी काम से बाहर गये हुए थे। सविधान का अनुवाद पूरा करना था, और साथ ही सविधान की स्वीकृत परिभाषा सभी प्रादेशिक भाषाओ के विशेषज्ञो की परिषद् मे रखकर अन्तिम रूप देना था। सभापति श्री घनश्याम सिंह गुप्त पहले ही से मौजूद थे। काम

कैसे चालू किया जाए, इस पर बातचीत हुई। मैंने कहा—परिषद् में पहले तो भिन्न भिन्न भाषाओं के प्रतिनिधियों के अपने विचारों को रखने का अवसर दिया जाये, और फिर वह समिति का रूप ले ले, और एक एक परिभाषा पर विचार किया जाय। ८०० से ऊपर परिभाषाएं थीं, अभी मालूम नहीं था, कि बहस में कितना समय लगेगा।

२९ तारीख को पौने १० बजे पार्लियामेंट के राज्य सभा भवन में परिषद् जुटी। राजेंद्र बाबू ने सभापतित्व किया। भिन्न भिन्न प्रदेशों से ३७ विद्वान् आए। पांच घंटे तक भाषण और विचार विनिमय होते रहे। तीन प्रस्ताव पास हुए—१ परिषद् २ नवम्बर तक लगातार बैठे, आवश्यकता होने पर आगे भी समय बढ़ा दिया जाए। २ प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति प्रधान द्वारा बनाई समिति करेगी। यहीं संविधान के संस्कृत में अनुवाद करने के लिए भी एक समिति बना दी गई, जिसमें मेरा भी नाम था।

इसी समय कलिम्पोंग की कमाई "आज की राजनीति" का प्रथम संस्करण राजकमल की ओर से छप रहा था।

परिभाषाओं पर काम होने लगा। ३० तारीख को दिन भर में ४० शब्द स्वीकार किए जा सके। गति मन्द थी, इससे तीन सप्ताह लग जाते। लेकिन, हमें विश्वास था, आगे चलकर हरेक शब्द पर इतनी बहस की जरूरत नहीं होगी। हमने जिस सिद्धान्त के अनुसार शब्दों को बनाया था, उसके कारण मतभेद की गुंजाइश कम थी। कुछ तो परिषद् में ऐसे आदमी रख लिए गए थे, जिन्हें न संस्कृत का ज्ञान था और न परिभाषा के निर्माण की परम्परा का। वह ऐसे सुझाव रख देते थे, जिनके बारे में न वह युक्ति दे सकते थे, और न वह साधारण तौर से देखने पर भी विचार करने लायक होते थे। पहले एक-दो दिन उन्हें भी अवसर दिया गया। पीछे उन्होंने स्वयं देखा कि सुझावों को रखकर वह सदस्यों के मनोरंजन के पात्र बन रहे हैं। उर्दू वाले विशेषज्ञ पहले दिन की सवेरे वाली बैठक में आए, उसके बाद फिर नहीं आए। कैफी साहब भी सदस्य नियुक्त किए गए थे

लेकिन वह कभी आए ही नहीं। २१ तारीख की बैठक में हमने सौ शब्द ठीक किये। वही शब्द लिए जा रहे थे जिन्हें हमने रखा था। एक विद्वान् काफी मेहनत से संस्कृत की स्मृतियों आदि से शब्द चुनकर लाए, लेकिन हरेक शब्द अपने विशेष स्थान पर ही अर्थद्योतक होता है। स्मृतियों में एक ही चीज के लिए प्रयुक्त मनमाने शब्द भी रखे हैं। उन शब्दों को अपनाकर हम भ्रम नहीं फैला सकते थे। यह बात नहीं थी कि मैं परिषद् में अधिक बोलने के लिए उत्सुक था, पर गुप्तजी का भी आग्रह होता और परिभाषाओं के बारे में जो भी प्रश्न उठाये जाते उनका जवाब देने के लिए मुझे बोलना पड़ता। एक दिन झुंझलाकर बोल उठे आप अपने ही शब्दों को रख लेते हैं, हमारे शब्दों को नहीं स्वीकार करते। हम उपयुक्त शब्दों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे, यह बात नहीं थी। पर शब्दों को स्वीकार करने के लिए यहाँ सभी भाषाओं के योग्य विद्वान् आए हुए थे उनमें से शायद ही कोई हो जो संस्कृत की अच्छी योग्यता न रखता हो और पारिभाषिक शब्दों के मर्म को न समझता हो। हमारे संस्कृत के बहु विद्वान् जो एक प्रदेश तक ही ज्यादा सम्बन्ध रखते हैं, दूसरे प्रदेशवालों के बारे में नहीं जानते, भाषा की नब्ज को पूरी तरह पहचान नहीं सकते। मुझे अपनी शिक्षा के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रदेशों के संस्कृतज्ञों के घनिष्ठ सम्पर्क में आने का मौका मिला था इसलिए मैं जानता था, संस्कृत के भी कितने ही शब्द वस्तुतः एक ही अर्थ में हमारे सभी प्रदेशों में इस्तेमाल नहीं किए जाते। उपन्यास उत्तर में नावेल को कहते हैं, और दक्षिण में भाषण को।

कलकत्ता—३ नवम्बर को शाम की गाड़ी पकड़कर प्रयाग के लिए रवाना हुआ। बर्थ पहले ही से रिजर्व थी, इसलिए जाने की दिक्कत नहीं हुई। सामने बेंच पर बाबू लक्ष्मीनारायण बैठे थे। मुजफ्फरपुर के इस तरुण ने अपना सारा जीवन खादी के काम के लिए लगा दिया। असहयोग की आँधी में कालेज की परीक्षा खतम कर चुके थे, लेकिन व्यवसाय कोई नहीं अपनाया था। उसी समय वह देश के काम में लग गए, और आज

तक बराबर उगी म हैं। किसी बैठक म दिल्ली आए थे, और अब बिहार लौट रह थे। उनका सारा सामान सीधा सादा और खादी का था। उनके अवनग्न और कुछ मन्दिर मे बम्बई के भी दफ्तर बम्बाटमट म अग्रेज पत्नी-सहित बैठे भारतीय वैग समन गनत थे, कि यह आदमी पूरी तौर से शिक्षित सुसस्कृत है, साथ ही उसका सारा जीवन अहिंस तपस्या का रहा है। बहुत वर्षों बाद मौका मिला था। देर तक हमारी बातचीत होती रही।

४ तारीख को सबेरे कानपुर आया। हाल म वर्षा हो गई थी, इसलिए जहा-तहाँ कुछ पानी दिखाई पडता था। यात्रा म मैंने देखा, खपडैल की छतें भरवाडी (जिला इलाहाबाद) से शुरू होती हैं। उससे पश्चिमी मिट्टी की छतें यूरोप की सीमा पर अवस्थित उराल पवतमाला तक चली गई हैं। जहा वर्षा अधिक हो, वहाँ कच्ची मिट्टी की छतें अनुकूल नही हो सकती।

प्रयाग म पहुचकर श्री माधवजी के यहाँ गया। उस समय वही के रेडियो स्टेशन मे वह काम कर रहे थे। उसी बगले मे अनेयजी भी रहते थे। सम्मेलन-कार्यालय म जा वहाँ कोश के बारे मे कुछ देखभाल और पूछ ताछ की। आजकल सारनाथ मे वार्षिकोत्सव का समय था। इसलिए वहा जाने का निश्चय कर लिया। गाडी पकड कर आधी रात को सारनाथ स्टेशन पहुँचा। सारनाथ म इस समय आने का एक लोभ था भिन्न भिन्न जगहो से आये मित्रो स मिलने का। आनन्दजी भी वहाँ मिल गए और काश्यप जी भी। सबसे अपूर्व दर्शन चन्दा बाबा का हुआ। मुनि कान्ति सागर से भी उनकी पुरातात्त्विक स्थानो की खोजो क बारे मे बातचीत होती रही। चोता फूची (छोटा फूची) भी मिले, और उनको देखते ही बोध गया के चोना फूची और बरा पूची की मनोरजक विवादो की बातें याद आने लगी। बरा पूची अब इस ससार म नही रहे। वह चीनी थे और चोता पूची माँ की ओर स तिब्बती और बाप की ओर से चीनी। दोनो बोध गया के धर्मशाला मे वर्षों से रह रह थे। उनम प्रतिद्वन्द्विता भी थी। वर्षों रहने पर भी बडे पूची हिन्दी नही के बराबर ही सीख सके। वह छोटे पूची की निन्दा करते कहते थे—"चाता पूची काना पैस पसी, पूजा तोरा-तोरा।" अर्थात्

छोटा पूची केमी-केमी गाना खाता है और पूजा कम करता है। और अपने लिए कहते थे—"बरा पूची वाना तारा तारा पूजा पेमी-पेसी।" दोपहर तक सारनाथ में रहकर मित्रो से मिल लिया, फिर छोटी लाइन की गाडी पकड कर सवा ८ बजे शाम को प्रयाग लौट गया। अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के सम्बन्ध मे कुछ बात करनी थी। वस्तुत अब पुस्तके इतनी अधिक हो गई थी, कि उन्हें कोई एक प्रकाशक प्रकाशित भी नही कर सकता था। वहाँ से ८ बजकर १० मिनट पर दिल्ली मेल पकडा और कलकत्ता के लिए रवाना हो गया। ७ तारीख को ११ बजे हावडा पहुचा और पौन घंटे बाद श्री मणिहप जी के मकान पर। टैक्सी नही मिली, घोडा गाडी ली। रास्ते मे बडा बाजार की सडक पर इतनी भीड थी कि देर तक रुकना पडा। उन दिनो कलकत्ता म यह आम शिकायत थी और किसी किसी समय एक सडक से सिर्फ एक ओर जाने का नियम लागू किया जाता था। अब की प्रयाग मे अश्कजी ने अपनी पुस्तक 'दो धारा" दे दी थी। पढ गया। इसमे अश्कजी और उनकी पत्नी कौशल्या दोनो की लेखनियो के चमत्कार अलग अलग दिए हुए थे। मुझे तो कौशल्या पति को पछाड कर आगे बढी मालूम हुई। उनकी लेखनी म स्वाभाविकता तथा प्रसादगुण अधिक था। हो सकता है भाषा सँवारने म अश्कजी ने कुछ सहायता की हो, लेकिन दोनो की लेखनी का भेद स्पष्ट मालूम होता था।

कलकत्ता मे अब सेठो की नई मनोवृत्तियाँ भी देखी जाती थी। कितने ही करोडपतियो ने कांग्रेस का पल्ला पकडा था। सभी वहा एक समान सुखरू नही हो सकते थे, इसलिए भी उन्हे दूसरे दरबार की जरूरत थी, और कुछ यह भी समझने लगे, कि कांग्रेस मे जो भ्रष्टाचार फैला है उसके कारण उससे ज्यादा दिनो की आशा नही रखी जा सकती। इसीलिए अब वह सोशलिस्टो के साथी बनने लगे। सोशलिज्म से भला इन करोडपति सेठो का क्या लेना देना था? उनमे कोई ऐसी आदर्शवाद की भावना भी नही थी जिसकी प्रेरणा से वह तपस्वी जयप्रकाश नारायण के चरणो मे बैठने के लिए उत्सुक हो। वह जानते थे, कि समाजवाद को समाजवाद द्वारा ही

भारत म आन स रोका जा सकता है। वह भली भाँति जानते थे, कि समाजवाद के असली वाहक कम्युनिस्ट ही होंगे। इसलिए उनसे बचना जरूरी समझते थे।

पश्चिमी पाकिस्तान से हिंदुओ का निष्कासन तडाक पटाक और बडी क्रूरता के साथ हुआ। उनके पुनर्वास का काम यद्यपि अभी समाप्त नहीं हो पाया था, लेकिन बहुत कुछ अपने पैरो पर खडा होकर उन्होने समस्या को कठिन नहीं बनने दिया। उनके लिए एक सुभीता यह भी हुआ कि पूर्वी पंजाब के मुसलमान भारत छोडकर चले गए, जिनके मकान और खेत नवागत शरणार्थियो को दिए जा सके। पूर्वी पाकिस्तान म ऐसा नहीं हुआ। अव्वल तो पश्चिमी बंगाल से बहुत ही कम मुसलमान पाकिस्तान गए, जिसके कारण खेत और मकान खाली मिलने वाले नही थे। और दूसरे पूर्वी पाकिस्तान से हिंदुओ का निष्कासन जल्दी नहीं हुआ, वह तांता अब भी लगा हुआ है। अंदाज तो ऐसा लगता है, कि वहां बहुत कम ही हिंदू रह पाएँगे। इनके पुनर्वास की समस्या अब (१९५६ म) भी उसी तरह बडी चिंताजनक है। १९४९ मे कलकत्ता म एक और दृश्य दिखाई दिया। सरकार शरणार्थियो को अपने ढंग से बसाना चाहती थी, परंतु यह नहीं ख्याल करती थी, कि जंगल के महल को लेकर शरणार्थी चाट नहीं सकते। उन्हे ऐसी जगह चाहिए जहां वह हाथ पैर हिलाकर या दिमाग चला कर रोजी जमा सकें। यह संभावना शहर के पास ही रहती है इसलिए यदि शरणार्थियो मे से बहुत से कलकत्ता के आसपास बसना चाहते थे, तो यह स्वाभाविक ही था। कलकत्ता के आसपास जितनी भी जमीन थी, वहाँ तेजी से बढ़ती हुई महानगरी जल्दी पहुँच जाने वाली थी। इन सब जमीनों को सेठो ने खरीद लिया था। मारवाडी सेठो के पास ही रुपया था, इसलिए ये जमीनें उन्ही के हाथ म थीं। टालीगंज के रिजेंट पार्क के समीप मैं एक खाली जगह को देखने गया, जहा पूर्वी बंगाल से आये शरणार्थियो ने अपना अड्डा जमा लिया था। जमीन किसी सेठ ने ले रखी थी। वैयक्तिक सम्पत्ति हमारी सरकार के लिए परमपवित्र है, इसलिए उसे शरणार्थियो

के अनुकूल स्थान पर बसाने से भी अधिक वैयक्तिक सम्पत्ति और उस पर कानूनी अधिकार रखने वाले व्यक्तियो के स्वार्थ का देखना जरूरी था। शरणार्थियो ने खुली जगह देखकर वहा अपनी झोपडिया खडी कर दी। श्री शरत बोस जैसे जननेताओ ने भी उनका समर्थन किया। सेठो मे इतनी शक्ति नही थी कि शरणार्थियो और उनके पीछे भारी जनता के मुकाबले मे अपनी जमीन पर कब्जा रखते। सरकार ने झट से वहा पलटन भेज दी, जिसमे वहा मकान न बनने पाएँ। शरणार्थियो ने चटाई की दीवार खडी कर उन पर फूस की छत डाल दी थी। सैनिक कह रहे थे—"हमको हुकुम है, कि नई झोपडियो को नही बनाने दे।" शरणार्थी अपनी भूमि का किराया देने, किश्त से दाम भी चुकाने के लिए तैयार थे। इससे बढकर और क्या उचित हो सकता था। लेकिन सरकार निहित स्वार्थों को जरा भी क्षति होने देना नही चाहती थी। उसके पिट्ठू कहते फिरते थे, शरत बोस अपना नेतृत्व कायम रखने के लिए प्रान्तीयता के युद्ध को उत्तेजित करना चाहते है। दुर्भाग्य से कलकत्ता के धनकुबेर अबगाली हैं, किन्तु क्या प्रान्तीयता का डर समझ कर बगाली अपनी उचित मागो को छोड दें?

कलिम्पोंग—१० नवम्बर को ८ बजे विमान से उडकर दो घटे मे मैं बागडोगरा पहुँच गया। आकाश स्वच्छ था, सर्दी नही मालूम हो रही थी, यद्यपि यह नवम्बर का दूसरा हफ्ता था। हवाई अड्डे से सिलीगुडी पहुँच कर १६ रुपये मे टैक्सी मे जगह मिली और ढाई बजे 'पार्वती' पहुँचा। भट्ट, सेनगुप्त और कमला सभी अच्छी तरह काम मे लगे हुए थे। हमारा परिभाषा का काम चलने लगा। इसी समय डा० रोयरिक के साथ 'प्रमाण-वार्तिक' के अग्रेजी अनुवाद का भी काम शुरू हुआ। अब की कलकत्ता मे श्री परमानन्द पोद्दार से बातचीत हुई। उन्होने २५ हजार रुपया अग्रिम देते मेरी कितनी ही पुस्तको को छापने की बात तय की। कलिम्पोग रहते ही उसकी लिखा पढी भी हो गई।

दार्जिलिंग—कलिम्पोग मे रहने के समय का अन्त आ रहा था। दार्जिलिंग भी देख आने का निश्चय करके १६ नवम्बर को सबेर ८ बजे के बाद हम

मणिहृप जी की बड़ी आस्टिन पर निकले। ड्राइवर के साथ मैं बैठा था, और पिछली सीट पर मनगुप्त, कमला और कमला की चचेरी बहिन तथा बाबू राधामोहन की पत्नी जमुनादेवी बैठी थी। रास्ता तिस्ता-उपत्यका से चढ़ाई चढ़ के जाता है, जिसकी सड़क उतनी अच्छी नहीं है, और भारी गाड़ियों के लिए अनुकूल नहीं समझी जाती। तिस्ता पुल से दार्जिलिंग २८ मील पर है और पुल कलिम्पाग से १० मील। ३८ मील की यात्रा हमने डेढ़ घटे म पूरी की। उपत्यका छोडने पर सख्त चढ़ाई चढ़ते पेशाक चाय बगान के पास पहुँचे। आगे कितनी ही दूर तक भी कुछ चढ़ाई रही, कहना चाहिए चढ़ाई तो घूम तक थी। रास्ते में लेप्चू छमाल, जार-बगाल घूम, बावचाड़ा पड़े। सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग आने वाली सड़क घूम म मिल गई। रास्ता सारा चायबगानो या हरे भरे जगलो का था। हरियाली मनमोहक थी। चाय के बगीचे बाहर की लक्ष्मी के आवाहन के सबसे बड़े साधन थे। चाय यद्यपि सौ ही वर्ष पहले इस भूमि मे आई थी लेकिन आज दार्जिलिंग की चाय दुनिया मे सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। चार-पाँच हजार फुट ऊँची ठण्डी जगहो की पत्तियो मे विशेष गुण होते हैं। यद्यपि सिलीगुडी म चाय यहाँ से दूनी और अधिक भी उपजती है, पर महँगाई के कारण यहा के बगीचे ज्यादा नफे म रहते हैं। जैसा कि पहले कहा दार्जिलिंग अब नेपालीभाषियो का है। पर, वह बगीचे मे कुली ही भर बन सकन है। पहले सारे बगीचे अग्रेजो के हाथ म थे अब उनमे से कितने ही हमारे सेठो के हाथ म चले आये हैं और जो बचे हैं वह भी पके आम की तरह उनकी गोद म गिरने के लिए तैयार हैं।

अपनी ओर आकृष्ट किए बिना नही रह सकती थी। आजकल नवम्बर का तीसरा हफ्ता था। यह सैलानियो के आने का समय नही था, तब भी दार्जिलिंग केवल सैलानियो का नगर नही है, बल्कि वहा अपने स्थायी बाशिन्दे भी बहुत काफी है, जिले का वाणिज्य का केन्द्र है। इसलिए यह जाडा म वैसा सूना नही हो जाता, जैसा नैनीताल या मसूरी। सेंट्रल होटल मे हम ठहर गये, जो मदन के होटलो मे से एक था। कमरे का किराया दस रुपया प्रतिदिन था। भोजन यहा का ठीक नही था, लेकिन उस समय किसी एक की ऐसी शिकायत करना उचित नही था।

उसी दिन हम महाकाल देखने गए। बौद्ध अपने विहारो या मदिरा का स्थान चुनने म सभी देशो और काला मे कमाल रखते हैं। यहा पर सबसे ऊँची जगह पर उन्होंने अपना मन्दिर स्थापित किया था, जहा बुद्ध की भी मूर्ति रही होगी, लेकिन साथ ही धर्मपालक महाकाल भी स्थापित थे। हिन्दुआ के लिए भी यह नाम परिचित है, इसलिए हिन्दू और बौद्ध महाकाल मे एक हो गए। जब अंग्रेज यहाँ पहुँचे, तो उन्हे यह देखकर बुरा लगा कि सबसे ऊँचे स्थान पर काफिरो का मन्दिर हो, और उनके गिर्जे का मस्तक उससे हेठा रहे। उन्होने महाकाल को वहा से हटवाया और पास म अपना गिर्जा खडा किया।

दार्जिलिंग म हिन्दी भाषी भी काफी हैं। मारवाडी तो सेठ और छोटे दूकानदार हैं। उनसे भी अधिक सख्या बिहार और उत्तर-प्रदेश के भोजपुरिया की है, जो अधिकतर छोटी मोटी दूकानें करते है। प० लालजी सहाय यहाँ के हाई स्कूल म अध्यापक थे। श्री जगबहादुर प्रधान भी हिन्दी के उत्साही कार्यकर्त्ता थे। इनके प्रयत्न से कई साल पहले यहा हिमाचल हिन्दी भवन स्थापित हुआ। दौड-धूप करने पर अनुकूल भूमि भी मिल गई, और उस पर लकडी का मकान खडा कर दिया गया, जिसम आजकल मिडिल स्कूल चल रहा था। मकान और बनान के लिए ३० हजार रुपया भी जमा हो गया था, लेकिन जरूरत थी ५० हजार की। हिन्दी भवन दार्जिलिंग के हिन्दी भाषियो के साहित्यिक और सास्कृतिक जीवन का केन्द्र है।

२० नवम्बर भी दार्जिलिंग मे ही बिताना था। जलपान करके ८ बजे निकले, तो भोजन के लिए दो बजे ही लौटकर आये। वनस्पति उद्यान यहाँ की एक दर्शनीय चीज है, और मेरे लिए तो परिभाषा के कारण भी वह विशेष आकर्षण रखता था। इस उद्यान मे ठण्डे मुल्कों के बहुत तरह के वृक्ष लगाये गये है। वृक्षों पर अंग्रेजी मे उनका नाम भी दिया हुआ है, लेकिन भारतीय नाम शायद ही किसी का मिलता है, हालाकि उद्यान के कर्मचारी, विशेषकर माली प्रायः सभी वृक्षों के देशी नाम जानते हैं। वह आसानी से इन नामो को दे सकते हैं, किन्तु उनके पास दो चार दिन रहने के लिए किसी के आने की जरूरत थी। वहा के अधिकारी से इसके बारे मे बातचीत की, और वह सहायता के लिए तैयार थे।

शहर के हिन्दू मन्दिर मे गए। जिस तरह हमारे रहन सहन मे गदगी है, उसी तरह हमारे देवता का रहन-सहन भी हो, तो अचरज क्या? लेकिन, हिमालय के तमग लोग भी बहुत अधिक स्वच्छता पसन्द नही हैं, उनका विहार क्यो इतना स्वच्छ है? जामामस्जिद भी यहा की एक खास धार्मिक इमारत है। उसमे भी हिन्दू मन्दिर से अधिक स्वच्छता देखी। मस्जिद के साथ धर्मशाला है। प्रबन्धक हमारे छपरा के मौलवी साहब निकले। उन्होंने सभी चीजें बडे प्रेम से दिखलाईं, और बतलाया कि हमारी धर्मशाला मे हिन्दू मुसलमान कोई भी आकर रह सकता है। दार्जिलिंग मे बर्चहिल भी एक दर्शनीय स्थान है। यहाँ से कलिम्पोग दिखाई पड़ता है। बर्च भुज वृक्ष को कहते हैं और वह इस स्थान से और सात हजार फुट ऊँची जगह मे होता है, जहा साल मे नौ महीने जमीन का बर्फ ढँके रहती है। यहा बर्च का कोई वृक्ष नही था, फिर इसका नाम भुजपर्वत क्यो रखा गया? जगलो से ढँका हुआ यह पर्वत पिकनिक और मनोरंजन के लिए अच्छा है।

दार्जिलिंग मे आकर अपने पथ प्रदर्शकों मे से एक युरोपी चोमा मग्यार (अलेक्जाण्डर चोमा दे कोरो) की समाधि को बिना देखे यात्रा कैसे पूरी हो सकती थी? हम उतरकर युरोपीय कब्रिस्तान मे गए। बहुत कब्रो के भीतर

वहा इट चूने के अठकोने न खम्भे के साथ जोमा की समाधि देखी। जोमा १७८४ ई० म हगरी मे पैदा हुआ। उसे मालूम था कि हमारे मगयारा के पूवज एशिया से आए थे। उसके मन मे आया, अपने पूवजा की भूमि और अपन भाईबन्दा का देखा जाए। बडी बडी तकलीफा को सहकर यह अदम्य घुमक्कड भारत पहुँचा फिर सुनसुनाकर तिब्बत को अपने लोगा का मूल स्थान समझ वह ल्हाख पहुँचा। मगयार लोग हूणा की सन्तान थे, और जिनका मूल स्थान मगोलिया था, जोमा का वहा जाना चाहिए था। पर, वह कोलम्बस की तरह ढूढते भारत चला आया—कोलम्बस भारत ढूढने अमेरिका चला गया। इससे पहले ही रूसी लाग तिब्बती भाषा और वहाँ के बौद्ध धम से सुपरिचित हो गए थे, क्योकि उनका सम्पक १८वी सदी के आरम्भ म ही मगोल लोगो से हा गया था, जो धम से बौद्ध थे और जिनकी धमभाषा तिब्बती थी। रूसी विद्वानो ने भाषा और धम के ऊपर काफी लिखा भी था, इसलिए जोमा को प्रथम तिब्बती भाषाविद् नही कहा जा सकता। पर इसम शक नही कि पश्चिमी युरोप के विद्वाना के लिए तिब्बत का दरवाजा उसी ने खोला। वह ल्दाख और ज़ास्कर म ऐसे लोगा मे रहा, जा तिब्बती भाषा छाडकर और दूसरी भाषा नही जानते। भाषा सीखने का अच्छा अवसर और क्या हो सकता था? उसने तिब्बती भाषा पढी। अग्रेजी म उसका प्रथम व्याकरण और प्रथम कोश लिखा। साढे पाच हज़ार भारतीय पुस्तकें तिब्बती भाषा मे अनुदित हाकर कजूर-तजूर के ३३८ "जिल्दो" मे सुरक्षित हैं, उनका विश्लेषण जोमा ने अग्रेजी मे किया, और तिब्बत के बारे म बहुत लिखा। वह विद्या के पीछे फकीर था। उसकी योग्यता की अग्रेज कदर करने लगे थे। कलकत्ता की एशियाटिक सासाइटी ने उसके रहन के लिए विशेष तौर से प्रबन्ध किया था। लेकिन, वह उसी तरह और वैसी ही सीधी-सादी पोशाक म वहाँ रहता था, जसे हिमालय के अपन प्रवास मे रह चुका था। यदि वह एक ओर तिब्बती भाषा का एक प्रकाण्ड विद्वान् था, ता दूसरी आर उसका सीदा-सादा जीवन एक मधुर काव्य था। वह कलकत्ता से चलकर दार्जिलिंग इसलिए आया था कि

कलिम्पोंग—२१ को सवेरे पौने ९ बजे दार्जिलिंग छोड दो घंटे में कलिम्पांग पहुँच गए। जाते समय कमला को कै हुई थी। पहाड की मोटर-यात्रा मे वह बहुत कच्ची है, लेकिन आज हिम्मत की इसलिए क की नौबत नही आई। उस दिन की चढाई अब खडी उतराई थी, जिसमे गाडी को बहुत सभाल कर चलाना पडता था। लौटने पर कई चिट्ठियाँ मिली। डा० ब्रजकिशोर माल्वीय ने जीव रसायन की परिभाषाओ के प्रति शब्दो मे अपने सुझाव को रखने का आग्रह किया था। विशेषज्ञो के दिये हुए प्रति शब्दो का बहुत मूल्य होता है इसे हम जानते थे, लेकिन साथ ही एक ही तरह के पारिभाषिक शब्द विज्ञान की कई शाखाओं म आते हैं। अग्रेजी मे जैसे उनकी एकता अक्षुण्ण रखी जाती है, वैसे ही हमें भी करना था, इस-लिए मालवीयजी को हमने पीछे समझा कर लिखा और वह हमारी बात मानने के लिए तैयार हो गए। मालवीयजी उन विद्वानो म हैं जो हिन्दी के भविष्य पर पूरा विश्वास रखते हैं और उसके लिए काम करने के लिए भी तैयार है। वह चिकित्सा विज्ञान की और शाखाओ मे भी काम कर सकते थे। श्री गोविन्द माल्वीय उस समय हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। उन्होंने मुझे प्राच्य विद्या की एक योजना बनाने के लिए लिखा था, मैंने योजना बनाकर भेज भी दी। मैं चाहता था, हिन्दू विश्वविद्यालय मे भी बौद्ध वाङ्मय और उसकी भाषाओ के अध्ययन-अध्यापन और अनुसन्धान का प्रबन्ध हो। इसका जिक्र भी मैंने किया था और मालवीयजी के इच्छा प्रकट करने पर तिब्बत से कन्जूर और तन्जूर की पुस्तकें मँगवा दी।

दिल्ली—२३ नवम्बर को सविधान के अनुवाद कार्य के लिए दिल्ली प्रस्थान करना पडा। साढे ११ बजे सिलीगुडी मे विमान कम्पनी के कार्यालय पर पहुँच कर ढाई बजे तक वही बैठा रहना पडा। फिर बागडोगरा जाकर ४ बजे विमान के धरती छोडने का समय आया। आज सारा विमान भरा हुआ था—१६ यात्री थे। कुछ लोग सर्दी के कारण घर की ओर लौट रहे थे। अधेरा होने से पहले ही कलकत्ता पहुँच जाना जरूरी था। अड्डे से हम पौने ७ बजे मणिहपजी के निवास पर पहुँचे। २४ के सवेरे दमदम

कलिम्पोंग—२१ को सवेरे पौने ६ बजे दार्जिलिंग छोड दो घंटे मे कलिम्पोंग पहुँच गए। जाते समय कमला को कै हुई थी। पहाड की मोटर-यात्रा मे वह बहुत कच्ची है, लेकिन आज हिम्मत की इसलिए कै की नौबत नही आई। उस दिन की चढाई अब खडी उतराई थी, जिसमे गाडी को बहुत सभाल कर चलाना पडता था। लौटने पर कई चिट्ठियाँ मिली। डा० व्रजकिशोर मालवीय ने जीव रसायन की परिभाषाओ के प्रति शब्दो मे अपने सुझाव को रखने का आग्रह किया था। विशेषज्ञो के दिये हुए प्रति-शब्दो का बहुत मूल्य होता है, इसे हम जानते थे, लेकिन साथ ही एक ही तरह के पारिभाषिक शब्द विज्ञान की कई शाखाओ मे आते है। अग्रेजी मे जैसे उनकी एकता अक्षुण्ण रखी जाती है, वैसे ही हमे भी करना था, इस-लिए मालवीयजी को हमने पीछे समझा कर लिखा और वह हमारी बात मानने के लिए तयार हो गए। मालवीयजी उन विद्वानो मे है जो हिन्दी के भविष्य पर पूरा विश्वास रखते है और उसके लिए काम करने के लिए भी तैयार हैं। वह चिकित्सा विज्ञान की और शाखाओ म भी काम कर सकते थे। श्री गोविन्द मालवीय उस समय हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। उन्होने मुझे प्राच्य-विद्या की एक योजना बनाने के लिए लिखा था, मैंने योजना बनाकर भेज भी दी। मैं चाहता था, हिन्दू विश्वविद्यालय मे भी बौद्ध वाड मय और उसकी भाषाओ के अध्ययन-अध्यापन और अनुसन्धान का प्रबन्ध हो। इसका जिक्र भी मैंने किया था और मालवीयजी के इच्छा प्रकट करने पर तिब्बत से कजूर और तजूर की पुस्तके मँगवा दी।

दिल्ली—२३ नवम्बर को सविधान के अनुवाद काय के लिए दिल्ली प्रस्थान करना पडा। साढे ११ बजे सिलीगुडी मे विमान कम्पनी के कार्या-लय पर पहुँच कर ढाई बजे तक वही बैठा रहना पडा। फिर बागडोगरा जाकर ४ बजे विमान के धरती छोडने का समय आया। आज सारा विमान भरा हुआ था—१६ यात्री थे। कुछ लोग सर्दी के कारण घर की ओर लौट रहे थे। अधेरा होने से पहले ही कलकत्ता पहुँच जाना जरूरी था। अड्डे से हम पौने ७ बजे मणिहपजी के निवास पर पहुँचे। २४ के सवेरे दमदम

कलिम्पोग—२१ को सवेरे पौने ९ बजे दार्जिलिंग छोड दो घटे मे कलिम्पाग पहुँच गए। जाते समय कमला को कै हुई थी। पहाड की मोटर-यात्रा मे वह बहुत कच्ची है, लेकिन आज हिम्मत की इसलिए कै की नौवत नहीं आई। उस दिन की चढाई अब खडी उतराई थी, जिसमे गाडी को बहुत सभाल कर चलाना पडता था। लौटने पर कई चिट्ठियाँ मिली। डा० व्रजकिशोर माल्वीय ने जीव रसायन की परिभाषाओ के प्रति शब्दो मे अपने सुझाव को रखने का आग्रह किया था। विशेषज्ञो के दिये हुए प्रति शब्दो का बहुत मूल्य होता है, इसे हम जानते थे, लेकिन साथ ही एक ही तरह के पारिभाषिक शब्द विज्ञान की कई शाखाओ मे आते है। अग्रेजी मे जैसे उनकी एकता अक्षुण्ण रखी जाती है, वैसे ही हमे भी करना था, इसलिए मालवीयजी को हमने पीछे समझा कर लिखा और वह हमारी बात मानने के लिए तैयार हो गए। मालवीयजी उन विद्वानो मे हैं जो हिन्दी के भविष्य पर पूरा विश्वास रखते है और उसके लिए काम करने के लिए भी तयार हैं। वह चिकित्सा विज्ञान की और शाखाओ मे भी काम कर सकते थे। श्री गोविन्द मालवीय उस समय हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। उन्होने मुझे प्राच्य विद्या की एक योजना बनाने के लिए लिखा था, मैंने योजना बनाकर भेज भी दी। मैं चाहता था, हिन्दू विश्वविद्यालय मे भी बौद्ध वाङ्मय और उसकी भाषाओ के अध्ययन-अध्यापन और अनुसधान का प्रबध हो। इसका जिक्र भी मैंने किया था और मालवीयजी के इच्छा प्रकट करने पर तिब्बत से कजूर और तजूर की पुस्तकें मँगवा दी।

दिल्ली—२३ नवम्बर को सविधान के अनुवाद काय के लिए दिल्ली प्रस्थान करना पडा। साढे ११ बजे सिलीगुडी मे विमान कम्पनी के कार्यालय पर पहुँच कर ढाई बजे तक वहीं बैठा रहना पडा। फिर बागडोगरा जाकर ४ बजे विमान के धरती छोडने का समय आया। आज सारा विमान भरा हुआ था—१६ यात्री थे। कुछ लोग सर्दी के कारण घर की ओर लौट रहे थे। अधेरा होने से पहले ही कलकत्ता पहुँच जाना जरूरी था। अड्डे से हम पौने ७ बजे मणिहपजी के निवास पर पहुँचे। २४ के सवेरे दमदम

वर्मा (बनारस) के सुझाव यदि लोगो को पसन्द नही आते थे तो उसका कारण यह था कि वह इस बात का ध्यान नही रखते थे कि हमारे भाषा-भंडार की बहुत-सी निधियाँ सभी प्रादेशिक भाषाओ की सम्मिलित सम्पत्ति हैं, इसलिए हम सिर्फ हिन्दी या गुजराती की दृष्टि से परिभाषाओ का निर्माण नही कर सकते थे। श्री तीर्थनाथ शर्मा (असम), सुनीति बाबू (बगला), मुनि दिग्विजय जी (गुजराती), श्री घनश्याम गुप्त (हिन्दी), श्री टी० एन० श्री कंठैया (कर्नाटक), श्री जियालाल कौल (कश्मीरी), श्री कुन्हनराजा (मलयालम), श्री चेतु पिल्लई (तमिल), श्री सत्यनारायण (तेलेगु), श्री वाइ० आर० दाते (मराठी), श्री आर्तवल्लभ महती (उड़िया), ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफिर (पजाबी), काजी अब्दुलगफार (उर्दू) परिषद के सदस्य थे। बालसुब्रह्मण्य अय्यर (सस्कृत) ने परिषद के निर्णयो मे अच्छा सहयोग दिया।

सविधान के सस्कृत अनुवाद समिति भी बन गई थी। १ दिसम्बर के २ बजे से उसकी बैठक हुई। सविधान का कुछ थोडा-सा अनुवाद श्री कुन्हन-राजा, श्री बालसुब्रह्मण्य अय्यर, डा० मगलदेव और डा० रघुवीर भी करके लाए थे। लेकिन यह बैठक सिर्फ मिलकर बैठने भर के लिए हुई थी। समिति के प्रधान डा० काने यहाँ आने म असमर्थ थे इसलिए काम को आगे के लिए छोडकर बैठक उठ गई। सस्कृत समिति के सभी सदस्य मेरे परिचित थे। सिर्फ डा० काने का दर्शन नही हुआ।

उसी दिन श्री प० सत्यदेवजी (रामपुर) मिले। उन्होंने बतलाया, साल भर से ऊपर हो गया, लेकिन हिमाचल प्रदेश मे जनता के हित का कोई काम नही हो रहा है। जो कुछ आमदनी होती है वह नौकरशाही के खर्च म चली जाती है। सचमुच ही हमारा शासन प्रजा के हित के लिए नहीं, बल्कि शासकों के हित के लिए है। यह बडे दुख की बात थी।

३ दिसम्बर को मनोनीत राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू का जन्मदिवस था। भारतीय पचाग के अनुसार पूस बदी १ को होता था। उस दिन अनुवाद समिति के लोग भी उनके यहाँ गए। हवन-पूजा की आग और सामग्री

सामने बिछी हुई थी और राजेन्द्र बाबू नेपाली बगलबन्दी पहन आसन पर बैठे हुए थे। सभी लोग बधाई दे रहे थे। मुझे भी बोलने की जरूरत पडी। मैंने कहा गणतन्त्र की घोषणा के समय यह भी घोषित कर दिया जाये कि आज से सडकों और रास्तो पर दाहिने से चलना होगा। सिवाय अँग्रेजों के मुल्क और उनके शासित देशों के दुनिया मे सभी जगह "दक्षिण चलो" का नियम है। यूरोप, अमेरिका ही नहीं, एसिया म भी यही बात है। फिर हम क्या अँग्रेजो के जाने के बाद भी दुनिया से न्यारी उनकी रुढि को बनाए रखे। राजेन्द्र बाबू ने कहा—जवाहरलाल से कहें। क्या सचमुच अँग्रेजो की सारी बेवकूफिया और हठो को कायम रखने का बीडा नेहरूजी ने उठाया है? यह तो मालूम ही था कि राष्ट्रपति पद के लिए राजगोपालाचारी भी लालायित थे। और उनके समर्थकों मे शायद नेहरू जी भी थे पर पटेल राजेन्द्र बाबू के पक्ष मे थे। इसे सभी स्वीकार करेंगे, कि वह राजाजी से कही अधिक इस पद के योग्य थे। वह जनसाधारण के आदमी थे। मैं तो समझता था राष्ट्रपति बनने पर भी राजेन्द्र बाबू उसी तरह जनसाधारण मे घुलते मिलते रहेंगे, और जहाँ तक उनका सम्बन्ध है, उनके भाव वैसे ही है भी। पर नेहरू और दूसरे लिफाफियो ने दिल मे बठा दिया है कि राष्ट्रपति के पद की मर्यादा की रक्षा करने के लिए तडक भडक का रहना जरूरी है। धोती, कुर्ते मे नही, अचकन और चूडीदार पायजामे मे रहने से इस पद के गौरव की रक्षा होती है। राजेन्द्र बाबू ने यद्यपि धोती कुर्ते को छोडा नही, लेकिन खास खास मौको पर नेहरूशाही राष्ट्रीय पोशाक का धारण करना जरूर स्वीकार किया। मैंने उस दिन कहा था अचकन और पायजामा नही बल्कि धोती के साथ चौबन्दी अधिक राष्ट्रीय पोशाक है। भागलपुर जेल मे किसी नेपाली दर्जी ने ऊनी चौबन्दी उनके लिए सी दी थी जिसे वह इस समय पहने हुए थे। कहने लगे—"देखिये मैं यह पहने हुए हू।" चौबन्दी एक समय प्राय सारे ही भारत की राष्ट्रीय पोशाक थी। आज भी वह महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, हरियाना, पहाड, नेपाल तक पहनी जाती है। पहले असम, बगाल, उडीसा और आध्र मे भी

पहनी जाती थी। यदि अपनी एक विशेष पोशाक खास-खास समय के लिए आवश्यक है, तो बगलबन्दी, धोती या बगलबन्दी साधारण पायजामे का रखना चाहिए। नेहरूशाही पोशाक तो दुबले-पतले आदमी को कार्टून बना देती है, और कितने लोग कहने लगते हैं अब केवल सारंगी की कमर है।

अनुवाद का अन्तिम पुनरावलोकन हो रहा था। उसमें कितना समय लग रहा था यह इसी से मालूम होगा कि ५ दिसम्बर को ८ बजे हम वहां गए और शाम को ७ बजे छुट्टी मिली। अनुवाद के काम में सबसे अधिक मेहनत श्री घनश्याम सिंह गुप्त और बालकृष्ण जी को करनी पड़ी। तरुण बालकृष्ण जी उसके लिए सबसे उपयुक्त आदमी सिद्ध हुए। उनकी स्मृति बड़ी तीव्र थी। अंग्रेजी और उसके भारतीय प्रतिशब्दों के सूक्ष्म भेद को परखने की उनमें शक्ति थी और मेहनत करने में तो वह थकते ही नहीं थे।

७ दिसम्बर का सबेरे दिल्ली से कलकत्ता की गाड़ी पकड़ी। रेस्तोरां गाड़ी का भोजन बिल्कुल फीका था। अभी पुराने जमाने के लौटने की सम्भावना नहीं मालूम होती थी। रात्रि भोजन का साढ़े तीन रुपया देना पड़ा, पर वह सबेरे के ढाई रुपये वाले जितना बुरा नहीं था। दिल्ली मेल गया से आगे पहुँच देर तक रुका रहा। मैंने तो सपना देखा— 'इंजन खराब हो गया है और खड़ी ट्रेन को रस्सा बांधकर खींचा जा रहा है। रस्सा खींचने वालों में आगे आगे मैं हूँ।" चढ़ाई और समतल भूमि में वैसे ही खींचता रहा पर उतराई आने पर रुक गया। साथियों को भी कहना लगा कि ट्रेन पीछे से रोको, बिना पटरी के ही रेल चल रही है। कितने अकलमन्द लोग कह रहे थे कि पृथ्वी की पटरी स्वभावतः अधिक कठोर होती है, इसलिए ऐसे चलने में कोई हर्ज नहीं है।" स्वप्न भी जागृति का ही अधिकतर प्रतिनिधित्व करता है। ट्रेन की चाल से ऊबे हुए मन ने यह दृश्य सामने रखा था।

८ दिसम्बर के सबेरे ट्रेन गोमो स्टेशन पर एक घंटा लेट पहुँची। आगे आसनसोल तक पथरीली भूमि है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मुगलसराय से हमारी ट्रेन ने गया, हजारीबाग रोड का रास्ता लिया था।

यह वह रास्ता है जिस पर ही हमारी कोयले और धातु की खान पड़ती हैं, और आगे चलकर इसका महत्व पटना या भागलपुर होकर जाने वाली लाइनों से भी बढ़कर होगा। इंजन ने कोशिश की, तब भी हावड़ा हम ४५ मिनट लेट पहुंचे। मणि बाबू की कार मौजूद थी, हम सीधे उनके घर पर पहुंचे। श्री पोद्दारजी से पुस्तकों के प्रकाशन के बारे में बात पूरी हुई, और उन्होंने मार्च में २५ हजार अग्रिम देना स्वीकार किया। यह अग्रिम पीछे कई कठिनाइयों का कारण हुआ, जिनमें पहले ही इन्कम टैक्स अफसर ने इसे आमदनी मानकर सुपर-टैक्स लगा दिया, और बड़ी तरद्दुद करने के बाद इससे पिण्ड छूटा। फिर उस रुपये को बैंक में रखने पर एक तरफ रुपये के मूल्य गिरने से उसके डूब जाने का डर था, तो दूसरी तरफ अपना मकान लेने का भी आग्रह हुआ और उस मकान को लिया भी जिसमें ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं और जिसे हम छोड़ना चाहते हैं लेकिन उसे कोई पूछने वाला नहीं है।

अपने पुराने परिचित स्थानों के देखने का शौक आदमी का होता ही है। बनारस जाने पर मैं मोतीराम के बगीचे के देखने का लोभ संवरण नहीं कर सकता और कलकत्ता में आने पर १९०७ और १९०९ के परिचित राजा चौक की उस कोठरी को देखने के लिए उत्सुक हो जाता जिसमें मैं पाठकजी के आश्रित रहा करता था। मैं समझता था, जिसका नम्बर ६४ है वह तिमंजिले पर ८० नम्बर की कोठरी है। अब भी कुछ कोठरी हटकर वहीं नत्थासिंह सुरमे वाले का साइनबोर्ड लगा हुआ था।

कलिम्पोंग—१० तारीख को ८ बजे मुझे लेकर विमान उड़ा। २१ सीटों में सिर्फ ४ पर यात्री बैठे हुए थे, बाकी में कुछ माल भरा हुआ था। भला, ऐसी स्थिति में विमान यात्रा के अच्छे प्रबन्ध की आशा कैसे हो सकती है? अभी विमान-कम्पनियां सारी सेठों की थीं जिनका सबसे पहले ध्यान लाभ शुभ की ओर होता है। डेढ़ बजे तक मैं कलिम्पोंग पहुँच गया। अब सर्दी बढ़ गई थी, और हमारे लोग अंगीठी जलाने लगे थे। श्री सेनगुप्त स्वदेशी के बड़े पक्षपाती हैं। हम लोग खाने में कांटे चम्मच का इस्तेमाल

करते थे, तो वह नाक भी सिकोड़ते अपने हाथ से खाते थे। अब देखा, वह भी काँटा चम्मच इस्तेमाल कर रहे हैं। पूछने पर बतलाया, पानी ठण्डा है, गरम होने पर भी कुछ देर में हाथ तो ठण्डा हो जाता है। मैंने सेनगुप्त जी को इस बुद्धिमानी के लिए साधुवाद दिया। सचमुच हमारे बहुत से आचार विचारों में देश और काल का प्रभाव निर्णायक होता है। सेनगुप्त जो काँटे चम्मच का नाम लेने पर कहते थे—"क्या मेरे हाथ नहीं हैं।" और अब बिना किसी के कहे इस परिवर्तन को मानने के लिए तैयार हो गए। यद्यपि कलिम्पांग की सर्दी बहुत कड़ी नहीं होती, इसीलिए वहाँ बर्फ नहीं पड़ती। लेकिन सर्दी तो थी, और उससे सेनगुप्त जी को सबसे अधिक कष्ट हो रहा था।

११ दिसम्बर को डा० रायरिक से मिलने गया। आजकल उनके अनुज स्वेतस्लाव और उनकी पत्नी देविका रानी भी आई थीं। स्वेतस्लाव को बारह वर्ष बाद देखा था। उस समय भी उन्होंने दाढ़ी रखी थी लेकिन अब वह अधिकांश सफेद हो चुकी थी। देविका रानी हिन्दी तथा लोक कथाओं के बारे में बात करती रहीं। आयु ४० साल की होगी लेकिन प्रसाधन भी क्या कमाल करता है। देखने में षोडशी मालूम हो रही थीं, ओठों पर अधर राग, मुख पर सूक्ष्म क्रीम, बालों में एक दर्जन कुंचित अलकें, वेश शालीन, आँखों में चमक, मुख पर प्रसन्नता की स्वाभाविक मुद्रा—यह थीं देविकारानी, जिनके देखने के लिए कलिम्पांग में भीड़ लग जाया करती थी। वह सुशिक्षित और सुसंस्कृत महिला हैं यह उनके वार्तालाप से मालूम हो रहा था।

१५ दिसम्बर को सेनगुप्त जी कलकत्ता दस-बारह दिना के लिये गए। अब हम कलिम्पांग से दंड कमंडल उठानेवाले थे। चार ही महीने बाद फिर ठंडी जगह की तलाश करनी थी, इसलिए कई मित्रों को लिख रखा था। १७ दिसम्बर को पं० गयाप्रसाद शुक्ल का पत्र देहरादून से आया। उन्होंने लिखा था, चकरौता में एक अच्छा बंगला है, जो किराये पर भी मिल सकता है और माल भी। उस समय यह पता नहीं था कि वर्षों के लिए

यह वह रास्ता है जिस पर ही हमारी कोयले और धातु की खान पड़ती हैं, और आगे चलकर इसका महत्व पटना या भागलपुर होकर जाने वाली लाइनो से भी बढ़कर होगा। इजन ने कोशिश की, तब भी हावड़ा हम ४५ मिनट लेट पहुचे। मणि बाबू की कार मौजूद थी, हम सीधे उनके घर पर पहुचे। श्री पोद्दारजी से पुस्तकों के प्रकाशन के बारे मे बात पूरी हुई, और उन्होंने माच मे २५ हजार अग्रिम देना स्वीकार किया। यह अग्रिम पीछे कई कठिनाइयो का कारण हुआ, जिनमे पहले ही इन्कम टक्स अफसर ने इसे आमदनी मानकर सुपर-टैक्स लगा दिया, और बडी तरद्दुद करने के बाद इससे पिण्ड छूटा। फिर उस रुपये को बैक मे रखने पर एक तरफ रुपये के मूल्य गिरने से उसके चुरा जाने का डर था, तो दूसरी तरफ अपना मकान लेने का भी आग्रह हुआ और उस मकान को लिया भी जिसमे ये पक्तिया लिखी जा रही हैं और जिसे हम छोडना चाहते हैं लेकिन उसे कोइ पूछने वाला नही है।

अपने पुराने परिचित स्थानो के देखने का शौक आदमी को होता ही है। बनारस जाने पर मैं मोतीराम के बगीचे के देखने का लोभ सवरण नही कर सकता और कलकत्ता मे आने पर १९०७ और १९०९ के परिचित राजा चौक की उस कोठरी को देखने के लिए उत्सुक हो जाता जिसमे मैं पाठकजी के आश्रित रहा करता था। मैं समझता था, जिसका नम्बर ६४ है वह तिमजिले पर ८० नम्बर की कोठरी है। अब भी कुछ कोठरी हटकर वही नत्थासिंह सुरमे वाले का साइनबोर्ड लगा हुआ था।

कलिम्पोंग—१० तारीख को ८ बजे मुझे लेकर विमान उडा। २१ सीटो मे सिर्फ ४ पर यात्री बैठे हुए थे, बाकी मे कुछ माल भरा हुआ था। भला ऐसी स्थिति मे विमान-यात्रा के अच्छे प्रबन्ध की आशा कैसे हो सकती है? अभी विमान-कम्पनिया सारी सेठो की थी जिनका सबसे पहले ध्यान लाभ शुभ की ओर होना है। डेढ बजे तक मैं कलिम्पोग पहुँच गया। अब सर्दी बढ गई थी, और हमारे लोग अगीठी जलाने लगे थे। श्री सेनगुप्त स्वदेशी के बडे पक्षपाती है। हम लोग खाने मे काँटे चम्मच का इस्तेमाल

करते थे, तो वह नाक भौं सिकोड़ते अपने हाथ से खाते थे। अब देखा, वह भी काँटा चम्मच इस्तेमाल कर रहे हैं। पूछा पर बतलाया, पानी ठण्डा है, गरम होने पर भी कुछ देर में हाथ तो ठण्डा हो जाता है। मैंने सेनगुप्त जी को इस बुद्धिमानी के लिए साधुवाद दिया। सचमुच हमारे बहुत से आचार-विचारों में देश और काल का प्रभाव निर्णायक होता है। सेनगुप्त जी काँटे चम्मच का नाम लेने पर कहते थे—"क्या मेरे हाथ नहीं हैं।" और अब बिना किसी के कहे इस परिवर्तन को मानने के लिए तैयार हो गए। यद्यपि कलिम्पोंग की सर्दी बहुत कड़ी नहीं होती, इसीलिए वहाँ बर्फ नहीं पड़ती। लेकिन, सर्दी तो थी, और उससे सेनगुप्त जी को सबसे अधिक कष्ट हो रहा था।

११ दिसम्बर को डा० रायरिक से मिलने गया। आजकल उनके अनुज स्वेतस्लाव और उनकी पत्नी देविका रानी भी आई थी। स्वेतस्लाव को बारह वर्ष बाद देखा था। उस समय भी उन्होंने दाढ़ी रखी थी लेकिन अब वह अधिकांश सफेद हो चुकी थी। देविका रानी हिंदी तथा लोक-कथाओं के बारे में बात करती रही। आयु ४० साल की होगी लेकिन प्रसाधन भी क्या कमाल करता है। देखने में षोडशी मालूम हो रही थी, ओठों पर अधर राग, मुख पर सूक्ष्म क्रीम, बालों में एक दर्जा कुंचित अलकें, वेश शालीन, आँखों में चमक, मुख पर प्रसन्नता की स्वाभाविक मुद्रा—यह थी देविकारानी, जिनके देखने के लिए कलिम्पोंग में भीड़ लग जाया करती थी। वह सुशिक्षित और सुसंस्कृत महिला हैं, यह उनके वार्तालाप से मालूम हो रहा था।

१५ दिसम्बर को सेनगुप्त जी कलकत्ता दस-बारह दिनों के लिये गए। अब हम कलिम्पोंग से डंड कमंडल उठानेवाले थे। चार ही महीने बाद फिर ठंडी जगह की तलाश करनी थी, इसलिए कई मित्रों को लिख रखा था। १७ दिसम्बर को पं० गयाप्रसाद शुक्ल का पत्र देहरादून से आया। उन्होंने लिखा था, चकरौता में एक अच्छा बंगला है, जो किराये पर भी मिल सकता है और मोल भी। उस समय यह पता नहीं था कि वर्षों के लिए

हम शुक्लजी के पड़ोसी होने जा रहे हैं। कमला का पत्र दिल्ली में ही मिल चुका था जिसमें उन्होंने लिखा था, यहाँ रहने में मुझे मानसिक पीड़ा होती है। मैं उनकी स्थिति का कुछ-कुछ अनुभव करता था और यह निश्चय कर चुका था कि अब उन्हें अपने भाग्य पर नहीं छोड़ना होगा। उनकी अपनी प्रतिभा का जिस तरह भी अच्छी तरह उपयोग करने का अवसर मिले, वही मुझे करना होगा। विदाई देने के लिए लोग आने लगे। १८ को मिसेज ब्रिक्स और दूसरे कितने ही मित्र आये। कमला का परिवार भी मिलने आया। अबके साल साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हैदराबाद में होने वाला था। मेरा जाने का कोई इरादा नहीं था, लेकिन श्री बल्भद्र मिश्र का आग्रह था, इसलिए मैं उसे टाल नहीं सका। "साहित्य वाचस्पति" की उपाधि अबके साल मुझे मिली थी। इसकी कृतज्ञता के लिए भी सम्मेलन के इस अधिवेशन में जाना जरूरी था। पर सबसे ज्यादा जिस बात ने मुझे जाने के लिए बाध्य किया, वह था परिभाषा का काम और उसके लिए प० बलभद्र मिश्र का हाथ मजबूत करना। यदि मिश्रजी सम्मेलन के कर्णधार आगे भी बने रहते तो उनसे बड़ी आशा थी। वह भी बेलाग आदमी थे और उचित बात के लिए अपने या पराये की मुरौवत मानने के लिए तैयार नहीं थे।

दार्जिलिंग जिले का अन्न-जल इतने दिन तक खाकर उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करना मेरे लिए जरूरी था। और उसी का क्या, सारे हिमालय का मुझ पर ऋण था। मैं वर्षों हिमालय की शीतल छाया और शीतल जल का आनन्द लेता आया था। उसके पर्वतों, उपत्यकाओं हिमानियों और सीधे सादे लोगों से आत्मीयता पैदा की, उनसे परिचय प्राप्त किया। यात्रा करते वक्त मेरा हमेशा ध्यान रहा कि वह केवल स्वान्तः सुखाय नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसके आनन्द में दूसरों को भी सहभागी बनाना चाहिए। इसीलिए मैंने अपनी हरेक यात्रा के विवरण लिखे। अब हिमालय कह रहा था, हमारे ऋण से भी तुम्हें उऋण होना चाहिए। इसीलिए मैंने निश्चय किया, दार्जिलिंग के बारे में लिखना चाहिए। "कलिम्पोंग में ही

मैंने "दार्जिलिंग परिचय" लिखना शुरू कर दिया और सामग्री उसी समय जमा कर ली। "दार्जिलिंग परिचय" के बाद फिर नैनीताल में रहते "कुमाऊँ" में हाथ लगाया। मसूरी में आने पर गढ़भूमि (गढ़वाल) का आग्रह हुआ, और उसे भी लिखा। फिर नेपाल कहने लगा, मुझे क्यों बीच में छोड़ रहे हो। उसे भी लिख डाला, और अन्त में "देहरादून-जौनसार" और "हिमाचल प्रदेश" लिखकर भूटान की पश्चिमी सीमा से जम्मू-कश्मीर की पूर्वी सीमा तक फैले हिमालय के बारे में लिखकर मैंने अपने को उऋण करना चाहा। पुस्तकें मैंने लिख डालीं, कुछ के प्रकाशक अभी नहीं मिले, और कुछ के प्रकाशक फुटबाल बना या वर्षों रखकर अचार बनाने की चिन्ता में हैं।

२०

# हैदराबाद-सम्मेलन

सभी को कलिम्पोंग से जाना नही था। भट्ट और सेनगुप्त जी को यही रहकर काम करना था। कमला को हैदराबाद-सम्मेलन भी दिखलाना था। इस तरह आधे भारत को वह देख सकती थी, इसलिए उन्हें भी साथ लेकर २१ दिसम्बर को टैक्सी से २ बजे हम सिलीगाडी पहुच गये। रास्ते म कमला को दो बार कै हुई, यद्यपि उन्होने इससे बचने के लिए पेट को खाली रखा था। बागडोगरा पहुँचे। विमान अधिकतर खाली था। सिर्फ ६ मुसाफिर थे। मैंने बहुत समझाया कि विमान पहाड पर चलने वाली मोटर की तरह से हिलता डुलता नही है, इसलिए इसमे क करने की बिलकुल जरूरत नही है। जो कै करते हैं, वह केवल मन के कारण ही। कमला ने निराहार व्रत रखा था और मन को काफी समझाने की कोशिश की। विमान म तो कै नही हुई, लेकिन कलकत्ता नगरी मे मोटर पर चलते अपने को वह रोक नही सकी। हम मणिरूपजी के यहाँ पहुँचे। उसी रात नागपुर की तरफ रवाना होना चाहते थे। मेल ट्रेन मे कोई जगह नहीं थी। पसेंजर मे जगह मिल रही थी। हर स्टेशन पर वह खडी होती चलती। समय का खून तो था ही, लेकिन हम चौबीस घटा प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नही थे। दो सीटे रिजर्व करवाई। हावडा से नागपुर पैसेंजर १० बजे रात को

को रवाना हुई। हमारे कम्पाटमेन्टमे सात सीटे थी जिनमे से दो खाली रही।

कमला जीवन मे कलकत्ता भर आ पाई थी। अब उन्हें बगाल से मध्य प्रदेश की भूमि मे चलने का मौका मिला। बगाल को देखकर वह समझती होगी, सभी जगह सपाट मैदान है और हरे भरे पहाड केवल हिमालय म देखने को मिलते ह। यहाँ अब उनके सामने छत्तीसगढ की हरी भरी पहाडियाँ थी। वर्षा का समय होता, तो वह और भी हरी होती। धान के खेत कट रहे थे। बगाल, उडीसा की भूमि को पार कर वह मध्य प्रदेश मे चल रही थी। हैदराबाद मे जाकर उन्हे तलगाना भी देखने का अवसर मिला। उसके बाद विन्ध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पजाब, बिहार ही नही नेपाल भी वह देख चुकी। पहाड म पैदा हुए व्यक्ति के लिए यह मामूली साहस यात्रा नही थी।

२३ दिसम्बर को ६ बजे सवेर हम नागपुर पहुँचे। अपना सामान वर्धा की गाडी म रख सोच रहे थे कि वहाँ चलकर कुछ घट विश्राम करें। लेकिन प्लेटफार्म पर प० बलभद्र मिश्र मिल गए। उन्होंने बतलाया, प्रयाग से ही रिजर्व डब्बा आ रहा है, जिसमे बहुत से साहित्यिक मित्र जा रह है। फिर सन्त समागम से वचित रहन के लिए कौन तैयार होता? प० लक्ष्मी नारायण मिश्र, राय रामचरण, अशार्फ गुप्त, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, आदि परिचित बन्धु वहाँ आसन लगाये बैठे थे। वही हम भी पहुँच गए। कमला को महिलाओ के सत्सग का लाभ हुआ। वधा म गाडी घटा भर खडी रही। यही जलपान हुआ। लौटकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति म आना था इसलिए अपना आधा सामान वहाँ भिजवा दिया। आनन्दजी भी उसी ट्रेन मे चल रहे थे। गाडी फिर रवाना हुई।

अब हम हैदराबाद की तरफ चले। रात को चाँदा के बाद जगल मे दीवाली देखी। लक्ष्मी जहाँ बस जाए, वहाँ दीवाली, और उसके इशारे पर एक दिन की नही बारहो मास की दीवाली हो सकती है। यहाँ कोई कारखाना था।

रात के साढे ६ बजे काजीपेट म पहुँचकर हमारा डब्बा काट

दिया गया। भिनसार से सवा ६ बजे उसे हैदराबाद के लिए रवाना होना था। हम रेस्तोरा म चले गए। वहाँ मुगमुसल्लम के तैयार की बात सुनी। हमने मँगा लिया। अभ्यस्त के लिए भी छुरी काट से मुगमुसल्लम खाना जहमत की बात है। वह कमला के बस की बात नही थी। उन्होने छुरी काटा इधर उधर चलाया, लेकिन मुग कटने की जगह जिन्दा होकर प्लेट से बाहर कूदने के लिए तैयार था। वह मानती थी कि मुगमुसल्लम छोडने की चीज नही है लेकिन मजबूर थी।

गाडी डाक हो गई थी। सवेरे दो घन्टे दिन से हैदराबाद की भूमि देखने का मौका मिला, और सिकन्दराबाद होते ८ बजे हम वहा पहुँच गए। स्टेशन पर स्वागत के लिए बडी तैयारी थी। जलूस निकलता और घन्टा हैरान होना पडता। हमने पता लगाया, जब मालूम हुआ कि श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त की कोठी पर ठहरना है, तो शहर से बाहर हम उनके मकान मे पहुँच गए। सबसे पहला काम था स्नान। रेल की यात्रा म आदमी म्लेच्छ हो जाता है। स्नान के बाद चायपान। फिर हम सम्मेलन के स्थान हिन्दी-नगर मे गए। हैदराबाद के लिए एक साल पहले हिन्दी तुच्छ और अजनबी सी भाषा थी। निजाम सरकार यहा की देशभाषाओं—मराठी, कन्नड और तेलुगु—को मानने के लिए तैयार नही थी। वह उर्दू को बढाने के लिए करोडो रुपये पानी की तरह बहा रही थी। उस समय हिन्दी का नाम लेना भी कुफ्र होता था। लेकिन, अब निजामशाही खतम हो चुकी थी, निजाम राज म राजप्रमुख बनाकर छोड दिया गया था। राजकाज उन लोगो की मर्शा के मुताबिक होता था जिनका निजाम कोई वकअत देने के लिए तैयार नही था। 'कभी नाव गाडी पर और कभी गाडी नाव पर" होता ही रहता है। हैदराबाद तेलुगूभाषी क्षेत्र मे है। तेलुगू मराठी और कन्नड तीनो भाषाओ के बोलने वाले नही जानते कि पर्दा किस चिडिया का नाम है। बहमनीशाही और निजामशाही के ६ सौ वर्षों के घोर प्रचार करने पर भी पर्दा यहाँ जनप्रिय नही हो सका। इसीलिए हिन्दीनगर म यदि स्त्रियो की भारी सख्या दिखाई देती हो तो कोई ताज्जुब नही। तरुण

स्वय मविकाए अपने काम को बडी अच्छी तरह से कर रही थी। भोजन का प्रबन्ध भी बहुत सुन्दर था। रोटी भी थी, किन्तु जिस देश म जाना, वहाँ का भोजन अपनाना मुझे ज्यादा प्रिय है। दोपहर का वही चावल, फीकी या खट्टी आलू की तरकारी और दूसरे व्यजन खाये। मिर्च की शिकायत हो सकती थी, लेकिन यहाँ बनाने वालो न उसका आग्रह छोड दिया था। रसम् (इमली का स्वादिष्ट पानी) दक्षिणी भोजन म मुझे बहुत प्रिय है लेकिन मेरी ही तरह दूसरे मेहमान उसके गुणग्राहक नही थे।

२ बजे से स्थायी समिति बैठी। कई सालो से सम्मेलन की नियमावलि के सशोधन की बात चल रही थी। इस समय भी उसके बारे में कुछ बात हुई लेकिन नियमावलि का सशोधन यदि इतनी जल्दी होकर वह पास हो जाती, तो सम्मेलन को आज के दिन कैसे देखने पडते ?

सम्मेलन—साढे ५ बजे अधिवेशन शुरू हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त ने अपना स्वागत-भाषण पढा। फिर मध्य प्रदेश के मुख्यमत्री प० रविशकर शुक्ल ने उद्घाटन भाषण दिया। मनोनीत सभापति प० चन्द्रबलि पाडे के नाम का प्रस्ताव सेठ गोविन्द दास ने रखा। मैंने और प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने समर्थन किया। सारा भाषण पढने मे बहुत देर होती और वहा समय का सवाल था। ७ बजे हम अधिवेशन-स्थान से गुप्तजी के घर पर चले आये। कमला न सम्मेलन की विशाल सभा को भी देख लिया। मुझे मच पर बैठना था। उन्हे रानी टण्डन मिल गईं, जिन्होने दुबली पतली लडकी पर अधिक छोह दिखाना जरूरी समझा। यद्यपि कलिम्पोग के आदमी के लिए हैदराबाद का दिसम्बर का महीना भी सर्द नही हो सकता, लेकिन राय रामचरण ने अपनी गरम चादर लाकर दे दी।

२५ दिसम्बर के सवेरे साहित्य परिषद् मे श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र का बहुत ही सुन्दर और सारगर्भित भाषण हुआ। सम्मेलन और साहित्य-परिषद् दोनो के सभापति आजमगढी थे। दोनो ही की योग्यता का लोहा लोग मान रहे थे। यह मेरे लिए वैयक्तिक अभिमान की बात थी। परिषद्

से उठकर म्यूजियम देखने गये। मुगल शासन का दिल्ली मे खातमा हो रहा था, उसी समय एक मुगल सामन्त निजामुलमुल्क ने हैदराबाद म अपनी ध्वजा फहराई। अतिम मुगल काल मे दिल्ली म चार राजनीतिक दल थे—१ मुगलो या मध्य एसियायी तुर्कों का दल, जिसका नेता निजामुलमुल्क था, २ ईरानी दल, जिसके नेता अवध और मुर्शिदाबाद के नवाब थे, ३ पठानो का दल अर्थात्, जिनका सबसे बडा नेता नजीबुद्दौला था, और जिसने नजीमाबाद को बसाया, ४ मुल्की दल अर्थात् देश के मुसलमानो की पार्टी जिसके नेता मुजफ्फरनगर जिले के सैयदबन्धु थे। निजामुलमुल्क मध्य एशिया के तुर्कमान कबीले का था, इसलिए वह बादशाह निजी दल का आदमी था। वहा से बहुत सी चीजें वह ला सकता था, जिनमे से कुछ इस म्यूजियम मे रखी हुई थी। मुगलकालीन लघु चित्रो का यहा सुन्दर सग्रह था। बहुत-से हस्तलिखित ग्रन्थ थे, जिनम एक 'नौरस" पुस्तक भी थी। बहुत सुन्दर मूर्तिया हैदराबाद मे जगह-जगह बिखरी थी, जिनका बहुत अच्छा सग्रह हो सकता था। लेकिन वह तो कुफ्र की निशानी थी, इसलिए उनकी तरफ बेपरवाही करना स्वाभाविक था। एक जगह पर बराडे म कई गन्धार कला की मूर्तियाँ साधारण मूर्तियो के ढेर म पडी हुई थी। यही बतला रही थी कि इस अन्धेर नगरी मे चौपट राजा ही रह सकते है। जो दुरवस्था गान्धार मूर्तियो की थी, वही अमरावती की मूर्तियो की थी। किसी मूर्ति पर कोई परिचय वाक्य नही लिखा हुआ था। भोजनोपरान्त हम राजकीय पुस्तकालय देखने गये। फारसी अरबी को मेरी जानकारी न सहायता की और अधिकारी न हरेक चीज को अच्छी तरह दिखलाया। पुस्तको की सूची बन रही थी, इसलिए 'दक्खिनी भाषा की कविताओ और दूसरे ग्रन्थो को हम अच्छी तरह नही देख सके। उनका देखना हैदराबाद आन के मेरे मुख्य उद्देश्यो म से था।

हाई-कोर्ट देखा अस्पताल की भव्य इमारत भी, फिर चारमीनार गए। उर्दू बुकसेलरो से मुझे काम था, लेकिन चलती पुस्तको को छोड दूसरी पुस्तकें दुर्लभ होती जा रही थी। प्रो० जोर न दक्खिनी के ग्रन्थो का सम्पा

दन किया था, उनसे मिलने की भी इच्छा हुई, पर उस दिन उनके प्रकाशित कुछ ग्रथो को ही पाकर सतोप करना पडा। इन पुस्तको का निवास स्थान पर छोडकर फिर मैं हिन्दी नगर आ गया। महिला सम्मेलन म भी कुछ बोलना पडा। महिलाओ की इतनी बडी सख्या देखकर पता लग गया कि यहाँ की महिलाएँ उत्तरी भारत की महिलाओ को अभी ही काफी पीछे छोड गई हैं। खुले अधिवेशन मे भी एक प्रस्ताव पर बोलना पडा। रात के भोजन के बाद विपय निर्धारिणी समिति मे पौने ११ बजे तक रहना पडा।

२६ दिसम्बर का सवेरा हुआ। जलपान करके हम ६ बजे हिन्दी नगर पहुँचे। विज्ञान परिपद् के सभापति डा० रजन का भापण सुना। मैंने भी परिभापा के सम्बन्ध म कुछ कहा। डा० टोपा उस्मानिया विश्वविद्यालय दिखलाने के लिए ले गए। टोपा साहब पहले ही से यहाँ निजाम की नौकरी मे थ। कश्मीर के बाहर के कश्मीरी होने से उदू को वह अपनी मातृभापा समझते थे, और यह भी मानते थे, कि अग्रेजी ही ऐसी भापा है जिसको अपनाए बिना गति नहीं। लेकिन, वह देख रहे थे, स्थानीय भापाएँ इस बात को मानने के लिए तैयार नही हैं। हैदराबाद अब उदू के पृष्ठपोपक निजाम का नही है, बल्कि वहाँ की लक्ष-लक्ष जनता का है। तेलुगु, कन्नड मराठी अपने स्थान पर जबदस्ती बैठल जा रही है। उनकी सहानुभूति पाकर हिन्दी भी अपना स्थान बना रही है। टोपा साहब हम यही समझाने की कोशिश करते थे कि ज्ञान विज्ञान की भापा भी जनता की भापा से दूर नही होनी चाहिए। जनता की भापा से उनका मतलब था, जो शिक्षित लिखते चन्द और कश्मीरी पण्डित बोलते हैं। वह जवाहरलाल की तरह यही समझते थे कि माँ के दूध क साथ जितनी भापा सीखी, उससे अधिक जानने की जरूरत नही। हालाकि अग्रेजी के लिए दजनो वप देकर इस बात का स्वय खण्डन कर चुके हैं। टोपा साहब सस्कृत से भी कोरे थे, इसलिए यह कहना समझना उनकी समझ से बाहर की बात थी कि सस्कृत के तत्सम शब्दो को हमारी भापाओ ने १०वी सदी से ही लेना शुरू किया और हिन्दी तत्सम शब्दो के लेने मे बल्कि तेलुगू, कन्नड, मराठी और मलयालम से

बहुत पीछे है। जनता के कवि तुलसी ने भी तत्सम शब्दों का बहुत लिया है। तुलसी के प्रयाग म लाये सस्कृत शब्दा को लेने का हम अधिकार है, या उन्ह भी छोडना पडेगा। टापा साहब बतलाने लगे—जनता की भाषा से दूर जाने के कारण निजाम सरकार को करोडो रुपया खर्च करके भी विफल होना पडा। कई वर्षों तक निजाम सरकार विद्वानो को रखकर अपने यहाँ उर्दू के पारिभाषिक शब्द बनवाती रही, जो प्राय सभी अरबी के थे। टापा साहब न उनके ढेर को दिखलाकर कहा कि यही अवस्था होगी, यदि हिन्दी ने भी वैसी गल्ती की। मैंने कहा इस ढेर का भी उपयोग हो सकता है, क्योंकि पाकिस्तान वाले उर्दू का ही आगे बढ़ाना चाहते हैं। रही हिन्दी की बात, तो हिन्दी अकेली इस नाव पर नही बैठ रही है, बल्कि उसके साथ ही अस मिया बगला उडिया, तलुगू, तमिल, मल्यालम, कन्नड मराठी गुजराती, पजाबी नेपाली ही नही, बल्कि सिहली, बर्मी स्यामी (थाई) कम्बुजी भी बैठी हुई है। हम कोशिश कर रहे है कि भाषा के विकास के इस काम मे सभी एक दूसरे का घनिष्ट सहयोग लें। साइन्स कालेज, आर्ट कालेज की सुन्दर इमारतें बनाने मे निजाम ने मुक्तहस्त हो खर्च किया है। उस समय उस्मानिया यूनिवर्सिटी के उप कुलपति कोइ मुसलमान सज्जन थे। साम्प्रदायिकता और उर्दू के पल्डे को पकड कर आगे बढने की गुजाइश नही थी, इसलिए वह अपने को डाँवाडोल स्थिति मे पाते थे। टापा साहब कश्मीरी थे अर्थात् नेहरू और काटजू की बिरादरी के, इसलिए उनकी कदर सबसे अधिक थी क्योंकि वही उनके गाढे समय म काम आ सकते थे।

दाइ उल इस्लाम साहब से दश म नही, पर तेहरान के निवास के समय मेरी बहुत घनिष्टता थी। घटो बातें होती थी। वह बहुश्रुत ईरानी पण्डित थे। फारसी उनकी मातृभाषा थी। यद्यपि वह शिया थे, लेकिन फारसी सस्कृति भारत के मुसल्मानो को हमेशा मान्य रही, इसलिए निजाम के दरबार मे उनकी कदर हुई और उन्होन कई जिल्दो म फारसी का एक कोश तैयार किया। वह जानते थे फारसी और सस्कृत दोनो एक परिवार की भाषाएँ हैं। इसी कारण सस्कृत के प्रति भी उनका बहुत प्रेम था और

यहाँ रहते उन्होंने उसे पढा था। अपने कोश मे जगह जगह उन्होने संस्कृत शब्द भी दिये। हैदराबाद मे उनका अपना घर था वर्षो यहा रहे थे। मुझे उम्मीद थी कि वह इधर आए होगे। बहुत पूछताछ करने पर घटा बाद घर मिल गया, किन्तु मालूम हुआ, वह बम्बई चले गये।

२७ दिसम्बर को सबेरे जोर साहब से मिलने गया। भेंट नही हुई। थोडी देर तक डा० हुसेन जहीर से बात होती रही। अपने अनुज सज्जाद जहीर की तरह यह भी विचारो म प्रगतिशील हैं। विषय उनका साइन्स (रसायन) है लेकिन साहित्य म भी रुचि रखते थे, और इसके कारण हिन्दी उर्दू की समस्याओ के बारे म भी उनकी दिल्चस्पी थी। उर्दू की रक्षा और प्रचार के लिए मैं अपने को किसी से कम नही जानता। मेरा विश्वास है कि उसका अनिष्ट नही होगा। हा, अब उर्दू के लिए नागरी लिपि का बायकाट नही किया जा सकता।

उसी दिन साढे १२ बजे बहुत से साहित्यिक मित्रो के साथ गोलकुण्डा जाना पडा। पहले उसमान सागर चले गये। यह विशाल सरोवर सिंचाई और नगर के पानी के लिए सातवे निजाम के समय तैयार किया गया था। किनारे पिकनिक का भी स्थान है। वहाँ कितनी ही मुसल्मान स्त्रिया भी पुरुषो के साथ पिकनिक के लिए आई हुई थी। उनकी सूरत-शक्ल उत्तर-भारत की हिन्दू स्त्रिया जैसी ही थी, यद्यपि शिक्षित परिवार की महिलाएँ किताबी उर्दू बोलने म शान समझती थीं। "दक्खिनी" सुनने मे बडी प्यारी मालूम होती है। जनभाषा मे विशेष तरह का माधुर्य होना ही है। उसमान-सागर से फिर हम गोलकुण्डा के किले मे गये। चारो तरफ विशाल नगर प्राकार था, जो कितनी ही जगह अब गिर चुका है। निजाम ने गोलकुण्डा को नही बल्कि गोलकुण्डा के बादशाह कुल्ली कुतुब की बेगम हैदरमहल के नाम से बसे हुए नगर को अपनी राजधानी बनाई। गोलकुण्डा का भाग्य क्या नही लुटता। टूटी छतें और दीवारें रो रही थी। एक पहाड को अजेय दुर्ग समझकर यह किला बनाया गया था—कुण्डा (कोडा) का अर्थ पर्वत है। यह मूलत द्रविड भाषा का शब्द है। पहाड कुछ गोल-सा है, इसलिए

गाल्कुण्डा नाम पडा। इसी पवत की चारो तरफ नगर बसा था। हम किले के भीतर चले। फाटक के पास गोल पटाव वाला गुम्बद मिला जो आवाज दन पर कुछ हिलता मा मालूम होता था। प्रतिध्वनि भी ज्यादा होती थी। इमे एक चमत्कार बतलाया गया। इस तरह के चमत्कार हमारे पुराने दक्ष वास्तुशास्त्री अक्सर दिखलाया करते थे। पहाड के ऊपर सुल्तान के महल अब भी अधिकतर सुरक्षित है। भव्य प्रासादा मे विशाल शालाएँ थी, फौव्वारे भी लग थे। *सुल्तान कुली कुतुब का जमाना याद आ रहा था।* १७वी सदी क पूर्वाध म यहा कितना ऐश जैश होता रहा होगा, पर अब वह उजाड और ध्वस्तप्राय था।

आज भी दोपहर बाद हिन्दी नगर मे गए। एक बैठक म आचाय नरेन्द्र देव जी भी आय थे। यही उनके साथ अन्तिम साक्षात्कार था। नरेन्द्रदेव जी स वर्षों मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा और महीनो उनके परिवार के व्यक्ति के तौर पर भी काशी विद्यापीठ मे मैं रहता था। मैं कम्युनिस्ट हू और वह ऐसी *सोशलिस्ट पार्टी के नता, जो कम्युनिस्टो का अन्धाधुन्ध विरोध करना* अवश्य-कतव्य समझती है। फिर भी हमारे वैयक्तिक सम्बन्ध पर इसका काई असर नही पडा। किसी समय हम दोनो ने मिलकर काल मार्क्स की 'कम्युनिस्ट घोषणा' का अनुवाद किया था वह भी बौद्ध दशन और सस्कृति के गम्भीर विद्वान् थे। इस प्रकार हम समानधर्मा थे। हमारा साहित्यिक सहयाग उसके बाद नही रहा, किन्तु हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ एक दूसरे को हर्षित जरूर करती थी। नरेन्द्रदेव जी मानव के तौर पर बडा *ही आकपक व्यक्तित्व रखते थे। बडे जिन्दादिल थे। जब वह इलाहाबाद* युनिवर्सिटी मे पढते थे उस समय की बात है। देश म बहुत से धम देखते देखत वह ऊब से गए थे। उनकी जन्मभूमि फजाबाद के पास ही अयोध्या है, जहाँ सखी मत का जबदस्त प्रचार था। पुरुष समझत थे कि स्त्री बन बिना भगवान् उनको स्वीकार नही करेंगे। इन मुच्छन्दर स्त्रियो की राम जी के रनिवास म क्या काम था? और फिर रामजी तो एक पत्नी-व्रत थे। राधास्वामी और आयसमाजी, ब्रह्मसमाजी आदि आदि पचासो धम

चल रह थे। उन्ह सूझी कि इन पथा के केरिकेचर के तौर पर हमे भी एक पथ खडा करना चाहिए। वह और उनके मित्रो न मिलकर 'चाच पथ' कायम किया। जब वे लोग आपस मे मिलत, तो दाहिन हाथ को चाच की तरह बनाकर अभिवादन करते। बाहरी जिज्ञासुआ को बहुत गम्भीरता से समझाते सच्चा और मूल धम 'चाच पथ' ही है। इसके लिए वह विष्णु वाहन गरुडजी, त्रेता के भक्त जटायु और सम्पाती की बातें बतला कर कायल करते। कितने ही दिनो तक चाच पथ विद्यार्थिया के लिए मनोरजन का साधन रहा।

मुझे जहा-तहा जाना पडता था। सभी जगह कमला का दिखलाने मे सहायता नही कर सकता था। पर स्वय सेविकाओ के कैम्प म उन्हे सुन्दर-बाई मिल गईं, जिनके साथ उनका सखित्व स्थापित हो गया और अब भी दानो सखिया मे पत्र व्यवहार हाता रहता है। उस समय एक पहाडी लडकी के लिए मदान का यह विशाल शहर विचित्र और भयोत्पादक मालूम होता था यद्यपि उसने कलकत्ता देख लिया था पर वह दूसरे की अँगुली पकडे जैसा ही देखना था। पुरान रिवाज के अनुसार सखी बनन का एक विशेष कम काण्ड होता है, जिसे पहाड मे भी माना जाता है। हमारे भोजपुरी क्षेत्र मे तो कोई एक स्त्री अपनी सखी का नाम नही ले सकती। सखी बनते समय वह एक थाली या पत्तल मे खाता हैं। सुन्दरबाई और कमला इस तरह से तो सखी नहीं बनी किन्तु उस समय सुन्दरबाई के कारण हैदराबाद कमला के लिए उतना डरावना नही मालूम हुआ। वह उनके साथ घूमा करतीं। श्री सुमित्राकुमारी सिन्हा और श्री कोकिल—हिन्दी की दो कवयित्रियाँ—भी वहाँ पहुँची थी। उनके कारण भी उनका मन लग जाता था। कोकिलजी बचारी का ता रुपया ही किसी ने चुरा लिया, और उन्हे बडी मुश्किल का सामना करना पडा। २८ तारीख को कमला अकेली रह गई। उनका रोआँसा चेहरा देखकर श्री सत्येन्द्र जो (बदरी पुर) दिलजोई करना चाहते थे। उन्ह समयाते प्रदशनी मे ले गए। खान के लिए मिठाई भी दी, लेकिन मिठाई आँसुओं को रोकन मे समथ नही हो सकती थी। सत्येन्द्र जी

से उनका परिचय भी नहीं था। उन्हें क्या पता था कि वह क्या इतनी खातिर कर रहे हैं। बड़े शहर में लड़कियों के चोरी होने की बात सुन रखी थी, इसलिए प्राण कंठ तक आ पहुँचा था। खैर, मैं आ गया, फिर उनको ढाढस हुआ।

सम्मेलन के लिए तैयारी बड़े जोर शोर से हुई थी। निजामशाही से दम घुटते हुए लोगों को ताजी हवा मिली थी। इस अखिल भारतीय मिलन के द्वारा हैदराबाद के हिन्दीभाषी और हिन्दीप्रेमी अपने मन को उल्लास खिलाना चाहते थे। हिन्दी नगर में रात को दीवाली का दृश्य होता। प्रबंध सभी अच्छा था।

मैं पुरानी उर्दू, विशेषतः दक्खिनी किताबों के संग्रह करने की धुन में था। चाहता था, हिन्दी के इस महत्वपूर्ण और अतिप्राचीन साहित्य को "दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा" के रूप में संग्रह प्रकाशित करूँ। उस दिन आबिद रोड पर गया। मकतबे इब्राहिमिया का नाम सुनकर वहाँ भी पहुँचा। उन्होंने बतलाया कि कल हम काफी किताबें दे सकेंगे लेकिन अगले दिन जाने पर कोई नहीं मिली। कितने ही प्रतिनिधियों का भोजन श्री जेतली के यहाँ हुआ। पं० रामनारायण मिश्र के दामाद होने से जेतली साहेब और इनकी पत्नी का हिन्दी-साहित्य से विशेष अनुराग था। हैदराबाद के नए प्रशासन को ठीक से चलाने के लिए जो अफसर बाहर से आए थे, उनमें ही जेतली साहब बड़े अफसर होकर आए थे। उसी दिन (२८ को) उस्मानिया यूनिवर्सिटी के वायस चांसलर ने चाय पार्टी दी। उस दिन वह हिंदी के लिए बहुत प्रेम दिखला रहे थे, लेकिन "गंगा गये गंगादास, जमुना गए जमुनादास" का क्या भरोसा? कासिम रिजवी के समय ये लोग उनकी जय मनाते होंगे। शाम को आचार्य नरेन्द्र देव के सभापतित्व में दक्षिणी भारतीय साहित्य संसद का अधिवेशन हुआ जिसमें हिन्दी और दक्षिणी भाषाओं की उन्नति और विकास के ऊपर विचार विनिमय हुआ। रात को राजा पित्ती के यहाँ भोजन हुआ। यह यहाँ के सेठ हुकुमचन्द हैं। भोजन के सभी पात्र चाँदी के थे। हैदराबाद में बहुत व्यस्त प्रोग्राम रहा। इसी

बीच काफी पुस्तकें माल से या भेंट से मैंने दक्खिनी की जमा कर ली।

वेरूड (एलोरा)—२६ की रात को हमारी काफी बडी मण्डली हैद राबाद के प्राचीन स्थान को देखने निकली। श्री वाचस्पति पाठक, अशोक जी आदि तथा कुछ महिलाएँ भी साथ में थी। बस रिजर्व थी, ३ बजे गाडी पकडी। रास्ते मे जालना स्टेशन पडा। नाना की पुरानी बातें याद आने लगी। वह घर से भागकर यहीं पलटन म भरती हुए थे, और यहीं दस वर्ष के करीब तिलंगा रहे थे। यहाँ की कितनी ही अपने साहस और शिकार की यात्राएँ वह नानी को सुनाया करते थे, जिन्हें मैं अबोध काल से ही सुना करता था, और जिन्होंने मेरे हृदय मे घुमक्कडी का बीज पैदा किया था। लेकिन, अब यहाँ उतरकर देखते ही क्या। जालना के कुछ हिन्दी प्रेमी हैदराबाद मे मिले थे। उनसे यह मालूम हुआ कि वहाँ पर देश वाली पलटन की सन्तानें मौजूद है। उनमे यह कैसे पता लगता कि इनमें रामशरण पाठक की सन्तान कौन है। होती भी, तो इस समय नाना का लडका ८४ वर्ष का होता। तरह-तरह की बात सोचते हम आगे बढे और ३० दिसम्बर के ५ बजे औरंगाबाद पहुँचे। यहीं से वेरूड और अजिंठा (अजन्ता) की यात्राएँ करनी थी। स्टेशन के पास ही एक बडी धर्मशाला थी। अब हमारी विदा होने वाली बारात थी, शायद इसलिए, या ५ बजे रात के असमय के कारण वहाँ कोई पथ प्रदर्शक नहीं मिला। हम धर्मशाला मे दो तीन कोठरियाँ लेकर अपने होल्डाल और सूटकेस पटककर आगे की यात्रा की चिन्ता करने लगे।

दौड धूप करके वेरूड के लिए निजाम बस-सर्विस की एक बस ठीक की जिसमे चढने के लिए २७ आदमियों का प्रबन्ध हुआ। मुह हाथ धोया, चाय-पानी हुआ, कुछ खाने की चीजें साथ ली। मैं अनेक बार यहाँ आ चुका था, इसलिए दिक्कतों को जानता था। ८ बजे हमारी बस रवाना हुई। पहले वेरूड चलने का निश्चय किया, देवगिरि (दौलताबाद) को लौटकर देखने के लिए छोड दिया। लेण्या (गुफा) मे ६ बजे पहुँचे। बस बहुत नजदीक पहुँच गई। सिंहल मे भी गुहा विहारों को लेना कहा जाना

है और महाराष्ट्र म लेण्या। भारत की और जगहो म इस शब्द का प्रयाग नही है।

हमने उस छार से शुरू किया जहा बौद्ध गुहाएँ हैं, और जो सब सातवी स बारहवी सदी की ह। अजिठा म पहली से छठी सदी तक की बनी गुहाएँ अजिठा की उत्तराधिकारिणी है। य देवगिरि क यादवो के काल की बनी हुइ ह इसलिए उनकी राजधानी के पास है। गुफा म पहुँचने पर अँधेरे म देखने क लिए टाच की जरूरत थी। हम टाच सँभालकर लाए थे, लेकिन कमला उस बस पर छाड आई। जल्दी म आदमी उतावला होता है और आवेग का प्रकट करने मे शब्दो का ख्याल नही रखता। मैंने कुछ कठोर स्वर म कहा। कमला रोती हुइ लेण्या की ओर चली गई और साथियो मे से कोइ टाच लेने गया। प० वाचस्पति की सहृदयता का इससे ठेस लगी। उन्होने मुझसे तो कुछ नही कहा, लेकिन कमला को बहुत समझाया। सचमुच ही उतनी भीड के सामने किसी आत्म सम्मान रखने वाले व्यक्ति का डाँटना बुरा था। इस समय कमला ने वाचस्पति पाठक की सहृदयता का मोल समझा। यद्यपि पावती वाला के आसू थम, पर उस इन पुरानी गुहाओ के देखने म उतना मजा नही आया होगा इसम क्या सन्देह है? उस समय कमला का इतिहास का उतना ही ज्ञान था जितना मेट्रिक मे होता है। मुझे अपनी सारी मण्डली का आनरेरी पथ प्रदशक बनना पडा और छोटा माटा लेक्चर देते हुए हरेक गुफा का दिखलाता रहा। भला इस तरह जो आदमी अपने कतव्य मे लगा हुआ है, वह कैसे कमला का ध्यान कर सकता था। कमला को यह शिकायत होनी वाजिब थी कि मैं जिसके साथ इतनी दूर आई, वह मेरी सुध भी नही लेता।

बौद्ध गुफाओ के दखने के बाद हम ब्राह्मणिक गुफाओ म गए। पहाड काटकर विशाल कैलाश मन्दिर को आश्चय और अभिमान क साथ देखा। फिर जैन गुफाओ की बारी आई। डा० उदयनारायण, प० बलभद्र मिश्र, वाचस्पति पाठक, आनन्दजी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी डा० केशरीनारायण शुक्ल सभी ऐसे व्यक्ति मण्डली मे थे जिनके साथ इन स्थानो के देखने म

आनन्द आता था। लौटते वक्त हम खुल्दाबाद (स्वर्गपुरी) आए। शायद औरंगजेब ने ही इसे यह नाम दिया। दक्षिण की रियासतों को छिन्न भिन्न कर मुगल साम्राज्य को बढ़ाने के लिए जिस समय औरंगजेब अपने शासन के आधे साल इधर लगा रहा था, हो सकता है उस समय यह स्वर्गपुरी ही रही हो। लेकिन आजकल तो अधिकतर गिरे पड़े और श्रीहीन मकान ही दिखाई पड़ते थे। औरंगजेब इधर ही मरा और खुल्दाबाद ही में उसे दफनाया गया। वहाँ से हम देवगिरि (दौलताबाद) गए। यह दक्षिण के दुर्गों में अजेय समझा जाता था। गोलकुण्डा की तरह यहाँ भी एक अलग-थलग शैल के चारों तरफ विशाल नगरी बसी हुई है। उस नगरी के अवशेष दूर-दूर तक मिलते हैं। लेकिन, देखने लायक इमारतें शैल के ऊपर या उसके पास में हैं। फाटक के भीतर होकर हमारी मण्डली मीनार के पास पहुँची, फिर पवन पर चढ़ने लगी। वहाँ की इमारतें देखने लौटकर पुराने सूखे हुए जलकुण्ड के पास हजार खम्भों की मस्जिद देखी। ६ सौ वर्ष पहले मन्दिर से इसे मस्जिद में परिवर्तित किया गया था, और अब आठ मास हो गए वहाँ भगवती विराजमान थी। पुजारी भी नियुक्त हो गए थे। हमारे साथियों ने बड़ी उत्सुकता के साथ भगवती का दर्शन किया। उपन्यासकार और कवि पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी तो थोड़ी देर के लिए वहाँ द्वारपाल बनने के लिए तैयार हो गए जबकि मैंने फोटो लिया। मन्दिर १३वीं सदी के अन्त तक और फिर मस्जिद और फिर १९४८ में मन्दिर—परिवर्तन आखिर संसार का नियम है। देवगिरि के इस शैल ने और भी कितने परिवर्तन देखे होंगे। मुहम्मद तुगलक ने इसे दौलताबाद बनाकर इसके भाग्य को खोलना चाहा था। दिल्ली को उजाड़कर यहाँ वह नई दिल्ली बसाना चाहता था। लोग उसे सनकी और मनकी कहते थे लेकिन इसमें सनक और मनक की तो कोई बात नहीं थी। वह जानता था और देख चुका था कि राजधानी को अगर राज्य के एक छोर में रखा गया तो दक्षिण पर हम अपना अधिकार कायम नहीं रख सकते। इसी दुर्ग के कारण यहाँ बहमनी रियासत बनी फिर

उसकी जगह पाँच रियासतें आ मौजूद हुइ, जिन्होंने शाहजहाँ और औरंगजेब के दाँत खट्टे कर दिए।

बडी सडक के किनारे हम लोगों का मध्याह्न भोजन हुआ। शाम तक के लिए हम निश्चिन्त घूमते रहे। औरंगाबाद लौटने पर रात हो गइ। धर्मशाला में किसी तरह गुजारा हो गया। दूकानें बाहर बहुत थीं, खाने की कोई दिक्कत नही थी लेकिन हमारे देश में पाखाने की ओर अभी ध्यान देने की जरूरत नही समझी जाती। जब तक हमारे पाखाने साफ सुथरे नही हो जाते तब तक हम सभ्य और संस्कृत भी नही कहे जा सकते यह भी निश्चित है।

**अंजिठा (अजन्ता)**—१९४९ की आज अन्तिम तिथि और शनीचर का दिन था। हमने अंजिठा आने जाने के लिए अपने आदमियों के लिए एक बस ठीक कर ली थी। यदि पूरी बस अपने हाथ में हो और साथी सभी सहृदय और समानधर्मा हो, तो दस बीस क्या सैकडो मीलो की यात्रा आनंद लेते हुए की जा सकती है। हमारी बस डीज़ल इंजन की थी। इंजन या मोटर अगर सँभालकर रखी जाए तो उन्हे बहुत दिनो तक अच्छी हालत मे रखा जा सकता है, बेगार टाली जाए, तो उसमे खराबी होने में देर नही लगती। इसी वेब ही से हमारी बस की गति मन्द थी। हम सवा ८ बजे अजन्ता से चले। ५८ मील पर अंजिठा गाँव है, जहा से सात मील आगे अंजिठा लेण्या—केन्द्र १८ ही मील पर था। गति मन्द होने से मन में कुढ़न हो रही थी। रास्ते में सडक के किनारे कई गाँव पडे। हैदराबाद रियासत में ६० प्रतिशत से भी अधिक हिन्दू रहते हैं, लेकिन मुगल काल ही से यहा का हरेक मुसलमान हिन्दुओ का अघ-दास समझता आया था। मैं उस युग को कई बार यहा आकर देख चुका था। अब देख रहा था, कासिम रिजवी के समय जो मुसल्मान सिंह की तरह दहाड रहे थे, वे भीगी बिल्ली हो गए थे। अभी ताजी बात है इसलिए पहली स्थिति से नई स्थिति में आने में वह अभी अपना सन्तुलन खो चुके थे। कुछ समय लगेगा फिर वह समझने लगेंगे कि इस भूमि के हम भी उसी तरह स्वामी हैं जैसे यहाँ के हिन्दू।

यहाँ की हरेक चीज का हम भी उन्ही की तरह अपना समझना चाहिए, और यहाँ की सभी कीर्तियो का हम अभिमान होना चाहिय। ये काफिरो की यादगारें है, और य मुसल्माना की, अथवा ये हमारी यादगार है, और ये म्लेच्छा की, यह भाव छूटकर सबके हृदय मे एकता जरूर आएगी, चाह उसम कुछ समय लगे।

अजिठा गाँव वडी वस्ती है। इसके किनारे प्राकार है। बाजार भी है। पास की नदी बाँध दी गई है ताकि गर्मिया मे भी पानी मिलता रह। बाजरे और गहूँ की फसल एक साथ खडी थी। वस्तुत हैदराबाद काफी दक्षिण है और उत्तर का ऋतु भेद यहाँ कम मिलता है।

गाव से आग बढती हुई हमारी बस रेण्या के पास ११ बज पहुँची। अजन्ता तक नई सडक बन गई है। गुफाओ के दर्शन मे हमारे ढाई घटे लग। चित्रा का विशेष तौर से देखा गया।। उत्तर मे जेलगाव स्टेशन पर उतरकर भी अजन्ता आया जा सकता है, पर हैदराबाद से आन वाला के लिए यही रास्ता ठीक है। जेलगाव यहाँ से २५ मील ही है। गुफाओ के दर्शन के बाद हमन सडक के किनारे ही बैठकर मध्याह्न भोजन किया। सभी चीज हमारे साथ थी। पहले ऐसा नही था। अब की तो मालूम होता था, अजन्ता म रोज ही दर्शको का छोटा मोटा मेला लगा रहता है। पहली बार मैं १९२९ म आया था। उस समय अभी यहा सुनसान जगल-सा दीखता था। १९३३ म भी उससे बेहतर स्थिति नही दखी, लेकिन १६ वर्ष बाद अब काया पलट सी मालूम होती थी। हमारे राष्ट्र को अजिठा पर अभिमान है, लेकिन इस अभिमान को हम केवल अपने तक सीमित नही रख सकते। यह इसी से मालूम है कि १९५५ मे चीन ने अजिठा की १५ वी शताब्दी मनाई है। चीनी गणराज्य अपनी चित्रकला म अजिठा की देन को स्वीकार करता है। इसी के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए उसन यह उत्सव मनाया। भारत की अभी इधर नजर भी नही गई। सचमुच ही यह खबर सुनकर हम आँख मलकर देखन लगे, हम सात रह गए और अजिठा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने मे चीन आगे बढ गया। अजन्ता ने भार-

तीय सस्कृति से प्रभावित हरक देश का एक सूत्र म बाँध रखा है। जापान के प्राचीनतम मन्दिर होरियोजी के बोधिसत्व की तस्वीर देखकर सभी अजिठा को याद करने लगते हैं।

भोजन के बाद हम लोग बस पर बैठे। बनारसी हो और उसका पान से प्रेम न हो यह असम्भव है। वाचस्पतिजी पक्के बनारसी हैं। उनका बडा सा पनडब्बा हमेशा पान के बीडो से भरा रहता है। उसमे बनारसी पान यहाँ कैसे हो सकता था? जिसे बनारसी पान कहते हैं वस्तुत वह मगही पान है। लेकिन, दूसरे की चीजो पर अपना ठप्पा लगाना बनारस खूब जानता है। रेशम कही से आया, और उसे बनारसी रेशम (काशी सिल्क) का नाम मिल गया। पालि ग्रथो मे काशी चन्दन का उल्लेख जब मैंने पढा तो मुझे ख्याल हुआ कि सुदूर दक्षिण के चन्दन को ही लेकर बनारस ने अपना ठप्पा लगाया होगा। यह धारणा गलत साबित हुई जबकि छपरा जिले के माझी गाव मे जगली चन्दन के कुछ बिरवे देखे और यह मानने के लिए मजबूर होना पडा कि काशी की भूमि मे भी चन्दन पैदा होता था। मैं बनारस का तो नही लेकिन काशी जनपद की ही सन्तान हूँ। और इस जनपद के गाँवो मे भी अच्छे किसम के पान को खाकर मुझे यह भी विश्वास हो गया कि ताम्बूल विलास की आदि भूमि काशी ही है। पान से मेरा वैर नही हो सकता था, लेकिन खाने का मौका छठे-छमाहे मिलता। अच्छा मिले तो खा लेता, घटिया के खाने की इच्छा नही होती। छठे छमाहे के पान खाने मे अक्सर बीडे मे कभी अधिक चूना रहता और मुह कट जाता। फिर गुनाह बेलज्जत कहकर पछताने लगता। सोचता मैं क्या इसे खाता हूँ? उस दिन अजिठा मे भोजन के बाद आराम से बस पर बैठ मैंने कहा—'पाठकजी पान!" पाठकजी ने अपना डब्बा मेरे हाथ की ओर बढा दिया। मैंने ऊपर का बीडा मुह मे डाला। मुह मे चुनचुनाहट मालूम हुई। मैंने पाठकजी से कहा— चूना ज्यादा लगा दिया है क्या?" पाठकजी घबडाकर बोले—ऊपर का पान तो नही लिया। सचमुच ही मैंने ऊपर का पान लिया था, और कायदे के अनुसार मुझे ऐसा ही करना चाहिए था। लेकिन

जब तक पाठकजी 'हाँ हाँ' करें तब तक सिर्फ चूना रखा हुआ वह पान दांतो के नीचे आकर कुचला जा चुका था मेरे सारे मुह मे चूना भर गया था। थूकने मे क्या होता है ? चूना तो अपना काम कर चुका था। थोडा बहुत कटाव होता तो गरी खाने से या दूसरी तरह से कुछ त्राण मिलता। अब हफ्ते भर के लिए नमकीन, मसाला मिचवाला खाना हराम था। अच्छा गोश्त पका हुआ देखकर टुकुर टुकुर ताकते रहना पडता। मसालेदार आलू देखता तो अपनी उस दिन की बेवकूफी पर रोष आता। मैंने तय कर लिया कि अब पान नही खाऊँगा। छ वर्ष से ऊपर इस नियम को पालन करते हो गए। कोई धार्मिक प्रण तो थी नही, जिसको मानने के लिए मैं मजबूर हूँ, लेकिन किसी बात को तै कर लेने पर मेरे लिए वह वैसी ही हो जाती है। उससे भी बढकर यह भी तो ख्याल आता है कि छठे-छमाहे खाने पर फिर मुह कटता ही रहेगा।

रात हो गई थी, जब कि साढे ८ बजे हम औरगाबाद पहुँचे। आधे घटे मे हमे मनमाड की गाडी पकडनी थी। बडी भीड थी। १९४६ साल बीतने के आध घटे बाद हम मनमाड पहुँचे। ३ बजे नागपुर एक्सप्रेस मिला जिसमे हम अपने सख्या बल के भरोसे ही चढने म सफल हुए। चढत चढत कुली आकर एक बिस्तरा यह कह कर रख गया कि यह आपके साथी का है।

इस साल के कामो म 'घुमक्कड शास्त्र', आज की राजनीति' और परिभाषा निर्माण मुख्य थ। पहली दोनो पुस्तकें लिखकर प्रकाशित भी हो गई। 'मधुर स्वप्न २६ अध्याय तक लिखा जा चुका था, और "दार्जिलिंग परिचय" के भी कुछ अध्याय तैयार हो चुके थे। सविधान के अनुवाद मे काफी समय लगा था। सब मिलाकर साल व्यस्त जीवन का रहा।

# २१

# नीड़ की खोज

१६५० के प्रथम दिन का सवेरा बम्बई की सीमा के भीतर हुआ। आनन्दजी, डा० कसरीनारायण, मैं और कमला दूसरे दर्जे के एक ही डब्बे मे थे। सवा २ बजे दिन को हम वर्धा पहुँचे। हिन्दी नगर म दो ढाई दिन रहना था। मनमाड मे जो होलडाल कुली रख गया था और जिसे शील भद्रजी बडे यतन से उठाकर लाए थे यहा आने पर कोई उसका पूछनेवाला नही मिला। खालकर देखन पर उसम स्लीपर गौन, एक लाल साडी और कुछ और कपडे थे। उम पर जी० एस० लिखा हुआ था। लेकिन, भारत वष के ४० करोड लोगो म जी० एस० का कैसे पता लगता। पता लगाने की कोई कुजी वहाँ नही थी। अन्दाज से यह कहा जा सकता था कि किसी गुजराती महिला का यह हालडाल है। इसे किसका सौंपा जाय इसकी चिन्ता शीलभद्रजी को करनी थी।

वर्धा—यद्यपि सेवाग्राम हम कितनी ही बार देख चुके थे, लेकिन साथ म नए मित्र हो, तो उनके साथ गान्धीजी के आश्रम को देखने जाना आवश्यक हो जाता है। २ जनवरी को प० चन्द्रशेखर वाजपयी, हषवद्धनजी (इलाहाबाद) और कमला को लिए हम सेवाग्राम पहुँचे। चार मील की यात्रा ताँग न पौन घट म पूरी की। ताँगवाले एक बडे पते की बात बतलाई। रास्ते मे महिला आश्रम पडा। हम सफेद पोशो के मुह से अशुद्ध नाम निक-

रते सुरकर वह कैसे चुप रहते ? उसने महिला आश्रम का निर्वाचन करते हुए बतलाया—बाबूजी, यहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, अपने ही हाथ मैला साफ कर लेती है इसीलिए इसका नाम "मैला आसरम" है। सचमुच हमे स्वप्न म भी असली तत्व का पता नही लग सकता था। जिनको हम लोग अशिक्षित, उजड्ड समझते है वह भी कभी कभी लाख रुपए की बात बतला देते है। मैंता बाहर का था महिला आश्रम की मत्राणी शान्ताबेन का भी असली रहस्य नही मालूम था, गाधीजी से सम्बन्ध रखनेवाले आश्रम म मैला साफ करने का काम लोग करते ही है, इसलिए उनके लिए इसमे उपयुक्त नाम नही हो सकता था। इस समय सेवाग्राम म अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति परिषद् हो रही थी, जिसके कारण चहल पहल थी। गाँधीजी के रहने की कोठरियो मे साइन-बोर्ड लगा दिए गए थे। एक आश्रमवासी दर्शको का पथ प्रदर्शन करते हुए उनके बारे म बतला रहे थे। अभी उनका परिचय सीधे-सादे शब्दो म होता था, अभी पँवाडे बनने म कुछ देर थी। सौ वर्ष बाद इनका परिचय बिल्कुल अतिरजित रूप मे ही किया जाएगा। हा लेकिन यह तभी जब कि भारत साम्यवादी न हो जाए। साम्यवादी होने का मतलब यह नही कि गान्धीजी के आश्रम को भुला दिया जाएगा। रूस म ताल्स्ताय के यास्नाया पोल्याना के बारे म हम जानते है, जहाँ महान् लेखक, और महान् शान्ति प्रचारक तथा गाँधीजी के भी गुरुओ मे से एक ताल्स्ताय की हरेक चीज को सुव्यवस्थित रीति मे रखा गया है। लोग उसे तीर्थ समझकर दर्शन करने आते है।

बाहर झोपडी के बाहर एक जगह साँचे मे ढला एक-सी पाँच मूर्तियाँ दिखाई पडी। सभी की पसलियाँ गिनी जा सकती थी, और सभी के पेट और पीठ सटकर एक हो गए थे। ये गाँधीजी के पास रहनेवाले पुरुष थे। जापानी जोदो सम्प्रदाय के भी एक भिक्षु मिले। वह बुद्ध और गान्धी की सर्मिलत शिक्षा का प्रचार करना चाहते थे। लौटते समय हम महिला आश्रम गये, और शान्ता बेन का ताँगेवाले की व्याख्या सुनाई। अगले दिन ६ बजे सवेरे महिला आश्रम मे फिर भाषण देने के लिए जाना पडा।

आनन्दजी पहले भी कभी कभी एक जगह खूटे से बधने की शिकायत

करते थे लेकिन अब वह अधिक उदासीन थे। प्रयाग वाले सम्मेलन के कर्णधार अपनी दलबन्दी में कभी कभी इनके ऊपर भी कुछ छींटें कस देते थे। आनन्दजी सोचते थे—स्वच्छन्द रहता, तो आज चारा खूट जागीरी में रहता, देश विदेश में जगह जगह घूमता फिरता। यहाँ काम की जिम्मेवारी सँभालने पर यह सब भी सुनना पड रहा है। वह त्यागपत्र दे देने की बात कर रहे थे। भाडे की एक दरिद्र कोठरी से आरंभ होकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति आज एक विशाल संस्था बन गई थी। हिन्दीनगर सचमुच ही एक नगर सा जान पडता था। उसके कार्यकर्ताओं का जाल सारे भारत में फैला हुआ था। इतनी सफलता किसी एक व्यक्ति के कारण नहीं हो सकती, यह ठीक है उसमें सबसे बडा कारण समय की माँग थी। हिन्दी का अब समय आ गया था इसलिए उसके काम को हाथ में लेकर आगे बढने वाली संस्था के लिए बहुत सुभीते थे इसमें सन्देह नहीं। लेकिन, साथ ही संस्था को रोपना और उसे पानी में सींच-सींच कर बढाना, बढती हुई कर्मियों की संख्या को समेट कर ले चलना नाग सहायकों और मित्रों को प्राप्त करना, ये सब काम योग्य व्यक्ति ही कर सकता है। इसलिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की इतनी उन्नति में आनन्दजी का सबसे बडा हाथ था, इसमें शक नहीं। और भी अधिक इसका श्रेय यह ख्याल करके आनन्दजी को देना पडता है कि गाधीजी ने इस बिरवा को लगाया और थोडे ही समय बाद हिन्दी हिन्दुस्तानी के विवाद को लेकर उसके विरोधी हो गए। वह अपनी उदारता से समिति का अत्यनिष्ट करने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे, लेकिन चेले वैसा करने में कभी बाज नहीं आए। इन सारे विरोधों के होते भी आनन्दजी गाँधीजी के चेलों के गढ में रह—पानी में रहकर मगरमच्छ से वैर किया, और मजे से आगे बढते रहे। मैंने यही कहा कि जब तक वैसी परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो जाती तब तक त्यागपत्र नहीं देना चाहिए जब वैसी स्थिति पैदा हो जाए तो एक मिनट के लिए भी रुकना नहीं चाहिए। समिति का कारबार बहुत बढ गया था, लेकिन दो कमियाँ मुझे खटकती थीं। एक तो समिति का एक अच्छा प्रेस होना चाहिए। अच्छा

लौट रहे थे। वह सिन्धी की परिस्थिति से असन्तुष्ट थे, क्योंकि वहाँ य
की कदर नहीं सिफारिश सब जगह चलती थी। मिशनरियों में एक
आसाम के खसिया में काम करने जा रहे थे। भाषा नहीं जानते थे,
लिए दार्जिलिंग में रहकर कुछ दिनों तैयारी करना चाहते थे।
मिशनरी महिला नर्स का काम करने के लिए आसाम जा रही थी
समय और अब भी हमारे देश में अमेरिकन गुप्तचरों का जाल बिछ
है। मिशनरी डाक्टर नर्स और शिक्षक के रूप मे अपने को अच्छी
छिपा सकते हैं। इसलिए अमेरिकन मिशनरी ईसा के प्रेम का सन्देश
कोने कोने में फैलाने जा रहे हैं, इसकी आशा नहीं रखनी चाहिए। प
यह भी नहीं कह सकते कि इस प्रचार के उद्देश्य से आने वाला
अमेरिकन मिशनरी अवश्य जान बूझकर गुप्तचरी कर रहा है। जिसक
भी उदार विचार का समझती है, उस अमेरिकन सरकार कभी इस
भेजने के लिए तैयार नहीं होती। जब उन्हें मालूम हुआ, मैं रूस रह
हूँ तो उन्होंने रूस के बारे में बहुत सी बातें पूछीं।

इस वक्त फसल कट चुकी थी, हरियाली कम दिखलाई पड़ती
ट्रेन के लेट होने की शिकायत नहीं हो सकती थी, जब कि दो जगह
से पहले पहुँचने के कारण उसे रुक जाना पड़ा। एक जगह ट्रेन में हो
मुसाफिर मर गया जिसके लिए भी वह कुछ देर कटनी के आस पास
रही। इटारसी में राजा महेन्द्र प्रताप कहीं जाते हुए आ गए। अट्ठ पर
तो मेरा बहुत पुराना था। जापान में एक समय मुलाकात होने हो
गई। उनके राजनीतिक विचारों से सहमत होना मेरे लिए कठिन था।
जानते हैं कि आज मेरी बात का कोई सुनने के लिए तयार नहीं है तो
अपनी धुन मे अपना काम किए जा रहे हैं। आजकल मामलों के मुं
उखाड़कर उन्हें फिर वहीं पटी पहनाकर खड़ा करने का जो काम वह
रहे हैं, उसे देखकर तो और भी दया आती है। यह सब होते हुए भी
महेन्द्र प्रताप आग में तपे हुए कुन्दन हैं। आजीवन वह देश के परतन्त्र
अंग्रेजों के सामने नहीं झुके, और यदि देश स्वतन्त्र नहीं हुआ होता तो

तरह उनके गुणों का उपयोग करना चाहिए, लेकिन गान के लिए मधुर कण्ठ पहली शर्त है, जिससे अधिकांश कोरे होते हैं। आश्चर्य है, वह अपने दोष को समझ नहीं पाते। उन्हें ऊँचा से ऊँचा सम्मान मिलना चाहिए। जीवन की अवश्यकताओं से उन्हें निश्चिन्त रखना राष्ट्र का कर्तव्य है। केन्द्र की संगीत अकादमी का सदस्य बनाकर उन्हें आजीवन अच्छी मासिक पेंशन मिलनी चाहिए, और संगीत के उच्च विद्यालयों में अध्यापक बनाकर उनसे लाभ उठाना चाहिए। दिल्ली में नहीं हरेक प्रादेशिक राजधानी और बड़े-बड़े नगरों में संगीत शिक्षणालयों को प्रोत्साहन देकर इन गुणियों को जगह देनी चाहिए। उनकी कृतियों और कीर्ति को चिरस्थायी रखने की कोशिश करनी चाहिए। यह सब ठीक है पर उन्हें गाने या दूसरों को उसे सुनने के लिए मजबूर करना हमारे गौरवमय संगीत कला का अपमान करना है, उसके प्रति लोगों में विरक्ति पैदा करनी है। उस दिन की तरह यदि नक्टपथी वाह वाह की झड़ी लगाएँ या भूत सिर पर आए की तरह सिर हिलाएँ, तो उससे उस्तादी गान की अप्रियता को ढाँका नहीं जा सकता। सारे अलंकारों और ध्वनियों को ही जमा करके पद्य रचना करने से वह अच्छी कविता नहीं हो सकती। सिर्फ मसाला, मिर्च और खटाई को ही तैयार करके भोजन की थालियों में चुन देना स्वादु भोजन नहीं हो सकता। उसी तरह संगीत के नाना प्रकार के स्वरों, मूर्छनाओं, गमकों को जमा करके उसे बूढ़े गले से भाँय भाँय निकालने में वह संगीत नहीं हो जाता। इन बातों को कहकर उस्ताद फयाज खाँ के प्रति मैं असम्मान प्रकट नहीं करना चाहता। उनकी जिन्दगी भर की तपस्या की पूरी कदर होनी चाहिए।

प्रयाग में मैं "दार्जेलिङ परिचय" लिखवा रहा था और समझता था कि बीच में मुझे जब अनुपस्थित रहना पड़ेगा, उस समय कमला उसे टाइप कर लेगी।

७ जनवरी को कप्तान शिवप्रसाद सिंह आए। लड़ाई के वक्त में वह अध्यापकी छोड़कर फौज में चले गए थे। इधर वह बरमार में नियुक्त थे।

उनका कहना था, कश्मीर की साधारण जनता भारत के पक्ष में भले ही हो, किन्तु शिक्षितों में वैसे कम ही हैं। बालतिस्तान में जिनका इलाका जिस तरफ है, वह उनकी जय मना रहे हैं। मुँह में आश्चर्य के साथ सुना कि श्रीनगर से करगिल तक जीप जाती है। बीच में ज़ाजी-ला का साल में नौ महीने हिमाच्छादित डाँड़ा मिलता था। इस पर जीप जाने की सम्भावना भी पहले नहीं की जा सकती थी। लेकिन, लड़ाई असम्भव को सम्भव बना देती है। हमारी सेना को अपने टैंकों को ज़ाजी ला पार कराना जरूरी था, नहीं तो पाकिस्तान की सैनिक और सहानुभूति रखने वाली संख्या को वह हम सफल नहीं होने देते। टैंक के चले जाने के बाद जीप भला उससे पीछे क्या रह सकती थी। अब जाड़ों को छोड़कर वह करगिल की ओर दौड़ती रहती है। भारतीय सैनिकों ने सारी कठिनाइयों के रहते कश्मीर में जो सफलता प्राप्त की, उससे उन्हें विश्वास हो गया था कि अगर हम रोका नहीं जाता तो हम सारे कश्मीर को पाकिस्तानियों से खाली करा लिए होते।

८ जनवरी को माचवे दम्पती के साथ कमला को लिए हम साहित्य संसद में निरालाजी से मिलने गए। पहले से कुछ कृश थे, नहीं तो वही प्रसन्न मूर्ति थी। बातें करते रहे, कभी हमसे और कभी अपने मन से। सिद्धराज जो ठहरे। वह दोनों लोकों में एक ही समय विचरने में समर्थ थे—कभी जागृत जगत् में और कभी स्वप्न जगत् में। चाय पिलवाए बिना वह कैसे छोड़ सकते थे, और जब हम चले तो आगे तक पहुँचाने भी आए। निरालाजी को कौन पागल कह सकता है? जिस व्यक्ति की जागृत और स्वप्न की सीमाएँ टूट गई हैं, उसके लिए संयम रखना मुश्किल नहीं, असंभव है। यह हम अपनी जागृत, स्वप्न अवस्था को देखकर जान सकते हैं। निरालाजी इस सीमा के उच्छेद के बाद भी कड़े संयम और शिष्टाचार का पालन करते हैं, यह असाधारण है। कोई भी अपरिचित सहृदय व्यक्ति उनके पास जाकर कभी निराश या अपमानित होकर नहीं लौटता। सभी उनकी मानवता की प्रशंसा करते नहीं थकते। प्रयाग में आने पर निरालाजी

ने थाडी देर के लिए भी मिल लेना मैं बड सौभाग्य की बात समझता हू।

कपिलजी न बतलाया कि रामगढ म बगला सात आठ सौ रुपया वार्षिक म मिल जाएगा। उसमें पानी या पाखाने का प्रबन्ध भी शायद हो।

६ जनवरी को मेरे अनुज रामधारी अपन भतीजे रामविलास के साथ आए। साढे तीन महीने से दिल्ली में नौकरी की तलाश में पडे हुए थे। घर की खेती में नौकरी से कम नफा नही था, लेकिन वहाँ धूप वर्षा खानी पडती और नौकरी में छाया में काम करत पैसे मिल जात। लेकिन अब वह नौकरी की उमर पार कर चुके थे।

११ जनवरी को किताबमहल के हिसाब से मालूम हुआ कि मार्च १९४९ को समाप्त होने वाले साल में रायल्टी के ५२०६ रुपये साढे ९ आन हमार निकले थे। इतन दिनो के तजर्बे न यह बतला दिया था कि पाँच सौ रुपए मासिक या छ हजार वार्षिक स कम में खर्च चलाना हमार लिए मुश्किल है। जब केवल घुमक्कडी करता, तब अकिंचन रहते भी जीवन-यात्रा करन में कोई दिक्कत नही हुई, लेकिन, अब तो स्थायी नीड ढूढन में न सफल होत भी अस्थायी मकान तो बाध ही रहे थे। इसलिए अब खर्च स्थायी था।

**दिल्ली**—११ जनवरी को अनुवाद समिति के काम के लिए दिल्ली के लिए रवाना हुआ। समिति के दूसरे सदस्य डा० बाबूराम सक्सेना भी साथ चल रहे थे। उन्होंन भी रामगढ को पसन्द किया। अगले दिन ६ बजे सवेरे के करीब हमारी गाडी दिल्ली स्टेशन पर पहुँची। तागा करके हम फीरोजशाह राड के लिए रवाना हुए। तागेवाला समझता था, हम पूसा रोड जा रहे हैं। फिर कहाँ कहाँ घुमात वह चन्द्रगुप्तजी के निवास पर ले गया। दिल्ली म आजकल पराटाइफाइड की बीमारी फैली हुई थी। चन्द्रगुप्तजी और उनकी छोटी लडकी बीमार होकर उठे थ और अब बडी लडकी रोग म फसी थी।

३ बजे मैं संस्कृत अनुवाद समिति म पहुँचा। सभा सदस्य मिलकर अनुवाद कर नही सकत थे। कितन ही थोडे थोडे अंशो का अनुवाद करके लाए थे जिनमें मैं भी था। मैंने प्रस्ताव किया कि प० लक्ष्मण शास्त्री और

अंग्रेज हुआ करते थे, तब उनके पास अनुमति पत्र के लिए मुझे कई बार जाना पड़ा था। सोचा अबकी भी हो लू। वहाँ कोई मिस्टर दयाल आई० सी० एस० इस पद पर विराजमान थे। बिना समय लिए हम गए थे। इसलिए एटिकेट के खिलाफ वह हमसे मिलने के लिए कैसे तैयार हो सकते थे। उनके यहाँ आने की क्या योग्यता थी? न तिब्बती भाषा और न तिब्बती बात विचार से उन्हें कोई वाकफियत थी। मेरे जैसे तिब्बत में अनेक बार गए हुए जानकार आदमी से मिलने से इनकार करके उन्होंने यह भी बतला दिया कि उनकी और जानने की कोई इच्छा भी नहीं है। हाँ, उनमें यह गुण जरूर था कि उनकी पत्नी टेनिस स्टार थी, उनकी सास श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित की ननद थी और मिस्टर दयाल आई० सी० एस० थे। उन्होंने बचपन युरोपियन स्कूलों में बिताया फिर विलायत गए, आई० सी० एस० हुए और आज वह सिर्फ चमड़े से ही भारतीय थे। यही हमने दूसरे आई० सी० एस० मिस्टर लाल को रास्ते में देखा था। उन्होंने हमको क्या दिया और इन्होंने हमसे क्या लिया, पर आदमी-आदमी की अलग पहचान होती है। मिस्टर दयाल अन्त में थोड़ी देर के लिए आए लेकिन मालूम हुआ, वह गंगा दवान के तौर पर ही हैं। हमारे दोनों हाथ जोड़ने का उत्तर उन्होंने एक हाथ के सलाम से दिया। बात में उन्होंने अंग्रेजी का पक्ष समर्थन, संस्कृत का विरोध, उर्दू के लिए दर्द प्रकट किया। मालूम हुआ उनके पूर्वज आगरे के थे लेकिन उनका बचपन नैनीताल के युरोपियन स्कूल में गुजरा। वह नेहरू के छोटे संस्करण मालूम हुए। सैनगुप्तजी भी साथ थे। उन्होंने साफ कहा—नेहरू के सम्बन्ध के कारण ही यह यहाँ बैठाये गए हैं। जिस स्थान पर विलियममन गोल्ड जैसे राजनीति के खुर्राट, लेकिन साथ ही संस्कृति के जिज्ञासु बैठते थे, वहाँ यह काले साहब बैठे हुए थे, जो तिब्बत के एक समय के ट्रेड एजेंट कप्तान हैली के पासंग भी नहीं थे। पुलिस ने पुस्तक पर लिखने के लिए कहा, तो मैंने लिख दिया "अन्धतमः" (घोर अन्धेर नगरी)।

उसी दिन ७ बजे शाम को हम कलिम्पोंग लौट आए।

२० तारीख को १० बजे डा० रोयरिक आए। "प्रमाणवार्तिक" के प्रथम परिच्छेद का अनुवाद समाप्त हो गया, इससे हम खुशी हुई लेकिन तीन परिच्छेद और रह गए थे। दोपहर बाद पुत्र सहित श्रीमती क्रिम्प भी आई। यह अधेट आइरिश महिला बडी ही जिन्दादिल थी। कितनी ही घटनाएँ सुनाते हम मुग्ध कर देती थी। मनुष्य भी वनस्पतियो की भाँति *जरा-सा स्नेह पाते ही जड फैलाने लगता है। पिछले दस महीनो मे यहाँ फैली जडें अब हम उठते देख अपनी ओर तान रही थी। सयोग और वियोग* दोनो एक ही वस्तु के दो पारव हैं। आह, यह मानव जगत ? पाँच लाख वर्ष से पहले जिसका कही पता नही लगता, और शायद पाच लाख वर्षों बाद भी वही बात हो, यदि सँभालकर उसे नही ले जाया जा सके। लेकिन, "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानपि तत्तथा" (आदि अन्त मे जो नहीं, वह वर्तमान मे भी वैसा ही)—यह नही कहा जा सकता। वस्तुएँ अचिरस्थायी है, इसलिए उन्हे निर्मूल्य नही कहा जा सकता। यदि एक बार करने से सदा के लिए बुभुक्षा शान्त नही हो जाती, तो उसका अर्थ यह नही कि भोजन का मूल्य ही नहो। वस्तुओ का मूल्य उनकी चलायमानता मे ढूढना होगा। विगतो के खयाल से निस्सारता स्वीकार करना एकागी विचार है, *क्योंकि आने वाली पीढियाँ भी तो हैं। क्या आधी आयु के* बाद मृत्यु की समीपता स्पष्ट मालूम होने लगती है ? पचास से पहले भी तो मरने वाले होते है। हाँ, उनकी अधिक जीने की सम्भावना है, जो पके आमो के लिए सम्भव नही।

२० की शाम को श्री के० देशराज के यहा चायपान था। वह पजाबी, और यहाँ के सफल ठेकेदार है। उनकी पत्नी हमारे एस० डी० ओ० श्री मोती चन्द प्रधान की बहिन है, अर्थात् हिन्दू घर की है। देशराज भी पहले हिन्दू थे, और अब ईसाई। हिन्दू ईसाई दोनो धर्मों का सम्मिलन इनके घर मे हो रहा था।

२१ तारीख अन्तिम दिन था। बाबू राधामोहन वकील आए। फिर श्री मोतीचन्द प्रधान। दूसरे भी मित्र मिलकर गए। हमारे १ बक्स तथा ८

ट्रक का वजन साढे १७ मन था। तीन मन से ऊपर हम अपने साथ ले जाने वाले थे। इतने सामान को लेकर अभी हम अनिश्चित स्थान ही में जा रहे थे। कमला की नाक से खून आया था, प्रयाग में इन्जेक्शन और दवा हो रही थी। २२ का लारी पर सामान लदवाया। साढे ११ बजे टैक्सी आई जिस पर हम तीनो जने चढकर चले। अब सिलीगोडी मे रेल पहुच गई थी, और उसके स्टेशन को सिलीगोडी उत्तर कहा जाता था। सडक पूरी तौर से बनी नही थी, लेकिन मुसाफिर चलने लगे थे। अपार भीड थी। यहाँ से सीट रिजर्व नही हुई। २२६ रु० ८ आ० मे प्रथम श्रेणी के हमने तीन टिकट लिए। यदि इस दर्जे का टिकट न होता तो स्थान पाना मुश्किल था। रोज ही यहाँ बहुत-से यात्री छूट जाते थे। गाडियो मे लोग लटककर चल रहे थे। खैर, हमने पौने १५ मन सामान लगेज की गाडी मे डाला और अपने डब्बे मे बैठ गए।

कटिहार—रात को ८ बजे ट्रेन कटिहार पहुची। पहले दर्जे का प्रतीक्षालय भी भरा हुआ था, इसलिए वही प्लेटफार्म पर पडे रहे। लेकिन, मेघ देवता ने चैन से रहने नही दिया। खैर, किसी तरह २३ का सवेरा हुआ और हम श्री महावीरप्रसाद भावडिया के घर पर पहुँचे। स्नान भोजन किया। आज ही चल देने का निश्चय कर लिया था, पर हमे क्या पता था, क्या होने वाला है। भोजन करने के बाद हम गाडी के लिए जल्दी जल्दी कर रहे थे। डा० भट्ट ने भोजन की प्रशंसा करके कहा था—आज मैंने ब्राह्मण की तरह भोजन किया। भावडियाजी ने ५५५ का सिगरेट सामने रख दिया। इस पर बोले—हमने पाथेय भी ले लिया। कुछ बूदे पड रही थी। भावडियाजी अपनी कार का ड्राइव करके हमे ले चले। रेलवे लाइन पार करते हुए सेनगुप्तजी ने भट्टजी को देखकर कहा—अच्छा सोना चाहते है, सो जाइए। स्टेशन पर कार खडी हुई। देखा भट्टजी बेहोश हैं। उन्हे उठाकर ट्रेन पर ले गए। भावडियाजी दौडकर डाक्टर रामप्रसाद सूद को लाए। सूद साहब ने कहा, अब इस ट्रेन से इन्हे नही ले जाया जा सकता। पर मे सामान उतरवाया, फिर भट्टजी को रेलवे अस्पताल मे ले गए।

हम कैसे हँसी-खुशी मना रहे थे, और अब भट्टजी की स्थिति देखकर दिल काप रहा था। कई कै हुईं। डाक्टर सूद ने कई इन्जेक्शन दिए। वह बडी तत्परता से देखने लगे, लेकिन अस्पताल मे दवाएँ नहीं थी। हम इस स्थिति मे वहा पडे थे। धीरे धीरे पता लगा कि भट्टजी के एक अंग मे लकवा मार गया। हृदय की बीमारी तो थी ही, पर पहाड पर ऐसा होना चाहिए था। लेकिन, चार हजार फुट की ऊँचाई इसके लिए कोई बाधक नही होती। हम भट्टजी को अस्पताल मे रखकर मावडियाजी के यहाँ चले आए। सामान रखकर वहा जाने आने लगे। अगले दिन भी भट्टजी की अवस्था वैसी ही रही। आखे बहुत कम खोलते थे। कभी होश मे रहते कभी बेहोशी मे। अस्पताल की बेसरो सामानी से प्रयाग पहुँचना अच्छा था, लेकिन इस हालत मे जाने की डाक्टर सलाह नही दे रहे थे। फिर सब देखकर डा० सूद ने कहा—'साथ मे एक डाक्टर लेकर जा सकते है।" मावडियाजी ने तरुण डाक्टर कालीप्रसाद दास को तैयार किया। वह बडे ही सहृदय मिले। चलने मे भय तो था किन्तु यहा रहने मे भी वह वैसा ही था। बहतर होता हम लखनऊ जाते, क्योकि वहा मेडिकल कालेज था। पर सारा सामान इलाहाबाद की ओर जा रहा था, इसलिए पहले प्रयाग ही चलने का निश्चय किया। सबसे बडी चिन्ता की बात यह थी कि भट्टजी को कोई चीज पचती नही थी, सब वमन कर देते थे।

२५ तारीख को डा० सूद और डा० कूडू ने देखा, दवाइयाँ भी लिख दी। दोपहर बाद डा० भट्ट को लेकर गाडी मे बैठे। २ बजकर ४० मिनट पर हमारी गाडी रवाना हुई। डा० कालीप्रसाद दास एम० बी० हैं, उनकी पत्नी भी डाक्टर है। भट्टजी का तीन बार सतरे का रस दिया गया, लेकिन तीनो बार उन्होने वमन कर दिया। अब ग्लूकोस के इजेक्शन का ही आसरा था। वैसे आज उनकी स्थिति मे कुछ सुधार हुआ था। छोटी लाइन की गाडिया क्या कभी भी सुधरेंगी, यही हमे खयाल आ रहा था। गद्दे फाडे हुए, पाखाना ढड मड, उसका द्वार खुला, खिडकिया टूटी फूटी। पखे का मिस्त्री को बुलाकर बनवा दिया गया था, नही तो परेशानी होती। भाड

इतनी थी कि लोग छत पर भी बैठे हुए थे। एक जगह तो एक पूरी की पूरी बारात महिलाओ के पहले दर्जे मे बैठ गई। टिकट कलेक्टर जब टिकट मांगने गया, तो उसके पिटने की नौबत आ गई। इधर अभी व्यवस्था के लिए ट्रेन के साथ रेलवे मजिस्ट्रेट नही चल रहे थे।

२६ फरवरी का सवेरे हम छपरा पहुचे। यही चाय पी। हमारे डब्बे मे दलन छपरा के अवधेश बाबू रेलवे मजिस्ट्रेट बलिया तक के लिए साथी बने। बलिया मे भट्ट को ग्लूकोस का इजेक्शन और दवा दी गई। बोलना नही चाहते थे या शायद बोल नही सकते थे। एक बार पित्त का वमन हुआ। वैसे थोडा थोडा ग्लुकोस और एक नारगी का रस दिया। अभी भी उनकी नाडी बहुत मन्द थी। औडिहार मे भोजन के समय पहुँचे। दारागज पहुँचते अधेरा हो गया। तार दे दिया था। डा० उदयनारायण तिवारी मिले। रामबाग स्टेशन पर एम्बुलेन्स तैयार थी और राय रामचरण लाल भी अपनी कार लेकर आए थे। भट्टजी को एम्बुलेन्स कार में बिठाकर मोतीलाल मेमोरियल अस्पताल ले गए। पहले कालविन अस्पताल के नाम से प्रसिद्ध यह प्रान्त का अच्छा अस्पताल है। हमे प्रयाग मे कभी अस्पताला से काम नही पडा था, इसलिए हम इसे जानते नही थे। डा० पाटणकर ने भट्टजी को अच्छी तरह सँभाला। उनकी नाडी की गति ४२ मे ५२ तक थी। एक अच्छे चिकित्सालय मे अपने मित्र को पहुँचाकर हमने सन्तोष की साँस ली। यहा नर्सें भी थी, सभी तरह की दवाइया भी थी, देखने वाले सहृदय डाक्टर भी थे, और हमारे लोगो का प्रभाव भी था। भट्टजी यद्यपि कुछ दिना बाद मृत्यु के जबडे मे बाहर निकल आए, लेकिन उनका लकवा साधारण नही था। साल भर से अधिक वह इसी अस्पताल मे रहे, फिर कही दूसरी जगह चले गए। मेरी बडी इच्छा थी, उनकी सहायता करूँ, लेकिन उसके बाद नैनीताल और मसूरी मैं चला गया, जहाँ की ऊँचाई उनके बुलाने मे भारी रुकावट थी। सिवाय मित्रो के पास पत्र लिखकर कहने के सिवा और कुछ करने म असमर्थ था। इस बेबसी पर मुझे सदा अफसोस रहेगा।

अस्पताल से हम उसी रात राय रामचरण के घर पर चले आए। अगले दिन २७ फरवरी भट्टजी की अवस्था वही थी, डाक्टर बतला रहे थे कि अभी भी वह खतरे से बाहर नहीं हैं। डाक्टरो ने पहाड पर ले जाने के लिए मना किया, पर बतलाया, देर लगेगी, लेकिन अब चिन्ता की बात नही।

कमला की हालत अब अच्छी थी, विशारद की परीक्षा नही दे सकी, लेकिन अगले साल उसे देना अवश्य था। कमला का रास्ता साफ था। एफ० ए० की परीक्षा वह दे सकती थी। सभी विषयो म उनकी रुचि थी, लेकिन, हमने समझा, विशारद और साहित्यरत्न के पढने से हिन्दी की योग्यता बढ जाएगी, और साथ ही सुभीत से वह दूसरी परीक्षाए भी दे सकेगी। साहित्य रत्न उन्होने कर लिया और इस साल १९५६ एम० ए० भी द्वितीय श्रेणी मे पास कर लिया।

२८ को डाक्टर उदयनारायण तिवारी के साथ सवेरे गगा पार टहलने गए। सवेर का जलपान श्री गणेश पाडे के यहा हुआ और मध्याह्न भोजन श्री कमलाशकर सिंह के यहा। निरालाजी भी वही ठहरे थे उनके भी दशन हुए। पता लगा अभी उन्होने "गीति शतक" समाप्त किया जो छप रहा है।

१ मार्च को सम्मेलन मे साहित्य समिति की बैठक हुई, कितनी ही पुस्तको के सम्पादन और प्रकाशन के बारे मे विचार हुआ। रूस से लौटने के बाद स्वामी सहजानन्दजी से मैं मिल नही सका था। वह यहा आये। उन्हे मेरी उपस्थिति का पता लगा। कार लेकर वह सारे इलाहाबाद का चक्कर लगाते रहे। अन्त मे सम्मेलन मे आकर पकडा। फिर उनके साथ बडी देर तक दिल खोलकर बात होती रही। कितनी ही योजनाए बनी। मैं कम्युनिस्ट पार्टी का मेम्बर अब नही था, और वह कम्युनिस्ट पार्टी के साथ काम नही कर रहे थे, लेकिन, हम दोनो ही पार्टी के जबदस्त समथक थे। उस दिन बातचीत करते समय मुझे क्या पता था कि यह मेरी उनकी अंतिम मुलाकात है। उनकी उमर बहुत अधिक नही थी स्वास्थ्य भी बुरा नही दिखाई पडता था, न मोटे थे, और न अत्यन्त दुबले। उस कमठ पुरुष का एक एक रोम उत्साह म नाच रहा था आँखें चमक रही थी। गरीबो और

उत्पीडितो के लिए उसने अपना सारा जीवन दे दिया था। बडे-बडे राजा-रानी आरती उतारते थे, लेकिन, इस सम्मान की स्वामी ने कभी पर्वाह नही की। अपने तूफानी कामो और तूफानी दौरो से उन्होने लाखो-करोडो आदमियो मे रूह फूकी थी। क्या स्वामी सहजानन्द के भौतिक शरीर के न रहने पर उनके काय का चक्र खतम हो सकता है? यदि काय का चक्र आगे की तरफ बढ रहा है, तो रहने और न रहने की पर्वाह क्या? स्वामी सहजानद की मृत्यु मेरे लिए एक वैयक्तिक महाक्षति थी। मैं हमेशा उस पुरुष का प्रशसक रहा।

माचवेजी अब पहले बँगले को छोडकर एक दूसरे घर म चले आए थे। मिला तो था एक ही कमरा लेकिन धीरे धीरे उन्होने तीन चार बना लिये थे। वर्धा महिला आश्रम की स्नातिका शरदजी घर सँभालना अच्छी तरह जानती थी। कमला भी इतने समय तक उन्ही के साथ रही। "मधुर स्वप्न" का कुछ भाग अभी अवशिष्ट था, जिसे हमने यहा लिखना शुरू किया। घरेलू हिसाब देखने से मे मालूम हुआ कि इस वर्ष हमने प्राय हजार रुपया महीना खर्च किया। यह बहुत अधिक था। हम किसी तरह भी पाच हजार से अधिक साल म नही खर्च करना चाहिए।

इधर कई सालो से होली का दिन प्रयाग म ही होता आया था। इस साल भी ३ मार्च को हम होली मनाने के लिए यही रहे। सिविल लाइन्स के इस मोहल्ले म होली की अधिक चहल पहल नही थी, क्योकि यहाँ मध्य और उच्च वग के शिक्षित लोग ही रहते थे। गर्मी पडने लगी थी। दोपहर के तीन घटे तो पसीने म लथपथ रखते थे। उसी दिन फिराक साहब आए। उर्दू के वह जाने माने कवि है, और हिन्दी के भी ज्ञाता। अपने कालेज-जीवन मे वह एक असाधारण प्रतिभा के धनी विद्यार्थी थे। असहयोग मे फकीरी बाना पहना। अब कितने ही सालो से इलाहाबाद युनिवर्सिटी मे अँग्रेजी अध्यापक है। वह मेरी इस राय से सहमत थे कि उर्दू का स्थान सदा बना रहेगा। हाँ, जिस रूप मे वह समझ रहे थे, उस रूप मे नही। हिन्दी उर्दू दोनो एक भाषा की दो शैलियो की तरह बनी रहेगी, और समय

दूर नहीं, जब उर्दू के लिए भी नागरी अपनी लिपि हो जायेगी, इसके कारण उर्दू बहुत लोगो के लिए सुपरिचित भी बन जाएगी। फिराक साहब ने अपना सारा साहित्यिक जीवन उर्दू के लिए दिया है। मैंने भी अगर वैसा किया होता—और लड़कपन से मैंने पढ़ी तो उर्दू ही थी—तो मैं भी शायद उन्हीं की तरह सोचता।

होली के दिन बनारस में मैंने सुव्यवस्था देखी थी। नहीं कह सकता वह व्यवस्था ३६-३७ वर्ष बाद आज भी है या नहीं। वहां दोपहर तक चाहे जो भी फेंका फेंकी हो, लेकिन दोपहर के बाद लोग सिर्फ सूखी अबीर का ही प्रयोग करते थे यहां तो सुबह शाम कोई अन्तर नहीं था।

५ तारीख को अस्पताल में जाने पर निश्चय मालूम हुआ कि भट्टजी के बाएँ अंग में लकवा मार गया। डाक्टर ने बतलाया इसके दूर होने में बहुत देर लगेगी। अब भी उनका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। डा० भट्ट के लिए अब मुझे सबसे अधिक चिन्ता थी। यदि वह स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सके, तो कौन उनका भार उठाएगा? सम्मेलन कुछ दिनों तक सहायता जरूर करेगा। हो सकता है राष्ट्रभाषा प्रचार समिति कुछ करे, लेकिन कितने दिनों तक। भट्टजी के परिवारवाले अब भी दक्षिणी कनारा जिले में थे। वह सनातनी माध्व ब्राह्मण थे। विलायत जाकर भट्ट ने अपना धर्म खो दिया था। उन्होंने सुना था कि घरवालों ने उन्हें मरा मानकर श्राद्ध भी कर डाला है। उनकी पत्नी भी मौजूद थी और पति के जीवित रहते विधवा। उन्होंने न अपने घर से सम्बन्ध रखा न कर्नाटक से ही, और अब इस स्थिति में थे।

६ मार्च को डा० बद्रीनाथ प्रसाद से मिला। वह साल भर के लिए पटना विश्वविद्यालय में गए थे। असन्तुष्ट थे। कह रहे थे—वहाँ तो और भी निम्न दर्जे की बेईमानी है, और दरबार में हाजिरी देना आवश्यक है।

रामगढ़—अन्त में रामगढ़ के लिए मैं सहमत हुआ, पर कमला ने उसे बिल्कुल पसन्द नहीं किया। मैंने कहा "बिना देखे राय नहीं देनी चाहिए। वहाँ देखेंगे, यदि ठीक रहा, तो रहेंगे, नहीं तो और जगह चल देंगे।" ८

तारीख माच को वहाँ के लिए रवाना होने से पहले भट्टजी के पास गए। स्थिति मे विशेष परिवतन नही हुआ था। गाडी ४ बजे चल देती है, इसकी सूचना एकाएक मिली, और सचमुच ही वह ठीक समय पर चल पडी। यहाँ से देहरादून का डब्बा लगता था, जो बरेली तक जाने वाला था। यद्यपि यह दूसरे दर्जे का डब्बा बहुत सँकरा, टाट के गद्देवाला था, तो भी छोटी लाइन से बहुत अच्छा था। लखनऊ तक तीन आदमी रहे। पीछे एक आदमी उतरा और दो और चढे। पसिंजर ट्रेन थी, इसलिए हर स्टेशन पर ठहरती चल रही थी। ६ तारीख को सवेरे सवा ८ बजे बरेली पहुँचे। अब छोटी लाइन ( आ० टी० आर० ) की गाडी बदलनी थी। पहले दर्जे का टिकट और छ मन सामान का लगेज बनवाया। गाडी ८ बजे खुली। सहयात्री ने बतलाया कि होली के रग फेकने को लेकर बरेली मे झगडा हो गया। मुसलमानो के दो लडके मारे गए, और बहुत से घर जला दिये गए। उनमे कुछ भगदड सी मच गई थी। अभी दोनो ओर की असली स्थिति समझने मे कुछ देर लगेगी। पर यह तो निश्चय ही था कि साम्प्रदायिकता की आग हमारे यहा सदा नही भडकाई जा सकती।

उत्तर पचाल की हरी भरी भूमि को देखते हम सवा १२ बजे काठगोदाम पहुँचे। रामगढ के लिए यही से ३५ रुपये से एक पूरी बस कर ली। ३ बजे हम भवाली पहुँचे। रामगढ के लिए मोटर की सडक अभी हाल ही मे चालू हुई थी। सँकरी थी, और काम भी कच्चा हुआ था, इसलिए सडक एकतरफा चालू थी। एक घटा प्रतीक्षा करने के बाद हम फिर ४ बजे रवाना हुए। सडक बुरी नही थी। ७००० फुट से अधिक ऊँचे डाडे को पार कर ५ बजे हम रामगढ पहुँचे। बाबू बच्चीसिंह प्रधान का बँगला सडक से एक मील नीचे प्राय सीधी उतराई मे था। कुलियो से सामान उठवाया, और बँगले पर पहुँचे। बँगला बुरा नही था, लेकिन उसमे पाखाने तक का भी प्रबन्ध नही था। दो सोने के कमरे, दो बडे कमरे, दो नहान कोष्ठक—काफी जगह थी। एक आख देखते ही पता लग गया कि यहाँ हमारा रहना सम्भव नही। यही ख्याल करके हमने कुलियो को मजूरी नही दी, और उन्हे

कल फिर सामान लेकर मोटर के अड्डे पर पहुँचाने के लिए कह दिया। कमला को बड़ी प्रसन्नता हुई, जब मैंने कहा—"कल हम नैनीताल चल देंगे।" रामगढ़ ६००० हजार फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। यहाँ फलों के बहुत से बगीचे हैं। उसका दुर्भाग्य समझिये या हमारा, जो हम वहाँ जाड़े के अन्त में पहुँचे थे। इस समय हरियाली देखने को आँखें तरसती थीं। फलदार वृक्षों के पत्ते सूख गए थे, वह सूखे काँटे से मालूम होते थे। यह दृश्य कैसे हम अपनी ओर खींच सकता था? बँगले के पास ही दो-एक दूकानें थीं, लेकिन वहाँ जरूरत की चीजें मिलती नहीं थीं। और तो और, चिराग जलाने के लिए मिट्टी के तेल के भी लाले थे। किसी तरह हमने रामगढ़ में एक रात बिताई, और उसके लिए हम अफसोस नहीं था। न आते तो पछतावा होता कि हम एक अच्छे स्थान को देखने में वंचित रह गए। बहार और बरसात के दिनों में यह ऐसा श्रीहीन नहीं रहता होगा, इसमें सन्देह नहीं। फलों की भूमि होने के कारण इसका वनमाली और भविष्य भी अच्छा है। अब तो वहाँ अच्छी सड़क बन गई है, और गढ़मुक्तेश्वर तक मोटरें आती जाती रहती हैं।

# २३

## नैनीताल

हमने बँगले मे सामान भी नही खोला था। १० मई का सवेरा हुआ। कुली आ गए, और फिर हमारा सामान बस की दिवान पर पहुँच गया। १७ रुपये दोनो तरफ की ढोआई के लगे और १८ रुपये मे नैनीताल के लिए बस कर ली। उसमे अधिकतर हमारा ही सामान भरा था। साथ मे प० रघुवरदत्त पत चल रहे थे। वनस्पतिशास्त्र के विशेषज्ञ हैं, और इसकी विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए इगलैड गए थे। पर सरकारी नीति और पूजीपतियो की धाँधली से असन्तुष्ट थे। वस्तुत जो लूट मे शामिल होने के लिए तैयार नही, और देश को कुछ आगे ले जाने की कल्पना रखता है, उसके लिए आज की व्यवस्था मे सन्तुष्ट रहना कठिन है। दस मील चलकर भवाली आई। फिर सात मील आगे ६ बजे नैनीताल पहुँच गये। नेपाली कुलियो की पलटन ऐसी कही नही देखी थी। यही बात फिर मसूरी मे देखने मे भी आई। पश्चिमी नेपाल के लोग रोटी की तलाश मे नैनीताल, बदरीनाथ, मसूरी आदि मे सैकडो की तादाद मे चले आते है, बाज तो दो दो, तीन-तीन वर्ष तक घर का मुह नही देखते। नेपाली सबसे अधिक मेहनती है। तीन-तीन मन बोझा पीठ पर लाद लेना इनके लिए कोई बात नहीं है। खून पसीना एक करके चार पैसा कमाकर अपने बाल-बच्चो मे जाते है। लेकिन, उन नेपालियो से तो ये अच्छे है, जो मलाया को परतन्त्र रखने के

लिए अँग्रेजी साम्राज्यवाद की बलि के लिए दा पैसा पर बिक रहे हैं।

होटल मेट्रोपोल—डा० सत्यकेतु विद्यालंकार से पहले ही पत्र-व्यवहार हा चुका था। वह भी हमारे आजकल आने की प्रतीक्षा कर रहे थ, अर्थात् रामगढ के लिए हम निश्चित नही थे। नैनीताल का शृंगार वहाँ का ताल है जो किसी भी पर्वतीय विलासपुरी म नही है। बस का अड्डा मल्ली (निचले) ताल मे है। यहा भी बाजार है और बड़ा डाकखाना भी यहीं है। कुलिया पर सामान उठवाकर ताल का बाड़े छोडते हम सडक के आगे बढे। थाडी ही दूर आगे पहाड की ओर दूकाने और होटल शुरू हो गए। यहीं सिनमा भी है। ताल के परले छोर का तल्ली (उपरला) ताल कहते हैं। होटल मे पहुँचने से पहले डाक्टर साहब के ज्येष्ठ पुत्र श्री विश्वरंजन जी मिले। फिर डाक्टर साहब भी आए। सामान गोदाम म और हम दोना रहने के कमरे म चले गए। बगला किराय पर लेना था। डाक्टर साहब ने कहा, उसका मिलना मुश्किल नही होगा, देखकर ले लेंगे। हम वहा ठहर गए। पहली ही नजर देखने पर हमने लिख मारा—"निश्चय ही नैनीताल के सामने शिमला और दार्जिलिंग कुछ भी नहीं है।" लेकिन साथ ही यह भी लिखा है— 'कमी है तो यही, कि यह हिमालय के बाहरी क्षेत्र म है।" लेकिन, इससे भी बडी कमियां नैनीताल की मालूम हुई—यहाँ आदमी को मालूम होता है कुएँ म है, जिसके किनारे पहाड की विशाल दीवारे खडी है। इन दीवारों को ही देखा जा सकता है। हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों को देखने के लिए सारी दीवार को फादना पडेगा। वर्षा और पानी के कच्चे होने की भी शिकायत की जाती है लेकिन मैं उसको नहीं मानता।'

शाम का टहलने तल्ली ताल तक गए। रास्ते म ही ताल से सटी म्युनिसिपल लाइब्रेरी थी, जिसके पुस्तकाध्यक्ष हीरालाल जी चिर परिचित की तरह मिले और नैनीताल के निवास म वह हर तरह से सहायता करने के लिए तैयार रहे।

११ मार्च को किराये का बगला देखने गए। अँग्रेजो के जाने के बाद

इन विलासपुरियों पर साढ़े साती शनीचर का कोप है। नैनीताल में अँग्रेज किराये के बंगलों में रहते थे, जिन्हें भारतीयों ने अँग्रेजों के आराम की दृष्टि से ही बनाया था। जिन बंगलों को किराये पर चढ़े वर्षों हो गए, वह जीर्ण, गन्दे पुराने या टूटे फर्नीचर वाले हों, तो क्या ताज्जुब? अल्मा कॉटेज और ग्लेनमोर दो बंगले कुछ अच्छी हालत में थे लेकिन उनमें आठ-आठ नौ-नौ कमरे थे, जिनकी सफाई के लिए एक अलग आदमी चाहिए। ग्लेनमोर बाजार से एक मील पर अवस्थित है। कमला को पसन्द आया। साढ़े छ हजार फुट की ऊँचाई पर ताल है और यह उससे भी एक हजार फुट ऊपर है। किराया एक हजार वार्षिक के करीब था। कौमल बुक डिपो के स्वामी श्री बाबेलाल जी भी हमारी सहायता के लिए हर वक्त तैयार थे। उन्होंने श्री रामलाल शाह की कोठियाँ दिखलाईं।

पूर्वाह्न में हमने उत्तरवाली कोठियों को देखा। शाम को साढ़े ४ बजे दक्षिणवाली कोठियों की ओर चले। फन कॉटेज हटन कॉटेज, डलहौसी कॉटेज और स्नाउडन कॉटेज आदि कितने ही बंगले देखे। स्नाउडन सबसे अधिक पसन्द आया। मालूम हुआ, वह बिकने वाला भी है, लेकिन २०-२२ हजार तक ही हो तब ही तो। किराया एक हजार तक पट जाने की उम्मीद थी। दक्षिणगिरि की कोठियाँ अपेक्षाकृत बेहतर अवस्था में थीं, उनके फर्नीचर भी बुरे नहीं थे। सीजन सिर पर था, इसलिए डाक्टर साहब अपने होटल को तैयार करने में बड़े व्यस्त थे। पर दिखाने के लिए आदमी दे दिया।

१२ मार्च को उसके मालिक के साथ ग्लेनमोर बंगला देखने गए। अधिकांश बंगलों के मालिक कुमाऊँनी शाह लोग हैं। यह व्यवसायी बहुत कुछ नीचे के अग्रवाल बनियों से हैं। ग्लेनमोर बहुत बड़ा बंगला था, इसमें छ बड़े-बड़े कमरे थे। फर्नीचर भी था। हमने उसके गुण ही देखे, उसी पर मुग्ध होकर कह दिया, दो कमरे कल तैयार कर दिये जाएँ। किराया हजार ठीक हुआ, लेकिन शाहजी ने कहा, आदमी ज्यादा रहेंगे, तो किराया बढ़ा देंगे। बंगला कई साल से किराए पर नहीं चढ़ा था, इसलिए बहुत मरम्मत

करनी थी। हमने कह दिया कि मरम्मत नहीं करेंगे, तो मरम्मत कराकर उसका पैसा इसी किराये मे काट लेंगे। मालूम हुआ स्नाउडन दो साल पहले ११ सौ रुपये पर उठा था, अब वह आठ नौ सौ मे जरूर मिल जाता। आजकल किराया आमतौर से गिरा हुआ था, लेकिन मेरा उतावलापन कहिए। ग्लेनमोर से फिर थोडा और चढकर पर्वत प्राकार के ऊपर पहुँचे, जहा से हिमालय श्रेणी दिखलाई देती थी। इधर से पाच मील पगडडी से उतरकर भवाली से रानीखेत जानेवाली सडक मिल जाती है।

३ मार्च को फिर बँगलो की खोज मे निकले। सवेरे स्नाउडन गए। स्नाउडन की दो मजिला इमारत और उसके अच्छे साफ सुथरे कमरे हम बहुत पसन्द आए। चौकीदार को कह दिया कि मालिक से पूछो, यदि नौ सौ रुपया वार्षिक पर देना चाहे तो ले लेंगे। उधर हीरालालजी शाह को भी ग्लेनमोर के स्वामी के पास उतने ही किराए पर देने के लिए टेलीफोन करने को कहा। दोपहर बाद चन्दूलाल शाह के बगले डलहौसी विला, डलहौसी काटेज, हटन हाल और हटन काटेज देखने गए। हटन हाल बहुत बडा था, और हजार रुपये मे मिलने पर भी हमारे काम का नहीं था। डलहौसी विला उतना ही बडा था, जितना ग्लेनमोर। हा, उसमे कुछ अधिक साफ था। डलहौसी काटेज और हटन काटेज हमारे लायक थे। मेरा मन अधिकतर स्नाउडन चाहता था, और कमला ग्लेनमोर की तरफ आकर्षित थी। मेरे दिमाग मे बँगला खरीदने का भी ख्याल चक्कर मार रहा था, समझता था यदि स्नाउडन का दाम माकूल हो, तो उसे ले लेंगे। डाक्टर साहब ने भी कहा, २० २५ हजार मे वह जरूर मिल जायेगा।

ग्लेनमोर—१४ मार्च को तीन बँगलो का आफर आया, लेकिन सबसे पहले ग्लेनमोर से। १३ कुलियो के साथ हम २ बजे ग्लेनमोर पहुँचे। ६ बडे बडे कमरे जरूर थे लेकिन सीसे सबके टूटे हुए थे, चिटकनिया और कांचो को खास तौर से तोडा गया था। शाम को जब सोने के लिए दरवाजा बन्द करने लगे तब मालूम हुआ कि यहाँ तो सभी चीजें खुली हुई है और भीतर घुसने की सारी बाधाए दूर करके रखी गई हैं। फिर बाजार से यह बहुत

दूर करीब करीब गिरि-प्राकार के सिरे पर टगा हुआ है। यहा से उतरना-चढ़ना आसान नही था, और था बिलकुल अरक्षित स्थान मे। यहा से हम खिसके ही नही कि आसानी से सारी चीजें उड़ाई जा सकती थी। रात-भर इसी चिन्ता मे अपनी जल्दबाजी पर अफसोस करते रहे।

ओक लाज—रात को ही बँगले को छोड जाने का निश्चय कर लिया। अभी एक ही रात रहे थे, और बँगले के बारे मे लिखा पढी नही हुई थी। तुरन्त दूसरी जगह जाने का प्रबन्ध करना पडा। चाय पीकर एक चिट्ठी श्री हीरालाल शाह को मकान के नापसन्द होने के बारे म लिखी और स्वय श्री बाँकेलाल कोमल के पास पहुँचे। ओक लाज मे पहुँचे। वह इस सारे बँगले के किरायेदार थे, नीचे उनका परिवार रहता था ऊपर एक भाग मे गुप्ताजी ओवरसियर थे, और दूसरे भाग म दो कमरे और बराण्डा खाली था। रसोई खाने के लिए एक गुसलखाना काम दे सकता था। यद्यपि यहाँ स्थान की कमी थी, और फर्नीचर भी बहुत कम था, किन्तु पहले तो हमे ग्लेनमार से पिण्ड छुड़ाने की जल्दी थी। दूसरे यह भी सोचा कि यहाँ कोमलजी का परिवार भी रहता है, जिससे कमला को अनुकूलता होगी। चढाई भी यहाँ से आधी थी। वैसे भी गुजारा करना है, यही सोच रहे थे।

लौट कर सामान उठवाने के लिए आए, तो श्री हीरालालजी ने कहा, आप मकान को किराए पर ले चुके हैं, इसलिए किराया देना अनिवार्य होगा। मैंने कहा जब तक लिखा पढी नही हुई, तब तक कोई कानूनी बाध्यता नही। खैर, वहाँ से सामान उठवाकर ओक लाज मे चले आए। किताबो को खोलें, तो रखे कहा, पहले यही समस्या आई। कमरो मे कोई आलमारी नही थी। रात ११ बजे तक कमला मकान को सजाने मे लगी रही। शिवलाल को हमने रसोइया रखा, जो खाना बनाना नही जानता था।

नए मकान मे वैसे भी आदमी को कुछ अडचने मालूम होती हैं। इस मकान के गुण के लिए यही कह सकते हैं कि ग्लेनमोर से निकलने के बाद इसने शरण दी। अब पुस्तकें लिखने मे लगना था, और कमला को इस साल

कर दिया। वह और उनकी विदुषी पत्नी सुशीला देवी शास्त्री दिल्ली म बच्चा का स्कूल खोले हुए थे, जिसे बन्द करना पडा। फिर जीवन यात्रा के लिए तो कोई वसीला ढूढना ही था। प्रोफेसर, डॉक्टर और होटल-कीपर मे बहुत अन्तर है। लेकिन, इस अन्तर को देखने के लिए जो तैयार ह, वह ससार म कभी सफल नही हो सकते। उन्होने मसूरी मे लक्समौंट म एक होटल खोला। लडाई के दिनो म होटलो के लिए परिस्थिति वडी अनुकूल थी। कुछ कमाया, फिर वडे स्वप्न देखने लगे। नैनीताल का सबसे वडा यह होटल किराए पर लेने वाला था। पहले किसी अग्रेज का था जिससे अवध के ताल्लुकेदार राजा महमूदाबाद ने खरीद लिया था। डाक्टर साहब ने होटल को लेकर चलाने का निश्चय किया। वहुत वडा कारबार था, लेकिन अब लडाई खतम हुए पाच साल हो गए थे, और होटलो की हालत बदतर हो गई थी। वह अब इससे पिण्ड छुडा मसूरी के लक्समौंट म ही जाकर रहना चाहते थे, जो अब भी उनके हाथ मे था। इन सब बातो पर विचार करने पर मेरे मन मे ख्याल आने लगा, मैं भी क्या न मसूरी चला चलू। डाक्टर साहब ने कहा कि वहाँ पर दाम या किराय पर अच्छी कोठिया के मिलने म दिक्कत नही होगी। महाराज युद्ध शमशेर की ५० हजार की कोठी बिकाऊ है", जो शायद आधे दाम मे मिल जाए। डॉक्टर साहब २४ माच तक यहा स मसूरी चले जाने वाले थे। अव्यावहारिकता तो मेरे मे होनी ही चाहिए, क्योकि सारे जीवन व्यवहार के पथ का अनुसरण नही किया, सोचने लगा दो तीन महीनो म रुपयो का प्रबन्ध करके उसे ले लेंगे "मसूरी भी बुरी नही है वहा किन्नर के नजदीक भी पहुँच जाएगे।'

आज की डाक स श्री प्रेमराज का पत्र मिला। मैंने अपने 'किन्नर देश मे" मे सराहन के बँगले म उनके मेरे नमस्ते के जवाब देने की भी फुरसत न होने की शिकायत लिखी थी। उन्होने बडे क्षोभ के साथ मेरी भत्सना करते लिखा था कि उस दिन सराहन के बँगले म जिस पति पत्नी से मुलाकात हुई थी, वह कोई इजीनियर घोप थे। वह दम्पती बगाली हर्गिज नही थ इसलिए इस बात को कैसे मान सकता था? तो भी उनको अगर मेरे लिखने

साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा अवश्य देनी थी। अगले दिन हमने छ बक्सो की पुस्तकें निकाल कर जहा तहा रख दी। अपने तो जस भी गुजारा कर सकते थे, लेकिन चिन्ता थी मेहमानो के आने पर क्या किया जायगा। जो भी हो, अब नैनीताल म १६ जून तक के लिए हम आक लाग के हो गए।

१७ तारीख से हमने अपना काम भी शुरू कर दिया। कमला घटे म डेढ पष्ठ फुल्स्केप टाइप कर सकती थी, जो थोडे से अभ्यास से दो हो सकते थे। चाय पीकर ६ बजे से १ बजे तक हमने टाइप करने का काम रखा। किराया पूछने पर साल भर का छ सौ रुपया था, जिसका आधा अभी देना था। बगले की किसी चीज की मरम्मत कराने म वह असमथ थे क्योंकि मकान मालिक उसके लिए कुछ खच करना नहीं चाहता था। नए मकान म अडचनें थी, जो मेरे उतावलेपन का दण्ड था। यदि डॉक्टर साहब की बात को मान कर कुछ दिन और होटल मे रह मकानो को अच्छी तरह देखभाल कर के पसन्द करता, तो इससे कम म अच्छा बँगला मिल जाता।

डा० केसरवानी उस वक्त भवानी टी० बी० सेनिटोरियम के अध्यक्ष थे। कराची-काग्रेस के समय उनसे मेरी भेंट हुई थी। गुरुकुल कागडी के आयुर्वेद के स्नातक थे। पीछे इटली मे एलोपैथि के एम० डी० हुए, और जमनी मे भी चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा पाई। लडाई के दिनो म जमनी मे रहे और जमन सेनाओ के साथ रूस के भीतर तक पहुँचे। उन्होंने रवि वार (१६ माच) को अपने यहाँ बुलाया था।

इस समय खाने की चीजो की तगी थी। नैनीताल म यह सुभीता था कि यहा आधी राशनिंग थी, इसलिए कुछ राशन काड से और कुछ बिना राशन के चीजें मिल जाती थी। राशनकाड आसानी से बन गया जिसके बल पर तीन रुपए मे तीन सेर आटा और दो सेर चीनी लाए। डा० सत्य-केतु के पास गए। भारतीय इतिहास के गम्भीर विद्वान् गुरुकुल कागडी के स्नातक और परिस युनिवर्सिटी के डी० लिट० होकर उन्होंने सोचा था, कही पढने पढाने का काम करेंगे। पर लडाई ने रहे सह प्रयत्न को भी विफल

कर दिया। वह और उनकी विदुषी पत्नी सुशीला देवी शास्त्री दिल्ली मे बच्चो का स्कूल खोले हुए थे, जिसे बन्द करना पडा। फिर जीवन-यात्रा के लिए तो कोई वसीला ढूढना ही था। प्रोफेसर, डाक्टर और होटल कीपर मे बहुत अन्तर है। लेकिन, इस अन्तर को देखने के लिए जो तयार है वह ससार म कभी सफल नहीं हो सकते। उन्होने मसूरी म लक्समौंट मे एक होटल खोला। लडाई के दिनो म होटलो के लिए परिस्थिति बडी अनुकूल थी। कुछ कमाया, फिर बडे स्वप्न देखने लगे। नैनीताल का सबसे बडा यह होटल किराए पर लगने वाला था। पहले किसी अग्रेज का था, जिससे अवध के तालुकेदार राजा महमूदाबाद ने खरीद लिया था। डाक्टर साहब ने होटल को लेकर चलाने का निश्चय किया। बहुत बडा कारबार था, लेकिन अब लडाई खतम हुए पाच साल हो गए थे और होटलो की हालत बदतर हो गई थी। वह अब इससे पिण्ड छुडा मसूरी के लक्समौंट मे ही जाकर रहना चाहते थे, जो अब भी उनके हाथ मे था। इन सब बातो पर विचार करने पर मेरे मन मे ख्याल आने लगा, मैं भी क्यो न मसूरी चला चलूँ। डॉक्टर साहब ने कहा कि वहा पर दाम या किराये पर अच्छी कोठियो के मिलने म दिक्कत नही होगी। महाराज युद्ध शमशेर की ५० हजार की कोठी बिकाऊ है", जो शायद आधे दाम मे मिल जाए। डॉक्टर साहब २४ मार्च तक यहा से मसूरी चले जाने वाले थे। अव्यावहारिकता तो मेरे म होनी ही चाहिए क्योकि सारे जीवन व्यवहार के पथ का अनुसरण नही किया, सोचने लगा दो तीन महीनो मे रुपया का प्रबन्ध करके उसे ले लेंगे "मसूरी भी बुरी नही है वहाँ किन्नर के नजदीक भी पहुँच जाएगे।"

आज की डाक से श्री प्रेमराज का पत्र मिला। मैंने अपने "किन्नर देश म" म सराहन के बँगले मे उनके मेरे नमस्ते के जवाब देने की भी फुरसत न होने की शिकायत लिखी थी। उन्होने बडे क्षोभ के साथ मेरी भर्त्सना करते लिखा था कि उस दिन सराहन के बँगले म जिस पति पत्नी से मुलाकात हुई थी, वह कोई इजीनियर घोष थे। वह दम्पती बगाली हर्गिज नहीं थे इसलिए इस बात को कसे मान सकता था ? तो भी उनको अगर मेरे लिखने

से कष्ट हुआ तो उनकी इस चिट्ठी को प्रकाशित कर देना मैं आवश्यक समझता था। उस पुस्तक के नए संस्करण के निकलने में न जाने कितनी देर होगी, इसलिए मैंने अभी छपते "दार्जिलिंग परिचय" मे उसे दे दिया।

मसूरी ने बीच में आकर फिर हमारे दिमाग में अनिश्चिन्तता पैदा कर दी। नैनीताल के लिए आकर्षण नही रह गया। तो भी मकान तो किराए पर ले चुके थे इसलिए उसकी सद्गति करनी जरूरी थी, और वर्षा के बाद ही यहां से चल सकते थे। आर्थिक स्थिति का पता अब हमें मालूम होने लगा था क्योंकि "अजगर करे न चाकरी, पछी करे न काम" की वृत्ति पर गुजारा नही हो सकता था। एक जगह घर बनाकर रहना था, जिसका खर्च निश्चित था, इसलिए आमदनी भी निश्चित होनी चाहिए। उस समय हमारे पास चार सौ रुपए थे और बैंक में २३ सौ। हमे ढाई सौ रुपये मासिक में अपना काम चलाना होगा, लेकिन पीछे की कोशिशों ने बतलाया कि यह सम्भव नही है। श्री परमानन्दजी पोद्दार से २५ हजार अग्रिम मिलने वाले थे लेकिन वह तो मकान के लिए थे इसलिए रोज-बरोज के खर्च की समस्या उनसे हल नही हो सकती थी।

प्रयाग से माचवेजी की चिट्ठी में यह पढ कर संतोष हुआ कि वह मई मे नैनीताल आवेंगे। सेन गुप्त ने लिखा, भट्टजी की हालत धीरे धीरे सुधर रही है। एक तरफ आर्थिक स्थिति वैसी थी, दूसरी तरफ जब २१ को श्री कृष्ण प्रसाद दर की चिट्ठी मिली कि ११ सौ रुपए का रोलेफ्लेक्स साढे आठ सौ में दिला देंगे, तो कहा—रुपये की कमी तो है, किन्तु लेना ही पडेगा। "अपने ऊपर शायद समय के बाद और लोग भी खुनलाते होंगे इसलिए मेरा वैसा करना अचरज की बात नही। २२ मार्च तक 'मधुर स्वप्न" को लिखकर समाप्त कर दिया। कमला ने उसके अवशिष्ट भाग को टाइप भी करना शुरू कर दिया। आनन्दजी के पत्र से पता लगा कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति मेरी साहित्यिक योजना को पूरा करने के लिए तैयार है लेकिन उसके सम्पादन की जिम्मेवारी मुझे लेनी होगी।

मार्च का अन्त जाडे का समय नही था लेकिन साढे ६००० फुट ऊपर

बसे नैनीताल (ओक साज ७००० फुट) म अब भी जाडा था। २२ को पानी और ओला पडा। आड़, खुबानी, नासपाती के फूल बड गये अब उनम फल आन की सम्भावना नही थी। २३ माच का सवेरे उठे, ता देखा सभी ऊँचे स्थान बफ से ढके है। हमारे बगले के आसपास भी बफ थी, जा दोपहर तक पिघल गई थी। सर्दी बहुत बढ गई थी। शिवलाल की जगह हरिराम का भाजन के लिए रखना पडा, किन्तु वह भी इस कला का हमारे ही साथ रहकर सीखना चाहता था। यदि उमम कुछ अधिक था तो यही कि अच्छी सामग्री का भी नि स्वादु भोजन म परिणत कर दना। नैनीताल का अब ग्रीष्म राजधानी कहने मे हमारे प्रभुआ का सकोच हा रहा था क्योकि अग्रेजा क बहुत मे दफ्तरा का लखनऊ से यहाँ भेजना बन्द कर दिया था। लेकिन, वह अभी आरम्भिक दिन थे, काग्रेसी नता आदशवाद के लिए शम करते भी मुक्त थे। अभी उस समय के आने मे कुछ दर थी, जब कि फिर मुख्य-मन्त्री और दूसर मन्त्रियो को नैनीताल का फिर स बसाना था, और तब नैनीताल के भाग्य म कुछ परिवतन भी होना जरूरी था। अग्रेजा के जाने से यहाँ के बगला की क्या दुर्गति हुई, इसके बारे मे हम कुछ बतला आए है। दूर-दूर क बगलो के दिन लौटेंगे, इसकी आशा नही थी। नैनीताल मे बहुत से युरोपियन स्कूल थे, जा थोडे से भारतीय लडका को भी ले लिया करत थे। अब उनम से कितन ही बन्द हा चुके थे और कुछ का दूमरा ने लेकर अपनी सस्था खोली थी। बिडला विद्यामन्दिर उन्ही मे से एक था। यहाँ कोई स्थानीय ऐसा अखबार नही था कि जो सूचना देता, पर किसी तरह शिक्षिता म मेरे आने की खबर लग गई। म्युनिसिपल पुस्तकालय के अध्यक्ष जब जान गए तो इस खबर का दूसरी जगह पहुँचना मुश्किल नही था।

२५ माच का बिडला विद्यामन्दिर के अध्यापक श्री जगदीशनारायण जी आये। वह बलिया जिले के नरही गाँव के रहनेवाले अर्थात् भोजपुरी भैया हैं। मालूम हुआ, मन्दिर मे आजकल दो सौ विद्यार्थी पढते है। वार्षिक शुल्क बच्चा स हजार से १५ सौ रुपया तक लिया जाता है। सौ छात्र और

हो तो मन्दिर स्वावलम्बी हो सकता है। लेकिन, फिर आगे के मकान पर्याप्त नही होगे।

हमारे निवास म मालिक से मरम्मत करने की आशा नही थी, और टूटे हुए शीशो से सर्दी और हवा भीतर पहुँच रही थी, इसलिए उन्हें अपने ही लगवाया। २६ मार्च को कुछ घण्टा तक बजरी पडती रही। ओला बर्फ जैसा कठोर होता है, और नरम पिलपिले ओले को बजरी कहते है, जिसके गिरने पर टीन की छत भडभडाती नही और आदमी की खोपडी पर चोट नही पहुँचती। सर्द स्थानो म टेम्परेचर गिरने के साथ बरसता पानी बजरी के रूप म परिणत होता है, और कुछ सर्दी और बढने पर वह हिम बन जाता है अधिक सर्दी होने पर कणो के रूप म नही, बल्कि रूई के बडे बडे फाहो के रूप मे हिम हवा म तैरते हुए गिरने लगता है।

कमला असाधारण दुबल थी। सब ९२ पौण्ड वजन था, फिर सिरदर्द पटदर्द और दूसरी तरह की शिकायतें क्या न होती? यहा के सरकारी अस्पताल के डा० मल्होत्रा ने रोतगेन कराने को कहा। दूसरे देशो मे एक्सरे का उसके आविष्कारक जर्मन विद्वान् के रोतगेन नाम से पुकारा जाता है, लेकिन अग्रेज जर्मन नाम क्यो पसन्द करने लगे? उन्ही का दिया नाम एक्स रे हमारे यहा चलता है। रोतगेन करवाया, डाक्टर ने और परीक्षा की और बतलाया कमला का रक्तदाब कम है, विटामिन की आवश्यकता है, जिसके लिए सलाद, टमाटर और कलेजी खानी चाहिए। लेकिन कमला सलाद और टमाटर के खिलाफ है। मैंने झुझला कर कहा—'कमला की औंधी खोपडी इसे मान तब ना। जीभ औषध ग्रहण करने म रुकावट डाल रही है।' कमला का वजन ठीक होने म बहुत समय लगा और वजन ठीक होने पर शिकायतें कम हो गइ, यह स्वाभाविक था। २४ अप्रैल को फिर डा० मल्होत्रा और सिविल सर्जन ने कमला को देखा। सिबाजोल की गोलिया और एक टानिक खाने के लिए कहा। शाम को भोजन के बाद टानिक खाने पर कै हो गई। इधर वजन सौ पौण्ड तक पहुँचा था, वह घट कर ९७ रह गया। आधे सिर का दर्द विशेष तौर से तग

करता था जिसके कारण पढ़ने लिखने में अड़चन थी। सलाद मुश्किल से कुछ खा लेती, लेकिन टमाटर की तरफ उनका देखने का भी मन नहीं करता था। खाने के बारे में जबर्दस्ती करना अच्छा भी नहीं क्योंकि उससे कै हो जाने का डर था। आधाशीशी का कारण चश्मे की जरूरत भी हो सकती थी। डा० मायादास ने देखकर परीक्षा करके चश्मा दिलवाया। डा० मायादास नैनीताल की विभूति थे। वह दार्शनिक डाक्टर थे, रोगी की चिकित्सा करना, हर तरह से उसकी दिलजोई करना वह अपना परम कर्तव्य समझते थे। मस्तमौला तो ऐसे कि पीठ पर झोला रखे मौला घूमने चले जाते थे। रास्ते में मिलने पर कोई कह नहीं सकता कि यह एक सिद्ध-हस्त डाक्टर हैं।

दिल्ली से खबर मिली कि वहाँ शिक्षा मंत्री ने भारतीय संस्कृति सम्बन्धी परिषद् स्थापित की है जिसके २६ सदस्यों में मेरा भी नाम है। वहाँ मैंने डा० काणे कृष्णस्वामी अय्यंगर तारापोरवाला आर० सी० मजूमदार जैसे नामों का अभाव देखा और एक तिहाई से अधिक इस्लामिक संस्कृति के प्रतिनिधियों को पाया। यह बुरा नहीं था पर शिक्षा मंत्रालय से भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में इससे अधिक आशा ही क्या हो सकती थी?

पश्चिमी पाकिस्तान में एक बार जोर का तूफान आया और उसके बाद हिन्दुओं मुसलमानों का खून में लथपथ इधर से उधर जाना-आना होकर काम खतम हो गया। लेकिन, पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं पर विपत्ति रह रह कर आ रही थी। हिन्दुओं के लिए वहाँ निश्चिन्त और सम्मान पूर्वक रहना मुश्किल-सा हो रहा था, इसलिए वह बड़ी भारी संख्या में अपने घरों को छोड़कर पश्चिमी बंगाल में आ रहे थे—यह सिलसिला आज (२८ फरवरी १९४९) भी जारी है।

डा० भट्ट के लिए अब एक दूसरी चिंता होने लगी। अस्पताल वाले उन्हें और रखने में अपनी असमर्थता बतला रहे थे। उनका कहाँ प्रबन्ध किया जाए, यह एक बड़ी समस्या थी। श्रद्धेय टण्डनजी ने भी इसके लिए

प्रयत्न किया और उसके परिणामस्वरूप भट्टजी को निकालकर सडक पर नही फेंक दिया गया।

अभी मैं नैनीताल ही मे था, लेकिन लखनऊ के 'पायनियर" म छप गया था कि मैं मसूरी म बसने जा रहा हूँ। उस समय यह अभी भविष्य वाणी सी ही थी। रसोइये की बडी दिक्कत थी। ४ अप्रैल को एक नये रसोइये बिसुनसिंह को रखा। असल मे मई-जून म जब सीजन शुरू होता है तभी पहाड के भिन्न भिन्न स्थाना से काम करने वाले लोग विलासपुरियो मे पहुचते है। हम समय से पहले चले आए थ, इसलिए अभी न अच्छे रसोइये मिल सकते थे, न मकानो के प्रबन्धक, एजेन्ट या स्वामी यहाँ मौजूद थे।

हिन्दी कौरवी भाषा का साहित्यिक रूप है। कुरुक्षेत्र मुख्यत गगा और जमुना के बीच उत्तर म हिमालय की तराई से दक्षिण म आधे बुलन्दशहर जिले तक फैला था। जमुना के पश्चिम आजकल का हरियाना उस समय कुरुजागल नाम से पुकारा जाता था। यहाँ गैर आबाद जगल अधिक थे, जहा पर कुरुओ के पशु अधिकतर चरा करते थे। कुरु और कुरु जागल अथवा मेरठ कमिश्नरी का खडी भाषाभाषी भाग और हरियाना की बोली एक ही है। वैसे तो चार चार कोस पर भाषा मे कुछ अन्तर आ जाता है। पश्चिमी हरियाना मे एक और फर्क है कि जहा और जगह क कौरव, है बोलते है, वहा पश्चिमी हरियाना वाले से कहते है। इसी तरह 'ह' भी 'स' हो जाता है। लेकिन, इस, ह म के अन्तर से भाषा का भिन्न नही कहा जा सकता है। गुजराती म भी ह स का अन्तर उसके पश्चिमी और पूर्वी रूपा मे मिलता है, और साहित्यिक गुजराती ह को नही स को स्वीकार करती हैं—हारा सारो, हीरो सीरो। किसी भी साहित्यिक भाषा के लिए अपनी लोक भाषा से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना अत्यावश्यक है। इसके बिना वह प्रवाह हीन नदी की छाडन बन जाती है। मैं वर्षों से अपन कौरव मित्रा का प्रेरित करता रहा कि कौरवी के लोक-गीता, लोक-कथाओ और दूसरे नमूनो को जमा करना चाहिए। इधर कितने ही तरुण तरुणी इस काम म लग गए हैं, लेकिन नैनीताल के मर निवास क समय

अभी वैसा करते लोग नहीं मिले थे। आक्लाज के कोठे के एक भाग में ओवरसियर श्री शीतलप्रसाद गुप्त रहते थे। उनकी सौतेली माँ रामन माई ८० वर्ष की बुढ़िया उनके साथ थीं। रामन माई मुजफ्फरनगर जिले में पैदा हुई, और मेरठ जिले के मवाना तहसील के एक गाँव में ब्याही गई। जन्मभर अनपढ़ और गाँव की रहने वाली रहीं, बहुत चुप रहने वाली नहीं। पुरानी बातों के सग्रह के लिए सहायता करने के वास्ते वह आदर्श थीं। मुझे खयाल आया कि रामन माई से गीतों और कहानियों को क्या न इकट्ठा करूँ। अब उनसे काफी परिचय हो गया था, और कमला पर तो उनका बहुत वात्सल्य था। आते ही पूछतीं—"कमलारानी, राटी-राटी कर ली?" कौरवी के इन मधुर शब्दों को सुन कर भारी आकर्षण हुआ। उनके पड़ोस में रहते तीन हफ्ते हो गए थे, इसलिए सकोच की बात नहीं थी। मेरे कहने पर रामन माई ने अपनी याद कहानियों और गीतों को लिखाना स्वीकार कर दिया। दोपहर के भोजन के बाद मैंने एक कहानी लिखने का निश्चय किया, और पहली कहानी ४ अप्रैल को लिखी गई। कुछ ही दिन बाद तो मेरी ही तरह रामन माई को भी अपनी कहानियों को लिखा देने की धुन हो गई। पहुँचने में जरा भी देर होने पर आकर पूछतीं—"क्या आज कहाणी नहीं लिखाणी है?" आगे तो मैंने एक एक दिन में तीन-तीन कहानियाँ लिखीं। यद्यपि रामन माई के बुढ़ापे की स्मृति के कारण कितनी कहानियाँ और गीत पूरे नहीं थे, और सभी कहानियाँ साहित्य की दृष्टि से बहुत ऊँची नहीं थीं, तो भी विशेषता यह थी कि ये सभी कहानियाँ एक व्यक्ति के मुँह से निकली थीं, एक ही भाषा में थीं जो आज से ७० वर्ष पहले जमीं बोली जाती थी, उस रूप में थी। रामन माई के पुत्र तो कुछ इसे पसन्द भी करते थे, लेकिन उनकी पत्नी हेमरत्नाजी गँवार नहीं शिक्षिता तरुणी थीं। वह शब्दों के गँवारू भद्दे उच्चारण को पसन्द नहीं करती थीं। सोचती होंगी, यह तो हमारे परिवार के संस्कृतिहीन होने की निशानी है। लेकिन रामन माई को अपनी बहू की इस रुख की कोई पर्वाह नहीं थी। ये कहानियाँ और गीत उसी साल "आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत"

नाम से प्रकाशित हुई। प्रकाशक ने आग्रह करने पर भी प्रूफ या मेरे पास नहीं भेजा जिसके कारण उसमें बहुत से मूल्यवान् उच्चारण विकृत हो गये। नाम के वक्त हम टहलने के लिए चले जाया करते थे। ६ अप्रैल को श्री शीतलप्रसादजी, बोसलजी, उनके मझले भाई तथा दो-एक और भद्रजनों के साथ हम लठिया कटा गये। कटा यहाँ घाटी को कहते हैं जिसे कहीं कहीं कंडा भी कहा जाता है। लठिया कटा से यहीं ऊँची चोटी चीना पीक है पर लठियाकटा गिरिसिगरल से हटकर है, जो उसका खास महत्व है। स्थान तीन मील पर होगा। हमलोग घाँट पर पहुँचे। अन्त का १५ २० गज का रास्ता बहुत खराब था। दर्शन के लिए लकड़ी की दर्शन-बैठक बनी हुई थी। बोसलजी के मझले भाई अब जवानी नहीं रह गये थे। किसी भी कड़ी से कड़ी चढ़ाई या दुरारोह स्थान पर वह बकरे की तरह खट-खट चले जाते थे। वहाँ की वनस्पतियों का भी अच्छा परिचय रखते थे। उन्होंने गुहिया के वृक्षों की बड़ी निंदा की, और कहते थे, इसकी गंध बिलकुल गूह (पाखाना) जैसी होती है। संयोग से रास्ते में उसका वृक्ष मिल गया। मैंने ताड़ कर सूँघ कर देखा, कोई गूह जैसी गंध नहीं थी। फिर कहने लगे भीगने पर बरसात में दुर्गंध आती है, अथवा आग में जलाने में वैसी गंध निकलती है। मुझे तो मालूम हुआ, बेचारी गुहिया यों ही बदनाम कर दी गई है। इस समय अप्रैल के महीने में बुरांस (रोडड्रन) के निरगंध पर सुन्दर अतिरक्त वर्ण फूल बहुत खिले हुए थे। पर्वतीय तरुणियाँ कितनी ही जगहों पर इनसे अपने बालों का शृंगार करती हैं। लेकिन कुमाऊँ या गढ़वाल में मैदानी असर बहुत पड़ा है, इसलिए वहाँ की तरुणियों में यह शौक नहीं देखा जाता। मैं तो उसे कई बार देख चुका था और कई बार उसकी प्रशंसा में लिख भी चुका था, उसे नयनाभिराम समझता था। पर कौसलजी ने बतलाया कि इसकी बड़ी अच्छी पकौड़ी होती है। उस दिन रात को देखा, उसकी पकौड़ी सचमुच ही अच्छी थी।

९ अप्रैल को मेरा ५७वाँ वर्ष पूरा हुआ, अब ५८वें वर्ष में मैंने पैर रखा। पिता पितामह कोई ५० से ऊपर नहीं पहुँचा था। इस बारे में मैं

उनसे अधिक भाग्यवान था। नैनीताल मे कभी कभी मैं चक्कर सडक पर भी टहलने चला जाया करता। यह गिरिमेखला की आधी ऊँचाई पर सारी उपत्यका की परिक्रमा करती थी, और इसमे अधिक चढाई उतराई नही थी। सवा घटे इस सडक को पकड कर चीना पीक के नीचे की ओर जाकर मैं लौट आता था। चीना पीक के नीचे के पहाड को देवपाटा कहते हैं। यहाँ के धूपी वृक्ष अग्रेजो के लगाए नही बल्कि स्वाभाविक है। देवदार के सौन्दर्य के साथ मेरा विशेष पक्षपात है।

१७ अप्रैल को पहली बार हमने नाव से ताल को पार किया। प्रति आदमी चार आना जाने का बहुत सस्ता था। बीस मिनट मे मल्लीताल से तल्लीताल पहुच जाते हैं। ताल मे नौका विहार नैनीताल की सबसे स्पृहणीय चीज है, बल्कि कहना चाहिए यही वहा का सबसे बडा आकर्षण है।

परिभाषा का काम अब भी बन्द नही हुआ था। श्री सेनगुप्त प्रयाग मे रहने तक काम कर रहे थे, किन्तु श्री विद्यानिवासजी से उनकी पटरी नही जम रही थी। मैं होता तो सभाल लेता पर यहाँ से क्या कर सकता था। दूसरी बातो मे भी दिक्कतें पड रही थी, जिससे परिभाषा के काम के आगे चालू रखने की सभावना कम रह गई थी। लिखने के लिए अब 'कुमाऊँ' का ख्याल दिमाग मे दौड रहा था। 'दार्जिलिङ्-परिचय' लिख कर हिमालय का परिचय देने का काम शुरू किया। मैं अब कुमाऊँ मे था, इसलिए उसमें हाथ लगाने का सुभीता था। यहा उसके बारे मे पुस्तकें जमा की और पढते हुए अप्रैल के तीसरे सप्ताह मे कुछ लिखना भी शुरू किया। बहुत दिनो से 'मध्य-एसिया का इतिहास' की सामग्री साथ-साथ चल रही थी, अब उसमे भी हाथ लगाने का दिल मे ख्याल आने लगा।

चीना शिखर—नैनीताल के निचलेभाग से सामने पश्चिम की ओर देखने पर सबसे ऊँचा जो शिखर दिखाई देता है वही चीना पीक है। यह अग्रेजो का दिया हुआ नाम है। पहले यह निर्जन-सा स्थान था, और केवल पशु-पालक यहा आया करते थे। सिर्फ साल मे एक दिन नैना देवी के मेले के लिए झील के किनारे जगल मे मगल हो जाता था। अग्रेजो ने इस अद्भुत

ताल का पता नपाल से कुमाऊँ छीनने (१८१४) के बाद पाया। फिर
बगले बनने लगे, तथा धीरे-धीरे नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी
गया। २३ अप्रैल को सर्वोच्च शिखर पर जाने की हमारी सलाह हु
नैनीताल जानवाले पिकनिक के लिए एकाध बार वहा जरूर आते हैं। स
से कितनी हो दूर जा गिरिमेखला के डांडे को पार कर पगडण्डी प
ऊपर शिखर पर पहुचे। एक पत्थर पर सामने दिखाई देनेवाले हिमाच्छ
दित शिखरो के नाम लिखे हुए थे, जो रेखा की सीध मे देखने से सा
दिखलाई पडते थे। आज हमारे दुर्भाग्य से अधिकतर शिखर बादल से ढ
थे। बदरीनाथ से जमुनोत्री (बन्दरपूछ) तक के शिखर ही नही देख सक
बल्कि पूव मे नपाल के शिखर भी सामने पडते हैं। हम ६ आदमी
रास्ते भर चुहुल और विनोद होता गया। यहा बैठकर वनभोज हुआ। सा
नीचे की ओर ताल मे नावो को दौडते और आगे मैदानी भूमि देखते र
सवा ६ बजे वहाँ से लौटे। दूसरे रास्ते से, जो केमल पीक (ऊँट शिखर)
ओर से होकर आता है। चीना चुगी तक हमे सडक मिली। अब सूय
डूब गया, और हमारे साथियो ने पगडण्डी पकड ली, जिसमे कितनी जग
सीधी खडी उतराई उतरनी थी। ऐसी जगह यदि पर काँपने लगे, तो दो
क्या ? जब सडक पर पहुँचे, तो जान मे जान आई। अधेरा हो जाने प
८ बजे घर लौटे।

१ मई को श्री परमानन्दजी ने १० हजार रुपये का चेक भेज दिया
अर्थात् अब मकान खरीदने की ओर लुढकने का आधा सामान तैयार ह
गया। भीमताल भी नैनीताल जिले मे एक सुदर स्थान है। वहाँ एक बग
के बिकाऊ होने की बात सुनी। अधिक पता लगाने पर मालूम हुआ कि
कोई साहब आठ हजार मे खरीदकर उसे १५ हजार मे बेचना चाहते हैं
हम रामगढ देख चुके थे, इसलिए ऐसे स्थान मे जाने के लिए तैयार नहीं
थे, जहा बिजली पानी का प्रबन्ध न हो। चन्द्रकान्तजी कुल्लू से लिख रहे
कि मनाली मे सेबो के बाग के साथ एक बहुत अच्छा 'बगला' बिक रहा है
मनाली की सुषमा मेरे लिए आकषक हो सकती थी, लेकिन कमला उसके

लिए तैयार नहीं थी। नैनीताल से अब मन उचट ही गया था। डा० सत्य-केतु के मसूरी चले जाने पर हमारी भी डोरी उधर ही लगी हुई थी।

माचवेजी इस समय इलाहाबाद के रेडियो स्टेशन में काम कर रहे थे। वह ४ मई को अपनी पत्नी शरदजी और पुत्र असग के साथ आये। छुट्टी नहीं मिली थी, इसलिए अभी शरद और असग को पहुँचा कर चले गए। रोलेफ्लेक्स कैमरा भी आ गया था। हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता थी कि साढ़े दस सौ रुपये का कैमरा साढ़े आठ सौ रुपये में मिल गया। दर साहब ने कमीशन छुड़वा दिया था। बराण्डे की कोठरी को लेकर भी हमारे पास सिर्फ तीन कमरे थे। बाहर के कमरे में टूटी कुर्सियाँ और टूटा सोफा था, जिसे हमने बैठकखाना बना दिया था और बाकी कमरे को शयनकक्ष में परिणत कर दिया था। दो वर्ष का असग हमारे मनोरंजन का बड़ा साधन था। अभी उसे बहुत कम ही शब्द मालूम थे। अपने नाम को वह अँचिगा कहता था। पहले अपने कैमरे को हमने असग पर खूब साफ किया, उसके बहुत से फोटो लेते रहे। १० मई को सवेरे से शाम तक उसे १०१ डिग्री बुखार रहा। मालूम हुआ, बच्चे सिर्फ मनोविनोद के साधन ही नहीं हैं। आधा मील नीचे उतरकर उसे अस्पताल ले गए, शायद सर्दी लग गई थी। अगले दिन और उससे अगले दिन भी १०२ और १०१ तक टेम्परेचर रहा। डा० पुरुषोत्तम पांडे ने आकर देख लिया, और फीस लेने से इन्कार कर दिया। उन्होंने बतलाया, आजकल बच्चों को नैनीताल में चेचक अधिक हो रही है। शायद वही निकलनेवाली हो। माचवेजी को तार दिया, और वह महीने भर की छुट्टी लेकर १४ मई को आ गए। अब असग की तबीयत ठीक थी।

१८ मई को सेनगुप्तजी के पत्र से मालूम हुआ, पं० बलभद्र मिश्र ने सम्मेलन के प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। मैंने मिश्रजी को ऐसा न करने के लिए लिखा, लेकिन जिस दल ने उन्हें अधिकारारूढ़ किया था उसीने उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर किया। मिश्रजी के रहने मुझे कुछ आशा हो सकती थी, इसीलिए मैं परिभाषा निर्माण के काम में अब

भी लगा हुआ था, पर अब उसकी आशा खतम हो गई। मई के मध्य में पहुँचते-पहुँचते नैनीताल का सीजन पूरी तरह से शुरू हो गया। सैलानी चारों तरफ दिखाई पड़ते। सभी दूकानें खुल गई थी। नाम का ताल के किनारे के राजपथ पर सैलानियों की भीड़ रहती। पजाबी ललनायें फैशन में सबका कान काट रही थी। नैनीताल उनके शृंगार के लिए मनो अधर-राग और काजल सच कर रहा था। लोग दिन में भिन्न भिन्न स्थानों में पिकनिक करने जाया करते थे।

२१ मई इतवार का दिन था। हमने भी पिकनिक के लिए डारोथी सीट की ओर प्रस्थान किया। बाँकेलालजी सपरिवार, गुप्ताजी सपरिवार, हम दोनों और माधवजी सभी चले। पकवान घर से बनाकर ले गए। चाय पीकर गए थे, पर कलकत्ते के मित्र श्री मदनलाल टाँटिया मिल गए उन्होंने चाय पिलाई। १० बजे चढ़ाई चढ़ते डोरोथी सीट पर पहुँचे। यहाँ से नैनी-ताल और आसपास के पर्वतों का सुन्दर दृश्य सामने आता है। किसी अंग्रेज ने अपनी पत्नी डारोथी के नाम पर यहाँ सीमेंट का एक चबूतरा बना दिया था, जिस पर खड़े होकर लोग परिदर्शन करते। हरे हरे वृक्षों की छाया में हमारी एक दजन से अधिक पुरुषों और महिलाओं की मण्डली भोजन के लिए बैठी। सबने कुछ कुछ सामान और कुछ विशेष पकवान तैयार किए थे। बाँटकर खाने में बड़ा आनन्द आ रहा था। हमारी कोशिश थी कि यह आनन्द जल्दी समाप्त न हो जाए। काफी चढ़ाई चढ़ कर आए थे, इस-लिए विश्राम लेने में भी एक विशेष खुशी मालूम होती थी। बहुत देर बाद वहाँ से चलकर एक देवदारों से घिरी थोड़ी सी खुली जगह में पहुँचे। यहाँ भी कुछ फलाहार हुआ। फिर हरे हरे वृक्षों के भीतर में चलते हम घर लौटे। मुझे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि रामन भाई को टाँटियाजी के बंगले पर ही छोड़ दिया गया। उतनी चढ़ाई चढ़ना शायद मुश्किल होता और डाडी पर चलने के लिए वह तैयार नहीं हुई इसलिए और कोई चारा नहीं था। बिहारीलालजी असल पहाड़ी है। वह आयरपाटा (दक्षिणी गिरि-मेखला) की एक दुर्गम चोटी टिफिन टाप पर हम ले गए जहाँ से हम में से

बहुतों को उतरने में बड़ी मुश्किल मालूम हुई। कमला का एक जगह पैर मुड़ गया, इसलिए उन्हें डाडी पर भेजना पड़ा। बाजार में आकर शरदजी के भी पैर उठने मुश्किल हो रहे थे, इसलिए उन्हें भी डाडी का सहारा लेना पड़ा। सभी लौटने पर थकावट से चूर चूर थे, लेकिन दिन बहुत अच्छा कटा, इसे सभी मानते थे।

२३ मई को मनगुप्तजी के पत्र से मालूम हुआ कि भट्टजी अस्पताल छोड़कर बिना सूचित किए दूसरी जगह चले गए जहाँ दस रुपये प्रतिदिन खर्च लग रहा है। कुछ रुपये उनके पास थे लेकिन वह कितने दिन चलते? उसी दिन हमने सम्मेलन का हिसाब करके बाकी रुपया भेज दिया, और अब एक तरह काम से हाथ खींच लिया।

भवाली—कुमाऊँ लिखने की धुन थी। लेकिन हिमालय के किसी भूभाग का परिचय अधूरा ही रहता है, यदि उसमें अपनी की हुई यात्रा का भी कुछ वर्णन न हो। माचवजी भी तैयार हो गए। हमने निश्चय किया, कुमाऊँ के कुछ स्थानों को देखा जाए। डा० केसरवानी कितनी ही बार मिलकर और पत्र से भी भवाली आने के लिए लिख चुके थे। २८ मई को भोजन करके १० बजे हम तल्ली ताल के मोटर-अड्डे पर पहुँचे। साढ़े ११ बजे भवाली की बस मिली और १२ बजे सेनीटोरियम पहुँच गए। डा० धर्मानन्द केसरवानी अपने आफिस में थे। अपने बंगले पर ले गए जो ६३०० फुट की ऊँचाई पर था। पहले यह रामपुर-नवाब की सम्पत्ति थी। यहाँ जलेश्वर बाबू (छपरा) को देखकर और भी प्रसन्नता हुई। वह वकालत छोड़कर कितने ही दिनों से भारत सरकार के श्रम परामर्शक (लेबर एडवाइजर) थे। छपरा में हम राजनीतिक-सहकर्मी थे। दिल्ली में भी उनसे एक बार मुलाकात हो चुकी थी। वह अपने काम से संतुष्ट नहीं थे। उनसे कम योग्यतावाले लोग हाईकोर्ट के जज बन गए थे, इसलिए भी उनका मन नहीं लगता था। घनिष्ठ मित्र होने के कारण मेरी भी उन्होंने सलाह माँगी, और मैंने भी इस पद को छोड़ने की ही राय दी। डा० केसरवानी गुरुकुल के स्नातक होने से हिन्दी और संस्कृत के विद्वान और प्रेमी थे,

इसलिए परिभाषा के काम में उनकी रुचि ज्यादा हो, यह स्वाभाविक था। उनकी पत्नी, जो महाराष्ट्र तरुणी हैं भी मौजूद थीं, लिखना तो चाहते थे, लेकिन समय की दिक्कत बतला रहे थे। मैंने कहा, किसीको रखकर डिक्टेट कराइए।

भवाली की पहाड़ियाँ चीड़ के जंगल से ढँकी हैं। टी० बी० के लिए चीड़ की हवा अच्छी समझी जाती है, इसलिए उसके जंगल को और भी प्रोत्साहन मिला है। शाम को टहलने के लिए डाक्टर साहब हमें बंगले से उस तरफ ले चले, जहाँ से नल का पानी आता है। जलेश्वर बाबू भी हमारे साथ थे। रास्ता क्या पगडण्डी भी उसे मुश्किल से कह सकते थे। ऐसे रास्ते चलना मेरे लिए भी मुश्किल था, पर जलेश्वर बाबू तो बहुत पछताने लगे। डा० केसरवानी की पत्नी की सखी कुमारी स्मृति सान्याल भी इस समय अपनी रुग्ण माता को देखने यहाँ आई हुई थी, वह भी हमारे साथ थी। उस मुश्किल की स्थिति में उन्होंने अपने मधुर कंठ से कुछ गीत सुनाकर हमें संताप प्रदान किया। भवाली में दो सौ एकड़ से अधिक भूमि सेनिटोरियम के पास है और २४० रोगी रहते हैं। इसका आरम्भ १९१२ में हुआ था। मकानों की कमी है इसलिए और रोगियों को लिया नहीं जा सकता। डा० केसरवानी जर्मनी के बड़े-बड़े अस्पतालों और बड़े-बड़े डाक्टरों के सम्पर्क में रह चुके थे चाहते थे, काम को कुछ आगे बढ़ाएँ। लेकिन, उनकी टाँग पकड़कर खींचने वाले लोग अधिक थे। उनका खरा स्वभाव भी बाधक था। पीछे जो लोग उनके सामने इस ऊँचे पद को पाने में असफल रहे वे मौके की ताक में पड़े हुए थे। पहाड़ी-अपहाड़ी, जात पाँत, झूठ सच सभी उपायों से वे उन्हें नीचा गिराना चाहते थे। मेरे नैनीताल आने के बाद वे अपने उद्देश्य में सफल हुए और डा० केसरवानी को भवाली से दूसरी जगह बदलकर मातहत के पद पर रख दिया गया। इतने ही से संताप नहीं हुआ, बल्कि प्रतिद्वन्द्वियों की राह पर डाक्टरों की सभा ने इनका नाम सदस्यता से यह कहकर खारिज कर दिया कि वह गुरुकुल के आयुर्वेद स्नातक हैं, एलोपैथी के डाक्टर नहीं। डा० केसरवानी ने इसके लिए मुकद्दमा किया, और वह

जीत गए। रोम युनिवर्सिटी के वह एम० डी० थे, और जर्मनी में बड़े ऊँचे पद पर रहकर डाक्टर का काम कर चुके थे। हाँ वह जितना काम कर सकते थे, उसके लिए रास्ता बन्द हो गया।

२५ मई को डा० केसरवानी ने अपना शल्यगृह और सर्जरी की चीज दिखलाईं। कुछ रोगियों के भवनों में भी हम गए। स्त्री रोगियों की भी कोठरियों को देखा। उन्होंने हृदय के आपरेशन किये थे वह भी देखे। हृदय का आपरेशन आसान काम नहीं है।

अलमोड़ा—उसी दिन १० बजे हम बाजार में मोटर के अड्डे पर पहुँच गये। आठ रुपये में अलमोड़ा के दो टिकट लिए। बड़ी गर्मी मालूम हो रही थी। बड़ी-बड़ी खुबानियाँ देखकर मुँह में पानी आने लगा। हमने भी खाया और माचवेजी ने भी। बस आगे चली। ड्राइवर के पास वाली पाँती से लोगों ने कै करना शुरू किया। एक के बाद एक पूरी पाँती लेट गई। फिर दूसरी पाँती की भी वही हालत हुई। हमारी पाँती आड़े-बेड़े दो थी। माचवेजी सामने की सीट पर थे, जिसमें भी महामारी पहुँची। एक के बाद एक वीर लुढ़कने लगे। माचवेजी ने बड़ी हिम्मत की, लेकिन आखिर बच नहीं पाये। उस दिन तो इतना ही रहा। उसके बाद तो खुबानियों से उनको चिढ़ हो गई। नैनीताल में शरद जी यदि दो खुबानी सामने रख देती, तो यह माचवेजी का पारा गरम करने के लिए काफी थी। वह समझते थे, हमारे चिढ़ाने के लिए कर रही हैं।

रानी खेत रास्ते में पड़ा, लेकिन उसे हम लौटने के लिए छोड़ गये। आगे एक जगह सड़क का मोड़ था। एक-दूसरे को बिना देखे आमने-सामने बसें आईं और ड्राइवरों का जमा स्वभाव है, हान देने की जरूरत नहीं समझी। उस दिन दोनों के भिड़ जाने में कोई कसर नहीं रह गई थी, लेकिन, अन्त में मडगार्ड पहाड़ में धँस गया। ड्राइवर ने खैर किसी तरह से रोका, और हम बाल-बाल बचकर आगे चले। ५ बजे अल्मोड़ा पहुँच गये और रायल होटल में ठहरे। नाम से भड़किए नहीं यह बिलकुल मामूली तरह का असाना-सामान वाला मजदूर होटल था। आजकल गंगापाल जी भी यहीं

ठहरे थे। उनसे मुलाकात हुई। हरिश्चन्द्र जोशी, प्रा० पांडे और कुछ और मित्रों को लेकर हम घूमने निकले। सुन्दरी मन्दिर में विष्णु की सुन्दर मूर्ति थी, जो गुर्जर प्रतिहार या कलचुरी काल की हो सकती है, अर्थात् अल्मोड़ा नवीन स्थान नहीं है।

अगले दिन (२६ मई को) सारा दिन घूमने में ही लगाया। सवेरे नन्दा देवी गए जिसे राजा दीपचन्द ने बनवाया था। त्रिपुर सुन्दरी मन्दिर में कई खण्डित किन्तु अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ थीं। पुजारी से आज्ञा लेकर मूर्तियों को बाहर निकाल फोटो लेने का प्रयत्न बिल्कुल बेवकूफी है। ऐसे स्थानों के लिए नाली भर कर बन्दूक तैयार रखे, और इतनी फुर्ती से दागे कि जब तक किसी को खबर लगे, तब तक काम बन जाए। मैं इसी नीति को मानने वाला हूँ। फोटो के लिए उन खण्डित मूर्तियों को बाहर निकाला। बुढ़िया पुजारी से डर लग रहा था। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि हम फोटो ले रहे हैं, तो वह भी पहिन ओढ़कर पास में बैठ गई। वहाँ से हम लक्ष्मीदत्त जोशी (सेठजी) के पास गये। वह सांस्कृतिक वस्तुओं के बड़े प्रेमी थे। हस्तलिखित पुस्तकें तथा दूसरी कितनी ही चीजें संग्रह करके रखे हुए थे। दोपहर के भोजन के बाद कुछ क्षण विश्राम करने के लिए लेट गए। ३ बजे फिर चले। हरीश जोशी वकील के यहाँ एक छोटी सी साहित्यिक गोष्ठी थी। प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, यशपाल, मैं और कुछ स्थानीय साहित्यकार वहाँ आये थे। भाषा के बारे में मैंने भी अपनी राय देते कहा कि प्रादेशिक भाषाओं को अपने प्रदेशों में सर्वेसर्वा रखते हुए भी सारे देश की एक सम्मिलित भाषा की हमें अनिवार्य आवश्यकता है यदि हम हिन्दी को यह स्थान नहीं देते, तो अंग्रेजी से हमारा पिण्ड नहीं छूट सकता।

कटारमल—कुमाऊँ के सबसे पुराने मन्दिरों में कटारमल भी है। यह नाम पड़ने का कारण क्या है इसे नहीं कहा जा सकता। पर यह सूर्य का मन्दिर था। जो बतलाता था, यह गुर्जर प्रतिहार-काल से भी पहले का हो सकता है। सूर्य की बूटधारी प्रतिमाएँ शकों के साथ भारत में आकर स्थापित हुईं। साढ़े सात बजे की बस से चलकर नीचे कोसी नदी के किनारे

तमिलनाड म वीर गैव क नाम स मौजूद हैं। दक्षिण के गैवा न ही बनारस म जगमबाडी क नाम स अपना प्राचीन मठ कायम कर रखा है। पहाड म पाशुपत धम सबम पीछे तक रहा, यह इस अभिलख स भी पता लग रहा था।

किन्नर देश म मैंन पुराने काल की कब्रा और चीजा का देखा था, और जानता था कि उस समय लाग मुर्दों को शराब की कुपिया और भाजन भरे बरतन क साथ कब्रा म दफनाते थे। मैं समझता था, यह प्रथा सारे हिमालय म हानी चाहिए। अल्मोडा स बस मे आते समय एक सज्जन न बतलाया कि रानीखेत के पास हमारे गाँवा मे भी ऐसी कब्रें निकलती हैं, जिन्ह लाग मुसल्माना की कब्रें बतलाते हैं। चूंकि उनमे खान पीन के बरतन निकलते है, इसलिए ये मुसल्माना की कब्रें नही हैं, यह निश्चित था। कटारमल देखकर कासी के किनारे अपना सामान लेकर मोटर से बजनाथ की ओर जान के लिए आये। दोपहर हो गया था। भोजन किया और बस पर रवाना हुए। श्री हरीश जोशी दो सीट अलमोडा से ही रिजव करा कर हमारे लिए लाए थे, नही तो यहाँ से बस म जगह मिलनी मुश्किल हाती। दानो तरफ के पहाड चीड के दरख्ता से ढँके थे। कही-कही खाली जगह या खेत भी मिलते थे। सोमेश्वर काफी बडा बाजार है, यहाँ एक पुराना मन्दिर भी है। वहाँ से आगे चलकर कौसानी पहुँचे। कविवर पन्त जिस घर मे पदा हुए थे उस घर को भी देखा। कौसानी सुन्दर और ठण्डी जगह है। जगलो म अधिकतर चीड के दरख्त हैं। कौसानी के डाडे पर पहुँचकर सामने हिमालय श्रेणी दिखाई पडी फिर बस नीचे उतरने लगी। घूम घुमौवा रास्ते से ६ बजे हम गरुड पहुँचे। अभी मोटर सडक यही तक आई थी, आगे बागेश्वर तक उसके जाने मे अभी कुछ वर्षों की देर थी। सामान उतरवा कर हम बैजनाथ मन्दिर की ओर चले, जो वहाँ से आध मील से ऊपर तथा नदी के पार था।

बजनाथ—शताब्दियो तक बजनाथ कुमाऊँ की राजधानी रहा। केदार-कुमाऊँ के सम्मिलित राजा कत्यूरी राजाओ का राज्य जब छिन्न भिन्न

हुआ, तो एक शाखा अपनी पुरानी राजधानी जोशीमठ छोड़कर बैजनाथ (वैद्यनाथ) में आ गई। राजधानी के लिए पहाड़ में भी काफी समतल और सुरक्षित स्थान ढूंढा जाता है। बैजनाथ में ये दोनों गुण थे। एक तरफ कोसानी का ऊँचा गिरिप्राकार था, और दूसरी तरफ गोमती के निकास का द्वार। यहाँ से द्वाराहाट और जोशीमठ को भी जानेवाले रास्ते थे। अब भी बदरीनाथ का बहुत सा माल गरुड़ में मोटर से उतरकर इसी रास्ते जोशीमठ जाता है। गरुड़ से ही भूमि चौरस सी हो गई है जिसमें बड़े बड़े सपाट खेत चले गए हैं जो पहाड़ के लिए असाधारण से हैं। बैजनाथ में शायद हमारे बारे में चिट्ठी पहुँच गई थी, इसलिए कुछ परिचित पुरुष आ गए। हरीदाजी के साथ रहने से और भी सुभीता हुआ। मोटर से उतरकर हम बाजार होते आगे बढ़े। मोटर का अन्तिम अड्डा होने से यहा का बाजार काफी बड़ा है, जिसमें हमारे सीमान्त के नागरिक मोटान्तिक लोग भी काफी थे। जोहार और गरब्याग के निवासी ये भाई पश्चिमी तिब्बत के सबसे बड़े व्यापारी हैं जो माल खरीदने के लिए बम्बई-कलकत्ता तक पहुँचते हैं। उनकी दूकानें यहाँ क्या न होतीं? इस समय शाम के ६ बज चुके थे, इसलिए हमें पहले टिकान पर जाना था। मन्दिरों का झुरमुट, जिसे बैजनाथ कहते हैं, यहाँ से प्राय मील भर था। गोमती का पुल पार करके दाहिने मुड़कर गोमती ही के एक घुमाव पर बैजनाथ है। एक अच्छे साफ-सुथरे कमरे में हमको ठहराया गया। अन्न की समस्या सारे भारत में ही आजकल कठिन थी, और कुमाऊँ गढ़वाल तो अन्न के बारे में स्वावलम्बी भी नहीं हैं। लेकिन, यहाँ भी दो चार दुकानें थीं, जिनसे खाने का सामान मिल गया। श्री जय-वल्लभ ममगाई ने मेरी सहायता में कोई कसर उठा नहीं रखी।

अगले दिन (२८ मई को) बैजनाथ के भिन्न भिन्न मन्दिरों और उनकी मूर्तियों को देखा। अष्टभुजा भगवती की काफी बड़ी मूर्ति बहुत सुन्दर है। अधिकांश मूर्तियों को रुहेलों ने तोड़ दिया, और मंदिर भी टूटने के लिए छोड़ दिये। प्रधान मंदिर का चिह्न भर अवशिष्ट है। लेकिन, राजा का राजमहल यहाँ से कुछ हटकर तलीहाट में था। कुमाऊँ गढ़वाल में

पुराने समय में हाट बाजार का नहीं, बल्कि राजधानी का वाचक था, जिस नाम के साथ हाट हो, वहाँ अवश्य ही पुराने मन्दिर या अवशेष मिलेंगे, यह द्वाराहाट और दूसरे हाटों में सिद्ध है। तलीहाट क्या नाम पड़ा? तली शायद किसी शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। जैसे ग्वालियर के किले में तैल्प के मन्दिर को तेली मन्दिर कहकर किया गया है। गाव में चौपड़ चबूतरा दिखा-कर बतलाया गया कि यही राजा रानी चौपड़ खेला करते थे। बहुत सम्भव है यही राजा का अन्तःपुर रहा हो। नारायण मन्दिर की मूल मूर्ति इस वक्त गणनाथ में रखी हुई है। मन्दिर खाली है। राकेश मन्दिर भी गाँव के भीतर है। लक्ष्मीनारायण मन्दिर गाँव से बाहर है जिस पर शाके १२२४ (सन् १३०२ ई०) का लेख है। यह भी मालूम होता है कि राजा हमीरदेव ने इसे बनवाया या मरम्मत करवाया था, उनके गुरु या महन्त लिंगराव देवे। रानी धारादेई ने मन्दिर पर सुवर्ण कलश चढ़वाया था। एक दूसरे लेख में 'किकरा लाखा रावल पाल्ह १४२१" लिखा हुआ था। १४२१ भी शाके ही होगा, जिसका मतलब है कि रावल पाल्ह १४९९ में हुए थे। राकेश मन्दिर भी शून्य मन्दिरों में से है। गाँव के बिल्कुल बाहर खेतों में सत्यनारायण का अत्यन्त ध्वस्त मन्दिर है, जिसकी मूर्ति पुरानी नहीं है अर्थात् १७४२ के भी बाद की होगी। पुरानी हाती तो रहने बिना खण्ड मुण्ड किये कैसे रहते? पुजारी वैष्णव थे। पहाड़ में साधु रहना वैसा ही मुश्किल है जैसे स्वर्ग की अप्सराओं के बीच। बजनाथ के महन्त भी कभी दसनामी साधु थे, और अब उनके वंशजों का एक गाँव बस गया है। वही बात यहाँ साधु की हुई है। बैजनाथ, तलीहाट और दूसरे प्राचीन स्थानों में जितनी मूर्तियाँ आज देखी जाती हैं, पहले उनसे कहीं अधिक थी। लोगों ने बतलाया कि गोमती का जब पुल बनने लगा, तो उसमें गाड़ियों में मूर्तियाँ ढोकर नींव में डाल दी गईं। सारनाथ के रेलवे पुल के बारे में भी हम यह बात सुन चुके थे, इसलिए अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था।

लौटकर बैजनाथ के मुख्य मन्दिर के बाहर की सुन्दर देवी मूर्ति को देखा। पास के एक मन्दिर पर खुदा हुआ है 'भयकरनाथ जोगी।" नाथ

से गोरखनाथ पथी भी हो सकता है, दसनामिया म भी नाथ की उपासना का प्रचार है, हो सकता है यह नाथ जगम (वीर शैव या पाशुपत) रहे हो। हमे माल्म है, उत्तरी भारत म सबस पीछे तक पाशुपतधर्मी लाग हिमालय प्रदेश मे रहते थे। पुरातत्व विभाग का ध्यान यहाँ की बहुमूल्य मूर्तियो की ओर गया था और उसन एक मूर्ति गादाम बनाकर उसम २८ मूर्तिया सुरक्षित रख दी हैं। एक मूर्ति के ऊपर लिखा था "महाराजाधिराज परम भट्टारक श्री लखनपालदवस भूमिदा राजा त्रिभुवनपालदेव दान।" "लखनपाल वैद्यनाथ कार्तिकेयपुर" लेख स साफ ही है कि राजा लखनपाल वैद्यनाथ (कार्तिकेयपुर) के शासक थे। कार्तिकेयपुर राजधानी का नाम था, जो शायद कत्यूरीपुर का सस्कृत रूपान्तरण है। कत्यूरी वश १४वी १५वी तक कुमाऊँ का शासक रहा। उसके बाद भी उसकी भिन्न-भिन्न शाखायें भिन्न भिन्न जगहा पर शासन करती रही। उसके बारे मे और अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध मे भी हम 'कुमाऊ' म लिख चुके है। लेखो मे यह भी पता लगता है कि लखनपाल के बाद इन्द्रपाल और उनके बाद त्रिभुवनपाल हुए थे। त्रिभुवनपाल ने "श्री वैद्यनाथदेय भूमिदान सुरुजराउल भूमि लीयमाना सुवणतोल " लेख लिखवाया था और भूमि और सोने का दान दिया था। वैद्यनाथ मे सूय की बूटधारी मूर्ति भी मिली। यह बहुत सम्भव है कि शक काल म हिमालय के खशा पर शका का काफी प्रभाव पडा। उन्हे क्या मालूम होगा कि मध्य एसिया मे दोना का उद्गम एक ही था। हमें यहा से आज ही बागेश्वर (व्याघ्रेश्वर) जाना था। घोडे की आशा म मध्याह्न का भोजन करके हम बहुत देर तक इन्तजार करते रहे। जब उनके आने की आशा नही रही, तो साढ़े ४ बजे नाम भर की चीजे कधे पर रख हम दानो चल पडे। कुछ दूर जाने पर श्री ममगाईजी दौडे आए और कहा कि घाडे आ गए। हम घोडे पर जायें और वह पैदल, यह हो नही सकता था, इसलिए हमी घाडे को लेकर चल पडे। आगे चाय की दूकान के पास पहुँचते पहुचते जोर की वर्षा आई। कुछ देर रुकना पडा, फिर चलकर रात को कमेडी गाँव मे ६ बजे पहुँचे। यह रास्ता

काफी चालू मालूम होता है। आसपास के पहाड़ो मे बहुत से गाव भी हैं, इसलिए सडक पर जगह जगह बनियो ने दूकानें खोल रखी हैं। हम रहने के लिए सिर पर छत मिल गई। घाटेवाला ने भोजन बनाया। रास्ते म माचवेजी एक जगह घोडे की पीठ से जमीन पर आ गए। जिनके पुर्वे घोडो की पीठ पर रह सारे भारत का विजय करने म एक बार करीब करीब सफल हो गए थ, उनके लडके गुरुत्वाकर्पण के बल पर घुडसवारी करें यह अचरज की बात थी।

बागेश्वर—अगले दिन (२९ मई को) अधेरा रहते ५ बजे ही हम चल दिये। रास्ता अच्छा था। मोटर की सडक का काम भी शुरू हो गया था। चाहिए था मील मील सडक तयार करते आगे बढते लेकिन किया गया था, सडक को सब जगह बनाया जाए और पुलो के काम को पीछे के लिए छोड दिया जाए। जब बजट मे रुपया नही दिखाई पडा, तो जहाँ तहा बनी सडक को बिगडने के लिए छोड दिया गया। साढे ६ बजे तक हम साढे चार मील की यात्रा पूरी करके बागेश्वर पहुँच गये। काफी बडा बाजार है। यहा साल म एक बार भोट और पहाड के व्यापारियो का कई दिनो का एक बडा मेला लगता है। बैजनाथ से आनेवाली गोमती और दूसरी तरफ से आनेवाली सरजू का यहा सगम—त्रिवेणी—है। बडा मनोरम स्थान है। अधिकतर दूकाने और बाजार नदी के पार बसा हुआ है। पर सरजू के पार भी बस्ती और कितने ही साधुओ के स्थान हैं। व्याघ्रेश्वर म कत्यूरी राजाओ का एक शिलालेख था जिसे देखने का खास आकर्पण था, पर मालूम हुआ वह चोरी चला गया। मन्दिर के गगा की तरफ जानेवाले दरवाजे पर पत्थर की दो अपेक्षाकृत बडी मूर्तियाँ पडी हुई थी। इन्हे मूर्तियां नही कहना चाहिए, क्योकि बहुत गौर स देखने पर ही आकार प्रकार मूर्ति का मिलता। ये अक्षोभ्य मुद्रा म बुद्ध की मूर्तियां थी। ऐसी हालत मे क्या? शायद जिस मन्दिर म ये मूर्तियाँ थी उसम आग लगा कर जला दिया गया, और ज्वाला मे आग का पत्थर का भाग तिनककर निकल गया। १७४२ म रुहेले लूट पाट करने सारे कुमाऊँ गढवाल म दौडे थ।

उन्होंने मन्दिरो मे आग लगा और मूर्तियो को तोड कर सवाब हासिल किया था। अकबर के एक नौकरी से हटे जेनरल मुहम्मद हुसेन टुकडिया ने भी पहाड पर जहाद बोली थी। जो भी हो, १६वी सदी के उत्तरार्ध और १८वी सदी के मध्य म इस प्रकार दो बार मूर्ति भजक और मन्दिर दाहक जहादी यहा पहुचे थे। वागेश्वर के मन्दिर को भी उस वक्त क्षति हुई होगी, लेकिन दीवार अधिकतर पत्थर की थी विशाल शिवलिंग म पाशुपत का चिन्ह नही मिलता, लेकिन बगल म दो-तीन छोटे छोटे मन्दिर हैं, जिनमे खण्डित मूर्तियो मे मुखयुक्त लिंग भी है, जो बतलाते है कि यह पाशुपतो (लकुलीशो) का एक समय गढ था। कत्यूरी शिलालेख मे व्याघ्रेश्वर महादेव को भूमि-दान देने का उल्लेख है, और यह भी कि राजा के मित्र किसी किरात पुत्र ने भी अपनी जमीन दान दी थी। हिमालय म कश्मीर की सीमा से लेकर नेपाल के उत्तर होते कम्बुज (कम्बोडिया) तक किरात या मोनख्मेर जाति का पता लगता है। आज तिब्बत के सीमान्त पर मगोलायित मुख मुद्रावाली जो जातियाँ मिल रही हैं उनमे से अधिक किरात हैं, जिन्हे निब्बती लोन मान् कहते है। जोहार, गरब्याग, नीनि माणा और खुद व्याघ्रेश्वर से कुछ ही दूर पर आस्कोट म बहुत पिछडी जाति—राज किराती (राजी)—उसी वश की हैं।

मैदान की तरह पहाड मे भी साधु आकर अप्सराओ के फेर मे पडे फिर उनका वश चला। यह उनके आज के वशजो के गिरिपुरी, आचारी, दास, नाथ आदि नामो से पता लगता है। पहाड मे उनमे से कितनो का साधारण लोगो मे ब्याह शादी करके मिल जाने का अवसर था, क्योकि यहा जाति बन्धन उतने कडे नही थे। मैदान मे इसकी गुजाइश कम थी। हमारे मेजबान मोती गिरी के लिए ममगाईजी ने पत्र दिया था। वहाँ पहुचते ही हमने उनका घर ढूढ लिया। गोमती और सरजू-जैसी पुनीत नदियो की मछलिया मिल रही हो और हम घास पात खायें, यह कैसे हो सकता था? मेरा और माचवेजी दोनो का एक रास्ता था। परले पारसे लौट कर आने पर मछली-भात तैयार मिला और तृप्त होकर हमने भोजन

किया। एकाध मकानो में अंगूर की लताएँ देखीं, उनके फलों के लिए चार महीने तक यहाँ रहना चाहिए था। सम्भव न देखकर हमने कहा ये अंगूर जरूर खट्टे होंगे। कल पेशवा के सेनानी के वंशज ढाई हाथ के टट्टू से जमीन पर आ पड़े थे उससे हाथ में कुछ चोट आ गई थी। अस्पताल देखकर उपचार के लिए हम वहाँ पहुंच गए। डाक्टर साहित्य के प्रेमी हों, यह कम ही देखा जाता है, लेकिन यह थे। उन्होंने पिछले ही हफ्ते दिल्ली के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में छपा मेरा एक लेख पढ़ा था, और नाम से पहले ही परिचित थे। यदि हम ऐसा समझे होते, तो यहीं सामान छोड़ना होता। खैर, कुछ देर तक बात होती रही। गांधी आश्रम के उनकी कताई-बुनाई के केन्द्र को भी देखा। १२ बजे हम रवाना हो गये। ढाई मील चलने पर जोर की आँधी आई, और डेढ़ घंटे के लिए हम एक दूकान में शरण लेनी पड़ी। आज ही बस के टिकट का इंतजाम करना था, जिसका मिलना आसान नहीं था, इसलिए हमने घोड़े का पैर बढ़वाया और ६ बजे बैजनाथ पहुंच गये। ऐसे समय विश्वास करने से काम नहीं चलता इसलिए स्वयं टिकट लेने के लिए गरुड़ पहुंचे। जवाब मिला—कल देंगे। क्या पता कल टिकट मिलेगा ही ?—"यत्ने कृतेऽपि यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।" खैर, गरुड़ बाजार को देखा, और सामने बैजनाथ की ओर के पहाड़ों के ऊपर से झाँकते हिमालय के उत्तुंग शिखरों—त्रिशूल आदि की पाँती को भी। बैजनाथ में दोनों सलानियों के आने की खबर लग चुकी थी। रात को डाक्टर, स्कूल के अध्यापक तथा दूसरे साहित्यप्रेमी आ गये, जिनसे देर तक गोष्ठी होती रही, हम दोनों बारी बारी से बोलते रहे।

द्वाराहाट—बैजनाथ से पहाड़ी डांडे को पार कर एक सीधा रास्ता भी द्वाराहाट को जाता था जो आठ दस मील से अधिक लम्बा नहीं था। लेकिन, हम छ महीने के नहीं बरस दिन के रास्ते को पसन्द करते थे, इसलिए लौटकर रानीखेत से ही द्वाराहाट जाने की ठानी। मोटर में जगह मिल गई और साढ़े सात बजे हम रवाना हो गए। कौसानी में दो मिनट के लिए उतरे फिर सोमेश्वर पहुँचे। यहाँ से अपेक्षाकृत कुछ सरल रास्ता द्वाराहाट

को जाता था। घोडे मिलते तो शायद हम इसी रास्ते चल देते, लेकिन उसकी सम्भावना नही थी। वस्तुत सवारी या भारवाहको का अच्छा और बराबर का प्रबंध तभी हो सकता है जब यहा बराबर सैलानी आते रहे। छठे छमाहे आनेवाले सैलानियो के लिए कौन अपने घर से खा पीकर यहा इन्तजार करता रहेगा? कोसी पुल पर जरा दर रुक कर उसी बस से हम रानीखेत पहुचे। डी० सिह होटल को देखकर वही भोजन के लिए चले गए। फिर हिन्दी के कथाकार अशोकजी (श्री जमुनादत्त पाडे वैष्णव)मिल गये। जब भाई-बिरादरी का आदमी मिल जाये, तो कोई स्थान अपरिचित कैसे रह सकता है? लेकिन, हम आज ही द्वाराहाट जाना चाहते थे। ख्याल आया कि इतनी हडबडी करने की क्या जरूरत? लेकिन, भूतकाल के और वर्तमान काल के क्षणो मे अन्तर होता है, भूतकालिक क्षण टके सेरस भी सस्ते मालूम होते है। हमने अपना सामान अशोकजी के पास "जीवन-विलास" मे रखा, और पैदल चल पडे। घोडों के मिलने की न सभावना थी, और न आशा मे हम बैठे रहना चाहते थे। आशा दिलाने के लिए किसी ने कह दिया था कि गगास के पुल पर घोडे मिल जाएँगे, जो यहाँ से साढे पाँच मील उत्तर कर पडता था। बदरीनाथ जानेवालो के कुछ रास्ते एक ही हैं, लेकिन लौटनेवाले यात्री गगासागर की गगा की तरह सहस्रधार मे बह जाते हैं। इन्ही मे एक चौखुटिया से द्वाराहाट होकर रानीखेत मे मोटर पकड काठगोदाम रेलवे स्टेशन जाने का है। मोटर चलती देखकर हममे से कितने ही समझते हैं कि अब कोई शायद पैदल चलता होगा, लेकिन बदरीनाथ के यात्री अब भी बहुत से ऐसे हैं, जो मुश्किल से रेल के लिए कुछ रुपय जमा कर पाते हैं, और आटा सत्त बाँधकर पहाड की सारी यात्रा पैदल बिना पसे का करते हैं। हमे सडक पर चलते बदरीनाथ से लौटे कुछ यात्री मिले जो बतला रहे थे कि वहाँ चावल दो रुपया सेर मिल रहा था। गगास के पुल पर कोई घोडा नही मिला, और न आगे दड-माड मे ही। कफडा की भी वही हालत रही। उससे कुछ पहले सडक की एक झोपडी मे चार छोटे छोटे बच्चो और बीबो के साथ एक पैर सूखा पुरुष

दूकानें बाजार की तरह पाँती से लगी हुई हैं। रानीखेत से किसी ने श्री अमरनाथलाल शर्मा को पत्र दे दिया था। उनके घर पर पहुँचे। उनके भाई हरिश्चन्द्र पन्त बड़े उत्साही सहायक मिल गये। नेपाल की तरह का कई मंजिला का और अधिकतर काठ का मकान था। सबसे उपरले भाग पर सोने के लिए स्थान मिला। डायबेटीज् के लिए सोने का वह स्थान सुखद नहीं होना, जहाँ पास में पेशाब का प्रबन्ध न हो। रात को बिना खाये पन्तजी कैसे सोने देते, यद्यपि हम लोगों को उस थकावट में सबसे प्रिय भूख थी। एक ही दिन पहले तो हम बागेश्वर में थे, और उसके दूसरे ही दिन द्वाराहाट पहुँच गये।

सवेरे निकल पड़े। चाय पीने के लिए घर पर इन्तिजार करने से किसी दूकान पर चाय पीना अच्छा था, इसलिए मेजबान के आग्रह पर भी हम दोनों उठ खड़े हुए, पथ प्रदर्शक हरिश्चन्द्रजी थे। द्वाराहाट में बहुत दूर तक पुराने नगर के चिन्ह मिलते हैं और मन्दिरों की संख्या दर्जन के करीब होगी। कई मन्दिरों को सुरक्षित घोषित कर दिया गया है। ये मन्दिर बिल्कुल खाली थे। आखिर टूटी-फूटी भी मूर्तियाँ तो कहीं होनी चाहिए। पर जब पिछले सौ सालों के मूर्तिचोरों और मूर्तिभक्तों पर ध्यान देंगे तो कारण मालूम होना मुश्किल नहीं होगा। मूर्तियाँ भूगोल के भिन्न भिन्न भागों पर बिखर गई होंगी। कितनी ही इंगलैण्ड में, कुछ युरोप में और कितनी ही अमेरिका भी पहुँच गई होंगी। मृत्युंजय मन्दिर में जाने पर १२वीं सदी के आसपास की कुछ टूटी फूटी मूर्तियाँ मिलीं। द्वाराहाट में भी खशों की कब्रों की बात सुनने में आई और बतलाया गया, इनमें मिट्टी के बरतन मिलते हैं। घूमते घामते नदी पार केदार मन्दिर में गए। यहाँ पीतल की पार्श्वनाथ और पत्थर की तीर्थंकर महावीर की मूर्ति देखी। पीतल की मूर्ति को बालगोपाल कहकर पूजा जाता था। द्वाराहाट जब राजधानी थी, उस समय वहाँ के सम्पन्न सेठों में कोई जैन धर्म को भी मानता होगा। पाँच पीढ़ी पहले भैरवगिरि फक्कड़ साधु यहाँ आए, जिनकी सन्तानें यहाँ रहती हैं। नदी पार कर हम बाजार लौट आए। नदी क्या नाला है।

मिला। पूछने पर पता लगा, उसने देश के लिए कई बार जेल काटा है। उसने कुछ चिलमे रख छोडी थी, जिनको पहाडी लोग खरीदते थे। वही गुजारा का साधन था। कह रहे थे—बच्चो का कोई प्रबन्ध हो जाय, बस मुझे इसी की चिता है। किसी के बच्चे भी अनाथ हो, यह असह्य और अक्षतव्य बात है। आधी दुनिया म बच्चो को अब अनाथ होने की जरूरत नही है। उनके माता पिता सरकार है, लेकिन हमारे यहा अभी जनतात्रिक अहिंसामय समाजवाद की बाट जोही जा रही है।

नफडा से चढाई चढना पडी, तल्लामिरे पहुँचे। नया घर बन रहा था, जिसमे धूएँ के लिए चिमनी भी लग रही थी। उसके अच्छे दिन आए थे। नफडा से इस तरफ के पहाड वृक्ष शून्य हैं। जान पडता था, हम तिब्बत मे आ गये। इन वक्षो का सहार आदमी के हाथो ने किया। मुझे हरे या नगे पहाड याद आ रह थे, और बीच बीच मे चुहल करने की भी इच्छा होती थी लेकिन माचवेजी की बुरी हाल्त थी। उतराई मे तो कोई बात नही थी, लेकिन चढाई भारी आदमी के लिए भली नही मालूम होती। पर फूट चुके थे और वह हिम्मत करके ही चल रहे थे। डर लगने लगा था कि हम मल्ली मरे तक नही पहुँच सकेंगे। इसी समय हिमालय के देवताओ को दया आई, कोई खाली घोडेवाला मिल गया। खर हम लोग उस पर चढ़कर वहाँ पहुँचे। चढाई पार कर गए, फिर उतराई थी। रास्ते पर हा चडेसर (चन्द्रेश्वर) का पुराना मन्दिर मिला, जिसम कितने ही कत्यूरी या गुजर प्रतिहार काल की खण्डित मूर्तियाँ मिली। उसी काल की मूर्तियाँ जिसको बुन्देलखण्ड के खजुराहा म मिलती हैं। इनम वराह की भी एक सुन्दर छोटी-सी मूर्ति थी। अभी द्वाराहाट आगे था, लेकिन उतराई ने हिम्मत बढा दी थी, साथ ही सहायता देने के लिए दूध की तरह छिटकी चाँदनी भी आ गई थी। चाहे मोटर की न हो, पर यह सडक थी, इसलिए भूलने भटकने का डर नही था। यहाँ के खेत छोटानागपुर के से जान पडते थे। अन्त मे हम द्वाराहाट पहुँच गए। किसी समय यह हाट (राजधानी) रही होगी, अब हजार बारह सौ लोगो का एक बडा गाँव है जिसम बहुत सी

दूकानें बाजार की तरह पाँती से लगी हुई है। रानीखेत से किसी ने श्री अमरनाथलाल शर्मा का पत्र दे दिया था। उनके घर पर पहुचे। उनके भाई हरिश्चन्द्र पन्त बडे उत्साही सहायक मिल गये। नेपाल की तरह का कई मंजिला का और अधिकतर काठ का मकान था। सबसे उपरले भाग पर सोने के लिए स्थान मिला। डायबेटीज् के लिए सोने का वह स्थान सुखद नही होता, जहाँ पास मे पेशाब का प्रबन्ध न हो। रात को बिना खाये पन्तजी कैसे सोने देते, यद्यपि हम लोगों को उस थकावट मे सबसे प्रिय भूख थी। एक ही दिन पहले तो हम बागेश्वर मे थे, और उसके दूसरे ही दिन द्वाराहाट पहुँच गये।

सबेरे निकल पडे। चाय पीने के लिए घर पर इन्तिजार करने मे किसी दूकान पर चाय पीना अच्छा था, इसलिए मेजबान के आग्रह पर भी हम दोनो उठ खडे हुए, पथ प्रदर्शक हरिश्चन्द्रजी थे। द्वाराहाट मे बहुत दूर तक पुराने नगर के चिन्ह मिलते हैं, और मन्दिरो की सख्या दर्जन के करीब होगी। कई मन्दिरो को सुरक्षित घोषित कर दिया गया है। ये मन्दिर बिल्कुल खाली थे। आखिर टूटी फूटी भी मूर्तियाँ तो कही होनी चाहिए। पर जब पिछले सौ सालो के मूर्तिचोरो और मूर्तिभक्तो पर ध्यान देंगे तो कारण मालूम होना मुश्किल नही होगा। मूर्तिया भूगोल के भिन्न भिन्न भागो पर बिखर गई होगी। कितनी ही इंगलण्ड मे, कुछ युरोप मे और कितनी ही अमेरिका भी पहुँच गई होगी। मृत्युजय मन्दिर म जाने पर १२वी सदी के आसपास की कुछ टूटी फूटी मूर्तियाँ मिली। द्वाराहाट म भी खसो की कब्रो की बात सुनने मे आई, और बतलाया गया, इनमे मिट्टी के बरतन मिलते हैं। घूमते घामते नदी पार केदार मन्दिर मे गए। यहाँ पीतल की पार्श्वनाथ और पत्थर की तीर्थकर महावीर की मूर्ति देखा। पीतल की मूर्ति को बाल्यापाल कहकर पूजा जाता था। द्वाराहाट जब राजधानी थी, उस समय वहाँ के सम्पन्न सेठो मे कोई जैन धर्म को भी मानता होगा। पाँच पीढी पहले भैरवगिरि फक्कड साधु यहाँ आए, जिनकी सन्तानें यहाँ रहती हैं। नदी पार कर हम बाजार लौट आए। नदी क्या नाला है।

लेकिन, जहां साल में ३०-४० इंच पानी बरसता हो, वहां पानी का दुःख क्या ? ऊपर बांध-बांधकर भारी जलनिधि तैयार की जा सकती है, लेकिन यह काम यहां के बारह सौ जीव तो नहीं कर सकते। यदि जलनिधि तैयार हो जाए, तो यहां दसियों हजार बहुत अच्छे खेत मोतियों जैसे चावल को उगलने के लिए तैयार हैं। रतनदेव के मन्दिर में गए। यह सात मन्दिरों का झुरमुट है, जिनमें एक में भी मूर्ति नहीं है। मन्या मन्दिर में भी उसी तरह सात मन्दिर हैं। शायद सप्तमातृकाएँ यहां कभी पूजी जाती थीं। मन्दिर की चहारदीवारी में एक जैन मूर्ति देखी। और मन्दिरों की तलाश करते करते पंडित जवाहरलालजी के सबसे पुराने प्राइवेट सेक्रेटरी श्री शिवदत्त उपाध्याय के घर के पास पहुँचे। उपाध्यायजी घर पर नहीं थे। पास में कालिका का स्थान है, जिसमें भी तीन खण्डित जैन मूर्तियां (पार्श्वनाथ, महावीर की) देखीं। फिर द्वाराहाट के सबसे पुराने दोमंजिला मकान को देखने गए, जिसने गोरखों के शासन को देखा था, लेकिन अब गिरने की प्रतीक्षा कर रहा था। इसे तो ऐतिहासिक स्मारक के तौर पर सुरक्षित रखना चाहिए। कचेडी शायद राजा की कचहरी रही हो। यहां दस शिखरदार मन्दिर हैं। मूर्तियां तेलिया (काले) पत्थर की हैं। गूरदेव का मन्दिर किसी समय यहां का सबसे भव्य मन्दिर रहा होगा। गुरदेव से शायद गुर्जर प्रतिहार राजा अभिप्रेत है। इस मन्दिर की सारी दीवार सुन्दर मूर्तियों और नक्काशी से भरी हुई थी। अब मन्दिर का निचला भाग ही बच रहा है। ९वीं ११वीं शताब्दी में यह भूमि गुर्जर प्रतिहारों के हाथ में थी, इसमें तो सन्देह नहीं। कन्नौज में प्रतिहार वंश के अपदस्थ होने पर भी उसका कोई छोटा मोटा राजा गहड़वारों के अधीन रहते यहां शासन करता हो, तो आश्चर्य नहीं। मन्दिर के भीतर एक सुन्दर खण्डित मूर्ति है। बाजार पार कर सियालदे की पोखरी के पास बने नए मन्दिर में कितनी ही खण्डित मूर्तियां देखीं। सियाल्दे पोखरी सूख गई है। बदरीनाथ के मन्दिर में खड़ी एक बूटधारी सूर्य की मूर्ति भी है।

भोजनापरान्त हमने रानीखेत की ओर मुंह किया। रास्ते में ही हाई

स्कूल था, वहां गये। अध्यापकों से घंटे भर चर्चा होती रही। पता लगा कि द्वाराहाट से बदरीनाथ की ओर थोड़ा ही बढ़ने पर शिला में मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। यह भी बतला रहे थे कि यहाँ की खेती राम भरोसे होती है, अर्थात् वर्षा के सारे पानी को बह जाने दिया जाता है। द्वाराहाट में १४-१५ घंटे में ही काफी परिचय हो गया था, इसलिए किराये पर दो घोड़ों के मिलने में दिक्कत नहीं हुई। हम साढ़े १२ बजे रवाना हुए, और साढ़े ६ बजे अशोकजी के स्थान पर पहुँच गये।

**रानीखेत**—रानीखेत आधुनिक अर्थ में हिमालय की सप्तपुरियों में है। अंग्रेजों ने गर्मी से बचने के लिए इनकी स्थापना की थी। रानीखेत मुख्यतः सैनिक छावनी का काम देती रही। फिर भारतीय नवशिक्षित लक्ष्मीपात्र भी इन पुरियों से लाभ उठाने लगे। अशोकजी एक तरुण स्वनिर्मित कुशल चित्रकार के पास ले गये। यदि बाकायदा शिक्षा पाने का अवसर नहीं मिला, तो यह राष्ट्र का दोष है। लेकिन चित्रकला के भरोसे जीना आजकल मुश्किल है। बहुतेरे प्रतिभावान चित्रकार फोटोग्राफी से शरीर यात्रा चलाने के लिए मजबूर हैं। वही बात इनकी भी है। सबसे अधिक आकर्षक चीज उनका थापों का संग्रह था। विवाह या उत्सव आदि के समय दीवार पर थापे या रंगवल्ली (रंगोली) बनाने का रवाज है, उसी तरह जैसे मधुर लोकगीतों के गान का। गीतों को अब भी मधुर और अभ्यस्त कण्ठ मिल जाते हैं, लेकिन थापों के भाग्य में ऐसा बहुत कम देखा जाता है। उत्तरी भारत में सभी जगह थापों के नाम पर चिहारी खींची जाती है। यदि लड़कियाँ बड़ी बूढ़ियों से कुछ समय लगा कर ध्यानपूर्वक सीखती रहतीं, तो इन चिहारियों की नौबत नहीं आती। चिहारियाँ भी अपना मूल्य रखती हैं, इसमें सन्देह नहीं। मैं समझता हूं कि उत्तर भारत में कला की दृष्टि से सबसे समृद्ध कुमाऊँ के थापे हैं। इनको कागज में उतारने की भी प्रथा है। तरुण चित्रकार ने सैकड़ों थापे बड़े परिश्रम से जमा किये हैं। इस साल (१९५६ ई०) श्री अशोकजी से मालूम हुआ कि उनका संग्रह और भी आगे बढ़ा है। यह राष्ट्रीय निधि होने लायक है और इसे दिल्ली की

राष्ट्रीय चित्रशाला मे सुरक्षित रखने की जरूरत है। निजी सग्रहो के नष्ट होने की सभावना होती है, क्योकि उत्तराधिकारी भी उनके साथ वही भाव रखें यह बहुत कम देखा जाता है।

रानीखेत पहाडी रीढ पर दूर तक बसा हुआ है। जिधर देखें उधर चीड के दरख्त हैं जो कि हिमालय के कुरूप वृक्षो मे से एक हैं।

दोपहर को २ बजे रानीखेत से रवाना हुए, और साढे ४ बजे भवाली पहुँच गये। उसी दिन ५ बजे बाद तल्लीताल मे उतर, नाव से मल्लीताल, फिर ६ बजे ओक लाज मे पहुच गये।

ननीताल—नैनीताल का जीवन शुरू हो गया था। डा० गोरख प्रसाद और डा० अमरनाथ झा से मुलाकात हुई। अठारह वर्ष बाद प० रुद्रदेव शास्त्री से मिलकर बहुत हर्ष हुआ। छोटा-सा कद, जिस पर प्रभाव लाने के लिए पण्डितजी ने दाढी पालने का किसी समय रहस्य बतलाया था, अब वह बिल्कुल सफेद हो गई थी।

४ जून को कुछ ज्वर सा मालूम हुआ। १० बजे ९७ डिग्री, १२ बजे ९८.५ डिग्री, ३ बजे १०० डिग्री और ६ बजे १०० डिग्री तापमान रहा। उस दिन भोजन नही किया। अगले दिन भी उपवास रखा, और ४८ घटे के बाद साबूदाने के पथ्यवाले उपवास से ज्वर ने विदाई ले ली। पहाड मे मास-भक्षण सदा से विहित रहा है, लेकिन शिकार के मास का सौभाग्य बहुत कम का ही मिलता है। ७ जून को साधारण शिकार नही, बल्कि गोराल मृग का मास किसी मित्र ने भेजा। गोराल का शिकार अग्रेजो के लिए बडे साधु की चीज थी। मास बडा स्वादिष्ट लगा।

भवाली—भवाली मे कोई समारोह था, जिसमे डा० केमरवानी ने हमे भी निमन्त्रित किया। १० तारीख को साढ़े ११ बजे हम वहाँ पहुँच गये। सेनिटारियम की एक शाखा डा० अमरनाथ झा से उद्घाटित करवाई गई। वही एक अग्रेज के बिकाऊ बगले डेवीनशायर को देखने गये। बीस हजार दाम माँग रहे थे। दीवारें टूटी छत टूटी थी। फर्नीचर कामचलाऊ मेह गा सस्ते थे। सात हजार मे भी मिलता, तब भी मैं लेने के लिए तैयार नही

था। पास में आर्क लाज का दाम ३८ हजार बतलाया जा रहा था। सेनिटारियम के यह काम के हो सकते थे लेकिन सेनिटारियम का अपना स्थान यहाँ से कुछ दूर है। अगले दिन (११ जून को) नैनीताल लौट आए।

कल ही श्री भूपनाथ सिंह और वीरेन्द्र कुमार आ गये थे। बड़ी देर तक बातचीत होती रही। भूपनाथजी का अपने विशाल परिवार की स्थिति गौरवजनक मालूम होती थी, पर एक के चार और चार के सोलह घर तो हमेशा से होते आए हैं। घर भरा-पूरा बहुत अच्छा लगता है। चार मेहमानों के साथ बातें करते, चाय पीने या खाने में स्वाद दुगुना हो जाता है। हमारे घर में खूब चहल पहल थी। कुछ सैलानी मित्र आ जाते थे। १५ जून को प० वाचस्पति पाठक आए। पाठकजी "मगन रहु चोला" के बड़े अच्छे उदाहरण हैं। वर्षों की मनहूसी घर मे उनके पैर रखते ही भाग खड़ी होती है। उनके साथ गंगाप्रसाद पांडे भी थे, फिर चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आ गए। विद्यालंकारजी एक प्रकाशक के लिए कोई उपन्यास लिखने के वास्ते यह रहे थे, लेकिन अभी तो लिखने का कोई ख्याल नहीं था।

मसूरी—डा० सत्यकेतु से सलाह हो गई थी कि वह मसूरी में मकान देख रखें, और लिखने पर मैं चला आऊँगा। कमला को भी ले जाना चाहता था, लेकिन पहाड़ में मोटर की सवारी उनके लिए सुखद नहीं होती, इसलिए साथ ले चलने का खयाल छोड़ना पड़ा। काठ गोदाम में रेल पकड़नी थी। १७ को हमारे साथी भूपनाथजी, वीरेन्द्रजी और शरद तथा असंग के साथ माचवेजी भी नैनीताल से निकले। बाबा (असंग) अभी २२ मास का ही था, लेकिन बड़ा हँसाना, कभी भालू-नाच दिखलाता, कभी दूसरी नकल भी करता। वीरेन्द्रजी ने कहा मैं अपनी प्रकाशन-संस्था का नाम राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान रखना चाहता हूँ। भूपनाथ के परिवार के लिए मैं इन्कार कैसे कर सकता था? मुझे बरेली पहुँचकर रेल पकड़नी थी, और दूसरों को काठ गोदाम में, इसलिए तल्लीताल से ही हम अलग अलग हो गये। सात रुपये देकर मैंने बरेली वाली बस पकड़ी और २ बजे चलकर साढ़े ६ बजे बरेली पहुँच गया। रास्ते में हल्दवानी कस्बा देखा। तराई में मुसलमानों के

गाव के गाँव है, यह भी पता लगा। शायद १६वी से १८वी सदी मे ये यहाँ बसे। कुछ दिना पहले भयकर आधी इधर से गुजरी थी। सडक के किनारे कितने ही पेड़ जड से उखडकर पड़े हुए थे। बरेली मे पता लगा कि गाडी साढे ११ बजे रात का मिलेगी। गाडी पर चढे। हमारे डब्बे म प्रसिद्ध इजीनियर राजा ज्वालाप्रसाद के पुत्र श्री क्रान्तिवीर गुप्त, श्री सुशीलादेवी शास्त्रिणी के पितकुल के थे और मेरे बारे म भी कुछ जानते थे। उन्होने बिजनौर से चार मील पर अपना फाम खाल रखा है। जाडो मे आने के लिए निमत्रण मिला।

पौ फटते समय हमारी गाडी हरद्वार पहुँची। फिर वह दून मे घुसी, और ७ बजे हम देहरादून पहुच गये। बाहर बसें और टैक्सिया खडी थी स्टेशन से पौने दो रुपये का टिकट लेकर रोडवेज की बस पर ८ बजे बैठे, और २२ मील चलकर ६ बजे किंक्रेग पहुँच गए। मसूरी अब से सात वर्ष पहले एक बार देखी थी, लेकिन उस समय का कोई मानसिक नक्शा तुलना करने के लिए ठीक से मौजूद नही था। किंक्रेग जरूर कुछ कुछ याद आता था। पहले चिट्ठी भेज दी थी। डा० सत्यकेतु अडडे पर ही मिले। फिर उनके साथ लक्समौंट गए। चाय पान और स्नान हुआ। कुछ देर के लिए सो गए। शाम को चाय पीकर ५ बजे देखन के लिए निकले। कैमल्स बैक (ऊँट पीठ) सडक से होकर एक चक्कर लगाया। सिघानिया का प्रासाद देखा। उससे आगे आधा फर्लांग पर नीचे "रुक्मिणी विला" बिकाऊ था। उसके साथ एक काटेज (कुटी) भी था। विला मे ६ कमरे और एक नहान कोष्ठक, दूसरे म तीन कमरे और एक कोष्ठक, साथ मे साढे तीन एकड जमीन थी। लेकिन घर तुरत रहने लायक नही था। रहने लायक बनाने मे दस हजार की जरूरत थी। पसन्द नही आया। कुल्हडी से नीचे भी १६ १७ हजार पर मिलने वाला घर देखा। उसमे जमीन कुछ नही थी, और कमरे भी बैरक की तरह के थे। डाक्टर साहब ने लण्ढौर डिपो म भी बँगले की बात बतलाई। अपनी अव्यवहारिकता पर अब हँसी आती है, लेकिन उस समय यदि कोई कहता, तो सुनने के लिए भी तैयार होता। सच है

"एक बार जहडावे, तो बावन चीर कहावे।" एक बार धोखा खाने पर ही हमें अक्ल आने वाली थी। लेकिन, यह एक बार तो आखिरी बार होने वाला नही था। इस बेवकूफी की बानगी इन बुढान वाली पक्तियो से भी स्पष्ट है—"लण्डौर स्पिो मे बँगला अच्छा मिल जाए वही के लिए कोशिश करनी है। मकान लेकर ही लौटना, यह निश्चय है" (१८ जून)। ऐसे उतावलेपन से अच्छे की आशा नही हो सकती थी। डा० सत्यकेतु की चलती, तो हम किराय पर ही यहा कुछ समय बिताते फिर ठोक-ठठाकर कोई मकान ले लेते। घुमक्कड शास्त्री से अब हम एकान्तवासी बनना चाहते थे। यदि कही लण्डौर मे मकान लिया होता, तो न जाने कैसी बीतती? घूमते हुए एक जगह प्रो० धर्मेन्द्र शास्त्री तर्कशिरोमणि मिल गए। न्यायकन्दली पढते दूध दुहा रहे थे। पजाब की छाप पक्की थी, इसलिए दूध के लिए फकीर क्या न होते? और शुद्ध दूध तभी मिल सकता है, जब भैंस सामने दुही जाए। आजकल यहा यग वीमेन क्रिश्चियन एसोसियशन के मकान मे डा० पा-चाउ (इलाहाबाद) ठहरे हुए थे। अगले दिन (१९ जून) वह मिलने आए। वह कम्युनिस्ट-क्रान्ति के पहले से आकर भारत मे रह रहे थे और राज-नीति से सम्पर्क नही रखते थे। कम्युनिस्टो के बारे मे कितनी ही झूठी-सच्ची बातें सुन रखी थी, उन्ही के फेर मे पडे थे। डा० पा चाउ चीनी बौद्ध-साहित्य के अच्छे पण्डित हैं। इलाहाबाद युनिवर्सिटी मे पढाते हुए अब डी० लिट्० की भी तैयारी कर रहे थे। मैंने कहा—नवीन चीन मे विद्वानो के लिए विस्तृत कार्यक्षेत्र प्रतीक्षा कर रहा है। आप थेसिस का काम खतम करते ही चीन जाइये।

भोजनापरान्त ३ बजे डा० सत्यकेतु मुझे लिए लण्डौर स्पिो की तरफ चले। लण्डौर मे श्री जानकीनाथ इजीनियर मिल गए। उनका अपना भी मकान किराऊ था, जिस मकान को दिखलाने चले थे, उसके वह एजेंट थे। डिपो और मसूरी की सबसे ऊँची टकरी लाल डिब्बा है। उस समय लाल नाम इतना भयकर नही था, नही तो कोई दूसरा ही नाम पडता। वहाँ से दूर दूर तक उत्तर म हिमालय-श्रेणियाँ और दक्षिण म मैदान दिखाई देता है।

हा, यदि बादल बाधक न हो। टिब्रा के बाद एक विशाल बँगले मे ले गए, जिसम उस समय पाच यूरोपीय परिवार ठहरे हुए थे। हम इतने बडे वगले को लेकर क्या करते ? फिर 'सी फाम' बँगले को दिखाया। डिपो पवत की परिक्रमा सडक है, जिसके किनारे एक दूसरे से हटकर कितने ही बँगले बने हुए है। डिपो को अग्रेजो न सबसे पहले आबाद किया। डिपो का मतलब कम्पनी के जमाने म सैनिक छावनी था। बीमार गोरो के लिए ही इस जगह को पसन्द किया गया था। मसूरी के दूसरे सभी पहाडो से यह ज्यादा हरा भरा है, और देवदारो के कारण सुन्दर है। साढे सात हजार फुट की ऊँचाई होने से यह सद भी अधिक है, और जाडो मे यहाँ बफ पहले पडती है। 'सी फाम' के साथ साढे पाच एकड जमीन भी थी। इससे काफी हटकर एक और बँगला और कुटीर मिला। बँगला साढे १२ हजार मे मिल जायेगा, यह जानकर प्रसन्नता हुई। छोटा सा किन्तु सु दर था। सामन छोटी-सी फुलवगिया थी और साग सब्जी के लिए खेत भी काफी थे, जिनम आलू लगे हुए थे। उस समय वहा डेनमाक का राजदूत ठहरा था। छोटे छोटे कई कमरे थे। मैं मुग्ध हो गया। उस समय जरा भी खयाल नही आया कि यह मसूरी का कालेपानी है, जहाँ सीजन म भी आदमियो के बहुत कम चेहरे दिखलाई देते हैं। करीब करीब मैं तै कर चुका था। फिर हम उसके साथ लगे हुए कुटीर को देखन गए। कुटीर मे दो तीन कमरे थे, और सस्ते के कारण एक यूरोपीय पादरी अपनी पत्नी के साथ ठहरे हुए थे। कुटीर से आगे चलने पर रास्ते म वह मिल गए। श्री जानकीनाथजी न उनसे खैर सलाह पूछी, तो वह मुह गिराकर बोले— जरा ही इधर उधर गया था कि कल हमारा कम्बल कोई उडा ले गया।" इस जगह के बँगले का यह दूसरा रख भी मालूम हो गया। मैं इस खतरे को मोल लेन के लिए तैयार नही था इसलिए उस बँगले और डिपो म कहीं भी मकान लेने का खयाल छोड देना पडा। २० जून को सवेरे ८ बजे सुशीलाजी और डाक्टर साहब के साथ हेपीवेली की ओर निकले, जिसे देखते ही मैंने उसका नाम शुभभूमि रख दिया। मसूरी के एक छोर पर यह सुन्दर स्थान है, जिसम बहुत से बँगले

वने हुए हैं। चालविल का फाटक आया, फिर नीचे जाने वाले रास्त को पकडा। हैपीवेली क्लव के सामने काफी लम्बा चौडा मैदान देखा। एक फाटक पर बिडला भवन के भवन का नाम उत्कीर्ण देखा। आगे चुगी की चौकी मिली। वाएँ दो बँगलो का छोडकर हम हल क्लिफ पहुँचे। न जान क्या साचकर उस दिन की डायरी म ब्रेकेट म इसका नाम "मावस भवन" भी रख दिया। शायद बिडला-भवन से तुक मिलाई। उस समय चौकीदार मौजूद नही था इसलिए मकान को बाहर ही से घूमकर देखा। साढे १६ हजार के आस-पास मकान पट जायेगा, यह खयाल कर मन मे और भी उछाह था—अग्रिम २५ हजार रुपये बैंक म आ ही चुके थे।

शाम को फिर आकर भीतर से जाकर देखा। बीच मे एक वडा हाल और उसकी अगल-वगल म हॉल जैसे दा शयनकक्ष जिनके दोनो सिरा पर दा स्नानगह थे। सामने सीसे वाला बराडा दो कमरा की शक्ल मे मौजूद था। दिमाग उडने लगा—शयनकक्ष बैठक भी हा सकती है और अतिथि निवेशन भी। वस्तुत छह कमरो की जगह थी किन्तु वडा बनाकर रख दिया गया था। विभाजन करके हाल को दो बनाया जा सकता है या भोजनालय के तौर पर एक ओर वराडे का इस्तेमाल किया जा सकता है। शयनकक्षो का विभाजन द्वारा दो बनाया जा सकता है, आर बराडा लेकर एक समय तीन अतिथिया का काम चल सकता है। औट हौस (बाहरी घर) मे दोमजिला आठ कोठरियाँ थी, जिनमे से एक को अतिथि भवन मे भी परिणत किया जा सकता है। यदि उसकी वगल वाली का स्नान कोष्ठक बनाया जा सके। बँगले की अगल-वगल म साग-सब्जी के लिए खेत भी था। सामने बहुत स्थान नही था, किन्तु फाटक वाले पार्श्व म बैठने का एक अच्छा स्थान वनाया जा सकता था। दो एकड जमीन और साढे १६ हजार रुपया दाम बहुत ज्यादा नही लगा। पता लगा, टहरी रानी की सम्पत्ति है। मकान के बारे म निणय हो चुका था तो भी लौटन वक्त हम दूसरे रास्त स चले। वहाँ पटियाला के राजकुमार और उनके साले दलीपपुर के राजा की कोठियाँ देखी। राजा साहब की कोठी मे बहुत से कमरे थे, लेकिन दाम ४०

हजार माग रहे थे। राजकुमार तो लाख की बात करते थे। कुछ ही दिनों बाद ये कोठियाँ मिट्टी के मोल गइ, पर उस समय अभी लाग लाखों की सोचते थे। मैं हन-क्लिफ को पसन्द कर चुका था। और कोठिया कोई एसी देखने का नहीं थी, या यह कहिये कि उतावले आदमी के पास उसके लिए फुरसत नही थी। हन-क्लिफ भाग्य से बच गया, और उस रात निश्चिन्त होकर सोया।

# २३

# मसूरी को

२१ जून को एजेन्ट से बातचीत हुई। दाम अधिक कहते थे, लेकिन साढे १६ हजार से ऊपर बढने के लिए मैं तैयार नही था। उस समय ऐसे मकान का उतने से ज्यादा दाम नही हो सकता था, और आज तो २० हजार खर्च करके यदि आधा मिल जाए तो बहुत समझिये। पडौसी "क्लिडर" वाले जो ६० हजार से कम की बात सुनने के लिए तैयार नही थे, पीछे २२ हजार मिलने पर स्वामिनिया ने इसे बहुत समझा। शाम तक उतने ही दाम पर मकान ठीक हो गया। मकान पुराना था, लेकिन हमने सोचा दस-बीस साल तो चल ही जाएगा। किताबघर की ओर जा रहे थे तो रास्ते मे श्री जगदीशचन्द्र माथुर पत्नी सहित मिल गये। आजकल बिहार सरकार के शिक्षा सचिव थे। बडे मुस्तैद पुरुष हैं। बिहार सरकार ने डा० जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट कायम करना निश्चय किया था। माथुर साहब ने बतलाया कि इसके खर्च के लिए इस साल २५ हजार रुपया रखा गया है। जायसवालजी से मेरे सम्बन्ध और मेरे काम के बारे मे उन्हे जानकारी थी। हिन्दी के एक अच्छे साहित्यकार के नाते वह मुझसे परिचित थे। सबसे पहले हमारा परिचय उस समय हुआ था, जबकि लडाई के दिनो मे कम्युनिस्ट होने के कारण मैं हजारीबाग जेल मे बन्द था, और माथुर साहब आई० सी० एस० करके काम सीखने के दौरान जेल मे आए। मेरे जैसे

खतरनाक राजबन्दी के साथ उस समय मुलाकात करना नय अफसर के लिए खतरे की बात थी, लेकिन माथुर साहब को अपने ऊपर विश्वास था। जायसवालजी के नाम की संस्था म काम करने की इच्छा क्यो न होती लेकिन न मैं नौकरी कर सकता था, और न बिहार की गर्मी बरसात को बदाश्त कर सकता था। मैंने यही कहा कि मैं सहयोग देने को तयार हू, किन्तु वैतनिक काय नही कर सकता। किताबघर (लाइब्रेरी) को सौ साल पहले अंग्रेजो ने अपने लिए स्थापित किया था। पहले इसम अंग्रेज छोड कोई मेम्बर नही बन सकता था। अब छूट थी, यद्यपि प्रबन्ध एग्लो इडियन पुरुषो और महिलाओ के हाथ मे था। इसके अपने मकान म नीचे कई दूकानें हैं, और सदस्य शुल्क भी आता है, इसलिए इसे निधन नही कहा जा सकता। सौ साल म बहुत-सी काम की पुस्तकें जमा हो सकती थी, लेकिन वहा हल्की फुल्की पुस्तकें ही ज्यादा देखी। हिमालय के सम्बन्ध की एटकिन्सन की जैसी महत्वपूण पुस्तको का अभाव था।

२२ तारीख को फिर एजेन्ट साहब ने मकान के दाम बढाने की बात शुरू की। पहले तो मालूम हुआ, अब दूसरा घर ढूढना पडेगा। हम उसमे एक पैसा भी आगे बढने के लिए तैयार नही थे। अन्त म उतना ही ठहरा, मैंने दो हजार बयाना दे दिया। डा० सत्यकेतु को पाच सौ रुपया देकर मकान की मरम्मत और सफेदी आदि कराने के लिए कह दिया। डा० वसवर डा० सत्यकेतु के पेरिस से परिचित थे और मुझसे भी देखादेखी थी। उस दिन शाम को लक्समाट म वे चाय पीने के लिए आए। मुझसे भी दरस-परस हुआ। उस शाम को फिर हनक्लिफ गया। हन क्लिफ के सारे गुणो को देखने के लिए न उस समय मेरे पास आखें थी और न उसके दोषो को ही देख सकता था। मुझे बारहो महीना मसूरी म रहना था जहाँ जाडो म कितनी ही बार दिन म भी तापमान हिमबिन्दु से नीचे ... है। ऐसे समय के लिए इसका सीलेदार ... अनुकूल ...
सूर्योदय के समय ही ... जाती, ... म
नाम नही लेती थी। ... स ...

की चोटिया प्राय केदारनाथ के पास से जमुनोत्री के करीब तक दिखाई पड़ती थी। चोटियाँ ही नही, उसके नीचे बहुत दूर तक अनेक पवत पक्तियाँ एक-दूसरे से मिलती क्रमश ऊपर उठती चली गई थी। वर्षा काल मे जब नीचे की सारी पवत-स्थली हरियाली से हरी और ऊपर रजतशिखर-शृखलाएँ निरभ्र दिन मे सामने उपस्थित हाती तो दृश्य बडा मनमोहक हाता। बादलो के होने पर उपत्यका के एक छोर स दूसरे छोर पक तना हुआ सतरगा इन्द्रधनुष यहाँ के लिए दुर्लभ चीज नही थी। इन गुणो को उस समय मैंने नही समझा था, और न इस बडे दोप को कि ये तीन हालो का जो लम्बे चौडे ही अधिक नही है, बल्कि दोमजिला इमारत के बराबर ऊँचे हैं आग जलाने का इन्तजाम होने पर भी कभी गरम नही किया जा सकता, आग के पास दुबक कर बैठने पर ही थोडी सी गर्मी मिल सकती है। बगले मे फ्लश और वाशबसिन का इन्तजाम नही था, पर ऐसे बगले ही यहा अधिक मिलते है।

ननीताल—मकान ठीक-ठाक हो जाने पर अब नैनीताल जा सामान सहित कमला को लेकर आ जाना था। २३ जून को श्री प्रोफेसर गयाप्रसाद शुक्ल के यहा (सेवक आश्रम रोड पर) सवा ११ बजे पहुँचा। जून का अत था। वर्षा होने पर भी पसीना होना आम बात थी, और शुक्लजी के यहा पखे का सहारा लेना पडा। मक्खिया भी बहुत थी। इन दोनो का मसूरी या ननीताल म अभाव था। देहरादून ने अपनी लीचियो के लिए बडी ख्याति प्राप्त की है। यहा की अच्छी लीचिया अपने स्वाद और आकार मे मुजफ्फरपुर की लीचिया से किसी तरह भी कम नही होती। एक टोकरी लीची सौगात के तौर पर मैंने भी ले ली। साढे ७ बजे रात को दिल्ली जानेवाला एक्सप्रेस पकडा, जिसमे प्रयाग का डब्बा रहता था। हमारे डब्बे मे जबलपुर जाने वाले एक सिक्ख कनल दो १० १२ वष के एग्लो इण्डियन लडके थे। कनल साहब के दो लडके भी उनके साथ चल रहे थे, और पिता-पुत्र केवल अग्रेजी म बात करते थे। यह दिमाग भला सिपाहियो से घुलने-मिलने देगा। लेकिन, अभी तो सारे कुएँ मे भाग पडी मालूम होती है।

लुक्सर म इक्का सवेरे तक गना रहा, फिर पश्चिम से दूसरी ट्रेन म जुरर ६ बजे बरेली पहुचा। प्रा० भालानाथ शर्मा से मिलना चाहता था, लेकिन काठगादाम वाली ट्रेन के जाने म देर नही थी। उसे पकडकर ५ बजे शाम का मैं काठगोदाम पहुँचा फिर बस पकडकर पौने ७ बजे नैनीताल। वर्षा हो रही थी। इतनी वर्षा म हम मसूरी स्थान-परिवर्तन करना था। आजकल खूब भीड थी, नावा म लोग गिनरी गेल रहे थे, जिसके कारण वह नहीं मिली, और कुली पर सामान उठवाकर रात का थाम लाज पहुँचा।

२८ जून को इतवार था। आज साहित्यकार प० गोविन्दवल्लभ पन्त आये। बहुत सीधा-सादा, लेकिन तजा के लिए अति आवश्यक व्यक्तित्व है। उन्होंने उपन्यास लिखे, नाटक लिखे और सभी काफी परिश्रम स तथा अच्छे लिखे गये। मुझे आश्चर्य और दुःख भी होता था कि क्या इस सीधे-सादे पुरुष का हिन्दी वाले समझ नही रहे हैं। बहुत-सी बातें शान्तिप्रिय द्विवदी और गोविन्दवल्लभ पन्त मे एक सी हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी की भी बहुत दिना तक उपेक्षा रही, लेकिन इस शब्द और अर्थ के सफल शिल्पी का अब हिन्दी वाले पहचानने लग हैं। इस अष्टावक्र मुनि के ऊपर अपने देह भर ही का बोझ है, जो मन भर का भी नही है। शान्तिप्रिय को फूक दें, तो उड जाएँ। उनकी कृतिया अगर आज से ५० वष बाद अस्तित्व मे आतीं तो उनके पास अपना बगला होता, अपनी कार होती, एक से अधिक महिलाये प्राइवेट सेक्रेटरी साहित्य सेक्रेटरी और टाइपिस्ट का काम करती। खाओ, पियो, मौज करो" की ध्वनि घर के दरोदीवार से भी निकलती, लेकिन आज अजगरी वृत्ति है। सिर समाने के लिए ठौर से घर भी नहीं। अपना घर होता ही कैसे? किसी साहित्य रसिका महिला का कृपा-कटाक्ष उन्हें कभी नही मिला। शान्तिप्रियजी को अगले जन्म पर विश्वास है, इसलिए शायद वह इस जन्म का घाटा अगले जन्म मे सूद-दर सूद के साथ पूरा कर लें। इतना होने पर भी जब पन्तजी का मुकाबिला शान्तिप्रिय से करते है, तो यह कहना पडता है कि पन्त को और भी भीषण कष्टों और चिन्ताओं के बीच से होकर गुजरना पडता है। नैनीताल म सस्ता

हान के कारण वह ऐसे मकान मे रहने हैं, जा कभी भी गिरकर उन्हे चिन्ताओ से मुक्त कर सकता है। क्या इसी ख्याल से तो वह उसम नही रहते ? उनकी कृतिया भी मोती के अक्षरा से लिखी गई हैं। "नूरजहा" का उठान वक्त मुझे ख्याल आया, यह ऐतिहासिक कथा को लेकर लिखी हुई पुस्तक है, जो "दुगम् पथ तद् कवयो वदन्ति।" इस दुगम पथ मे पद-पद पर स्खलित हाने का डर है, लेकिन पुस्तक समाप्त करने पर मैं वाह-वाह करते इस बात से असन्तुष्ट हुआ कि मैं हो क्या इतने दिना तक इसे देखने से वचित रहा। पन्त के नामराशि हमार प्रदेश के मुख्यमत्री भी हैं। साहित्यकार न अपने नाम के साथ कोई उपनाम भी नही जाडा, इसका परिणाम अक्सर यह होता है कि साहित्यकार पन्त की चिट्ठियाँ मुख्यमत्री के पास चली जाती हैं, और उनके चिट्ठिया के जगल म भूलकर कितनी ही फिर लौटकर अपने स्थान पर नही पहुँचने पाती। ऐसे सुन्दर साहित्यकार की इस दीन हीन स्थिति को देखकर दिल बागी हो कहता—"उठकर सभी अट्टालिकाओ मे आग लगा दा।" पर यह तो पागलपन हाता। अट्टालिकाओ न क्या अपराध किया ? अट्टालिकायें भी स्वामी परिवतन कर सकती है, और उनमे मे एक उपन्यास-नाटककार गोविन्दवल्लभ पन्त का और एक मोतिया पिरोने वाले शान्तिप्रिय को मिल सकती हैं। इन अट्टालिकाओ पर आज अयोग्यो का अधिकार है, अन्धेरनगरी जो है। जब तक अन्धेरनगरी दूर नही हाती तब तक सभी जगह अन्धेर खाता रहगा।

श्री प्रभुदयाल मित्तल (मथुरा) की पुस्तक "ऋतु-सौंदय" भूमिका लिखने के लिए आई। मित्तलजी ने ब्रजभाषा की कितनी ही निधिया का जिस लगन के साथ सग्रह और सम्पादन किया है उसे देखते आग्रह का ठुकराना मरे लिए सम्भव नही था। पर, काव्य कृतिया के सम्बन्ध मे राय देने मे मुझे हद दर्जे का सकोच होता है। मै उसके लिए अपने का अयोग्य समझता हूँ। अयोग्य क्यो न समझू ? जिन पक्तिया का सुनकर लोग मस्त हो सिर हिलाने लगते है, उन्हे सुनकर या पढकर मेरा मन न पसीजता है, न उत्तप्त होता है, जैसे भस के सामने बीन बज रही है। सचमुच ही मैं

२८ जून को एकाएक यह खबर पाकर मैं सन्न रह गया कि २६ जून को स्वामी सहजानन्द का देहान्त हो गया। उनके शरीर और रोम-राम की कमठता देखकर मुझे कभी खयाल भी नही हो सकता था कि वह इतनी जल्दी जवाब दे देंगे। पता लगा, उनको रक्तदाब की बीमारी थी। मुजफ्फरपुर जिले म मोटर से कही जा रहे थे। रास्ते म दाब हद से अधिक बढा और उनका लकवा मार गया। अस्पताल पहुचाना बेकार हुआ। मजूर किसान राज्य की स्थापना का निर्भय स्वप्नद्रष्टा, शोषितो पीडितो का अदम्य नेता चल बसा। अभी इसी मार्च का ता वह प्रयाग म मिले थे और आगे की कितनी ही योजनाएँ बना रहे थे। अपने स्नेह के कारण ही तो उस दिन प्रयाग मे कितनी ही जगहो पर ढूढते ढूढते आखिर उन्होने मुझे पकड निकाला था। कम्युनिस्ट पार्टी की वर्तमान नीति से उनका मतभेद था लेकिन पार्टी के वह अनन्य हितचिन्तक ही नही बल्कि भक्त थे। कहते थे तपे हुए ईमानदार कार्यकर्ता यही हैं। यही वह तरुण और प्रौढ हैं, जो अपने काम का सीखने के लिए पूरी मेहनत करते, खूब पढते, खूब सोचते है। य भ्रष्टाचार म नही पड सकते। पार्टी ही हमारे देश के भविष्य की एकमात्र आशा है। उस समय पार्टी के कुछ नेता तुरन्त क्रान्ति के लिए काम करना चाहते थे। स्वामीजी उस समय को अनुकूल नही मानते थे। कहते थे—हमे भी समझाएँ, छलाग मारने से हम भी बाज नही आएँगे। पर, ऐसा तो तभी होना चाहिए, जब देश की प्रबुद्ध तरुण मानवता का बहुत बडा भाग इस छलाग म साथ देने के लिए तैयार हो, तभी कुछ बन सकता है। स्वामीजी मेरे जिले (आजमगढ) के पडोसी गाजीपुर जिले मे पैदा हुए थे, यह कहना पर्याप्त नही है, मेरे पितृग्राम से उनका जन्मग्राम कुछ ही कोसो पर था। सबसे पहले उनका नाम असहयोग के दिनो मे सुना था, लेकिन उस समय मैं बिहार म काम करता था और वह युक्त-प्रान्त मे। पहली मुलाकात १९२५ ई० मे छपरा में हुई थी। वहा भूमिहार ब्राह्मण सम्मेलन हो रहा था। आरम्भिक सार्वजनिक जीवन मे स्वामीजी ने भूमिहारो के उत्थान का बीडा उठाया था। यह जाति गिरी हुई नही थी। पूर्वी युक्त प्रान्त और

अपन या वाव्य-मर्म या अन्धा समझता, यदि अश्वघोष, कालिदास, बाण, तुलसी, जयशंकर प्रसाद इस पत्थर के दिल को हिलाने और पिघलाने म समथ न होते। मित्तलजी की पुस्तक के साथ मैं अन्याय नहीं कर सकता था, पर दूसरे भी कितने ही तरुण और प्रौढ़ कवि जब इसी तरह का आग्रह करते हैं तो बड़ी मुसीबत आ जाती है। कितनो को सम्मति लिखने की बात करके टरकाना, कितनो को बदरंग वाक्या म कुछ लिख देना पडता है।

२६ जून को श्री पुरुषोत्तम कपूर का लखनऊ से भिजवाया दसेरी आम आया। पहाड की सर्दी के लाभ म फैसन का यह सबसे बड़ा घाटा रहता है कि आमो के मौसिम मे आमो के पास रहने का मौका नही मिलता। आम के प्रति मेरा विशेष पक्षपात है यह कहना आत्मश्लाघा होगी, क्योंकि आम अजानशत्रु नही, बल्कि सर्वमित्र है। हिमालय की बिलासपुरियो म वैसे आम दुर्लभ नहीं हैं, केवल दाम दूना होता है, लेकिन सबसे घाटे की बात यह है कि पेडो के नीचे ताजे पके आम को बाल्टी के पानी म रखकर खाने का जो आनन्द आता है, वह आनन्द यहाँ कहाँ ? बाजदफा तो मालूम होता है हम आम नहीं कठोर पसे खा रहे है।

इसी समय खबर पढी, अमेरिका आधे दक्षिणी कोरिया से सन्तुष्ट न रह सारे का अपनी मुट्ठी म करना चाहता है। उसने अपनी कठपुतली सिंगमन री को उकसाकर उत्तर कोरिया पर आक्रमण करा दिया है। असली बात यह थी लेकिन हमारे यहा तो सारे ससार की खबरें रयूटर की मार्फत आती है, जो अमरिका के लिलीन ब्रिटन की साम्राज्यवादी नीति की प्रचारक एजेंसी मात्र है। अखबारो मे छप रहा था, आक्रमण उत्तरी कोरिया ने किया है। उत्तरी कोरिया का कम्युनिस्ट शासन अमेरिका के आखो का काटा था जिसे मान लेने के लिए उसे बराबर अफसोस हो रहा था।

२७ जून को परमानन्दजी ने बाकी १५ हजार का चेक भी भेज दिया। दस हजार पहले आया था, उसमे से खर्च होकर अब तीन हजार रह गया था। अभी १४ हजार मकान का देना था। हम बडी शाहखर्ची दिखला रहे थे, लेकिन साल भर की खर्ची के लिए चिन्ता भी हो रही थी।

२८ जून को एकाएक यह खबर पाकर मैं सन्न रह गया कि २६ जून को स्वामी सहजानन्द का देहान्त हो गया। उनके शरीर और रोम-राम की कमठता देखकर मुझे कभी खयाल भी नहीं हो सकता था कि वह इतनी जल्दी जवाब दे देंगे। पता लगा, उनको रक्तदाब की बीमारी थी। मुजफ्फरपुर जिले में मोटर से कहीं जा रहे थे। रास्ते में दाब हद से अधिक बढ़ा और उनको लकवा मार गया। अस्पताल पहुंचाना बेकार हुआ। मजूर किसान राज्य की स्थापना का निर्भय स्वप्नद्रष्टा, शोषितों पीडितों का अदम्य नेता चल बसा। अभी इसी मार्च को तो वह प्रयाग में मिले थे, और आगे की कितनी ही योजनाएँ बना रहे थे। अपने स्नेह के कारण ही तो उस दिन प्रयाग में कितनी ही जगहों पर ढूढते ढूढते आखिर उन्होंने मुझे पकड़ निकाला था। कम्युनिस्ट पार्टी की वर्तमान नीति से उनको मतभेद था, लेकिन पार्टी के वह अनन्य हितचिन्तक ही नहीं, बल्कि भक्त थे। कहते थे तपे हुए ईमानदार कार्यकर्ता यहीं हैं। यही वह तरुण और प्रौढ़ हैं, जो अपना काम को सीखने के लिए पूरी मेहनत करते, खूब पढ़ते, खूब सोचते हैं। ये भ्रष्टाचार में नहीं पड सकते। पार्टी ही हमारे देश के भविष्य की एकमात्र आशा है। उस समय पार्टी के कुछ नेता तुरन्त क्रान्ति के लिए काम करना चाहते थे। स्वामीजी उस समय को अनुकूल नहीं मानते थे। कहते थे—हमे भी समझाएँ, छलांग मारने से हम भी बाज नहीं आएँगे। पर ऐसा तो तभी होना चाहिए, जब देश की प्रबुद्ध तरुण मानवता का बहुत बड़ा भाग इस छलांग में साथ देने के लिए तैयार हो, तभी कुछ बन सकता है। स्वामीजी मेरे जिले (आजमगढ़) के पड़ोसी गाजीपुर जिले में पैदा हुए थे, यह कहना पर्याप्त नहीं है मेरे पितृग्राम से उनका जन्मग्राम कुछ ही कोसों पर था। सबसे पहले उनका नाम असहयोग के दिनों में सुना था, लेकिन उस समय मैं बिहार में काम करता था और वह युक्त प्रान्त में। पहली मुलाकात १९२५ ई० में छपरा में हुई थी। वहां भूमिहार ब्राह्मण सम्मेलन हो रहा था। आरम्भिक सार्वजनिक जीवन में स्वामीजी ने भूमिहारों के उत्थान का बीडा उठाया था। यह जाति गिरी हुई नहीं थी। पूर्वी युक्त प्रान्त और

विहार मे ही भूमिहार रहते है। वहा के बडे बडे जमीदारो की अधिक सख्या भूमिहार थी। किसान होने पर भी वह अच्छी हालत मे थे, जिसका यह अर्थ नही कि भूमिहारो की अधिक सख्या भूख प्यास की पहुँच से बाहर है। यह बात कुछ समय बाद स्वामीजी समझ पाए। उस समय स्वामीजी के चरण धोने के लिए सचमुच ही बडे बडे भूमिहार महाराजा और महाराजा बहादुर तैयार थे। सम्मान की सुवर्ण जजीर से बाहर निकलना आदमी के लिए बहुत मुश्किल होता है। लेकिन, उस सच्चे और निर्भीक हृदय पुरुष को अपने ध्येय से कोई शक्ति नही रोक सकती थी। भूमिहार सम्मेलन मे छपरा मे उनसे मिलकर बडी प्रसन्नता हुई। किन्तु यह देखकर दु ख भी हुआ कि वह जात पात के हितो के समर्थक हो रहे हैं। १९२६ मे काग्रेस ने कौंसिलो के चुनाव मे सीधे भाग लेने का निश्चय किया। बाबू जलेश्वर प्रसाद काग्रेस की तरफ से उम्मीदवार खडे हुए थे, और उनके प्रतिद्वद्वी काग्रेस के ही दूसरे कार्यकर्ता बाबू श्रीनन्दन प्रसाद नारायण सिंह थे। श्री नन्दन बाबू को काग्रेस कर्मियो का बहुत अधिक सहयोग मिला था जिले के काग्रेस कर्मी उन्ही को खडा करना चाहते थे। पर जब जलेश्वर बाबू को काग्रेस ने खडा कर दिया, तो मेरे लिए उनका समर्थन करने के सिवा कोई रास्ता नही था। जलेश्वर बाबू मेरे घनिष्ट मित्र थे यह कारण नही था, बल्कि श्री नन्दन बाबू का स्नेह और सम्मान भी मेरे प्रति कम नही था। इस समय चुनावक्षेत्र मे स्वामीजी और मैं आमने-सामने थे। जलेश्वर बाबू का सारथी मैं था, और श्रीनदन बाबू के स्वामीजी। मैं सिर्फ छपरा जिले मे ही सबसे अधिक चुनाव प्रचार का काम करता था, और स्वामीजी कई जिलो मे घूम रहे थे। हाँ, चुनाव के दिन जरूर हम दोनो उन थानो मे डटे हुए थे जहा के वोट निर्णायक थे। दो दलो के अगुआ होकर वैयक्तिक स्नेह और सम्मान कैसे अटूट रह सकता है, इसका पता मुझे यहीं लगा। स्वामी जी के ऊपर व्यक्तिगत आक्षेप सुनने के लिए मैं तैयार नही था, और वही बात उनके मन मे भी थी। १९३१ मे हम अपने उद्देश्यो मे एक हो गए, और तब से १९ वर्ष बीत गए, हम एक दूसरे से अत्यन्त समीप रहे—

आध्यात्मिक शरीर मे हम अभिन्न हो गए। उनसे कितनी आशाएँ बँधी हुई थी, उनके शरीर को तीन ही महीने पहले कायक्षम देख चुका था। ऐसे पुरुष का एकाएक हमेशा के लिए बिछोह क्या न असह्य होता ?

मसूरी से डा० सत्यकेतु के पत्र क आन की देर थी, और हमे यहाँ स चल पडना था। उनका पत्र महीने की अन्तिम तारीख को आया कि ७ जुलाई तक बगला रहने लायक हो जाएगा। लेकिन हम ११ जुलाई को ही नैनीताल छाड सके।

इधर केन्द्रीय सरकार के कई मन्त्रालया ने हिंदी पारिभाषिक शब्दो के बनाने का काम अपने हाथ मे लिया था। इसका कारण मौलाना आजाद की उदासीनता या कामरोक् नीति थी। शिक्षा मन्त्रालय को इसके लिए आगे बढना था, पर मौलाना के दिल को बहुत धक्का लगा, जब उर्दू के सम्बन्ध म उनकी बात नही मानी गई। अब वह अपनी नाक कटाकर भी असगुन करने के लिए तैयार थे। कृषि मन्त्री ने भी अपने विभाग सम्बन्धी ऐसी परिभाषावलि जमा करने के लिए एक समिति बनाई, जिसमे मेरा भी नाम था। ऐसे ही कुछ और विभागो ने भी समितिया म मुझे रखा पर मसूरी पहुँचने के साथ मैं अपने सामने के कामो मे ही पूरी तौर से लगना चाहता था, जिसमे समितियो की सदस्यता बाधक होती, इसलिए मैंने सबसे इस्तीफा दे दिया।

५ जुलाई से अपनी बिखरी हुई किताबो को फिर बक्सा म डालकर वर्षा स बचने के लिए तिरपाल से मढवाना शुरू किया। मकान का बाकी तीन सौ रुपया किराया भी चुका दिया। ६ जुलाई को हमारे पडोसी श्री शीतल प्रसाद गुप्ताजी ने एक छोटा सा भोज दिया, जिसमे नीचे ऊपर के सभी लोग शामिल थे। मालूम हो रहा था, पिछले तीन चार महीनो मे यहाँ हमारी जड भीतर तक चली गई थी। गुप्ताजी का परिवार बाँके लालजी का परिवार दोना अपने परिवार से हो गए थे। एक दिन भी मन-मुटाव होने की नौबत नही आई। रसोइये की दिक्कत हमे बराबर रहती थी, लेकिन उस समय बाँकेलालजी के यहाँ आग्रहपूर्वक हमारा भोजन तैयार

होता। बाकेलालजी का सारा परिवार आर्यसमाजी था। वह नैनीताल आर्यसमाज के मुखिया थे, और इस समय आर्यसमाज मन्दिर बनाने में लगे हुए थे। उनकी पत्नी शनिवार को मौन रहती थी, न जाने कितने महीनों या वर्षों से। हमने कभी नहीं कहा, मौन बेकार है, बल्कि उसकी अतिशयोक्ति पूर्वक प्रशंसा करते रहे, जिसके कारण उन्होंने एक दिन अपने इस व्रत को छोड़ दिया। बिहारीलालजी जैसे अदम्य पर्वतारोही थे, वैसे ही वह हँसमुख भी थे और मेरी सहायता के लिए तो हर वक्त तैयार रहते थे। घर के बच्चे भी बहुत प्यारे थे। रामनमाइन तो कौरवी की सुन्दर कहानियों और गीतों को बोलकर हमारी बड़ी सहायता की थी। उनकी बात भूलने की नहीं, रोज खाना खा १०-११ बजे आकर कहती—"कमला रानी रोट्टी राट्टी कर ली।" गुप्ताजी और उनकी पत्नी हमलता रामनमाई की तीसरी पीढ़ी लायक थी। वह ऊपर की मंजिल में हमारी बगल में ही रहते थे, इसलिए उनसे साथ रात दिन का सम्पर्क था।

१० जुलाई को सामान को बुक करने भिजवाने में गुप्ताजी और ... विद्याप्रकाश कौसल ने बड़ी सहायता की। पाँच बक्सों को ही हम रे... पार्सल से भेज सके बाकी तेरह चीजें अपने साथ रखी थीं। गुप्ताजी ... विद्याप्रकाशजी की मदद से बस में जगह मिल गई। कमला ने पहाड़ ... मोटर-यात्रा के लिए सवेरे से ही तैयारी की थी मेरी चली होती तो ... प्याला चाय भी न पीने देता। रास्ते में उन्हें पाँच बार कै हुई। वह इसका पट्रोल की गंध को देती थी। आँख बन्द करके चलने की बात को भी मानती थी। सचमुच ही बेकार थी, क्योंकि यदि मन नहीं तैयार आँखों को बन्द करने से क्या होता है? ट्रेन में हम बरेली होकर मसूरी ह यह खबर श्री भोलानाथ शर्मा को मिल गई थी। वह काठगोदाम आ साथ ही बरेली तक जाने वाले थे। उनसे बड़ी सहायता मिली डब्बे में राजस्थान के ठाकुर कर्नल शार्दूलसिंह भी जा रहे थे। नर्म उनके घाय सत्कार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अभी

नही है, लेकिन उसके साथ एक तरह का स्नेह जरूर

ाकर १० बजे रात को बरेली पहुँचो। दून एक्सप्रेस
काठगादाम स ही हम प० भोलानाथजी के अरस्तू
अनुवाद का देख रह थे। वह अपने काम म बडे
। दाशनिकों की पुस्तक का कोई नया सस्करण
ो निक०। सुनत ह, ता उसकी सहायता लिए विना
।। अरस्तू का लिखा "एथेन्स का सविधान"
। अनुवाद कर लेने पर यह बात उन्ह मालूम हुई।
ा। इस प्रकार १६५० के मध्य मे "राजनीति
ि हाकर तयार हा गया, लेकिन उसके प्रकाशित
म ही आई। यदि पहले प्रकाशित हा गया होता
म तीन ग्रन्थ और उन्होंने मूल ग्रीक स हिन्दी मे कर
यह कितनी बडी क्षति है ? ऐसा योग्य विद्वान् इस
 नही सकता। अपनी बेबसी पर हाथ मलना
पहले दर्जे म सिफ एक स्थान खाली था, और हम
किसी तरह चलना तो था ही। वर्षा भी उस वक्त
।, कही कही गाडी की छत से भी बूदें टपक रही
।न। एक सीट पर बैठ गए। प० भोलानाथजी न
।ता। अधिक सामान लेकर चलना बडी कवाहट
र द्वार चल रहा हा, तो उसकी शिकायत क्या ?
बा हम देहरा पहुँचे। प० गयाप्रसाद शुक्ल
।न करके चलन का उनका आग्रह था, लेकिन
वाहर खडी थी। सारे सामान को लेकर या
फिर यही लौटना था। कमला तो जलपान
अभी पहाड की मोटर सवारी सामने थी।
गया और चल पडे। बस पर जाते

होता। बाकेलालजी का सारा परिवार आर्यसमाजी था। वह नैनीताल आर्यसमाज के मुखिया थे, और इस समय आर्यसमाज मन्दिर बनाने में लगे हुए थे। उनकी पत्नी शनिवार का मौन रहती थी, न जाने कितने महीनों या वर्षों से। हमने कभी नहीं कहा, मौन बेकार है, बल्कि उसकी अतिशयोक्ति पूर्वक प्रशंसा करते रहे, जिसके कारण उन्होंने एक दिन अपने इस व्रत को छोड़ दिया। बिहारीलालजी जैसे अदम्य पर्वतारोही थे, वैसे ही वह हँसमुख भी थे और मेरी सहायता के लिए तो हर वक्त तैयार रहते थे। घर के बच्चे भी बहुत प्यारे थे। रामनमाईने तो कौरवी की सुन्दर कहानियाँ और गीतों को बोलकर हमारी बड़ी सहायता की थी। उनकी बात भूलने की नहीं रोज खाना खा १०-११ बजे आकर कहती—"कमला रानी, रोट्टी राट्टी कर ली।" गुप्ताजी और उनकी पत्नी हेमलता रामनमाई की तीसरी पीढ़ी लायक थी। वह ऊपर की मंजिल में हमारी बगल में ही रहते थे, इसलिए उनके साथ रात दिन का सम्पर्क था।

१० जुलाई को सामान को बुक करने भिजवाने में गुप्ताजी और श्री विद्याप्रकाश कौंसल ने बड़ी सहायता की। पांच बक्सा का ही हम रेल्वे पार्सल से भेज सके बाकी तेरह चीजें अपने साथ रखी थीं। गुप्ताजी और विद्याप्रकाशजी की मदद से बस में जगह मिल गई। कमला ने पहाड़ की मोटर यात्रा के लिए सबेरे से ही तैयारी की थी मेरी चली होती तो एक प्याला चाय भी न पीने देता। रास्ते में उन्हें पांच बार कै हुई। वह इसका दोष पट्रोल की गंध को देती थी। आँख बन्द करके चलने की बात को भी बेकार मानती थी। सचमुच ही बेकार थी, क्योंकि यदि मन नहीं तैयार है, तो आँखों के बन्द करने से क्या होता है? ट्रेन से हम बरेली होकर मसूरी जा रहे हैं, यह खबर श्री भोलानाथ शर्मा को मिल गई थी। वह काठगोदाम पर आ साथ ही बरेली तक जाने वाले थे। उनसे बड़ी सहायता मिली। इसी डब्बे में राजस्थान के ठाकुर कर्नल शार्दूलसिंह भी जा रहे थे। नैनीताल में उनके चाय सत्कार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अभी यह पीढ़ी

हिन्दी की तरफ खुशी नही है, लेकिन उसके साथ एक तरह का स्नेह जरूर पैदा हो रहा था।

हमारी ट्रेन लेट होकर १० बजे रात को बरेली पहुँची। दून एक्सप्रेस भी एक घंटा लेट था। काठगोदाम से ही हम प० भोलानाथजी के अरस्तू के "राजनीतिशास्त्र" के अनुवाद को देख रहे थे। वह अपने काम मे बडे सजग रहते है। अगर ग्रीक दार्शनिको की पुस्तक का कोई नया सस्करण यूरोप या अमेरिका मे कही निकला सुनते है, तो उसकी सहायता लिए बिना अपने काम को अपूर्ण समझते। अरस्तू का लिखा "एथेन्स का सविधान" नया सम्पादित हुआ था। अनुवाद कर लेने पर यह बात उन्हें मालूम हुई। उस पुस्तक को भी मगाया। इस प्रकार १९५० के मध्य मे "राजनीति शास्त्र" हिन्दी मे अनुवादित होकर तयार हो गया, लेकिन उसके प्रकाशित होने की नौबत १९५६ म ही आई। यदि पहले प्रकाशित हो गया होता, तो अरस्तू के कम से कम तीन ग्रन्थ और उन्होने मूल ग्रीक से हिन्दी म कर डाले होते। हिन्दी की यह कितनी बडी क्षति है ? ऐसा योग्य विद्वान् इस काम के लिए हर वक्त मिल नही सकता। अपनी बेबसी पर हाथ मलना पडता था। एक्सप्रेस मे पहले दर्जे म सिर्फ एक स्थान खाली था, और हम ये दो आदमी। लेकिन, किसी तरह चलना तो था ही। वर्षा भी उस वक्त भिगाने के लिए तैयार थी, कही कही गाडी की छत से भी बूदें टपक रही थी। सामान रखा और दोनो एक सीट पर बैठ गए। प० भोलानाथजी न होते, तो बहुत मुश्किल होती। अधिक सामान लेकर चलना बडी खराबी है, लेकिन जब कन्धे पर घर द्वार चल रहा हो, तो उसकी शिकायत क्या ? सवेरे (११ जुलाई) ८ बजे बाद हम देहरादून पहुँचे। प० गयाप्रसाद शुक्ल जी स्टेशन पर आए थे। जलपान करके चलने का उनका आग्रह था, लेकिन मसूरी जाने की बसें स्टेशन के बाहर खडी थी। सारे सामान को लेकर या छोडकर जलपान के लिए जा फिर यही लौटना था। कमला तो जलपान भी नही कर सकती थी, क्योकि अभी पहाड की मोटर सवारी सामने थी। एक स्टेशन वान पर सब सामान रखवाया और चल पडे। बस पर जाते

होता। धामलालजी का सारा परिवार आर्यसमाजी था। वह नैनीताल आर्यसमाज के मुखिया थे, और इस समय आर्यसमाज मंदिर बनाने में लगे हुए थे। उनकी पत्नी शनिवार को मौन रहती थी, न जाने कितने महीनों या वर्षों से। हमने कभी नहीं कहा मौन बेकार है, बल्कि उसकी अतिशयोक्ति पूर्वक प्रशंसा करते रहे, जिसके कारण उन्होंने एक दिन अपने इस व्रत को छोड़ दिया। बिहारीलालजी जैसे अदम्य पर्वतारोही थे, वैसे ही वह हँसमुख भी थे और मेरी सहायता के लिए तो हर वक्त तैयार रहते थे। घर के बच्चे भी बहुत प्यारे थे। रामनमाईने तो कौरवी की सुन्दर कहानियाँ और गीतों को बोलकर हमारी बड़ी सहायता की थी। उनकी बात भूल्ँ की नहीं रोज खाना खा १०-११ बजे आकर कहती—'कमला रानी, रोट्टी-राट्टी कर लो।" गुप्ताजी और उनकी पत्नी हेमलता रामनमाई की तीसरी पीढ़ी लायक थी। वह ऊपर की मंजिल में हमारी बगल में ही रहते थे, इसलिए उनके साथ रात दिन का सम्पर्क था।

१० जुलाई को सामान को बुक करने भिजवाने में गुप्ताजी और श्री विद्याप्रकाश कौसल ने बड़ी सहायता की। पाँच बक्सों को ही हम रेलवे पार्सल से भेज सके, बाकी तेरह चीजें अपने साथ रखी थी। गुप्ताजी और विद्याप्रकाशजी की मदद से बस में जगह मिल गई। कमला ने पहाड़ की मोटर यात्रा के लिए सवेरे से ही तैयारी की थी मेरी चली होती तो एक प्याला चाय भी न पीने देता। रास्ते में उन्हें पाँच बार के हुईं। वह इसका दोष पेट्रोल की गंध को देती थी। आँख बन्द करके चलने की बात को भी बेकार मानती थी। सचमुच ही बेकार थी, क्योंकि यदि मन नहीं तैयार है, तो आँखों के बन्द करने से क्या होता है? ट्रेन से हम बरेली होकर मसूरी जा रहे हैं यह खबर श्री भोलानाथ शर्मा को मिल गई थी। वह काठगोदाम पर आ साथ ही बरेली तक जाने वाले थे। उनसे बड़ी सहायता मिली। इसी डब्बे में राजस्थान के ठाकुर कर्नल शार्दूलसिंह भी जा रहे थे। नैनीताल में उनके चाय सत्कार पान का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अभी यह पीढ़ी

हिन्दी की तरफ बुरी नहीं है, लेकिन उसके साथ एक तरह का स्नेह जरूर पैदा हो रहा था।

हमारी ट्रेन लेट होकर १० बजे रात को बरेली पहुँची। दून एक्सप्रेस भी एक घंटा लेट था। काठगोदाम से ही हम प० भोलानाथजी के अरस्तू के "राजनीतिशास्त्र" के अनुवाद को देख रहे थे। वह अपने काम में बड़े सजग रहते हैं। अगर ग्रीक दार्शनिकों की पुस्तक का कोई नया संस्करण यूरोप या अमेरिका में कहीं निकला सुनते हैं, तो उसकी सहायता लिए बिना अपने काम को अपूर्ण समझते। अरस्तू का लिखा "एथेन्स का संविधान" नया सम्पादित हुआ था। अनुवाद कर लेने पर यह बात उन्हें मालूम हुई। उस पुस्तक को भी मँगाया। इस प्रकार १९५० के मध्य में "राजनीतिशास्त्र" हिन्दी में अनुवादित होकर तैयार हो गया, लेकिन उसके प्रकाशित होने की नौबत १९५६ में ही आई। यदि पहले प्रकाशित हो गया होता, तो अरस्तू के कम-से-कम तीन ग्रन्थ और उन्होंने मूल ग्रीक से हिन्दी में कर डाले होते। हिन्दी की यह कितनी बड़ी क्षति है? ऐसा योग्य विद्वान् इस काम के लिए हर वक्त मिल नहीं सकता। अपनी बेबसी पर हाथ मलना पड़ता था। एक्सप्रेस में पहले दर्जे में सिर्फ एक स्थान खाली था, और हम थे दो आदमी। लेकिन, किसी तरह चलना तो था ही। वर्षा भी उस वक्त भिगाने के लिए तैयार थी, कहीं कहीं गाड़ी की छत से भी बूँदें टपक रही थीं। सामान रखा और दोनों एक सीट पर बैठ गए। प० भोलानाथजी न होते, तो बहुत मुश्किल होता। अधिक सामान लेकर चलना बड़ी घबराहट है, लेकिन जब कंधे पर घर द्वार चल रहा हो, तो उसकी शिकायत क्या? सवेरे (११ जुलाई) ८ बजे बाद हम देहरादून पहुँचे। प० गयाप्रसाद शुक्ल जी स्टेशन पर आए थे। जलपान करके चलने का उनका आग्रह था, लेकिन मसूरी जाने की बसें स्टेशन के बाहर खड़ी थीं। सारे सामान को लेकर या छोड़कर जलपान के लिए जा फिर यहीं लौटना था। कमला तो जलपान भी नहीं कर सकती थी, क्योंकि अभी पहाड़ की मोटर सवारी सामने थी। एक स्टेशन वैगन पर सब सामान रखवाया और चल पड़े। बस पर जाते

ता क्रिंग पर ही उतरना पडता, वाम या टैक्सी से सीधे कितावघर पहुँचा जा सकता था, जहा से हेपीवली नजदीक थी ।

नौ कुलिया पर सामान रखकर हम हन क्लिफ पहुँचे । मकान के एजेंट ने कह रखा था कि बिक्री की लिखा पढी हो जाने पर ही बँगले म रहना होगा लिखा पढी अभी हुई नही थी । पर, इसका हमे पता नही था । बँगले के चौकीदार को भी यह बात मालूम थी, लेकिन उसने बाधा नही डाली । उसने बँगला खोल दिया । सफाई अच्छी नही हुई थी, लेकिन डा० सत्यकेतु के घुटने मे चोट आ गई थी, इसलिए देखभाल नही कर सक थे । फर्नीचर म से भी कितने ही उठ गए थे, और हम अचानक आकर बैठ न जाते, तो और भी कितन उठ गए होते । मकाना के बिकते समय अक्सर ऐसा होता है । चार अच्छी चारपाइयो की जगह चार रही चारपाइया थी । सामान का सूची मे आखिर सख्या ही ता लिखी जाती है, और वह यहा पूरी थी । एक कमरे की दरी का आधा भाग भी गुम था । कमला न बँगले का पसद किया । हा, उसके एकान्त म होने की बात अवश्य कर रही थी । लेकिन हन क्लिफ मामूली एका त स्थान नही था । यह ऐसा बँगला था, जिसक लिए ऋषि मुनि भी तरसते । मसूरी म्युनिसिपेलिटी की सीमा और बँगले की सीमा एक थी, अर्थात् पश्चिम मे इसके बाद कोई बँगला नही था । ऊपर हनहिल का विशाल बँगला था, जिसका ही हनक्लिफ मेहमानखाना था, और बेचते वक्त ही दोनो की भूमि का बँटवारा हुआ था । हनहिल भी वर्षों से किसी रहने वाले का मुह नही देख पाया था, और वही अवस्था उसके पास की हनली बँगले की भी थी । हनली के नीचे क्लिडेर का दामजिला भव्य बँगला था, जिसके पूसाग बहनें और उनके भाई स्थायी निवासी थे । वर्षों तक उनके पडोसी रहने का हम आनन्द मिला ।

योगिराज विट्ठलदास (गुजराती) इसी समय मसूरी म आये हुए थ । मेरे साथ उनका अदृष्ट परिचय था । मैंन उन्हे एक सिद्धहस्त घुमक्कड पाया । उन्होने फुर्ती न दिखलाई होती, ता उसी दिन बिजली पानी हमारे लिए न खुलता । यह भी पता लग गया कि रेलवे पार्सल से भेजी हमारी पुस्तकें लौट

एजेंसी मे आ गई है। पुस्तका को रखन के लिए सिफ दो रैक थे। तीन अलमारियाँ कपडो की थी, तीन-चार कपवाड पुस्तका का रखने के लिए उपयुक्त नही हो सकते थे। दो-तीन अल्मारियो की तत्काल आवश्यकता मालूम हुई।

११ जुलाई अपने मकान मे पहली रात थी अभी वर्षो मुझे इस मकान से असन्तुष्ट होने की जरूरत नही थी। उस समय तो बहुत खुशी हो रही थी।

१२ जुलाई को मकान ठीक-ठाक करने मे दोपहर तक लगे रहे, फिर कमला के साथ लक्समौट गए। योगिराज ने कुछ गुजराती पक्वान तैयार किए थे। योगिराज यौगिक आसन और कितनी ही और क्रियाएँ जानते थे, और उनका प्रयोग रहस्यमय ढग से नही, बल्कि स्वास्थ्य के उपयोग के लिए करते और दूसरो को भी सिखलाते थे। वह अपनी इसी विद्या का लेकर यूरोप घूम आए थे, और कुछ ही दिनो बाद फिर विश्व परिक्रमा के लिए निकलने वाले थे। सेठ गोविन्ददास की "पथिवी परिक्रमा" मे योगिराज न्यूयाक म मिले थे। कितने सालो से न मिलने पर मन लालायित तो होता है, लेकिन घुमक्कड तो बतासपछी होते हैं, "जो बिछड गए सो बिछड गए"।

नये मकान को किसी ने लिया है, यह सुनकर एक मिस्त्री आए और कहा, बँगले का पुश्ता कमजोर है इसे मजबूत करना चाहिए नही तो गिर जाने का डर है। हमे कोई कमजोरी नही मालूम हुई। और पुश्ता मजबूत करने का मतलब हजार डेढ हजार स्वाहा करना था। सोच रहे थे एक रसोइया तो रखना ही होगा जिसके लिए भोजन और ३५ रुपया महीना देना पडेगा। आस पास जो जमीन है, उसकी फुलवारी सजानी चाहिए, जिसके लिए ४० रुपये मासिक कम से कम माली को भी देने पडेंगे। सब चाहिए, लेकिन पास मे रुपये कितने हैं, इसको भी देखना था, इसलिए उस समय एक रसोइये का ही रखने का निश्चय किया। बाजार से कुछ काम की चीजें खरीदी जिसमे ६० रुपये लग गए। रेडियो भी अब अनिवार्य मालूम होने लगा, खासकर इस एकान्त बँगले मे उसकी जरूरत समाचार के

लिए और मनोरजन के लिए भी थी। १४ तारीख को ३०४ रुपये म मर्फी रेडिया आ गया। फ्लश की बात करने पर १६-१७ सौ रुपये का अदाज लगाया गया। यदि मालूम होता कि वह ढाई हजार से ऊपर होगा, तो शायद हमने उसका सकल्प छोड दिया होता। लिखा पढी करते वक्त हमने ध्यान नही दिया, *लेकिन अब नक्शा देखने से मालूम हुआ कि हर्नहिल से* हर्नक्लिफ को अलग करते वक्त हमे कम-से कम जमीन देने की कोशिश की गई, और सीमा को हमारे बँगले की दीवारो के पास रखा गया। कहने के लिए इसमे प्राय ढाई एकड जमीन थी, लेकिन मकान को छोडकर आध एकड भी ऐसी नही थी जिसमे साग सब्जी या फूल पत्ती उगाए जा सकें। नीचे की ओर बहुत ऊँचा सीधा पहाड खडा था। इन पत्थरो से हमे क्या लेना देना था? जहाँ तहा इसमे कुछ वृक्ष भी थे, लेकिन अव्वल तो उनका कटवाना आसान नही था, दूसरे नगरपालिका जगलो को नष्ट नही होने देना चाहती, इसलिए काटने की इजाजत नही देती।

१६ जुलाई को योगिराज दो और सज्जनो के साथ आए। उनमे से एक ने कहा, थोडे ही दिनो बाद यहाँ चीते और बघेरे आने लगेंगे। इसका अर्थ *था, हमे हथियार के लाइसेंस के लिए दर्खास्त देनी होगी, एक बन्दूक और* एक पिस्तौल साथ मे जरूर रखनी चाहिए। एकान्त बँगले मे कुत्ते का रहना भी आवश्यक है। इन सबसे बढकर फिकर यह थी कि नैनीताल म आशिक कट्रोल था, और यहाँ आहार की हरेक चीज पर पूर्ण। १७ जुलाई तक पता लगा, अब चौथाई सैलानी ही रह गए हैं। मसूरी मे बरसात से पहले दूसरे सैलानी जगह खाली करके चले जाते हैं, उनम से किसी किसी के बीवी बच्चे भर रहते हैं। वर्षा के आरम्भ होते ही फिर पजाब के सैलानियो का सीजन आरम्भ होता है। अब वही ज्यादातर दिखाई पड रहे थे। किताबो का बक्स या कोई और सामान उठाकर हम कुली के साथ आ रहे थे। कुली टेहरी का सन (राजपूत) था, बिल्कुल अनपढ। उसके मुह से ब्राह्मणो का जबर्दस्त विरोध सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ। उत्तर भारत म ब्राह्मण और राजपूत का चोली दामन का सबध है—"मनतुरा हाजी बगोयम

तू मरा हाजी बगो"। दोनो एक दूसरे की हा मे हाँ करने के लिए तैयार थे। यह बेसमय की रागिनी कैसी ? लेकिन, इसका कारण था। टेहरी राजा निरकुश तानाशाह था। वह प्रजा का जरा भी सिर उठाते देखना नही चाहता था। इसी निरकुशता की बलि सुमन का तरण जीवन हुआ। भवितव्यता के सामने भी उसने खुशी मे सिर नही झुकाया, बल्कि इसके लिए सकलानी और उनके साथी का शहादत का जाम पीना पडा। पर, अंग्रेजो के निकल जाने पर उनके दत्तक पुत्र कैसे टिक सकते थे ? टेहरी रियासत का विलीन होना ही पडा। निरकुशता के खिलाफ प्रजा के आन्दोलन के अगुवा मे राजपूत भी थे, लेकिन शिक्षा म बढे होने के कारण ब्राह्मणो का आगे रहना स्वाभाविक था। राजा के चरण धाने चूमने वालो मे भी ब्राह्मणो की कमी नही थी। राजा ने यह प्रचार करना शुरू किया कि ब्राह्मणो ने हमारे हजार वष पुराने राजवश को उच्छिन्न करवाया। आगे कौसिला और पार्लियामटका चुनाव होने वाला था, उसका खयाल करके यह प्रचार और भी जोर शोर से हो रहा था। उसका प्रभाव कितना दूर तक पहुँच चुका था, इसका प्रमाण उस दिन हम उस कुली के मुह से सुन रहे थे।

यहाँ हफ्ते भर तक कभी कभी बूदा बाँदी हो जाती थी, नही ता वर्षा का नाम नही था। १८ जुलाई को मूसलाधार नही सूपाधार वर्षा होने लगी, जैसे आसमान मे सूप करोडो सूप मे भरकर पानी नीचे फेंका जा रहा है। बरांडे मे कई जगह छत चूने लगी। वहाँ से चीजे इधर-उधर हटाइ। एक दिन टाट को गन्दा देखकर बाहर सूखने के लिए रखा। वह रात को न हटाने के कारण वर्षा से बिल्कुल भीग गया। अब उसे सूखने मे न जाने कितने दिन लगेंगे और बाहर रख भी नही सकते थे। एक शयनकक्ष के पूरे हाल को ढकने भर के लिए वह टाट था। वही उसे बिछा दिया। डर तो लग रहा था कि भीगा है, सड जाएगा, लेकिन रामवास की रस्सी का टाट जल्दी सडना नहीं जानता। जहा सफेद फफूदी आ गई थी, वहाँ भी नही सडा और बिछा बिछा सूख गया।

१८ जुलाई को महारानी कमलेन्दुमती ने हनक्लिफ की मेरे नाम बेची

रजिस्ट्री कर दी। मैं नही गया, डा० सत्यकेतु ने सब काम करा लिया। कोई विवाद होने पर सारी जिम्मेवारी हमारे ऊपर रखने की शर्त लगवाई गई थी, जिसे मैंने निकलवा दिया। उसी दिन से डा० सत्यकेतु ने अपने पुराने नौकर मातबरसिंह को रसोई बनाने के लिए हमारे पास भेज दिया। यहाँ मिले नौकरो मे वह सबसे अच्छा था। ईमानदार था, काम करने मे आलसी नहीं था, और बिना कहे काम को करता जाता था। हा रसोई उतनी अच्छी नही बना सकता था, और वेतन भी अधिक था।

मैं भी कभी शीर्षासन किया करता था। योगिराज ने शीर्षासन और हलासन की तारीफ की, तो फिर १६ जुलाई का मैंने शुरू कर दिया। लेकिन बहुत दिनो तक चला नहीं। वस्तुत बाहर टहलने से बचने के लिए हमारे मन ने यह बहाना ढूढा था, और पीछे उसने यह भी कह दिया अब डायबेटीज तो जीवन भर के लिए साथ हो गई है, इसलिए इससे क्या फायदा?

धीरे धीरे हम हनविलफ के वासी और मसूरी के निवासी हो गए। वहा की चीजें कुछ दिनो तक नई सी दीखती रही पीछे उनका नयापन भी जाता रहा। कमला का स्थान के प्रति स्नेह बहुत सूक्ष्म गति से कम होने लगा। वह तपस्विनी होने के लिए नही पैदा हुई थी, और न जन्मजात घुमक्कड थी।

## २४

# मसूरी का प्रथम निवास

१९४३ म मैं पहले पहल मसूरी आया था, और मानसरावर जाते तिब्बत की सीमा के पास के नेलग गाँव से जल्दी जल्दी मजिल मारता यहाँ पहुँचा था। मेरे साथ नेलग गाव का एक तरुण था उसके परिचित किशन सिह लण्ढौर बाजार मे रहते थे। उन्होने अपनी छोटी-सी दूकान और निवास की कुटिया का दिखलाकर कहा था—"तकलीफ तो हागी, लेकिन यह कुटिया हाजिर है।" उन्हाने कुछ ऐसे स्वर मे ये बातें कही थीं कि मैं उन्ही के पास ठहर गया। कुटिया हा या महल, सब जगह आनन्दपूर्वक रहना घुमक्कड के लिए आवश्यक चीज है मैं उसका अभ्यस्त था। किशन-सिह की फिर याद आई, और २४ जुलाई का कमला के साथ हम घूमते उनके पास गए। मसूरी मे उन्ह मैंने सदा अपने स्वजन बन्धु सा पाया। किशनसिह् कनौर के कनम् गाव के रहनवाले थे। अपने भाई वन्दा की तरह व्यापार के कारण वह भी तिब्बत कइ बार गये, और वहा की भाषा को अपनी मातभाषा की तरह बोलने लगे। घुमक्कडी म बढते बढते पैर उन्ह यहा लाया द्विपाद से चतुष्पाद हो गये, आगे षट्पद और अष्टापद हुए। जीविका के लिए दूसरे खम्बा भोटियो की तरह उन्होने भी सूई धागा, चाकू कैंची, साबुन और इसी तरह की सस्ती चीजो की छोटी सी दूकान खोल ली। सीजन के वक्त उनकी पत्नी क्यूरिया का सामान लेकर होटलो मे

साहवो के पास भी जाती, लेकिन अग्रेजा के चले जाने पर अव इन चीजो के ग्राहक वहुत कम थे। जाडो म वह दिल्ली मे रहते थे। वहा यूरोपियन ज्यादा थे जा तिब्बत और चीन की इन कलापूण चीजा को पसन्द करते थे। मसूरी म १० १५ खम्बा तिब्बती परिवार थे, जो पहले से ही यही काम करत आय थे। किशनसिंह ने भी वही जीवन अपनाया था। किसी तरह गुजारा कर लेत थे। किशनसिंह से मिलकर फिर लण्ढौर बाजार के अतिम सिरे तक गये। मकान म बढई से कुछ काम करवाना था, पूरनसिंह हाशियारपुरी अपने पुत्र के साथ आने क लिए तयार हुए। कई सीसे टूट गये थे, लकडी की चीजो म भी मरम्मत करनी थी छत कही कही चूती थी, ओट हौस की बुरी हालत थी। दरअसल इस घर की मरम्मत नाम मात्र की ही हा पाई थी। उस दिन लण्ढौर से हम वहुत सी चीजें खरीदकर लाये। मसूरी म लण्ढौर, कुलहडी और किताबघर तीन बाजार हैं, जिनमे लण्ढौर ही बारहा महीन का है, क्योंकि यह सिफ सैलानियो पर निभर नही रहता, बल्कि आस पास के पहाडी गावा के लोग भी यहाँ चीज खरीदने आते है। पहाडो की तरफ भी अब मोटर-सडकें बन रही हैं, अब वहुत से गाहका से लण्ढौरवाला का हाथ धोना पडेगा। उस समय अग्रेजा क जाने पर भी उनके सम्बन्ध की वहुत-सी चीजें बिक रही थी। फौज का बकार का सामान और दवाआ का ढेर लगा हुआ था, अग्रेजी किताबें और अग्रेजो के दूसरे सामान भी बिक रहे थे मैंने एक पीठ पर का सैनिक थाला भी ले लिया, जिसम १५ सेर सामान आसानी से आ सकता था। सोच रहा था, अगले साल "गढवाल" के सिलसिले म बदरीनाथ जाना पडेगा उस वक्त यह काम आयेगा। घुमक्कडी ता मैं कर चुका था, लेकिन मेरी यह लालसा अपूण ही रही कि सब सामान अपनी पीठ पर रखकर चला जाए। जिन्दगी म सिफ एक बार कुछ दिना के लिए पहली तिब्बत यात्रा म ऐसा मौका मिला था। लेकिन, सामान जरूरत से कुछ अधिक था, और मुझे बोझा ढोने का अभ्यास नही था। समझता था, अब अभ्यास करके शायद उसे पूरा किया जा सके। बहुत पहले घुमक्कडी म पैर रखते ही यही साथ मे साथ इस

श्लोक को पढा था "एकाकी निस्पृह शान्त पाणिपात्रो दिगम्बर । कदा भविष्यामि ।" पाणिपात्र और दिगम्बर बनकर प्राथना करने की साध तो अब नही रह गई थी, पर इसकी साध जरूरी थी कि सब सामान अपनी पीठ पर रखकर घूमता । लेकिन, यह क्या उस समय सोचने की बात थी, जब कि मैं घर बाध चुका था, और कोई कह, "न गृह गृहमित्याहु गृहिणी गृहमुच्यते ।" तो गृहणी भी गृह के साथ आ गई थी । कमला के साथ परिचय और घनिष्टता दूसरी स्थिति और दूसरे उद्देश्या से हुई थी । पर, वह घनिष्टता अब दूसरे रूप मे परिणत होनेवाली थी । मैं जब दोनो की आयु का ख्याल करता, तो हिचकिचाता था, समझता था, कमला को सुशिक्षित कर अपने पैरो पर खडा कर देना ही ठीक होगा । पर, जब अपने देश के समाज को देखता तो यह नीचे दर्जे का स्वाथ मालूम होता । आखिर कमला और मेरे साथ रहने को समाज किस अथ म ले रहा था, इसकी यदि मुझे पर्वाह नही थी, तो यह ता देखना ही था कि दूसरो की टीका-टिप्पणिया का कमला के ऊपर क्या असर होगा । यह सब देखते घुमक्कडी का ख्वाब अब बिल्कुल बेकार की बात थी ।

२४ को ही सरदार पूरनसिंह अपने लडके के साथ काम करने के लिए चले आए, और कई दिनो तक काम करते रहे । बगले के कुछ सामान उठ गये थे, लेकिन तो भी काफी सामान थे । गद्दीदार कई कुर्सियां मरम्मत के बिना बेकार थी, दो-तीन छोटी छोटी मेजें भी गोदाम से निकल आईं । फर्नीचर की मरम्मत के बाद छत को भी रँगना आवश्यक समझा गया । हमारे बगले की छत बिना रँगी थी । गुणिया ने बतलाया कि रग देने पर लोहे की चादरें मुर्चे से भी बच जाती हैं, उनकी आयु बढ जाती है । खैर, छ वष ता अभी इन चादरा को बदलवाने की जरूरत नही पडी, क्या जाने यह रँगने ही के प्रताप से हुआ । श्री सेनगुप्त अब भी इलाहाबाद मे परि-भाषा का काम कर रहे थे । मैं उसकी देखभाल कर लिया करता था, पर प० बलभद्र मिश्र के हट जाने के बाद मुझसे कोई आशा नही रह गई थी । सेनगुप्त को वहा युनिवर्सिटी मे रूसी पढाने का काम मिल रहा था, मेरी

भी इसम सहमति और सहायता रही। अब वह युनिवर्सिटी म चले गये। लेकिन, उसक बाद भी उ्होने काम से हाथ नही उठाया। कलिम्पा म तैयार किये हुए हमारे कोशो मे से कितन उनकी ही सावधानी के कारण अच्छी तरह छप सके।

मेरी दो-तीन पुस्तकें गुजराती मे अनुवादित हो चुकी थी। अहमदाबाद के श्री नवनीतलाल मद्रासी गुजराती प्रकाशन का काम करते थे, और मेरे मित्र प० भागवताचाय के स्नहपात्र थे। उ्होने कुछ और पुस्तकें गुजराती मे अनुवाद करके प्रकाशित करनी चाही। मैंने अनुमति दे दी और 'जय यौधेय'', 'सिंह सेनापति'', ''मधुर स्वप्न'', ''जादू का मुल्क'' आदि कई पुस्तके उ्होन प्रकाशित की। उनके पत्र से मालूम हुआ कि आजकल प० भागवताचाय जी अफ्रीका गये हुए है। स्वामी सहजान द और स्वामी भागवताचाय म कितनी ही बातें एकसी थी। दोनो ही मेरे स्नह और सम्मान के एकसे भाजन थे। दोना ही सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। राजनीति मे भी दाना आगे बढे हुए थे, पर स्वामी सहजान द जहाँ मजूरो-किसाना के बिल्कुल अपने हो गये थे, वहाँ भागवताचाय जी गा धीजी क मानवतावाद तक पहुँचे थे। उ्होन सस्कृत मे गा धीजी की पद्यबद्ध जीवनी 'भारतपारिजातम्'' तीन भागा म लिखी थी।

इस समय वाई० डब्लू० सी० ए० (तरुण महिला क्रिश्चियन सभा) म कई देशा की महिलाओ का क्लास हो रहा था। डा० पा चाउ स उ ह मेरे बारे मे मालूम हुआ, और उन्होंने मुझे व्याख्यान देन के लिए कहा। इसमें कोई उजुर नही हो सकता था, विशेषकर जब कि इसके द्वा[illegible] के
बहुत से भागों की महिलाओ[illegible] का मौका मिल[illegible]
भारत म अंग्रेजी म व्याख्यान [illegible] करता। [illegible]
की हीनता का मान समझ लोग [illegible] भाषा हान
मे गुलामी का चि ह समझकर [illegible]
हि दी जान [illegible]
इ कार म [illegible] यदि
है

या पत्र-व्यवहार करने के लिए अंग्रेजी के व्यवहार में मुझे कोई आपत्ति नहीं। यहाँ भी आखिर जापान, इंडो चायना, फिलिपीन, सीलोन आदि की महिलाएँ थीं, जो अंग्रेजी ही समझ सकती थीं, इसलिए मैंने उनके यहाँ भाषण देना स्वीकार कर लिया और भाषण दिया भी।

हमारे नीचे का "हन लाज" बंगला जान लेडली के पिता की संपत्ति थी। बैंक के मैनेजर बूढ़े लेडली थे। अवकाश प्राप्त करने पर मसूरी में "हन लाज" और "आर्टेन" दो बंगलों को लेकर यहीं रहने लगे। "आर्टेन" में लेडली पिता पुत्र रहते, और "हन लाज" में एक शरणार्थी सरदार दो-तीन सालों से रह रहे थे। वह पूरा सिक्ख थे। कूका गुरु रामसिंह और उनके शिष्यों ने देश के लिए कितना आत्मबलिदान किया, यह सभी को विदित है। उनके सैकड़ों शिष्यों को गोली से उड़ा या फाँसी देकर गुरु रामसिंह को अंग्रेजों ने बर्मा भेज दिया। शिष्यों ने प्रतिज्ञा की कि हम अंग्रेजों की कचहरियों में नहीं जाएँगे, हम अंग्रेजों की रेलों पर नहीं चढ़ेंगे, इत्यादि। और इसका उन्होंने भारत के स्वतन्त्र होने तक निर्वाह किया। सरदार से जब तब बातचीत हो जाती थी, पर उनका ज्ञान और रुचि सीमित थी, इसलिए हम मामूली बातों तक ही सीमित रहते। उन्होंने बतलाया, यहाँ बघेरे तो हैं, और जाड़ों ही नहीं, गर्मी बरसात में भी रात को आ जाते हैं, लेकिन अभी तक उन्होंने किसी मानव पुत्र को कोई कष्ट नहीं दिया, न उस पर हमला किया। हाँ, कुत्तों को वह बिल्कुल नहीं छोड़ते। अपने एक कुत्ते के बारे में बतला रहे थे, अभी सूर्य बिल्कुल डूबा भी नहीं था। लड़के जंजीर में बँधे कुत्ते को खाना खिला रहे थे। इसी समय न जाने कहाँ से वह टूट पड़ा और उसे लेकर चम्पत हो गया। हमारे ऊपर की कोठी "हन हिल" वर्षों से सूनी थी। एक ओट हौस दुमंजिला था, और एक कई कमरों का एकमंजिला नौकरों के लिए। इन कमरों में चौकीदार के अतिरिक्त धोबी, नाई और सीज़न के वक्त में दूसरे भी काम करनेवाले रहते। धोबिन के कई कुत्ते बघेरा ले गया था। कुत्ते और बघेरे के इस सम्बन्ध को सुनकर हमने सोचा, तब कोई महँगा कुत्ता नहीं लेना चाहिए।

भी इसमे सहमति और सहायता रही। अब वह युनिवर्सिटी मे चले गये। लेकिन, उसके बाद भी उन्होने काम से हाथ नही उठाया। कलिम्पोग मे तैयार किये हुए हमारे कामो मे से कितने उनकी ही सावधानी के कारण अच्छी तरह छप सके।

मेरी दो-तीन पुस्तकें गुजराती मे अनुवादित हो चुकी थी। अहमदाबाद के श्री नवनीतलाल मद्रासी गुजराती प्रकाशन का काम करते थे, और मेरे मित्र प० भागवताचार्य के स्नेहपात्र थे। उन्होने कुछ और पुस्तकें गुजराती मे अनुवाद करके प्रकाशित करनी चाही। मैंने अनुमति दे दी, और "जय यौधेय", ' सिंह सेनापति", "मधुर स्वप्न", "जादू का मुल्क" आदि कई पुस्तकें उन्होने प्रकाशित की। उनके पत्र से मालूम हुआ कि आजकल प० भागवताचार्य जी अफ्रीका गये हुए हैं। स्वामी सहजानन्द और स्वामी भागवताचार्य मे कितनी ही बातें एकसी थी। दोनो ही मेरे स्नेह और सम्मान के एकसे भाजन थे। दोनो ही संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। राजनीति मे भी दोनो आगे बढे हुए थे, पर स्वामी सहजानन्द जहा मजूर-किसानो के बिल्कुल अपने हो गये थे, वहा भागवताचार्य जी गाधीजी के मानवतावाद तक पहुँचे थे। उन्होने संस्कृत मे गाधीजी की पद्यबद्ध जीवनी ' भारतपारिजातम्" तीन भागो मे लिखी थी।

इस समय वाई० डब्लू० सी० ए० (तरुण महिला क्रिश्चियन सभा) मे कई देशो की महिलाओ का क्लास हो रहा था। डा० पो चाउ से उन्हे मेरे बारे मे मालूम हुआ, और उन्होने मुझे व्याख्यान देने के लिए कहा। इसमे कोई उजुर नही हो सकता था, विशेषकर जब कि इसके द्वारा एसिया के बहुत से भागो की महिलाओ से भेट करने का मौका मिल रहा था। पर भारत मे अंग्रेजी मे व्याख्यान देना मैं पसन्द नही करता। इसमे एक तरह की हीनता का भान समझ लीजिए, या अंग्रेजो की भाषा होने से अपने देश मे गुलामी का चिन्ह समझकर उसके उपयोग मे आत्मग्लानि होती है। हिन्दी जाननेवाला यदि अंग्रेजी मे पत्र लिखता, तो मैं उसका जवाब देने से इन्कार कर देता। लेकिन, यदि कोई अंग्रेजी ही जानता है, तो उससे बोलने

या पत्र-व्यवहार करने के लिए अंग्रेजी के व्यवहार मे मुझे कोई आपत्ति नही। यहाँ भी आखिर जापान, इडो चायना, फिलिपीन, सीलान आदि की महिलाएँ थी, जो अंग्रेजी ही समझ सकती थी, इसलिए मैंने उनके यहाँ भाषण देना स्वीकार कर लिया और भाषण दिया भी।

हमारे नीचे का 'हन लाज" बगला जान लेडली के पिता की सपत्ति थी। बैंक के मैनेजर बूढे लेडली थे। अवकाश प्राप्त करन पर मसूरी मे "हन लाज" और "आर्टेन" दो बगलो को लेकर यही रहन लगे। "आर्टेन" मे लेडली पिता पुत्र रहते, और "हन लाज" मे एक शरणार्थी सरदार दो-तीन सालो से रह रहे थे। वह कूका सिक्ख थे। कूका गुरु रामसिह और उनके शिष्यो ने देश के लिए कितना आत्मबलिदान किया, यह सभी को विदित है। उनके सैकडो शिष्या को गोली से उडा या फासी देकर गुरु रामसिह को अंग्रेजो ने वर्मा भेज दिया। शिष्यो ने प्रतिज्ञा की कि हम अंग्रेजा की कचहरिया मे नही जाएँगे, हम अँग्रेजो की रेला पर नही चढेगे, इत्यादि। और इसका उन्होने भारत के स्वतन्त्र होन तक निर्वाह किया। सरदार से जब तब बातचीत हो जाती थी पर उनका ज्ञान और रुचि सीमित थी, इसलिए हम मामूली वाता तक ही सीमित रहते। उन्होन बतलाया, यहाँ बघेरे तो है, और जाडो ही नही, गर्मी वरसात मे भी रात को आ जाते हैं, लेकिन अभी तक उन्होंने किसी मानव पुत्र को कोई कष्ट नही दिया, न उस पर हमला किया। हा, कुत्तो को वह बिल्कुल नही छोडते। अपने एक कुत्ते के वारे म वतला रहे थे, अभी सूय बिल्कुल डूबा भी नही था। लडके जजीर म बँधे कुत्ते का खाना खिला रहे थे। इसी समय न जाने कहा से वह टूट पडा और उसे लेकर चम्पत हो गया। हमारे ऊपर की कोठी "हन हिल" वर्षों से सूनी थी। एक औट हौस दुमजिला था, और एक कई कमरा का एकमजिला नौकरो के लिए। इन कमरो मे चौकीदार के अतिरिक्त धोबी, नाई और सीजन के वक्त में दूसरे भी काम करनवाले रहते। धोबिन के कई कुत्ते बघेरा ले गया था। कुत्ते और बघेरे के इस सम्बन्ध का सुनकर हमने सोचा, तब कोई महँगा कुत्ता नही लेना चाहिए।

लेकिन, कुत्ते के लिए अपनी जान तो महँगी ही होती है। खैर, अभी कुत्ता लेने म देर थी। किशनसिंह से कह रखा था कि एक हमारे लिए भी ढूढ रखे। उनके पास एक सुन्दर तिब्बती कालीन पडा हुआ था। कमला उसका जरूरत नही बतला रही थी, लेकिन किशनसिंह की हम कुछ सहायता करना चाहते थे इसलिए सौ रुपये पर उसे ले आए।

पिछले साल चूक जाने का अफसोस था। इस साल कमला का विशारद की परीक्षा अवश्य दिलवानी थी। चाहे इसके लिए इलाहाबाद ही जाना पडता। मालूम हुआ, देहरादून म भी परीक्षा केन्द्र है। हमने दोनो जगह फार्म भरवा दिया। कमला पहले ही से कुछ तैयारी कर रही थी। साल भर से रात-दिन वह हिन्दी ही बोल रही थी, हिन्दी पुस्तको का पढ भी रही थी, मेरी नई पुस्तको को वही टाइप भी करती थी, इसलिए भाषा का ज्ञान उनका काफी था, अब पुस्तको को तैयार करना था।

"हन विलफ" मे रहने के लिए हथियारो की जरूरत थी मैंने एक रिवाल्वर और एक बन्दूक के लाइसेस के लिए दर्खास्त दे दी। पुलिस इसके बारे मे जाँच कर रही थी। पुलिस क्या खाक जाँच करती ? राजनीतिक दृष्टि से मैं पूरा अविश्वसनीय था। विश्वसनीय होने पर भी पैसेवाले को ही अंग्रेज हथियार दिया करते थे। यदि पैसा नही है, तो यह तक दिया करते थे कि उसे किस चीज की रक्षा करने की जरूरत है। देश को परतन्त्र रखने के लिए उन लोगो को निहत्था रखना भी उनके लिए जरूरी था। स्वतन्त्र भारत के शासन सूत्रधार अंग्रेजो की बनाई लकीर से जरा भी हिलने-डुलनेवाले नही हैं। मालूम होता है, वह भी हमारी जनता से उतना ही डरते है, जितना अंग्रेज डरते थे। डरना भी चाहिए, क्योकि उनका शासन जनता के हित के लिए नही, बल्कि कुछ मुट्ठी भर चोरबाजारी सेठो, और घूसखोर मन्त्रियो नौकरशाहो के लिए है। अंग्रेजो से स्वतन्त्रता की माँग करते, कांग्रेस मे प्रस्ताव करते थे कि हर स्वतन्त्र देश के नागरिक को हथियार रखने का अधिकार है, इसलिए हथियार के कानून को रद्द करना चाहिए। पर अब वह प्रस्तावकर्ता अगर जिन्दा भी हैं, तो यह मानने के

लिए भी तैयार नही है कि वह कभी ऐसी माग करते थे। यदि स्वतन्त्र नागरिक के लिए अपनी रक्षा के लिए बन्दूक और पिस्तौल का रखना नागरिक के हक के तौर पर उचित है और ऐसा दूसरे देशो मे देखा भी जाता है, तो हथियार के कानून को क्यो नही उठा के ताक पर रख दिया जाता, और बन्दूक तथा पिस्तौल को भी लाठी छूरे की तरह माना जाता ? इन हथियारो के दाम इतने है कि गरीब स्वय इन्हें नही खरीद सकते। और मन्त्रियो और प्रभुओ को जैसे-तैसे आदमियो के हाथो मे इनके जाने से डरना भी नही चाहिए क्योकि जैसे तसे आदमी अगर किसी की जान लेने के लिए तैयार है, तो हथियार का कानून उनको रोक नही सकता। क्या गोडसे को उसने रोका ? क्या हमारे देश के भिन्न भिन्न भागो मे लूट-मार करनेवाले सैकडो डाकुओ को आधुनिकतम पिस्तौलो, बन्दूको ही नही, बल्कि लुइस गनो के पाने से वचित किया ? जनता को निहत्थी रखकर बल्कि उसे इन हथियार लेकर घूमनेवाले लुटेरो की दया पर छोड दिया जाता है। किसी भी दृष्टि से देखने से अब हथियार के कानून की आवश्यकता नही थी, लेकिन किसी तरह भी सोचने से यह आशा नही कि आज की सरकार इसमे जरा भी ढिलाई करेगी।

खैर, इस समय तो देश के लिए नही, बल्कि अपने लिए हथियारो की आवश्यकता थी। पुलिस की रिपोर्ट पर वह नही मिल सकती थी। यद्यपि मैं छ-सात हजार रुपये की आमदनी पर टैक्स दे रहा था, और इस प्रकार रक्षा पाने का हक था। उस समय श्री लालबहादुर शास्त्री युक्त प्रान्त मे गृह विभाग के मन्त्री थे। उनके पास मैंने चिट्ठी लिखी "मैं ऐसी जगह रहता हूँ जहाँ हथियार की जरूरत है। पुलिस क्या मेरे बारे मे जाँच करके मालूम करेगी। आप मुझे और मेरे राजनीतिक विचारो को भी ज्यादा अधिक जानते हैं। यह बतलाइये कि लाइसेन्स देने की मनसा है या नही।" लाल-बहादुर शास्त्री वैसे तो बहुत हल्के फुल्के मुट्ठी भर के आदमी हैं। शिक्षा के लिए भी उन्हें आक्सफोर्ड या केम्ब्रिज तो दूर यहाँ के किसी विश्वविद्यालय का भी मुह देखना नही पडा, वह काशी विद्यापीठ मे पढे। लेकिन, न

काबुल मे गदहो का अभाव होता है, और न दूसरी ही जगहो मे। लाल-बहादुर शास्त्री के विचारो से सहमत होना न मेरे लिए जरूरी था, न मेरे विचारो से सहमत होना उनके लिए, पर मैं अच्छी तरह उनके मूल्य को जानता था, और वस्तुत इसीलिए मैंने उन्हे सीधे लिखा था। नौकरशाही लाल फीते से बचना तो मुश्किल था, लेकिन अगर किसी आदमी म उसकी अवहेलना की शक्ति थी, तो वह लालबहादुर शास्त्री थे। उन्हाने ऊपर से हुकुम दिया। मुझे बन्दूक का लाइसेन्स मिल गया और कुछ दिनो बाद पिस्तौल का भी लाइसेन्स आ गया।

६ अगस्त को श्री आनन्दजी के शहर अम्बाला के लाला सूयमानजी आये। वह गाँधीवादी और आनन्दजी के पुराने नाम हरनामदास से कुछ परिचित भी थे। आदशवाद की पुट तो जीवन म थी। अम्बाला क बाहर कितनी ही एकड जमीन थी, जिसम साम्यवादी परिवार क बसाने का स्वप्न देखत थे। उस समय ख्याल कर रहे थे, यही पास के "हन हिल" बगले को लेकर उसकी काफी जमीन मे खेती बारी करके रह। लेकिन, कहावत है "अल्ला मिया गजे का नाखून नही देता। नही तो वह अपनी चाँद हा कुरेद डाले।" मेरे मन मे भी तरह तरह के स्वप्न आते थे, जिनम एक स्वप्न को अभी अभी मकान के खूटे से बाधकर पूरा किया। अगर लाख रुपये और मिल जाते, तो इसमे शक नही कि "हन हिल", 'क्लिडेर" और 'हन ली" को भी खरीद डालते। साचते यहाँ साहित्यकार मित्र आकर रहे। ऐसा करने मे मेरा अनुभव शायद महादेवीजी से बिल्कुल भिन्न नही होता, लेकिन, अल्ला मियाँ ने नाखून न देकर अच्छा ही किया।

७ अगस्त १९५० मेरे लिए बहुत ही स्मरणीय दिवस था। उसी दिन मुझे जन्म जन्म के बिछडे मित्र की तरह एक बन्धु से साक्षात्कार करने का मौका मिला। स्वामी हरिशरणानन्दजी जन्मजात घुमक्कड थे। यह समान गुण हम दोनो मे एक सा था। यागिराज विट्ठलदासजी के साथ वह पहले भी एक दिन आए थे, लेकिन उस दिन उनसे परिचित हाने का मौका नही मिला था। आज वह अपनी पत्नी जानकीदवी के साथ आए। फिर उनसे

बात करने, उनके बारे मे जानने का मौका मिला। यद्यपि मुझे उन्हाने देखा नही था, पर मेरी पुस्तको के पढने से मेरा काफी परिचय रखते थे। पहले मैंने यही समझा कि वह दुगम पहाडो के जबदस्त घुमक्कड रहे हैं, एक सफल वैद्य है, पीछे कुछ ही दिना म जब उनकी आयुर्वेद सम्बन्धी पुस्तकें पढी, तो यह भी मालूम हुआ कि वह कूपमडूकता से बहुत दूर हैं, और राजनीतिक-सामाजिक विचार भी बहुत आगे बढे हुए रखते हैं। इसके बाद तो हमारी घनिष्टता दिन पर दिन बढती गई। मैं उन्ह भैया कहने लगा। मैं अपने घर मे सबसे बडा लडका था और पास पडोस के परिवार मे भी कोई मुझसे बडा नही था। गोया मैं किसी बडे भाई का ढूढ ही रहा था, और वह स्वामी हरिशरणानन्द के रूप मे मिल गए। वह हर साल मसूरी आते और कई महीने रहते थे। उस समय बडा मन लगता, पुस्तको के काम को छोडने मे भी दु ख नही होता। हफ्ते मे एक दिन जरूर मैं उनके यहाँ जाता और वह भी मेरे यहा आते। वह मुझसे कही अधिक व्यावहारिक थे, यह कहना उनके गुणो का कम करना होगा। आदशवादी रहते भी जितनी व्यावहारिकता रह सकती है, वह सारी की सारी उनके भीतर मौजूद थी। मैं तो इसमे अपने को कोरा समझता हूँ यद्यपि अबुद्धिवादी न होने के कारण उससे मुझे उतनी हानि नही उठानी पडी।

स्वामी हरिशरणानन्द की जीवनी अलग लिख चुका हू, इसलिए उनके बारे म विस्तार से यहाँ कहने की आवश्यकता नही। वह कानपुर मे मुझसे दो-तीन साल पहले पैदा हुए। माँ पहले मर गईं, पिता भी बचपन ही मे चल बसे। साधुओ के सम्पक म आए। अयोध्या मेले मे गए, और साधु हो हरिदास बन गए। ८वी ६वी क्लास तक स्कूल म पढे इसलिए उनको ज्यादा सस्कृत गुरु और समाज की आवश्यकता थी। घुमक्कडी देश दिखाने की और सुनी सुनाई बातो से योग के प्रति अनुराग योगी बनने की प्रेरणा दे रहा था। घुमक्कडी करते हरद्वार मे उन्हें एक योगिराज से परिचय हुआ। योगिराज वैष्णव सखी मत के थे, पर रूढिवादी नही थे। उन्हाने अपने सम्प्रदाय के सम्बन्ध को दिखलाने के लिए दास को हटाकर हमारे मित्र का

शरण बना दिया। बहुत पीछे जब पजाब मे रहने लगे और देखा कि गरुआ और आनन्द का ज्यादा मान है, तो भाई साहब हरिशरणानन्द बन गए, लेकिन यह बहुत पीछे की बात है। उन्होंने मानसरोवर और हिमालय के दूसरे कठिन स्थानो की यात्राएँ की। योग सिद्धि के लिए ऐसे जगल के एक पेड पर जाकर महीनो के लिए बैठ गए। रात को हाथियो का झुण्ड चरने के लिए वहा से निकलता था। गध लगी, तो पेड को हिलाना शुरू किया, लेकिन पेड एक हाथी के मान का नही था। एक बार हिलाने से मिट्टी का घडा ऊपर से गिरा। दतल हाथी को मालूम हुआ, कोई बम ही गिरा रहा है इसलिए वह जान लेकर भागा। उनके पेड के पास ही गगा बहती थी, और जहा बहुत चट्टानें पडी हुई थी। एक दिन हाथी का छोटा बच्चा उसमे फँस गया। हाथियो ने उसे निकालने की बहुत कोशिश की। पौ फटते देख वह उसे छोडकर चले गए। भाई साहब ने अपने दूध देने वाले ग्वालियो को उसे पोसने के लिए कह दिया। वह पुसता रहा, पर पीछे पूरी परवरिश न होने पर मर गया। गगा के पार के इन जगलो मे हमारे योगिराज इसलिए आए थे कि उन्हें भक्त लोग दिक नही करेंगे, लेकिन दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई से योगियो की टोह मे आये लोगो को पेड वासी योगिराज का पता क्यो न लगता? मन की एकाग्रता करने मे तरुण योगिराज को काफी सफलता मिली थी, पर अब स्थान एकान्त नही रह गया था। वह जमुना के किनारे पौंटा के पास कुटिया मे अभ्यास करने लगे। कुटिया क्या सापो की मढी थी। विश्वास था अहिंसा मे प्रतिष्ठित होने पर सभी प्राणियो से द्रोह या डर नही रहता, जो सरासर झूठी बात थी। भला भेडें बेचारी किसके खिलाफ हिंसा करती हैं, बकरिया किसका अनभला चाहती हैं लेकिन यह जगली रहने पर हिंस्र पशुओ के लिए स्वाभाविक भक्ष्य हैं और ग्राम्य होने पर नागरिको के लिए। सयोग समझिए जो भाई साहब को किसी विषधर ने नही सूघा। ध्यानावस्थ होते वक्त एक बार साप उनके ऊपर गिरा। उसकी मानसिक प्रतिक्रिया ऐसी हुई कि फिर वह अभ्यास मे नही जुट सके। कोशिश करते, तो मन मे ऐसी विह्वलता पैदा होती कि जान पडता

अब उससे हाथ धोना पडेगा। योग का रास्ता उन्होंने छोड़ दिया।

अब केवल घुमक्कडी उनके सामने थी, लेकिन उसके साथ ही उनका मन भिखमगी से विद्रोह करता रहता था—"तुलसी कर पर कर धरा, कर तर कर न धरा।" उन्हें खयाल आया, वैद्यक स्वावलम्बी बनने के लिए सबसे अच्छा साधन है। लाहन में रहते वैद्यक की परीक्षा पास कर ली। इसके बाद घुमक्कडी और चिकित्सा करने से भी अधिक आयुर्वेद की पुस्तकों की खोज उनका लक्ष्य हो गया। कथा-सक्षेप करते कहें—"पर्यटन् विविधान् लोकान्" वह एक समय अमृतसर पहुँचे। जलियाँवाला बाग में सभा हो रही थी। अपने एक चिरमित्र के साथ वहाँ पहुचे। मित्र (वैष्णवदास) वही शहीद हुए। स्वामी हरिशरणानन्द को कुछ अपने मित्र की स्मृति सताने लगी, और उससे भी अधिक नई राजनीतिक चेतना और देश की आजादी की आकाक्षा दिल मे लहरें मारने लगी। अब वह पजाब के हो अमृतसर मे रहने लगे। कांग्रेस मे काम किया, एक से अधिक बार जेल गए। चिकित्सा करते-करते आयुर्वेदिक दवाओं के बनाने की ओर ध्यान गया, और उन्होंने पजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के नाम से अपने तरह की पहली फार्मेसी खोली। समय इसके अनुकूल था, फार्मेसी का काम बढा। उन्होंने आयुर्वेद की परीक्षा देते समय सोचा था कि मैं लखपति बन जाऊँ, तो आर्थिक चिन्ता से मुक्त हो जाऊँगा। लखपति बनने मे उन्हें देर नहीं लगी, और वह और भी बढ सकते थे, लेकिन, पैसा कमाना उनका मुख्य ध्येय नही था, यह भी कहा जा सकता है कि विज्ञापन के आधुनिक साधनों को पूरी तरह न अपनाकर उन्होंने अपने को अव्यावहारिक नही तो कुछ पुराणपथी जरूर साबित किया।

अमृतसर मे रहते वह स्वामी हरिशरणानन्द बन गए। द्वितीय महायुद्ध का भी काफी समय बीत चुका था। कभी कभी अस्वस्थ होते अपने शरीर को देखकर उनको सहधर्मिणी की आवश्यकता मालूम हुई। धर्म कहना गलत होगा, क्योंकि भाई साहब का न धर्म पर विश्वास था न भगवान् पर। देख सुनकर भाभी जानकीदेवी से ब्याह किया। दोनों की अचल जोड़ी

न आगे बढ़ी न पीछे हटी। सबका स्वभाव एक नही होता, लेकिन स्वभाव मे भेद होने से यह जरूरी नही कि दो पहिये की गाडी न चल पाए। दोनो कभी रूठन भी, फिर मिल जाते।

कलिम्पाग से लौटकर आई हुई डाक म शासन विधान सम्बन्धी परिभाषाओ की दो सूचियाँ भी थी, लेकिन इसमे बालकृष्णजी का नाम नही था जो खटकने की बात थी। बालकृष्णजी से योग्य इस विषय का जानकार व्यक्ति मिलना मुश्किल नही, बल्कि उनके तजर्बे को देखकर कहना पडेगा कि असम्भव था। लेकिन अच्छी सरकारी मशीनो मे भी गल्ती हो जाती है, और यहाँ तो नीचे से ऊपर तक अयोग्यो की ही भरमार है। मन्त्रियो म से अधिकाश जी हुजूरी या तिकडम के भरोसे ऊपर पहुचे। अपने विभाग के सँभालने की उनम कोई क्षमता नही। यदि आई० सी० एस० सेक्रेटरियो के भरोसे सँभालना है, तो किसी भी मिट्टी के लादे को वहाँ बैठाया जा सकता है। बाकी जगहो पर भाई भतीजा भाँजो की या और किसी तरह से घनिष्टता प्राप्त सम्बन्धियो या उनकी सन्तानो की गुजाइश है। ऐसी अवस्था मे योग्यता को कौन देखता है? कौन-सा योग्य आदमी इस दम घुटने वाले वातावरण मे अच्छी तरह सास ले सकता है? इसका परिणाम सारी मशीन का तीन सालो से भीतर ही अकमण्य हो जाना हुआ। प्रान्तो से लेकर केन्द्रीय सरकार तक के दफ्तरो मे अग्रेजो के समय से अब चौगुने से भी ज्यादा कमचारी हो गए हैं, जबकि देश का क्षेत्रफल पाकिस्तान के अलग हो जाने से कम हो गया है। यह कर्मचारियो की चौगुनी पलटन उतना भी काम नही कर पाती, जितना कि अग्रेजो के समय इनसे चौथाई आदमी कर लेते थे। १० बजे आफिस का समय हो, तो ११ बजे कमचारी और १२ बजे बडे साहब यदि पहुँच जाएँ, तो बहुत मेहरबानी है। कभी कभी बडे साहब का फोन आ जाता है कि आज कचहरी बँगले पर ही होगी। दूर दूर से तारीख पर कचहरी मे जमा हुए लोगो को अब साहेब के बँगले पर दौड करनी होगी। वहाँ पहुँचते पहुँचते यह भी सुनना पडता है, डिप्टी कमिश्नर साहब आज देहात के दौरे पर चले गए हैं। कौन पूछने वाला है, जब एक ही

हाँडी के कालिख से सभी पुते हुए हैं, और सभी किसी-न किसी भाई, चचा या मामा की सिफारिश का बल रखते हैं। पीछे मालूम हुआ सचमुच ही प्रो० बालकृष्ण को उस स्थान से हटा दिया गया। अंधेरनगरी तेरा बेडा गर्क हो।

१८ अगस्त को सूचना के अनुमार ११ बजे मैं स्थानीय कचहरी में गया। हथियार के लाइसेंस के बारे में जाँच करनी थी। नायब तहसीलदार साहब साढे ११ बजे के करीब आए। खैर, गनीमत थी। इन्कम टैक्स की रसीद के बारे मे पूछा। इन्कम-टैक्स ही सरकार के लिए प्रामाणिक चीज है, लेखनी की सम्पत्ति का कोई मूल्य नही।

वर्षा के समय पहाडी मे कही पर भूपात होना और कही पुल टूट जाना साधारण-सी बात है। लेकिन, मसूरी की तरह जिसके पास सवा सौ वर्ष का तजर्बा हो, वह कठिनाइयो को जानता है और उसके लिए आदमी मौजूद रहते हैं। २१ को डाक नही आई। मालूम हुआ, दाल म कुछ काला है और अगले दिन पता लगा कि देहरादून से आने वाली सडक पर कही पहाड टूट गया। पहाड टूटने पर डाक के थैलो को उसी समय भेज देना कोई मुश्किल नही था, लेकिन जब बहाना मिल गया, तब क्या तरद्दुद उठाया जाए।

मैं तो जगल मे आ गया था। अभी मुझे कुछ भी नही मालूम हो रहा था कि मैंने गल्ती की है। हाँ यह जरूर चाहता था कि पास के 'हनहिल'' और ''हन ली'' दोनो बँगलो म अगर कोई हितमित्र आ जाए तो बहुत अच्छा। सूर्यभानुजी पहले आकृष्ट हुए थे, फिर भैया को भी मैंने आकृष्ट करना चाहा, लेकिन वह मुझसे कही अधिक व्यावहारिक थे। वह क्या इस जगल के टूटे मकान मे २५-३० हजार फँसाने लगे, जब जानते थे कि साल म तीन महीने के लिए तीन-चार सौ रुपये पर केन्द्रीय कुलडी बाजार के आस-पास अच्छा मकान मिल सकता है।

इस समय चीनी की बहुत दिक्कत थी। मेहमानो के सत्कार का सबसे अच्छा साधन चाय है। चोरबाजार की चीनी बहुत मँहगी थी, और भरसक उससे बचना चाहता था। एकाध बार राशन के अधिकारी ने विशेष तौर

से कुछ चीनी दिखाई। फिर हमने गांधी गुड़ की चाय की हुई अच्छी चायनी बना ली जाए। गुड़ अपेक्षाकृत सस्ता था और उस पर कन्ट्रोल भी नहीं था। गुड़ के साथ कॉफी पीना मैंने कॉफी की जन्मभूमि कुर्ग में सीखा था। वहाँ रहते रहते यह मेरा विश्वास जम गया था कि कॉफी के लिए चीनी इस्तेमाल करना उसके स्वाद को घटाता है, इसलिए भी गुड़ की ओर मेरा झुकाव था, और कॉफी पीने के समय तो मैं बराबर गुड़ की चायनी ही इस्तेमाल करना चाहता था।

सितम्बर के पहले सप्ताह में मालूम हुआ कि पुरुषोत्तमदास टंडन कांग्रेस के सभापति चुने गये हैं। यह भी कहा जा रहा था कि नेहरूजी ने उनके चुनाव का सबसे अधिक विरोध किया था, और यह भी धमकी दी थी कि उनके चुने जाने पर मैं इस्तीफा दे दूँगा। एक बार ऐसी ही परिस्थिति में गांधीजी का भारी विरोध होते भी सुभाष बाबू कांग्रेस के सभापति चुने गये थे। उस समय कांग्रेस के लिए शक्तिशाली नेतृत्व की आवश्यकता थी। पर आजकल कोई भी कांग्रेस को उस दलदल से निकाल नहीं सकता, जिसमें वह अपने साथ देश को भी लिये जा रही है। कोई त्यागपत्र क्यों देगा, क्योंकि सरकार से निकलकर बाहर उसके लिए करने को क्या है? लोगों ने यदि नेहरू की बात को ठुकराकर टंडनजी को सभापति बनाया, तो इसका अर्थ यही था कि अभी उनके दिमाग अपरिपक्व थे, और अपनी हानि-लाभ को नहीं समझते थे। नये साधारण चुनाव के बाद जो मूर्तियाँ ऊपर आईं, उन्होंने इस तथ्य को समझा कि नेहरूजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता, साथ ही हमारे बिना उनका भी काम नहीं चल सकता।

"हन विलप" में साग-सब्जी के लिए जमीन जरूरत के मुताबिक काफी थी और नया आदमी उसे देखकर समझेगा कि थोड़ा सा हाथ पैर चलाना चाहिये, फिर साग सब्जी खरीदने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मसूरी में साग सब्जी बहुत महँगी मिलती है। नीचे देहरादून में जो चीज दो आना सेर मिलेगी, वह यहाँ छ आना सेर। साग सब्जी के लिए आस पास के पहाड़ी

गाँवो को प्रोत्साहन देने की काशिश नही की गई। नई नगरपालिका के निर्वाचन होने पर आशा की गई थी कि वह कुछ करेगी, लेकिन जान पडता है, राजा भोज के सिंहासन पर बैठते ही आदमी का दिमाग फिर जाता है। पहले दो तीन वर्षों तक मुझ पर साग सब्जी की खेती की सनक सवार थी। अपने भी काम करता था। जानता ता था नही कि गाभी कैसे और कब रोपी जाती है, और टमाटर के लिए क्या करना हाता है। अपने, मातवरसिंह और कभी किसी मजदूर को लगाकर वर्षों से घास की चरागाह बन गई क्यारियो को खुदवाया खाद डल्वाई, बाजार मे बीज मँगवाया। सोचा, यदि जमीन भीगी हो और खाद पड जाये, तो बीज जमेगा। जब बीज ने हफ्ता जमने का नाम नही लिया, तब मालूम हुआ कि उसके जमने के लिए तापमान की आवश्यक्ता है। जाडो मे वह नही जमा करते। तापमान के अतिरिक्त हरेक का अपना काल हाता है। हमने साचा सभी चीजें जमीन म डाल दो, यह तजर्बा आगे काम देगा। गाभी, टमाटर, पाल्क, मूली सब के बीजा को डाल दिया।

खेत तो है ही दुनिया मे जब ऐसे खेता मे साग सब्जी उगाई जाती है, ता हम भी उगा लेंगे हा कुछ गलती करके, तजर्बा हासिल करके। पर यह मालूम नही था कि यहाँ समय समय पर लगूरा और लाल मुह के बन्दरा की पल्टन आया करती है। यह घुमन्तू घर बाधकर रहनेवालो के हरेक श्रम को अपनी ही चीज समझते ह, और हफ्ता नही महीनो से जागा कर रखी गई फसल को पल्क मारते मारते सफाचट करके चल देते है। इस साल जब हमने खेत को तैयार किया, ता दरअसल फसल का समय बीत चुका था, इसलिए हनुमानजो की कारी गारी पलटन को नये रैयत से लाभ उठाने का कोई मौका नही मिला।

किताबा के रखने के लिए अलमारी की जरूरत थी। कबाडिया के यहाँ भैया ने फरे दिय। ७५ रुपये म दो शीशेदार अलमारियाँ हमारे पास पहुँच गई और हमने आवश्यक किताबो का उनम सजा भी दिया। जब दाम देने लगे ता भया ने उसे लेन से इन्कार कर दिया। मित्रा के साथ

ऐसा नाता स्थापित करना मुझे रुचिकर नही होता, लेकिन भैयाजी इस साल ही तक नये रहे, अगले साल से वह नवीनता जाती रही, और इस तरह का आग्रह न हमारी ओर से हुआ न उनकी ओर से।

ससार म रहने पर बहुत दिनो के बिछुडे भी मिल जाते हैं। ३३ वर्ष हुए मैं भी तरुण था और मास्टर विश्वम्भरदयाल भी। प्रथम विश्व-युद्ध के समय १९१७ म धौलपुर के राजा ने वहा बनते आर्यसमाज मन्दिर को तोडवा दिया या बनना बन्द कर दिया था। भिडने छत्ते म अँगुली द दी थी। अभी सत्याग्रह की धूम दूर दक्षिण अफ्रीका म ही सुनाई पडी थी, लेकिन आर्य-समाजियो न धौलपुर म उस युद्ध को छेड दिया। मेरे गुरु मुशी महाप्रसाद जी वहा पहुँचे, मैं भी गया मास्टर विश्वम्भरदयाल भी आ मौजूद हुए और भी न जाने कहाँ-कहाँ की मूर्तियाँ आईं। स्वामी श्रद्धानन्द भी आए। उन्होंने ही बीच मे पडकर राजा को समझाया। हम मे से कितने ही गरम खूनवाले तरुण स्वामीजी का दब्बू कहने से भी बाज नही आये। लेकिन, बात आगे नही बढी और हफ्ते भर के करीब ही हम वहाँ सत्याग्रहियो के कैम्प का जीवन बिताने का आनन्द मिला। मास्टरजी उस समय शायद गुरुकुल कागडी के स्कूल विभाग के हेड मास्टर थे। उनके चेहरे और व्यव-हार की छाप ऐसी पडी थी कि उससे मिलने जुलने पटना के काग्रेसी नेता श्याम बाबू से घनिष्ठता होने पर मुझे बार-बार मास्टर विश्वम्भर-दयाल याद आते। १० सितम्बर को वह मेरे घर आये। वृद्ध और बूढी हड्डियो की उठान के लिए भारी भरकम शरीर। 'हैप्पी वैली'' आने म थोडी सी चढाई थी, लेकिन वह आये। उनके पुत्र भारतभूषणजी यहाँ के इन्टर कालेज मे अध्यापक थे, वह भी उनके साथ थे। कितनी ही देर तक पुराने और नये युग की बातें होती रहीं।

मसूरी म मेरे आने का पता लोगो को लग गया। हिन्दी पत्रो म सूचना निकल गई थी। वह समय भी आयेगा, जब आज से कहीं अधिक समृद्ध और सारी रगभागवाली मसूरी का अपना गौरव पत्र निकलेगा, जिसे लोग चाव से पढ़ेंगे। उस वक्त मसूरी म कौन आ जा रहा है इसका पता

लगना मुश्किल नही रहेगा। अभी भी अंग्रेजी राज्य की देन दो-तीन साप्ताहिक अंग्रेजी मे निकलते हैं, लेकिन वह विज्ञापन के लिए ही है। शायद ही कोई उन्हे पैसे देकर खरीदता है। श्री सत्यप्रकाश रतूडी ने "हिमाचल" की धूनी रमा दी है, लेकिन वही बतला सकते हैं कि कैसे वह वर्षों से इसे चला रहे हैं। मसूरी के दूकानदार उसमे विज्ञापन देने को लाभदायक नहीं समझते। यहा के अल्ट्रा माडर्न सैलानी जेन्टलमेन और लेडीज तो हिन्दी की ओर देखकर नाक-भौं सिकोडना भी पसन्द नही करते। कुछ वर्षों रहकर रतूडीजी अपने "हिमाचल" को ऋषिकेश ले गये। यहा से तो जरूर वह बेहतर हालत मे है। खैर, किसी तरह प० नरदेव शास्त्रीजी का पता लगा। उन्हे सूचना दी और १७ सितम्बर को आये। शास्त्रीजी मेरे लिए उन पुरुषो मे से हैं, जिनका आदर्श मानकर मैंने अपनी पढाई मे आगे बढने की कोशिश की। उनको वेदतीर्थ जान मैंने भी वही रास्ता लिया और मध्यमा पास कर गया। यदि थोडा और प्रयत्न किया होता, तो वेदतीर्थ होने मे कोई सन्देह नही था। शास्त्रीजी आये। स्थान की प्रशसा करते नही थक रहे थे। आखिर गुरुकुल के पारखी ठहरे, और इस एकान्त स्थान मे दिखती हिमालय की छटा सामने आकर आदमी की आखो मे चकाचौंध पैदा किये बिना नही रहती। भैया भी उस दिन मौजूद थे। वह बडे खरे आदमी है, अपनी बिल्कुल उल्टी राय साफ शब्दो मे देने मे नही हिचकते।

अगले दिन भैया आये, तो उन्होंने अपनी कल्पना मेरे सामने रखी। वह व्यावहारिक हैं, लेकिन कल्पनाशून्य नही। वह मेरी कठिनाइयो को समझ रहे थे। सोच रहे थे, अपना प्रेस बढाया जाय, पुस्तको का प्रकाशन किया जाय। अमृतसर मे उनका प्रेस था, जिसमे दो-तीन मशीनें थी। लेकिन अमृतसर भारत के एक कोने मे है, सो भी पाकिस्तान की सीमा पर। वहाँ किराये पर मकान मुश्किल से, या बहुत महँगे मिलते हैं। पर आप अपने मकान या जमीन को बेचना चाहे, तो विभाजन से पहले जिसका सवा लाख मिलता उसका २५ हजार मिलना भी मुश्किल है। व्यापारी तो बडे-बडे खतरे मोल लेने के लिए तैयार रहते हैं। लडाई के दिनो मे गोलियो के

भीतर से दोनो शत्रु देशो के नागरिक अपन सौदे को एक जगह से दूसरी जगह पहुचाने म प्राणा की बाजी लगात हैं। पाकिस्तान हिदुस्तान की सीमान्त चौकियो की गालियो स लुढकने का डर रहता है, तब भी गैर-कानूनी तरह से माल का इधर से उधर करने म लाग बाज नही आते। जान पडता है, मनुष्य सदा से प्राणा का जूआ खेलता आया है, अब भी वह इसे छाडना नही चाहता। ता भी कोई उद्यागपति अब अमृतसर मे नया कारखाना नही खोलना चाहता, काई व्यापारी अपने व्यापार को यहाँ बढाने की जगह उसे दिल्ली म स्थानान्तरित करना अधिक पसन्द करता है। भैयाजी भी इसे समझते थे, और चाहते थे कि प्रेस को अमृतसर से अयत्र लाया जाये। मेरे पास रखने के खयाल से कितने ही दिना तक देहरादून के बारे मे सोचत रहे। वहाँ जगह मकान भी देखे। मेरी चली होती तो प्रेस देहरादून आ जाता। जब प्रेस की बात छिड गई, ता ख्याल आया उसे अप टू डेट कर देना चाहिये। भयाजी ने दिल्ली मे भी जमीन देखी। उनकी व्यवहार बुद्धि ने बतला दिया कि देहरादून की बेवकूफी छोडो, दिल्ली की यह जमीन ले लो। वहा कभी घाटे की गुजाइश नही। प्रेस प्रकाशन चला, ता चला, नही तो अल्ला अल्ला खैर सल्ला। उन्होने ५४ ५५ हजार रुपया लगाकर फैज बाजार मे बडे अच्छे मौके पर जमीन ले ली। उसस कुछ और अधिक रुपया लगाकर मकान भी खडा कर दिया। अमतसर स प्रेस मँगा-कर लगा दिया। देखने लगे, पीर बवर्ची भिश्ती सब हम ही होना हागा। प्रेस की मनजरी करा, कम्पोजीटर टाइप न चुराएँ उसकी देखभाल करो, बाहर से काम ढूढकर लाओ, प्रकाशन म भारी रकम लगाने के लिए तैयार होओ। यदि जवानी होती, तो इसमे शक नही, भैयाजी पिल पडते। मैं सलाह दे रहा था, क्या अन्तिम सास तक के लिए है-है खट-खट कर रहे हैं। गति का रुख बदलो। छुडाओ इस प्रेस के जजाल से अपने सिर का। एक एक करके बेच दिया। अभी भी एक-दो मशीनें बिकने को बाकी हैं। प्रेस जो हाल मे बनाया था, वह अच्छे किराये पर उठ गया। ऊपर की मजिल पर एक आर के कमरे अपने लिए रखे और दूसरी आर का डेढ सौ रुपये

महीन पर किराये पर दे रखा। तीसरी मजिल बनन को बाकी है, जिसका तीन सौ रुपया महीना से साल भर का किराया पेशगी दने के लिए लोग तैयार हैं। कितनी दूर की सूझ? यदि प्रेस प्रकाशन नही चला, तो भी जायदाद बेकार नही है। हजार बारह सौ रुपये महीने किराया मिलने को तैयार है।

एक जगह घर बाँधकर रहन पर पुस्तको का सग्रह किया जा सकता था। अब तक तो मेरी अजगरी वृत्ति थी, पुस्तकें मिलती थी, उन्हें बाट देता था। पालि, सस्कृत के अपने सग्रह को बिहार रिसर्च सोसायटी के पुस्तकालय मे रख छोडा था, जिसे अब यहा मगाने की सोचने लगा। प्रकाशक मित्रा ने भी अपने प्रकाशनो की प्रतियाँ भेजी। प्रयाग से प० गणेश पाडे ने पहले आरम्भ किया, फिर यशपालजी की पुस्तकें आई। उसके बाद देवराज जी ने राजकमल प्रकाशन की पुस्तकें भेजी। धीरे धीरे हिन्दी की पुस्तके काफी जमा हो गइ। पुस्तका के बारे म पहले ही सयानो ने कह रखा है लेखनी पुस्तिका नारी, परहस्तगता गता।' और यहा ता लेखक का पुस्तकालय है। अपने लिखन के काय मे उसे न जाने किस पुस्तक की आवश्यकता पडे। पर कितना ही सकोच करो, कभी पुस्तकें 'गता" होने के लिए परहस्तगता हो ही जाती हैं।

२१ सितम्बर को वाई० डब्लू० सी० ए० म मैंने एशियायी महिलाओ के सामने भाषण दिया। इसमे लेबनान, फिलिस्तीन, जापान, बर्मा, लका जावा, स्याम, इदाचीन और चीन की ५० महिलाएँ थी। उनका कोई क्लास या सेमिनार चल रहा था। आयु म वह ३० से ६० वष तक की थी। भाषण के बाद आधा घटा तक प्रश्नोत्तर चलता रहा। आर्मेनियन महिला माक्सवाद के बारे मे पूछने लगी। माक्सवाद या बौद्ध दशन यह तो मछली के लिए पानी का मिल जाना था। पर ईसाई मिशनरी आम तौर से कम्युनिज्म से भडकते हैं, एसिया मे ता विशेष तौर से।

२२ सितम्बर को दिल्ली के साप्ताहिक "नवयुग" मे मेरा द्वाराहाट की यात्रावाला लेख छपा। उसी मे डा० रामविलास शर्मा का लेख मेरे

विरुद्ध निकला, जिसमे उन्होने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि राहुलजी मार्क्सवादी नही केवल बौद्ध है। उसमे कुछ सत्य का अश भी था, लेकिन झूठ का अश ज्यादा। रामविलासजी उन आदमियो म हैं, जो किसी वात पर तुल जाएँ, तो वह किसी हथियार को भी इस्तेमाल करने स बाज नहीं आते। इसक बाद और भी लेख उसी तरह लिखे। मुझे जवाब देन के लिए सम्पादक और दूसरे मित्रा ने भी कहा, लेकिन मैंने उसे वेकार समझा। हजारा पृष्ठ मैंन इन विषया पर लिखे है, अगर वह मेरी सफाई नही दे सकते, तो कुछ पृष्ठो का "तू-तू मैं मैं" से काला करना बेकार था। यद्यपि तरुणाई मे मैं वाणी के मल्लयुद्ध को पसन्द करता था, कलम से भी और वाणी से भी ऐसा करने मे मुझे आनन्द आता था। ऐसी घटनाएँ "मेरी जीवन यात्रा" के प्रथम भाग म मिलेगी। अब उस तरह के मल्ल युद्ध की कोई इच्छा नही। मुझे बुद्ध का वचन याद आया "सत्ताह सद्दो भविष्यति" (झूठे प्रचार का हल्ला सप्ताह भर रहता है) फिर अपने आप ठण्डा हो जाता है। प्राचीन दर्शना मे बौद्ध दर्शन मार्क्सीय दर्शन के अत्यन्त समीप है। धर्मकीर्ति मार्क्स से हेगल से भी अधिक समीप है, इसलिए यदि धर्म कीर्ति के दर्शन क महत्व को मैं बतलाऊँ, तो आश्चर्य नही।

मैंन सिंहलद्वीप म पालि त्रिपिटक क पढत वक्त "बुद्धचर्या" लिखी थी और १९३१ ३२ मे वह छपी। कितने ही दिनो से वह समाप्त हो चुकी थी। मैं तो समझता था, इतनी बडी पुस्तक का हिन्दी म नया सस्करण मेरे जीवन के बाद की बात है। पर देवप्रियजी की कृपा से अब उसका दूसरा सस्करण छपने लगा था। अपनी सन्तान आखो के सामने न मरे, इसकी प्रसन्नता होती ही है। २५ सितम्बर को बैरिस्टर श्री मुकुन्दीलालजी आये। मुकुन्दीलालजी अपने क्षेत्र म वही स्थान रखते है जो कि जायसवाल जी बिहार म। दानो आक्सफोर्ड क स्नातक और बैरिस्टर हैं। जायसवालजी बैरिस्ट्री से उखडे नहीं, बढे हुए खर्च के लिए पर्याप्त न होने पर भी वह महीने म चार पाच हजार कमा लेत थे। मुकुन्दीलालजी जमे नही। रियासत की चीफ जजी करने चले गए। एक मर्तबा कुछ वर्षों के लिए आप

वैरक मिली। प्रो० रजन साइंस के विद्वान् हैं, इसलिए कला के प्रति उदासीनता दिखाएँ, तो कोई आश्चर्य नही। सचमुच उमे पाती से खडी तीन-चार सीमेंट की कोठरियो के रूप म देखकर ख्याल आता है, इसे और वेहतर वनाया जा सकता था। डा० झा का वगला किसी साहेव का पुराना वगला है, और पहलपहल जो भी उसके भीतर पहुचता, वह जरूर समझता कि हम इन्द्र की अमरावती के किसी कान म है। वहाँ चारा आर हरे-हरे वक्षा और वनस्पतिया की छाया थी। झा साहव के निधन पर यह वगला मिट्टी के मोल विक गया।

सितम्बर के समाप्त होते होते वर्षा खतम हुई मालूम होने लगी। खेत सूख गये थे, तव पता लगा कि यहा पानी बिना कुछ नही हो सकता। पीने का पानी खेत म डालना एक ता नागरिक कानून की अवहलना करना था और दूसरा वह बहुत महँगा पडता था। हन क्लिफ" और 'हन हिल" हमार आने से पहले एक ही थे। ऊपर पानीघर बना था, जिसमे वरसात का वहुतेरा पानी जमा हो जाता जा खेता के लिए साल भर पर्याप्त हाता था। इस समय वर्षों से उस पानीघर की काई खोज खबर लेनवाला नही था। छत टूट गई थी, सीमेंट भी उखड गया था, जिससे सारा पानी सुरक्षित नही रह सकता था। तो भी माटे पाइप द्वारा छत का पानी हौज म आ जाता था। आजकल खेती के लिए उसका कोई उपयोग नही था। हा, धोवन को उसके कारण अपना कपडा धाने क लिए दो-तीन मील दूर धोबीघट्टा जाने की जरूरत नही थी। "हनहिल" के औट हौस म स्थायी रहनेवाले निवासियो म धाविन, उसका अन्धा-वहरा पति और नन्दू नौकर भी थे। वहरे होने क साथ आदमी यदि अन्धा भी हो जाये, तो सचमुच ही वह मनुष्य क्या प्राणी भी नही रह जाता। दुनिया की किसी चीज को टटोलने भर का ही उसको अधिकार था। यदि वह आवाज देता ता मालूम नही होता कि उसकी आवाज किसी के कान मे पड रही है। वह नही आ रहा है, इसलिए उस पर क्रोध करना चाहिए, अथवा आसपास कोई आदमी नही है, इसलिए गुस्सा करने से फायदा क्या? वुढापे की सीमा के भीतर

इसम सन्देह नही। हमन उनके ही मकान को लिया था, और हमारी अनुपस्थिति के समय एक वार वह इस वगले के हात म भी आय थे। रहता ता वात होती। खर, मुकुन्दीलालजी वर्षो स वरेली म सरकारी टारपेंटीन फैक्ट्री क मुख्य प्रवन्धक हैं।

उसी दिन (२५) भाभीजी के साथ भयाजी आए। प० गयाप्रसाद शुक्ल भी सवेरे आए थे। भोजनोपरान्त शुक्लजी देहरादून लौट गय। उन्ह पहाड म मोटर पर चलन म क के मारे जान पर आ वनती है, इसलिए परा के भरासे ही वह पवत लघन करत है। हम लोग कम्पनी वाग गये। जव तक ईस्ट इडिया कम्पनी का राज रहा, तव तक सावजनिक उद्यानो या दूसरे सावजनिक स्मारको के साथ कम्पनी का नाम जोडा जाता था। कम्पनी वाग नाम सुनने से ही मालूम था कि इसकी स्थापना १८५७ के पहले हुई होगी। मसूरी के मुख्य केन्द्र से जितनी दूर हमारा स्थान है, करीव करीव उतना ही यह वाग भी है। चालविल होटल स ही उसका भी सडक अलग होती है। कम्पनी वाग छाटा किन्तु अच्छा वाग है। फूलो की सजावट सितम्बर क अन्त मे हो ही क्या सकती थी, वस भी उस समय उसकी अवस्था अच्छी नही थी। कम्पनी वाग के साथ लगे हुए पहाड पर दूर तक अग्रेजो ने देवदार लगा दिय ह। डिपो को छोड मसूरी का सवस वडा देवदारो का जगल यही है। इस देखनवाला समझेगा, यह प्राकृतिक देवदार वन है। पर प्राकृतिक देवदार नौ दस हजार फुट से नीचे नही होता। हिमालय मे विशेष विशेष उपत्यकाएँ ही हैं, जहाँ स्वाभाविक देवदार पाया जाता है। अग्रेजी शासनकाल म जगलो की रक्षा की आर ध्यान जाने पर जगलात विभाग सगठित हुआ। उसने भी वहुत जगह नय देवदार वन लगाये। कम्पनी वाग म वच्चो के लिए झूला भी है, रेस्तारा की कोठरी और मकान भी, लेकिन इनक कभी आवाद होन की सभावना नही है। अधिकाश लोग अपने साथ खाने पीन की चीजें लात हैं, फिर यहाँ कौन अपना रेस्तोरा या दूकान खोल कर मक्खी मारन के लिए तयार होगा? कम्पनी वाग क रास्त म डा० अमरनाथ झा का वगला और प्रो० रजन की

बैरक मिली। प्रो० रजन साइन्स के विद्वान् हैं, इसलिए कला के प्रति उदासीनता दिखाएँ, तो कोई आश्चर्य नही। सचमुच उसे पाती से खडी तीन-चार सीमट की कोठरियो के रूप म देखकर ख्याल आता है, इसे और बेहतर बनाया जा सकता था। डा० झा का बगला किसी साहब का पुराना बगला है, और पहलेपहल जो भी उसके भीतर पहुचता, वह जरूर समझता कि हम इन्द्र की अमरावती के किसी कोने म है। वहाँ चारो ओर हरे हरे वृक्ष और वनस्पतियों की छाया थी। झा साहब के निधन पर यह बगला मिट्टी के मोल बिक गया।

सितम्बर के समाप्त होते होते वर्षा खतम हुई मालूम होने लगी। खेत सूख गये थे, तब पता लगा कि यहा पानी बिना कुछ नही हो सकता। पीने का पानी खेत में डालना एक तो नागरिक कानून की अवहेलना करना था, और दूसरा वह बहुत महँगा पडता था। 'हन क्लिफ" और 'हन हिल" हमारे आने से पहले एक ही थे। ऊपर पानीघर बना था, जिसमे बरसात का बहुतेरा पानी जमा हो जाता जो खेतो के लिए साल भर पर्याप्त होता था। इस समय वर्षों से उस पानीघर की कोई खोज खबर लेनेवाला नही था। छत टूट गई थी, सीमेंट भी उखड गया था, जिससे सारा पानी सुरक्षित नही रह सकता था। तो भी मोटे पाइप द्वारा छत का पानी हौज म आ जाता था। आजकल खेती के लिए उसका कोई उपयोग नही था। हाँ, धोबन को उसके कारण अपना कपडा धोने के लिए दो-तीन मील दूर बावीघट्टा जाने की जरूरत नही थी। "हनहिल" के ऑट हौस म स्थायी रहनेवाले निवासियो मे धोबिन, उसका अन्धा बहरा पति और नन्दू नौकर भी थे। बहरे होने के साथ आदमी यदि अन्धा भी हो जाये, तो सचमुच ही वह मनुष्य क्या प्राणी भी नही रह जाता। दुनिया की किसी चीज को टटोलने भर का ही उसको अधिकार था। यदि वह आवाज देता तो मालूम नही होता कि उसकी आवाज किसी के कान मे पड रही है। वह नही आ रहा है, इसलिए उस पर क्रोध करना चाहिए, अथवा आसपास कोई आदमी नही है, इसलिए गुस्सा करने से फायदा क्या? बुढापे की सीमा के भीतर

आ जाने पर उसने तरुणी वरेठिन से ब्याह किया था। कितने ही साल दोनो के हँसी खुशी से गुजरे। उसी समय एक पहाडी छोकरे का कपडा धोने के लिए नौकर रख लिया। नन्दू की बिरादरी के लोग हजाम का काम करते थे पर नन्दू ने कपडा धोना ही सीखा। फिर समय आया, जब धोबी आँखो और कानो को खो बैठा, और लोथ की तरह अपनी कोठरी मे पडा रहता। क्या सोचता और क्या बडबडाता था इसे सुनने की किसी को फुरसत नही थी। तो भी वरेठिन उसको खिला पिला दिया करती, पेशाब-पाखाने मे सहायता करती। एक दिन, एक महीना नही बल्कि वर्षों तक ऐसा करना साधारण बात नही थी वह हर वक्त उसके पास उपस्थित नही रहती थी, क्योकि उसे कमा कर अपने पति को भी खिलाना था। आसपास की कोठियो मे अब कम ही लोग रहते थे और वरेठिन कपड़ा भी अच्छा नही धोती थी, तो भी उसके खाने पीने के लिए कोई तकलीफ नही थी, उसे काम मिल जाता था। नन्दू उसके काम का भागीदार था, पर वरेठिन उसे नौकर ही कहकर याद किया करती थी।

साग सब्जी उगाने के लिए पानी अब हमारे लिए समस्या था। यदि ऊपर के मकान का कोई खरीद लेता और पानीघर को ठीक करवा देता, तो मुमकिन है, हमारा भी काम चलता। जमे गये गोभी या टमाटर मे हर हफ्ते पानी डलवाने की जरूरत थी।

हमारा देश भी विचित्र है। दुनिया मे भी ज्योतिष, हस्तरेखा आदि पर विश्वास करनेवालो का अभाव नही है, पर यहा की तो दुनिया ही दूसरी है। किसी ज्योतिषी ने खबर उडा दी कि २४-२५ सितम्बर को भूकम्प आयगा। फिर क्या था लोग शहर का शहर खाली करने लगे अमृतसर से हजारो भाग कर मसूरी आ पहुँचे। देहरादून मे हजारो लोग घर छोड कर मैदान मे पडे रहे। ऐसे ज्योतिषियो को फासी पर क्यो नही चढा दिया जाता? इनकी अफवाहो से चोरो की बन आती है।

कोरिया मे घमासान युद्ध चल रहा था। अमेरिका उसमे कूद पडा था, और उत्तरी कोरिया की सेना को ढकेल कर वह ३८ अक्षांश के ऊपर ले

जाने पर तुला हुआ था, अर्थात् वह उत्तरी कोरिया को भी अपनी मुट्ठी में रखना चाहता था। हमारी सरकार ने अमेरिका को सावधान किया कि यदि आगे बढ़े, तो चीन चुप नहीं रहेगा। लेकिन, मदमस्त अमेरिकन थैलीशाही के भारत की बात कान में क्या लाने लगी? युद्ध ने और तूल पकड़ा। चीन को उसमें कूदना पड़ा, क्योंकि वह अपनी सीमान्त को खतरे में डालने के लिए तयार नहीं था। नवीन चीन की सेना के विक्रम को अमेरिका देख चुका था। चाँग काइ शेक को शिखंडी बनाकर वह लड़ा था, हाँ, अपनी सेना द्वारा नहीं, बल्कि सेनापतियों द्वारा। सब करने पर भी कम्युनिस्ट सेना ने चाँग काइ शेक को प्रशान्त महासागर में फेंक दिया। अमेरिका शायद समझता था, चीन बन्दर घुड़की दे रहा है। प्रायः सारे उत्तरी कोरिया को अपने हाथ में करने के बाद अमेरिका को चीनी स्वयंसेवकों से पाला पड़ा। अब तुरन्त संधि व सुलह की बात करना कायरता होती। १० अक्तूबर को कोरिया में अमेरिकन प्रगति को देखकर हृदय काँप रहा था। अपने व्यक्तित्व को अपने नजदीक से दूर बढ़ाने का यही फल है। पर आदमी यदि ऐसा न हो, तो आदमी ही क्या? मालूम हो रहा था कोरिया में उत्तरी कोरियनों की हार नहीं, बल्कि हमारी हार हो रही थी।

वर्षों तक हमारा मकान बिना धनी धोरी का था। टोले मोहल्ले के लोग उसे अपनी चरागाह बनाये हुए थे। कितने परिश्रम से और महँगा पानी डाल डाल कर गोभी तयार की थी। ११ अक्तूबर को धोबिन की बकरी ने आकर सब साफ कर दिया। दरवाजे में फाटक को हमने लगवा दिया था, लेकिन बकरी ऊपर की तरफ से आई थी। गुस्सा किसके ऊपर होता?

१५ अक्तूबर को ११ बजे केम्पटी फाल (जलप्रपात) देखने निकले। पीठ का फौजी झोला आखिर किसलिए खरीदा था? आज उसे पीठ पर रखा और खाली नहीं, कुछ सामान के साथ। १४-१५ आदमियों की पल्टन थी। डा० सत्यकेतु का परिवार, उनके साथ और भी कुछ परिवार, भैया-भाभीजी, कमला और मैं। वहाँ जाने पर और भी टोलियाँ मिलीं। केम्पटी

फाल की सडक चालबिल क फाटक के परे से पहाड का चक्कर काट कर जाती है। हमन सीधी पगडण्डी पकडी। भयाजी ही उसका कुछ ज्ञान रखते थे, हम भटक कर आगे बढ गये। फिर चौपाया बन कर पगडण्डिया सूघत असली रास्त पर जान की कोशिश की। दूसरा रास्ता मिला, तो कहा चलो इसी से चले चलो। खैर, किसी तरह प्रपात की ओर जानेवाली सडक पर हम पहुँच। प्रपात दूर से ही दिखाई देता है। पचासा फुट ऊपर से आठ दस हाथ चौडी धार गिरती हुई बडी सुदर मालूम होती है। लकिन बरसात को छोड कर इसे रोज नही देखा जा सकता, क्योकि ऊपरी गाँववाल इसक पानी को अपने खेतो के लिए इस्तमाल करत हैं। "अनादिवाल" से रवि वार के दिन उन्ह हाथ रोकना पडता है तव खेतो म जानेवाला पानी जुट कर चट्टाना पर से नीचे गिरता हमारे नयना को आनदित करता है। हम प्रपात के पास पहुँचे। और लाग उससे आगे बढ रह थे। रास्ते म तज धार थी, पर जब सब लोग जा रहे थे, तो हम डरने की क्या जरूरत थी? कमला की हिम्मत नही हुई, इसलिए मैं भी नही जा सका। हम चार पाच आदमी लौटकर एक खेत म गए और और लोगो के भी आ जाने पर पिकनिक का बक्स खाला गया। दर तक भोजन होता रहा, गप शप चलती रही। ३ ४ बजे के करीब वहा से जमात लौटी। प्रपात की विशेष सडक आत वक्त उतराई की थी, लेकिन अब वह सीधी चढाई हो गई थी जिसम अपराह्न का सूर्य बिल्कुल मुह पर पड रहा था। चढाई, धूप और पीठ पर लादा हैवरसाक सबने मिलकर एक साथ प्रहार किया। मरी हालत तो बुरी हो गई। सोच रहा था नकली वीर बनने की क्या जरूरत थी, कम स कम इस पीठ क झोल को न लाया होता, तो कुछ तो शरीर हलका होता। खर बीच म लेटना नही था, यह शान के खिलाफ होता। किसी तरह वह एक मील का रास्ता पूरा करके चकरातावाली सडक पर आ गए और कुछ ही दूर पर चाय की दूकान मिली। "प्राण बचे, लाखा पाये" या "बिल्ली क भाग्य छीका टूट पडा" चाय पीने के बहाने हम वहीं डट गये। अब सूर्य भी अस्ताचल क पास चले गये थे रास्ता भी चढाई का नही था, इसलिए हम

की जगह पर पहुच गईं। पत्ते खड़के। मालूम हुआ, कुछ पडा के ऊपर महा मारी आ गई है। अब प्राणो का सकट सामने था। बडे बडे वीर भी इस समय ऐसी जगह डट नही सकते थे, फिर बेचारी दो अबला तरुणिया के लिए क्या कहना? उन्होने यही सोचा, जब तक और कुछ न बिगडे, तभी तक यहाँ से पीछे मुह करना चाहिए। मुह पीछे फिरा, तो पैर फुर्ती दिखलाने लगे। कोई कसर रही तो कमला के साथिन ने पूरा कर दिया। "हुँ हु मैं तो अपनी माँ की सबसे छोटी लडकी हूँ, क्या कहेगी, वह। कैसे धीरज धरेगी?" परा ने जब घोडे का नही बिजली का रूप लिया। अपनी बेवकूफी पर पछताने के लिए फुर्सत नही थी, और दोनो दौडबाजिन हमारे पास पहुँच कर गिरने से किसी तरह बची।

यह जरूर फायदा हुआ, भाभीजी कोसना अब भूल गई थी, और हम दोनो शहीदिनो को साथ लेते उनको ढाढस बँधाते 'हन क्लिफ' की तरफ चले। चढाई भी आई, लेकिन मालूम नही हुई। रास्ता भूल चक्कर काटते बरस दिन के रास्ते ही से लौटने में हम सफल हुए, और पौने ८ बजे "हन-क्लिफ" पहुँचने पर सारा बदन चूर चूर था।

इस साल श्री परमानन्दजी पाइार भी मसूरी आए और दो-तीन बार मिले थे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने हमारी योजना मजूर की थी। डा० सत्यकेतु ने हिन्दी में 'फ्रेंच स्वय शिक्षक' लिखना शुरू किया। परमानन्द जी उसके लिए आवश्यक चार छ टाइपो का प्रबन्ध करके अपने प्रेस में छापने को तैयार थे। उन्होने एक ४०-५० हजार के छोटे हिन्दी कोश की भी कल्पना की थी। बडे टाइप में कोश की एक दो प्रतियाँ छाप कर उसे स्वीडन में भेज ब्लाक से ५० ६० हजार का सस्करण छपवाया जाए। कागज की भूमि में कागज सस्ता होगा, और करीब-करीब कागज के दाम ही पर कोश यहा पहुँच जायगा, जिससे दो रुपया दाम आसानी से रखा जा सकता है, फिर उसके हाथो हाथ बिकने में क्या दिक्कत हो सकता है। पर इसमे लगाने के लिए काफी रकम की जरूरत थी, इसलिए यह योजना जन्मते ही मृत्यु को प्राप्त हो गई।

१६ अक्तूबर को श्री रामचन्द्र सिंह आये। फिजिक्स के प्रतिभाशाली विद्यार्थी और आइन्सटाइन के शिष्य थे। गुरु के जर्मनी छोड़कर भागने पर साइन्स से पथभ्रष्ट हो गये। कितने ही दिनों वहाँ बिताने के बाद भारत मे जर्मन बिजली कम्पनी श्रीमान के यहाँ काम करते रहे। इसी अवस्था में कलकत्ता मे मैंने उन्हे देखा था। अब कई सालो बाद वह मिले। कलकत्ता में ही शायद वकालत पास कर ली थी, और अब इलाहाबाद मे वकालत कर रहे थे। मसूरी मे भी कितने ही समय तक वकालत करते रहे। डा० सत्यकेतु अपने मुकदमे के तजर्बे के आधार पर कह रहे थे कि उनमे सफल वकील होने की प्रतिभा है। पर प्रतिभा असतुलित भी हुआ करती है। मसूरी मे वकालत की फीस लेने की जगह उन्होने पेटी लगा रखी थी। मुअक्किल जितना चाहे, उतना पारिश्रमिक उसमे डाल जाए। वकालत से भी दूसरी चीजें उनके लिए अधिक आकर्षण रखती थी। आइन्सटाइन के चले जाने पर दूसरे प्रोफेसर के नीचे वह डी० एस सी० कुछ ही महीने मे कर सकते थे। लेकिन उस रास्ते को छोडने मे उन्हे अफसोस नही हुआ। पिछली बार जब से मुझसे मुलाकात हुई थी, तब से उन्होने सस्कृत पर ध्यान दिया था, और दर्शन तथा महाभाष्य की भी खबर ली थी। ऋषिकेश के एक विद्वान् और त्यागी साधु की प्रशंसा करते नही थकते थे। पीछे औरो से भी मालूम हुआ, वह प्रशसा के योग्य थे। उनसे उन्होने सस्कृत और दर्शन पढा। रामचन्द्र ब्रह्मवादी भी नही थे, रहस्यवाद पर भी आस्था नही रख सकते थे, क्योकि साइन्स ने उन्हे बुद्धिवादी बना छोडा था। एक से एक अध्यात्म की बडी-बडी दूकाने भारत मे चल रही थी, किसी दूकान मे अपनी बुद्धि रेहन रख मानसिक शान्ति प्राप्त करते। वह बुद्धिवादी और साइन्स अनुरागी भी रहना चाहते थे और साथ ही भारतीय दर्शन और सस्कृत की महत्ता का भी सिक्का बैठाना चाहते थे। पथ नही चलाना चाहते थे, लेकिन चाहते थे, उन्ही की तरह दर्शन के लिए कुछ फकीर साथ हो जाए। सोशलिज्म की आवश्यकता को महसूस करते थे, पर चाहते थे कि दूसरी धमाचौकडी भी चलती रहे। इसी मे कुछ समय या साल उन्होने

की जगह पर पहुच गई। पत्ते खडके। मालूम हुआ, कुछ पेडो के ऊपर महा मारी आ गई है। अब प्राणो का सकट सामने था। बडे बडे वीर भी इस समय ऐसी जगह डट नही सक्ते थे, फिर बेचारी दो अबला तरुणिया के लिए क्या कहना ? उन्होने यही सोचा, जब तक और कुछ न बिगडे, तभी तक यहा से पीछे मुह करना चाहिए। मुह पीछे फिरा, तो पैर फुर्ती दिखलाने लगे। कोई कसर रही तो कमला के साथिन ने पूरा कर दिया। 'हुँ हु मैं तो अपनी माँ की सबसे छोटी लडकी हू, क्या कहूगी, वह। कैसे धीरज धरगी ?'' पैरो ने अब घोडे का नही बिजली का रूप लिया। अपनी बेवकूफी पर पछताने के लिए फुरसत नही थी और दोनो दौडबाजिन हमारे पास पहुँच कर गिरने से किसी तरह बची।

यह जरूर फायदा हुआ, भाभीजी कोसना अब भूल गई थी, और हम दोनो शहीदिनो का साथ लेते उनको ढाढस बँधाते 'हन क्लिफ'' की तरफ चले। चढाई भी आई, लेकिन मालूम नही हुई। रास्ता भूल चक्कर काटते बरस दिन के रास्ते ही से लौटने मे हम सफल हुए, और पौने ८ बजे 'हन-क्लिफ'' पहुँचने पर सारा बदन चूर चूर था।

इस साल श्री परमानन्दजी पोद्दार भी मसूरी आए और दो-तीन बार मिले थे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने हमारी योजना मजूर की थी। डा० सत्यकेतु ने हिन्दी मे 'फ्रेंच स्वय शिक्षक' लिखना शुरू किया। परमानन्द जी उसके लिए आवश्यक चार छ टाइपो का प्रबन्ध करके अपने प्रेस मे छापने को तैयार थे। उन्होंने एक ४० ५० हजार के छोटे हिन्दी कोश की भी कल्पना की थी। बडे टाइप मे कोश की एक दो प्रतिया छाप कर उसे स्वीडन मे भेज ब्लाक मे ५० ६० हजार का सस्करण छपवाया जाए। कागज की भूमि मे कागज सस्ता होगा, और करीब करीब कागज के दाम ही पर कोश यहाँ पहुँच जायगा, जिसको दो रुपया दाम आसानी से रखा जा सकता है फिर उसके हाथो हाथ बिकने मे क्या दिक्कत हो सकती है। पर इसमे लगाने के लिए काफी रकम की जरूरत थी, इसलिए यह योजना जन्मते ही मृत्यु को प्राप्त हो गई।

१६ अक्तूबर को श्री रामचन्द्र सिंह आये। फिजिक्स के प्रतिभाशाली विद्यार्थी और आइन्सटाइन के शिष्य थे। गुरु के जर्मनी छोडकर भागने पर साइन्स से पथभ्रष्ट हो गये। कितने ही दिनो वहाँ बिताने के बाद भारत मे जर्मन बिजली कम्पनी श्रीमान के यहाँ काम करते रहे। इसी अवस्था मे कलकत्ता मे मैंने उन्हे देखा था। अब कई सालो बाद वह मिले। कलकत्ता मे ही शायद वकालत पास कर ली थी, और अब इलाहाबाद मे वकालत कर रहे थे। मसूरी मे भी कितने ही समय तक वकालत करते रहे। डा० सत्यकेतु अपने मुकदमे के तजर्बे के आधार पर कह रहे थे कि उनमे सफल वकील होने की प्रतिभा है। पर प्रतिभा असतुलित भी हुआ करती है। मसूरी मे वकालत की फीस लेने की जगह उन्होने पेटी लगा रखी थी। मुवक्किल जितना चाहे, उतना पारिश्रमिक उसमे डाल जाए। वकालत से भी दूसरी चीजें उनके लिए अधिक आकर्षण रखती थी। आइन्सटाइन के चले जाने पर दूसरे प्रोफेसर के नीचे वह डी० एस-सी० कुछ ही महीने मे कर सकते थे। लेकिन उस रास्ते को छोडने मे उन्हे अफसोस नही हुआ। पिछली बार जब से मुझसे मुलाकात हुई थी, तब से उन्होने सस्कृत पर ध्यान दिया था, और दर्शन तथा महाभाष्य की भी खबर ली थी। ऋषिकेश के एक विद्वान् और त्यागी साधु की प्रशसा करते नही थकते थे। पीछे औरो से भी मालूम हुआ, वह प्रशसा के योग्य थे। उनसे उन्होने सस्कृत और दर्शन पढा। रामचन्द्र ब्रह्मवादी भी नही थे, रहस्यवाद पर भी आस्था नही रख सकते थे, क्योकि साइन्स ने उन्हे बुद्धिवादी बना छोडा था। एक से एक अध्यात्म की बडी-बडी दूकाने भारत मे चल रही थी, किसी दूकान मे अपनी बुद्धि रेहन रख मानसिक शान्ति प्राप्त करते। वह बुद्धिवादी और साइन्स अनुरागी भी रहना चाहते थे और साथ ही भारतीय दर्शन और सस्कृत की महत्ता का भी सिक्का बैठाना चाहते थे। पथ नही चलाना चाहते थे, लेकिन चाहते थे उन्ही की तरह दर्शन के लिए कुछ फकीर साथ हो जाएँ। सोशलिज्म की आवश्यकता को महसूस करते थे, पर चाहते थे कि दूसरी धमाचौकडी भी चलती रहे। इसी मे कुछ समय या साल उन्होने

अपनी जमीदारी के गाँव के किसानों में भी बिताए थे, और ग्रामोत्थान करना चाहते थे। पहले गाँववालों पर उनकी विद्या का प्रभाव पड़ा, लेकिन बहुत घुल मिल जाने पर उन्होंने इन्हें अव्यावहारिक देखा। मेरा रामचन्द्र जी का सम्बन्ध पहिले ही जैसा रहा। उनको देखकर यही अफसोस होता था कि देश एक बडी प्रतिभा से वंचित हो गया।

२० अक्तूबर को विजयादशमी थी। यह उत्तरी भारत के मैदानों का त्योहार है। हिमालय में नवरात्र का मान है, विजयादशमी से उन्हें कुछ लेना देना नही है। हाँ, यदि इसमें कुछ लीला-तमाशा हो, नाच गाना हो, तो शायद पहाड के नर-नारियों को आकृष्ट कर सकती। मसूरी तो अंग्रेजों की थी, उन्हें ये चीजें पसंद नहीं थी। अब ऐसी परम्परा कायम करने में बडे श्रम, धन और धैर्य की आवश्यकता है।

बरसात के बाद मसूरी का दूसरा सैलानी-सीजन शुरू होता है जो मई जूनवाले की अपेक्षा छोटा होता है, पर दोनों के सैलानी बँटे हुए है। सबसे पहले अप्रेल में बम्बई तरफ के कुछ थोडे से लोग आ पहुँचते हैं। फिर उत्तर प्रदेश, और दिल्ली का सीजन शुरू होता है। बरसात में पंजाबी लोग रहते है, और बरसात के बाद दुर्गा पूजा की छुट्टियों का फायदा उठाते कितने ही बंगाली भद्र परिवार आ जाते हैं, लेकिन वे मसूरी की एकान्त निष्ठा के साथ नही आते, बल्कि इसी यात्रा में वे हरद्वार, ऋषिकेश, दिल्ली, मथुरा, बनारस सब को शामिल कर लेते है। बंगाल बिहार का पुराना सम्बन्ध है, दोनों एक प्रान्त थे और बडी जद्दोजहद के बाद बिहार अपने को अलग कर पाया था। अब फिर "पुनर्मूषिको भव" के न्याय को चरितार्थ किये जाने का उपक्रम हो रहा है। इस छोटे सीजन में बिहार के भी कुछ लोग आ जाते है। उस दिन प० गोविन्द मालवीय मिले। कुछ दुबले मालूम हो रहे थे। उसी दिन शाम को बिहार के मुख्य मन्त्री श्री कृष्ण बाबू सदल बल सामने सडक से जाते दिखाई पडे। बिहार अपने वातावरण को, जान पडता है साथ ढोये चलता है। बीस आदमियों से कम की मण्डली क्या रही होगी? दूसरे मन्त्री और मुसाहिब भी थे, शरीर रक्षक भी थे और

दया दृष्टि रखनी शुरू कर दी थी। मसूरी में चहल-पहल थी।

२१ अक्तूबर को श्री मुकुन्दीलालजी ने मोलाराम के बारे में बतलाया। "गढ़वाल" के बारे में बात हो रही थी। मोलाराम भारत के महान् और गढ़वाल के परम यशस्वी चित्रकार ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने गढ़वाल का पद्यबद्ध इतिहास लिखा था। उनके ऊपर मुकुन्दीलालजी ने लेख लिखे थे, जिन्हें वह अपने साथ लाये थे। उससे यह भी मालूम हुआ कि मोलाराम के वंशज श्रीनगर में अब सुनारी का काम करते हैं। अगले साल गर्मियों में बदरी-केदार की यात्रा करनी थी, क्योंकि उनके बिना "गढ़वाल" पूरा नहीं समझा जा सकता था, सोचा, उसी समय उनके बारे में भी कितनी ही जानकारी प्राप्त करूँगा।

२२ तारीख को तजर्बे ने लिखवाया—"यहाँ साग पैदा करना काफी मेहनत का काम है। लंगूर और लालमुँह आते ही रहते हैं।" अगले दिन मालवीयजी से मुलाकात हुई। वह इस समय हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति थे। वह कह रहे थे, हम विश्वविद्यालय में इंडालाजी का महाविद्यालय स्थापित कर रहे हैं, आपको उसमें आके काम करना चाहिए। बराबर नहीं, तो कुछ महीनों के लिए, और जिस वक्त चाहें उसी वक्त आकर रहें। मैं भी समझता था, काशी इस विषय का विशाल केन्द्र बन सकती है। संस्कृत का केन्द्र वह पहले ही से है, और वहाँ आसानी से बृहत्तर भारत की जानकारी के लिए भाषाओं और साहित्य के पढ़ाने का प्रबन्ध भी हो सकता है। पर, अब तो मसूरी से जाना असंभव था, एकान्त के बंगले को किसके ऊपर छोड़ कर जाता?

उसी दिन मैं जब लौट रहा था, तो एक परिचित से पुरुष ने परम रहस्य के तौर पर कहा—"आपकी पुलिस देखभाल करती है।" वह समझते थे, मुझे यह मालूम नहीं है। देखभाल करती रहे, मुझे उसकी क्या पर्वाह। मेरे विचार तो "आजकी राजनीति" में आ गये हैं, और समय-समय पर अपने लेखों में भी उसे व्यक्त कर देता हूँ। मैं कम्युनिस्ट हूँ यद्यपि इस समय पार्टी का मेम्बर नहीं था। पर पार्टी के हरेक निर्णय को अपने को

जिम्मेवार मानता हूँ और वही कारण था कि हार हो रही थी। कोरिया में उत्तर कोरियावाला की और यहाँ हमारी नींद हराम हो रही थी, मालूम होता था कलेजे में सैकड़ों सूइयाँ चुभ रही हैं।

बगले में फ्लश की कमी खटकती थी। युगों से हाथ से पाखाना साफ होता रहा है, मसूरी में भी अधिकांश बगले फ्लश के बिना हैं, पर मुझे उसका अभाव बहुत खटकता था। देहरादून के गुप्ता सेनिटरी स्टोसवाला ने अपनी योजना दी। मैंने उसे मजूर किया। लेकिन, फ्लश के तयार होने में अगले साल के आरम्भ तक की प्रतीक्षा करनी थी।

शरदपूना बडी प्यारी होती है। मसूरी में अक्सर उस दिन आकाश निरभ्र होता है। ऊपर नीले आसमान में सोलह कला से उगे चन्द्रदेव, नीचे देवदारों के नोकदार उच्च वृक्षों, वान (बज्राठ) के घने पत्तों और खुली तथा ढँकी जमीन पर फैली हुई चाँदनी। इस एकान्त स्थान में रात का नीरवता जल्दी छा जाती थी और कभी कभी कोई चिडिया निश्चित सेकेण्ड के बाद अपनी आवाज देती सारी रात बोलती रहती। चाँदनी सामने की हिम शिखर-पंक्ति पर और भी तेज पडती और वह गन्धर्वनगर-सी दिखाई पडती। १० बजे रात को चाँद और ऊपर चढ गया, चमक और भी तेज हो गई। इस समय हिमश्रेणी पर बादल नहीं था। रजतनगरी के उत्तुंग विशाल सौधों की भाँति हिमालय दिखाई पड रहा था, यद्यपि सुस्पष्ट नहीं था। हिमालय लाखों नहीं, बल्कि करोडों वर्ष से इसी तरह रहा होगा। शरद पूनो की यही छटा रहती होगी, पर सारा शृंगार बेकार है, यदि उसको देख कर तारीफ करनेवाला न हो। मनुष्य ने ही पृथ्वी पर आकर इस सौन्दर्य के मूल्य को बढाया।

२६ अक्तूबर को सारनाथ से भिक्षु धर्मालोक आये। हमारी बिरादरी बहुत बडी हुई है। घुमक्कड तो अपने हैं ही, तिब्बत और तिब्बती से सम्बन्ध रखनेवाले भी बन्धु हैं और बौद्ध भिक्षु तो घुमक्कड और बौद्ध दोनों होने के नाते। साहित्यकार भी सहोदर हैं कम्युनिस्टों के बारे में तो कहना ही नहीं। बहुत वर्ष हुए गए एक अंग्रेज योग रहस्यवादी विद्वान् डा० इवेंज्वे जन

योगाश्रम खोलने के लिए ऋषिकेश म ३५ एकड भूमि ली थी। अब आश्रम खोलने की सम्भावना नही रह गई, इसलिए उन्होने इसे महाबोधि क सभा को और कुछ पैसा क साथ देना चाहते थे। सभा ने धर्मालोकजी को जमीन देखने के लिए भेजा था। वह उसे देखकर यहा आये थे। कह रहे थे, वहाँ मच्छर बहुत है। ऋषिकेश से थोडा हटकर जमीन थी। पास म ही मोरा बहिन ने 'पशुलोक' खोल रखा था। मैंने कहा—"दोनो लोक एक जगह रह, अच्छा होगा। लेकिन, जगह का सभालते वक्त मसूरी म भी एक जगह लेनी जरूरी होगी।" उन्होने पूछा—"क्या ?" मैंने कहा—"मलेरिया मे लाग जब महीना बीमार रहग, तो उनके लिए एक स्वास्थ्यकर जगह भी चाहिए।' अगले दिन धर्मालोकजी गय और उसी दिन भया और भाभीजी भी। उनके साथ ही वह ऋषिकेश गये। भैयाजी अपनी याददाश्त ताजा करने के लिए लक्ष्मण झूला के महन्त रामादार दास क पास भी गये। अपनी घुमक्कडी के समय उन्होन तरुण रामोदार दास को वहाँ के पहले महन्त के पास रखवा दिया था। मैं भी वैरागी रहते उनका नाम सुन चुका था, क्योकि मेरा भी नाम उस समय वही था। १९४३ मे मैं लक्ष्मणझूला गया और उनके मठ के कई मकानो के विस्तार को भी देखा। न जाने कहाँ से मने खबर सुन ली थी कि अब वह इस दुनिया मे नही हैं। इसे अपनी जीवन-यात्रा म भी लिख मारा। भैयाजी ने उसे पढ लिया था।

अक्तूबर के अन्त तक जाडे का आगमन हो चुका था। फूल सब सूख गय थे। गिरनेवाले पत्ते गिरकर पेडो को नगा कर चुके थे। सफेदा, बीरी, पागर (चेस्टनट), नासपाती सभी काटे हो गय थे। हमारे लिए पहले पहल जाडा मसूरी म आनेवाला था, उसक बारे मे जानकार लोगो स हम जानकारी प्राप्त करन की कोशिश करते थे। मिस पूसाग और उनके परिवार से अब अच्छा परिचय हो गया था। वह बतला रही थी—१९४५ म बर्फ इतनी अधिक पडी कि आना जाना रुक गया। ६० रुपया लगाकर हमने रास्ता बनवाया। छतो पर इतनी बर्फ पड गई कि कितनी टूट गई और कितनो की दीवारें धँस गई।" देखना था, इस साल कैसा जाडा होगा।

२६ का कानपुर निवासी श्री बल्देवजी आए। उनके साथ मेरठ की श्रीमती शकुन्तलादेवी भी थी। बलदेवजी प्राय हर साल ही मसूरी आ जाया करते थे, और उस समय हर साल उनसे बातचीत करने का मौका मिलता। शकुन्तलाजी का तो यहाँ अपना मकान है, और कुछ दिनो के लिए वह यहा जरूर आती थी। इधर उन्होने सार्वजनिक कार्यों मे हाथ लगाया था, इसलिए समय की शिकायत रहती थी। उद्योगपरायण हैं, यह तो इसी से मालूम होगा कि कितने सालो के बाद फिर मेहनत करके उन्होने मट्रिक दूसरी श्रेणी म पास किया। चाहती तो और भी आगे बढ सकती थी, लेकिन अब उन्हे मेरठ की महिलाओ का नेतृत्व करना था। जिसका जीवन अभी आधा भी न बीता हो, और वैधव्य का भार सिर पर पडा हो, उसके लिए अपने जीवन का इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है।

भैया और भाभीजी के चले जाने से एक अभाव-सा मालूम होने लगा। जब से मसूरी पहुँचे थे तब से ही हर सप्ताह दो तीन बार घटो हम साथ रहते। यदि हमे स्वामी हरिशरणानन्द के रूप म एक दिली दोस्त मिल गया था, तो कमला को भी जानकीदेवी का स्नेह प्राप्त था। उनके रहते कमला को यहा का एकान्त अखरता नही था। मैं पुस्तको मे डूबता हूँ, तो सब गम गलत हो जाते हैं। ६० के होने म मुझे तीन वर्ष की देर थी। दूसरे के सामने नही, बल्कि अपने भीतर भी मैं यह मानने के लिए तैयार नही था कि मैं जरा की सीमा के भीतर पहुँच गया हू। हा ६० वर्ष के बाद जबर्दस्ती जरा ने इसे मनवा लिया। उस समय हफ्ते या दस दिन म मैं शहर जरूर चला जाता था। शहर का मतलब किताबघर भी हो सकता था, क्योंकि वहाँ भी बहुत-सी दूकानें हैं पर मैं कुल्हडी को ही शहर कहता हूँ। जो केन्द्र मे है और जहाँ बडी सख्या म अच्छी-अच्छी दूकानें हैं। वही बडा डाकखाना और रेलवे का आफिस है, बैंक भी वही हैं। वसे सबसे अधिक दूकानें लण्ढौर मे हैं। लण्ढौर कभी छठे-छमाह जा पाता था, लेकिन उस समय शहर जाना हो तो लण्ढौर चला जाता था। ४ नवम्बर को सर्दी पूरी तौर स आ गई थी। लण्ढौर गया तो सडक सर्दी के कारण कुछ अधिक कडी या फिसलाऊ

थी। एक जगह मेरा बूट फिसला और जोर से गिरा। खैर, कही छिला-छला नही, और हथेली पर भार पडने से उसी म कुछ दद हुआ।

तिब्बती—लण्ढौर म १५ १६ तिब्बतीभाषी परिवार है, जिन्ह यहा के लोग भोटिया कहते ह। किशनसिंह भोटिया नही कनौर थे, लेकिन उन्ह भी उसी नाम से लोग जानते थे। लण्ढौर जाने का एक लालच किशनसिंह स मिलना भी था। मसूरी के तिब्बतीभाषी वस्तुत ग्यगर खम्पा थे। ग्यगर भारत और खम् चीन के भीतर पूर्वी तिब्बत के बढे हुए भाग को कहते है। यह मूलत खम् के रहनेवाले थे, इसम भारी सन्देह है। वस्तुत अज्ञात काल म किसी समय इन्होने घुमन्तू-जीवन स्वीकार किया और अपनी घुमक्कडी म हर साल भारत और तिब्बत का चक्कर काटते रहे। जाडो मे दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई तक धावा मारना और गर्मिया मे मानसरोवर प्रदेश चला जाना। इन्ही म से कुछ नथूरिया की चीजे बेचते मसूरी म पहुँच यही बस गये। कितने ही समय तक नये सौदे को लाने के लिए तिब्बत भी जाते थे, फिर तिब्बत और चीन के नाम से बिकनेवाली चीज अमृतसर और दिल्ली म तयार होने लगी, जो सस्ती भी थी, इसलिए वहा जाने की जरूरत नही रह गई। इनसे मिलने पर तिब्बती भाषा बोलने और तिब्बत के बारे मे जानने का मौका मिलता था। वहाँ बतला रहे थे चीनी कम्युनिस्ट सेना सिक्याग से चाथाग के रास्ते गरतोक पहुँच गई है। सिक्याग चीनी तुर्किस्तान है, चाथाग वह विशाल निजन मदान है जो आबाद तिब्बत के उत्तर और सिक्याग के दक्षिण मे पडता है। यह भी मालूम हुआ कि गरतोक आने वाली सेना ने जीप का इस्तेमाल किया। अखबारो से यह भी पता लगा, कि ल्हासा के साथ भारत का सम्बन्ध नही है। अभी तिब्बत और चीन के सम्बन्ध के बारे म भारत सरकार अपना कोई निश्चय नही कर पाई है। सरदार, राजगोपालाचारी और दूसरे नेता चीनी कम्युनिस्टो के घोर विरोधी थे, और उनसे विरुद्ध मत रखनेवाले नेहरू जसो की चलती नही थी। तिब्बत मे कम्युनिस्टो के आने पर नेपाल मे भी खलबली मचे, तो आश्चय क्या ?

६ नवम्बर के रेडियो से पता लगा कि नेपाल के महाराजाधिराज न कल काठमाण्डू के भारतीय दूतावास मे शरण ली। राणा लोगो ने साम दाम सब दिखला समझाकर लौटान की कोशिश की, लेकिन महाराज त्रिभुवन लौटने के लिए तैयार नही हुए। इसपर राणाओ ने उनके तीन वर्ष के पोते और अपने नाती ज्ञानेन्द्र विक्रम शाह को गद्दी पर बठा दिया। अग्रेज और अमेरिकन साम्राज्यवादी राणा राहुओ के पक्षपाती थे। वह नवीन नेपाल को अपने अनुकूल नही समझते थे। दोनो ज्ञानेन्द्र को मानन के लिए तैयार थे। लकिन, भारत सरकार अभी मान्यता दन पर विचार कर रही थी। इतना भी शायद नेहरू के रूख के कारण हुआ था। उधर नेपाली जनता ने राणा-शासन के खिलाफ सशस्त्र युद्ध छेड दिया था।

हमारे पडौसी लेडली साहब के इकलौत पुत्र जान लेडली अब उस अवस्था को पहुँच गए थे, जब उन्हे अपनी जीविका का कोई प्रबन्ध करना चाहिए था। एग्लो इडियना के लिए रेलवे की नौकरिया अच्छी और बडी आसानी से मिल जाती थी। वह अब के साल कई महीन बाहर धक्का खाकर लौटे थे, कोई नौकरी नही मिली। बाप के पास दो बँगले और कुछ नकद भी था, इसलिए अब उन्होने यही रहकर काम करने का निश्चय किया। बँगले के पास के खेता का आबाद किया, गाय भसे खरीदकर डेरी चलाने की तयारी की। मुर्गियो क पालन का भी साच रहे थे, मधुमक्खी का भी एक दो छत्ता रख लिया था। अभी वह "अर्टेन" म ही रहत थ, लेकिन सरदार के "हन लाज" छोडने पर वे यहाँ आ जाना चाहते थे। हमारे वह स्थायी पडोसी और दिल मिलनवाले आदमी थे, इसलिए उनक अभ्युदय म हमारी भी दिलचस्पी थी। हन लाज डेरी अगले साल बाकायदा खुलकर अब भी चल रही है। मसूरी म सबस अधिक प्रामाणिक दूध यही से मिलता था। दूध का क्रीम निकालकर जाडा म उन्होने घी बनान का काम भी शुरू किया, जो अच्छा चला था। लेकिन एक साल घी अधिक तैयार कर लिया, और सीजन क वक्त चौथाइ की भी खपत नही हुई, जिसक कारण उन्ह घाटा उठाना पडा। देखादेखी दूसर बनिया न भी क्रीम निकालन

की मशीन मँगा ली और गाँवा मे ले जाकर वे दूध स घी निकालने लगे। होड लग गई।

१३ नवम्बर का जाडे का मध्याह्न नही था लेकिन सर्दी काफी थी। अब हम अपने बराडे के उस अश का महत्व मालूम हो गया, जहा दिन भर धूप रहती। हमने वही अपना अडडा जमा दिया। कमला को गरम कपडा पहनने की बडी ताकीद करता था, किन्तु उन्हे परवाह नही थी। सर्दी म काँपती भी रहती, लेकिन तब भी गरम कोट स शरीर ढकना भार मालूम होता। उस दिन उनके कलेजे म बडा तेज दद होने लगा।

१४ नवम्बर का पता लग गया, ल्हासा मे चीनी कम्युनिस्ट सेना आ गई है। भारत सरकार ने चीन के सामने यह सुझाव रक्खा था कि वहा बल प्रयोग न किया जाए, और अन्त म बल प्रयोग की जरूरत भी नही पडी। चीन और तिब्बत क प्रतिनिधियो ने मिल कर समझौता कर लिया।

दिल्ली—परिभाषा के सम्बन्ध म १७ नवम्बर को दिल्ली जाने की नौबत आई। अब मसूरी मे सलानी नही थ, इसलिए रिक्शे और कुली दुलभ थे। चालविल का फाटक सुनसान था। पुलिस चौकी के हैडकान्स्टेबल श्री टीकाराम "कुज" गढवाली भाषा के कवि और हिन्दी साहित्य के प्रेमी थे। वह अवसर मिलने आया करते थे। साथ का सामान लेकर चालविल जा एक बगले के चौकीदार को लेकर कितावघर पहुचे। कितावघर के चौक का गाधी चौक नाम दिया गया है, लेकिन अभी उस नाम से बहुत कम ही लोग परिचित है। जाडो मे टैक्सियाँ कभी सस्ती भी मिल जाती है। साढे ३ रुपए म टक्सी मिली। १० बजे किंकेग से आगे चले। सामने से एक बस गोया भिडन के ही लिए आगे दौडी दौड़ी आई। दोनो ड्राइवर सिक्ख थे, मुस्कुराकर रह गए। इधर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की योजना के अनुसार साहित्य तैयार करने के लिए मसूरी म काम करने का निश्चय हुआ था। मैने अपने मित्र डा० महादेव साहा को उसके लिए आने का लिखा था, कितने ही दिनो से उनकी प्रतीक्षा थी। आज देखा, भिडनेवाली बस पर वे बठे है। ड्राइवर को रोकने के लिए कहा, लेकिन सभी एक स नही होते, तो

भी हम इत्मीनान था कि अब कमला अकेली नही रहगी।

देहरादून म प० गयाप्रसाद शुक्लजी के यहाँ गए। आज ही वह आगरा से लौटे थ। डी०ए०वी० कालेज मे विद्यार्थिया के सामन मैंने भाषण दिया। कालेज म तीन हजार से अधिक विद्यार्थी ह, पर पुस्तके केवल १० हजार, यह बात खटकती थी। हिन्दी की समस्या पर भाषण और कुछ प्रश्नोत्तर हुए। रात की दिल्ली की गाडी म सीट रिजव थी। ट्रेन म कुछ देर तक शुक्लजी से बात होती रही। फिर वहाँ से चलकर १८ के सवेरे साढे ६ बजे दिल्ली पहुँच गए।

क्या बात थी, यहाँ का भी तापमान मसूरी जसा ही दीख पडता था। अब की बौद्ध विहार म ठहरा। वहाँ सिंहल के भिक्षु मिले, जिन्होने बतलाया कि इस समय विद्यालकार परिवेण (विहार) म त्रिपिटक का सगायन चल रहा है, और कितन ही भिक्षु मिल कर उसका सशोधन कर रहे है। जिस समय बुद्ध के उपदेश कागज पर उतरे नही थे और लोग उन्ह कठस्थ करके रखते थे, उस समय विशेष स्वर से मिलकर उनके पाठ करने को सगायन कहते थ। अब तो सगायन का सवाल नही था, क्योंकि सभी विनय, सुत्त और अभिधम्मपिटक मुद्रित है। कोई कठस्थ करके रखनेवाला भी नहा मिलेगा। धम्मपद जैसे छोटे मोटे सदभ को याद रखनेवाला भले ही कोई मिल जाए। पालि त्रिपिटक इस समय सिंहली, बर्मी थाई (स्यामी), कम्बोजी और रोमन लिपियो म छपा मिलता था, जिनम पूरा और अधिक सुलभ बर्मी और स्यामी लिपि का ही था। भारत म सस्कृत की पुस्तक पहल नागरी, बगला, उडिया, तेलुगु, ग्रथतमिल, मलयालम, कनड लिपियो म छपा करती थी। नागरी सबके ऊपर हावी हो गई और २०वी सदी के आरभ म जो उसन सस्कृत पर एकाधिपत्य कायम करना शुरू किया, तो आज ऐसी अवस्था पैदा हो गई कि शायद ही कोई सस्कृत पुस्तक उन लिपियो म छपती हो। नागरी के लिए पालि साहित्य म भी बहुत मौका है। वही एक लिपि है, जिसको पालि के लिए आज के चारों बौद्ध देश अपना सकते है। वस्तुत कितन ही ह" तक अपनाय भी हैं। सिंहल म प्राय सभी

पालि पंडित भिक्षु संस्कृत से परिचित होते हैं, क्योंकि वैद्यक और ज्योतिष की पुस्तकें वहां संस्कृत में ही पढ़ाई जाती हैं। और बौद्ध देशों में भी थोड़े बहुत संस्कृत पढ़नेवाले अतएव नागरी अक्षर से परिचित विद्वान् मिल जाते हैं। अब तक नागरी में त्रिपिटक को प्रकाशित करने में सफलता नहीं हुई है। इस दिशा में जो प्रयत्न हुए, वह बहुत दूर तक नहीं जा सके। भिक्षु उत्तम की सहायता से हम लोगों ने नागरी में पालि त्रिपिटक का सम्पादन शुरू किया था, लेकिन वह खुद्दकनिकाय के कुछ ग्रंथों तक ही सीमित रह गया। जातक का भी एक ही भाग नागरी में निकला। दीघनिकाय और विनयपिटक के छिट-पुट ग्रंथ जहां तहां से छपे। यह प्रसन्नता की बात है कि भारत सरकार, नालन्दा से सारे त्रिपिटक को नागरी अक्षरों में छपवाने जा रही है। दीघनिकाय प्रेस में चला गया है, और सम्पादन का काम बहुत तेजी से हो रहा है, पर मुद्रण चींटी की चाल से होने के कारण इस गति से इस शताब्दी के अन्त तक शायद त्रिपिटक को नागरी अक्षरों में देखा जा सके। खैर, यह शुभ आरम्भ है, आशा है पालि के बारे में नागरी वही काम करने में समर्थ होगी, जो कि संस्कृत के सम्बन्ध में उसने किया।

परिभाषाओं की विशेषज्ञ समिति बनाई गई थी, जिसके ही सम्बन्ध में दिल्ली आया था। हमारे परिचित श्री बालसुब्रह्मण्य अय्यर और डा० कुन्हन राजा भी इसमें शामिल हुए थे। कानून और दूसरे विषयों की परिभाषाओं के लिए अलग-अलग समिति की शाखाएँ बनाने का निश्चय हुआ पहले संसद् (पार्लियामेण्ट) सम्बन्धी परिभाषाएँ, फिर भू कर आदि कानून सम्बन्धी हाथ में ली जाएं। बालकृष्णजी का अभाव खटकता था, जो बतलाता था कि परिभाषा के बारे में सरकार ज्यादा उत्सुक नहीं है, वह उसे टालना चाहती है।

अगले साल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति मेरी दी हुई योजना के अनुसार साहित्य का कार्य कराने जा रही थी, जिसमें विद्वानों की आवश्यकता थी नागार्जुन उसके लिए बहुत योग्य थे, पर उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था डा० भारद्वाज ने बतलाया यदि वह सर्दी बर्दाश्त कर सकें, तो कोई हर्ज

नही। मैंने नागार्जुनजी को आने के लिए लिख दिया।

१६ को फिर विशेषज्ञों की समिति की बैठक हुई। हम लोगों ने पहले ही विचार किया था कि स्टाफ (कर्मियो) को बढाए बिना काम शीघ्रता से नही हो सकता। इस बैठक मे राष्ट्रपति और अध्यक्ष मावलकरजी आए थे। गुप्तजी ने स्टाफ बढाने का सुझाव रखा, दोनो ने इसे माना। जब तक सविधान सभा थी, तब तक राजेन्द्र बाबू उसके अध्यक्ष थे। सविधान बन जाने पर वह *भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति बने।* वह जानते थे, परिभाषा का काम बहुत महत्वपूर्ण है उसके बिना अग्रेजी हमारी छाती पर से नही उतर सकती क्योकि परिभाषा बिना हिन्दी उसका स्थान लेने योग्य नही होगी। वह यह भी समझते थे कि मौलाना और उनका शिक्षा विभाग सविधान मे उर्दू के सम्मिलित भाषा के प्रयत्न की हार से और जल उठा है, वह हिन्दी के रास्ते मे पग पग पर रोडा अटकाएगा। इसलिए विशेषज्ञो की समिति का भार मावलकर को दिया। इधर जब और तरह से काम नही बनते देखा और परिभाषा का काम अपने विभाग मे नही आया, तो आजाद ने एक दूसरी चाल चली, और दिवाकर, सत्यनारायण तथा मावलकार से मिलकर चाहा कि परिभाषा बनाने का काम हिन्दुस्तानी एकेडमी को दे दिया जाए, जिसमे काका कालेलकर सर्वेसर्वा बनकर सारा गुड़ गोबर करें। मुझे आश्चर्य होता है, इन लोगो को नाक की सीध से दूर क्यो नही सूझता? किसी एक या दस पाच आदमी के प्रयत्न से कोई भाषा भारत की सार्वदेशिक भाषा नही हो सकती। जिसमे वैसा होने की क्षमता है, वही हो सकती है। हिन्दी सदियो से अन्तर्प्रान्तीय क्षेत्र मे सम्मिलित भाषा के तौर पर व्यवहार की जाती रही है, क्योकि देश के बहुत बडे क्षेत्र मे वह बोली या समझी जाती है। उर्दू नही, हिन्दी शैली ही सार्वदेशिक भाषा बनने की क्षमता रखती है यह हमारे या किसी के प्रयत्न के कारण नही, बल्कि हिन्दी और भारत की और प्रादेशिक भाषाओ के शब्दकोश एक होने के कारण, जिससे उसका यह अश पहले ही से हिमालय से कन्याकुमारी तक समझा जाता है। उर्दू के फारसी-अरबी शब्द असमिया, बगला, उडिया,

तेलुगु तमिल, मलयाल्म, कन्नड, मराठी गुजराती के लिए लाह के चन हो जाते है। हिन्दी को हटा कर उर्दू-हिन्दुस्तानी के नाम से धाखे घडी से सावदनिक भाषा नही बन सकती, इसे जरा भी दिमाग रखनेवाला आदमी समझ सकता है, लेकिन पक्षपात मे अन्धी सापडिया के लिए क्या कहा जाए ? काका कालेलकर अपनी महथी चाहते थे, सत्यनारायण उसी के नाम पर ऊपर तक सुरखुरु थे दिवाकर और मावलकर वडा की हाँ मे हाँ मिलाने-वाले ठहरे। हिन्दी के खिलाफ यह षडयन्त्र देखकर सचमुच कोफ्त होती थी।

बिना काम बडा स मिलन की मेरी इच्छा नही होती। लेकिन श्री सोहनलाल शास्त्री और शकरानन्दजी न बहुत जार दिया इसलिए शकरानन्दजी के साथ १६ नवम्बर को मैं डा० अम्बेडकर के यहाँ गया। अम्बेडकर की योग्यता और काम का न मानना मेरे लिए सभव नही था। उनके कितनी ही प्रतिगामी बाता को जानते भी सबसे दलित जाति म चेतना और आत्माभिमान पैदा करन का जो बडा काम किया था, उसके लिए मैं उनका बहुत प्रशसक हूँ। सचमुच ही मेरे लिए यह समझना बहुत मुश्किल था कि उनकी तरह का समझदार आदमी क्स अमरिकी और अग्रेज थैलीशाही का समथक आर रूस जसे शोषण के कट्टर शत्रु तथा अपने व्यवहार से विषमताओ का हटानवाले देश के प्रति द्वेष रख सकता है। मुझे अम्बेडकर से मिलने की इच्छा नही थी। आध पौन घटे बातें हुई। वह इस समय बुद्ध की एक वाणी तयार कर रहे थे, उसके बारे मे भी कहा। इस पुरुष को जिन्दगी मे बडी ठोकरें खानी पडी। बडी जातवाला न बराबर यह समझाने की कोशिश की कि तुम अपनी स्थिति समझो। लेकिन, इसने कण क शब्दा मे कहा—

'सूता वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्त कुले जन्म मदायत्त तु पौरुषम् ॥"

अम्बेडकर ने अपने पौरुष से अपना लोहा मनवा लिया। मेरे लिए उनका यह रूप बहुत ही प्रिय और सम्माननीय था। पर उस थोडी देर की बात-व्यवहार से मुझे उनमे नीरसता मालूम हुई। मैं तो पहले ही भडक रहा था, इसलिए जरा भी कुछ दूसरा रूप देखकर धारणा बनाना आसान

था। इस तरह की मुलाकात मे चाय पानी की बात करना जरूरी था, लेकिन मालूम होता था, मैं कानून मन्त्री के आफिस म कोई नौकरी ढूढन के लिए गया हूँ, उन्हे नपी तुली ही बाते करनी चाहिए। खैर, इसस काइ मतलब नही था। इसके बाद मेरा विचार यही हुआ—"सात खून माफ लायक आदमी है, किन्तु मेरी तो यह प्रथम और अन्तिम भेंट मालूम होती है।" मृत्यु से कुछ दिन पहिले नेपाल म अम्बेडकर को देखा। योद्धा अब भी थे पर स्वास्थ्य जवाब दे चुका था। मरने से पहिले अम्बेडकर ने बौद्ध धम की नीव पुन रख दी।

बौद्ध विहार म कई जगहो के आदमियो से मुलाकात हुई, जिसके लिए ही अब के मैं वहा ठहरा था। पाकिस्तान के हाथ म गये मीरपुर (जम्मू) के शरणार्थी श्री ओमप्रकाशजी मिले। वह उस समय अपने घर से भगे, जब मीरपुर म भी आग लग गई थी। उनके पिता वकील थे। अपना घर द्वार और सम्पत्ति थी। कैसे ही भागे। अपना और अपनो का प्राण सम्पत्ति से अधिक मूल्यवान होता है। जब होश आया, तो चारो ओर से अपने को घिरा देखा। पिता और परिवार के कितने ही लोग मारे गये। दो बहन पाकिस्तान म कइ वर्षों तक रही, जहाँ उनका ब्याह भी हो गया था, लेकिन यह जबदस्ती का था। इसलिए अवसर मिलने पर वह अपने भाई के पास भारत चली आई। किस तरह हिन्दू स्त्रियो ने आततायियो के हाथ म पडने की जगह नदी म कूद कर अपना छुटकारा किया, कसी सासत सही, इसका बडा हृदय द्रावक वणन कर रहे थे। मैंने ओमप्रकाशजी से कहा—इसको लिपिबद्ध कर डालिए। हा यह जरूर था कि यह आततायीपन एकतरफा नही हुआ, जहाँ जिसका बस चला, वहाँ उसने अपने को मानवता से गिरा साबित किया।

अमृतसर—भैयाजी का बहुत आग्रह था कि दिल्ली आने पर अमृत सर जरूर आऊँ। आजकल सर्दियो का समय था, इसलिए तकलीफ का कोई सवाल नही था। ६ बजे रात की अमृतसर वाली गाडी पकडी और सहा रनपुर के रास्ते चलकर २१ नवम्बर के सबेरे अमृतसर पहुँच गये। भैया और भाभीजी स्टेशन पर मौजूद थे, इसलिए घर ढूढने की तकलीफ नही

उठानी पडी। तीन वर्ष पहले अमृतसर म आग लगी थी, वास्तविक और मानसिक भी। समझता था कि शहर अधिकतर उजडा मिलेगा और लोग बहुत कम। भैया का घर शहर के गर्भ मे था इसलिए शहर के बहुत से भाग को रास्ते मे देखते जाना पडा। मनुष्यो की सख्या कम नही मालूम होती थी। पहले कूचा कुत्तिया म भैया के तिमजिला मकान की ऊपरी छत पर पहुचा। इधर-उधर की बातें हुईं, भोजन किया, तब बाहर निकले। अकाली मार्केट मे भैया का प्रेस, पजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी और दवाईखाना है। भाई साहब दिमाग म बिल्कुल आधुनिकता रखते है और बुद्धिवाद की ता साकार मूर्ति है। जब आयुर्वेदिक दवायें बनानी शुरू की, तो उन्होंने सोचा, दवाओ के बनाने म आधुनिक यन्त्रो की भी सहायता ली जा सकती है। गोलियो के बनाने के लिए पहले भी कितने ही लोग मशीन का इस्तेमाल करते थे। भैया ने खरल और ढेकी तथा ओखल का काम भी बिजलीचालित यन्त्रो द्वारा लिया, और इसके लिए मशीनें यही के मिस्त्रियो से बनवाइ। भस्म बनाने म भी उन्होने आधुनिक साधनो का उपयोग किया, और दवाइयो मे अनन्त शुद्ध कच्ची सामग्री इस्तेमाल की। इसी के कारण उनकी फार्मेसी खूब चली। फार्मेसी के कारखाने को देखकर यह मालूम होता था कि उस पर यन्त्र-युग की छाप थी, पर घर म उतनी सफाई नही थी। पर यह अपना घर भी नही था। जैसे-तैसे घर म काम शुरू किया था, जिसम सुधार करना अपने बस की बात नही थी। वाइलेट (अतिकासिनी) किरणो का तेलो पर क्या असर होता है, आजकल इसकी परीक्षा पर भाइ साहब जुटे हुए थ। अवधी प्रान्त म भी दूध का बायकाट नही है, लेकिन दूध के भ्रम से चूने के पानी पर टूटने वाला दूधभक्त वहा कोई नही मिलेगा। पजाब मे भाई साहब को रहते तीस वर्ष से अधिक हो गये इसलिए यदि पजाब की कितनी ही बातो को अपना चुके थे, तो क्या आश्चर्य ? भाभीजी को यहा आए अभी दस वर्ष भी नही हुए, लेकिन उनकी बोली पर पजाबी अधिक छाई हुई थी। घर म घडे घडे दूध देने वाली दो भैसे थी। इस समय एक दूध दे रही थी। दूध, मक्खन, घी दही का क्या पूछना ? देश म

न हो, पर उस घर म तो दूध की नदी वह रही थी। छाछ इतना होता कि मुहल्ले वाला मे सदावत जारी था। अपने राम भी छाछ के वडे प्रेमी हैं। दूध के लिए जसा आक्षेप दूसरे पर करते थे, वैसे ही दूसरे छाछ के लिए हमारे ऊपर कर सक्त थे। घर म तागा और अच्छी घोडी ही नही, वल्कि उसकी बछेडी भी थी। घुमक्कडराज ने गृहस्थी अच्छी जोडी है, क्या इसे कहने की आवश्यकता है ?

कई वाजारा से होते दरवार साहव की ओर चले। दरवार तो तालाव के वीच मे है, लेकिन तालाव के हाते के भीतर घुसते ही हुकुम हुआ, सिर ढाक लीजिए। सम्मान प्रदर्शित करन के अपने अपने तरीक हैं। जव केश रखना परम धम माना गया, ता केशो को नगा रखना शोभा की चीज नही थी, इसलिए पगडी वाँधना अनिवाय हो गया। जव सारे लोग पगडी वाँध कर मन्दिर मे जा रहे हैं तो दूसरा को नगे सिर कस जाने दिया जाए, इस लिए सिर ढाकने क नियम को सवसे मनवाया जाने लगा। वौद्धा म सिर ढाँककर मन्दिर म जान का अथ असम्मान प्रदर्शित करना है, ईसाइया म भी यही वात है। पर मुसलमाना मे सिर ढाँकना जरूरी है। शायद कितनी ही वाता की तरह इस भी सिक्खा से मुसलमाना न लिया। अमूर्तिपूजक सिक्ख मन्दिर के भीतर काई मूर्ति नही रख सकते और जो मूर्ति का जवदस्त वायकाट करेगा, वह कला स वचित हो जाएगा। लेकिन, लोगा का क्या पता कि वस्तुत भगवान् झूठा है और मूर्तियाँ ही सच्ची है। भगवान् उतने उच्च भावा को मनुष्य के हृदय म नही भर सकता, जितना कि सुन्दर कलापूण मूर्तियाँ। ग्रथ साहव का वहाँ दो अधे रागी पढ नही गा रह थे। खर, इससे सगीत की तो पूछ जरूर है। तालाव क किनार सगमरमर का फश लगा है। जान पडता है धीरे-धीरे आसपास सगमरमर ही सगमरमर हो जाएगा। बहुत से मकानो का गिराकर वहाँ एक तरह के मकान वनवाय गए थे। सरोवर क भीतर मन्दिर देखकर तिब्वत मे वौद्ध इसे गुरु पद्मसम्भव का स्थान मानते हैं, और जाडा म कितन ही तिब्वती तीर्थयात्री दण्डवत् करते, परिक्रमा करत भी दखे जात हैं। मन्दिर का देखकर दश क

लिए सिक्खों का बलिदान याद आये बिना नहीं रहता। इन वीरों के भविष्य की सेवाओं का ख्याल आते तुरन्त कोमागातामारू की अमर कहानी आंखों के सामने आ जाती है, और प्रथम विश्वयुद्ध में ७० ७० वीरों के हँसते-हँसते देश के लिए सूली फासी पर चढ जाने का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है। करतारसिंह होता, तो आज बूढा होता, लेकिन उसने बीस वर्ष की अवस्था में ही अद्भुत निर्भीकता का परिचय दे अपनी जवानी का बलिदान किया था, और उसकी वह जवानी अमर है।

दिल्ली में बमन की पुस्तक "मिस्ट्री आफ बिडला हाउस" मिली। उसे घर में बैठे पढते रहे। आँखों के सामने यह सब हो रहा था, तब भी किसी के कान पर जू क्या नहीं रेंगती?

अमृतसर मैं सिर्फ दो दिन के लिए आया था। पहले दिन रात को ऊपर से सीढियों से उतर रहा था, रोशनी साफ नहीं थी, और पैर ने एक की जगह दो सीढी पार करना चाहा। शायद यह आखरी सीढी थी, इसलिये धडाम से गिरने पर बहुत चोट नहीं आई, हा, घुटना छिल गया। "कोई बात नहीं"—मैंने उस वक्त यही कहा।

२२ को चाय पीकर कम्पनी बाग की ओर टहलने गए। आजकल सैनिक उत्सव की तैयारी हो रही थी। रास्ते में गोविंदगढ मिला। एक जगह घोडी भी गिर गई, और तांगा उसके ऊपर पहुँच गया। पर घोडे इसके अभ्यस्त होते हैं। डा० पडामल से भेंट करने गए। ८० वर्ष के हो चुके हैं। यह पुरानी पीढी के उन पुरुषों में से है जिनको बुद्ध के व्यक्तित्व ने बहुत आकृष्ट किया। बौद्ध और दूसरी पुस्तकों का एक अच्छा सग्रह उनके पास था, और पुरानी मूर्तियों के भी प्रेमी थे। स्वय बुद्ध भक्त थे और बुद्धिवादी, पर पत्नी राधास्वामी की भक्तिन थी। द्वन्द्व-समागम था, पर विरुद्ध प्रकृति के लोगों में जब स्नेह होता, तो वह भी बहुत घना रूप लेता है।

शाम को टहलते जलियावाला बाग गये। दीवारों के ऊपर ३१ वर्ष बाद अब भी कितनी ही गोलियों के निशान मौजूद थे। भाई साहब ने उस

मन्दिर को भी दिखलाया, जिसके पीछे छिपकर उन्होंने और दूसरों ने अपने प्राण बचाये।

मसूरी—२२ की शाम को देहरादून की गाड़ी पकड़ी और सोते हुए रात के पौने बजे सहारनपुर पहुँच गया। दिल्ली के अखबार इसी वक्त यहाँ आकर विशेष कार से मसूरी पहुँचाये जाते हैं, यह हमें मालूम था। स्टेशन से बाहर निकलते ही आवाज सुनी और सात रुपया देकर "स्टेटसमन" वाली टैक्सी में बैठ गये, जो पौने चार बजे रवाना हुई। अंधेरे ही अंधेरे में मैदान छोड़ सिवालिक में प्रविष्ट हो घाटी पार करते पता भी नहीं लगा। हाँ, रोशनी में "राजाजी सेंक्चुअरी" अंग्रेजी में लिखा देखा। मालूम हुआ, अंग्रेजों के समय का "अभयदान वन" अब राजाजी के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। घंटे भर में हम देहरादून पहुँच गए। कारवाले ने एजेंटों को अखबार दिए, फिर पहाड़ पर चढ़ते ६ बजे किताबघर में ले जाकर हमें उतार दिया। अभी भी चिराग जल रहे थे। देहरादून से मसूरी की दीपमालिका दिखाई पड़ती थी, और यहाँ से तो देहरादून हजारों बिजली के चिरागों से जगमग-जगमग कर रहा था। इतने सवेरे भला कुली कहाँ से मिलता। चिरागों के बुझ जाने तक अपना सामान लिए अड्डे पर बैठा रहा। अंधेरा दूर हुआ, कुली आए। एक की पीठ पर सामान रखकर अपने घर की ओर चले। रास्ते में सड़क पर कुछ ऐसी जगहें हैं, जहाँ सूर्य की धूप नहीं पड़ती। वहाँ की ओस जमकर सफेद बर्फ बनी हुई थी।

महादेवजी सर्दी से परेशान मिले, लेकिन कहा—"कोई बात नहीं भुगत लेंगे।" रात को आग जला लेते थे। मकान खरीदते वक्त ऊँची छत को भूषण समझा था, लेकिन अब वह दूषण दीख रही थी। छोटी छत होती, तो लकड़ी जलाकर सारे मकान को गरम कर दिया जाता और जाड़े को बाहर रहकर चिरौरी करनी पड़ती। फ्लश बनाने में ढिलाई हो रही थी। मैंने समझा था लौट के आने तक वह तैयार मिलेगा।

महादेवजी की सर्दी का इन्तिजाम सबसे पहले करना था, इसलिए अगले दिन (२४ नवम्बर को) उनके साथ हम लण्ढौर बाजार गए, और

गरम कपड़ा कोट-पायजामा पहनने के लिए दर्जी को दे आए। बाजार जाने पर डा० जयन्त को यहाँ चाय पीना अनिवार्य था।

लौटते वक्त हमने यहाँ के एक क्लब के घर को भी देखा। किसी समय यह क्लब मसूरी की नाक थी। उस वक्त समझा जाता था इस क्लब के बिना मसूरी सूनी होगी। इतना लम्बा चौड़ा समतल स्थान मसूरी में किसी मकान के पास नहीं है। उसमें सात-आठ टेनिस कोर्ट थे। गांधीजी ने यहाँ कितनी ही बार शाम की प्रार्थना कराई थी और पास में ही बिड़ला निवास में ठहरे थे। मैंने अपने प्रथम वर्ष के निवास में चाहा कि अंग्रेजी नाम बदलकर इसका भारतीय नाम हो जाए, और गांधी भूमि उस नाम का सुझाव भी दिया था। उस समय यह शाला में नगरपालिका के बोर्ड को तोड़कर प्रबन्ध को सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था। आशा थी, कि जन निर्वाचित नगरपालिका कुछ करेगी पर वह पहले से भी गई-बीती साबित हुई—इसमें नहीं और बातों में भी। हमारे देखे क्लब वर्षों से सूना पड़ा हुआ था, बरसात में छत चूती थी, जिससे कितने ही फर्नीचर और दरी टाट खराब हो गए थे। क्लब में पुस्तकों का भी एक अच्छा संग्रह था, जिसकी पूछ करनेवाला कोई नहीं था। आज घर को नष्ट होते देख कर आशा हुई, इसी वर्ष का भाग्य शायद फिर जगेगा लेकिन जब सारी मसूरी का भाग्य सो रहा हो, तो इस क्लब की क्या आशा थी?

नेपाल में इस समय स्वतन्त्रता का युद्ध छिड़ा हुआ था। नेपाली कांग्रेस के वीरों ने वीरगंज को राणा-शासन से मुक्त कर लिया था। लेकिन, कांग्रेसी स्वयं सेवक सुशिक्षित सेना नहीं थी, न उनके पास हथियार थे। भारत सरकार किसी तरह की सहायता प्राप्त करने में बाधा डालने के लिए उतारू थी। स्वतन्त्रताप्रेमियों को चक्की के दो पाटों के भीतर पड़कर पिसना था। २८ नवम्बर को पता लगा नेपाली कांग्रेस के स्वयंसेवकों को वीरगंज छोड़ कर पीछे हटना पड़ा। क्या उनकी कुर्बानियाँ व्यर्थ जाएँगी? उस समय तो एक ही आशा थी कि नेपाली सेना राणाओं के हाथ से बेहाथ हो जाएँगी। सारी परिस्थिति प्रतिकूल मालूम हो रही थी, लेकिन काल स्वतन्त्रताप्रेमियों

के पक्ष मे था। अगले दिन की खबरों से मालूम हुआ कि नेपाल का सशस्त्र-विद्रोह सफल नही हुआ। काग्रेसवाले सेना को प्रभावित नही कर सके, भारत सरकार ने भारी रुकावट पैदा कर दी। अग्रेज बलि का बकरा बनाने के लिए नेपालियो को अपनी सेना म भरती कर रहे थे, जिसमे राणा परम सहायक थे, इसलिए वह अपने पौष्यपुत्रो को कैसे अपदस्थ होने देते? इसी बीच त्रिभुवन काठमाण्डू के भारतीय दूतावास म शरण लेकर और हमारी दृढता के कारण भारतीय विमान म चढकर दिल्ली पहुँच गए। सरकार की ओर से उनका खूब स्वागत हुआ था। पर, यदि राणाओ को अपने पद पर बने रहने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से काम करने देना था, तो इस प्रदर्शन का क्या मतलब?

भारत म पिछले कई वर्षों से जो शासन का सूत्र काग्रेसियो के हाथ म आया, तब से भ्रष्टाचार और अयोग्यता इतनी बढ गई कि कितने ही लोग समझने लगे कि काग्रेस अब चूती नाव है, इसमे रहने की जरूरत नही। डेमोक्रेटिक फ्रट यही सोचकर काग्रेस से अलग हो गया। लेकिन काग्रेस की निर्बलताओ से तभी फायदा उठाया जा सकता है, जब उसके मुकाबले मे वैसा ही एक सम्मिलित सगठित मोर्चा तैयार हो।

बम्बई—सविधान के सस्कृत अनुवाद समिति के डा० काणे अपनी वृद्धावस्था के कारण बम्बई से इधर उधर जाने म असमर्थ थे, इसलिए समिति की बैठक बम्बई म बुलाई गई थी मुझे भी वहाँ जाना था। २७ नवम्बर को घर से प्रस्थान कर तीन रुपये म टैक्सी ले सवा १० बजे गुप्तजी के घर पहुचा। फ्लश बनानेवाले बडी सुस्ती दिखला रहे थे। गुप्ता स्टोर म पूछने पर मालूम हुआ, अभी कलकत्ता से सामान नही आया। छपरा के दो तरुण देहरा म वर्षों से रह रहे थे, एक सफल वैद्य थे और दूसरे ने हिन्दी-विद्यालय खोल रखा था। देहरा उनका घर बनता जा रहा था अगली *पीढ़ी तो शायद छपरा की बोली भी भूल जाएगी।*

आजकल युनिवर्सिटियो मे डाक्टर बननेवालो की बाढ आ गई थी। पी एच० डी० और डी० लिट० का टके सेर होना कुछ लोगो को बुरा लग

रहा था। पर यह दोष डिग्रियो का नहीं है। डिग्री के लिए अनुसन्धान करने वाला म कोई कोई अच्छे भी निकल आ सकते हैं। शुक्लजी सस्कृत और हिन्दी के विद्वान् तथा सफल अध्यापक हैं। उनकी कुछ इच्छा देख मैंन भी ज्यादा प्रोत्साहन दिया। विषय 'कृष्ण काव्य का स्रोत'' रखना था। कुछ साला तक शुक्लजी का ध्यान इधर था, और मैं भी आगे बढाने की कोशिश करता रहा। लेकिन, यह भार ढाना उनके लिए मुश्किल और व्यर्थ भी था। हिन्दी विभाग क अध्यक्ष ये, देहरादून छोडकर और कही काम करन जाना नही था, इसलिए डाक्टर बनन से कोई लाभ नही था। फिर शुक्लजी बहुधन्धी और सबकी सेवा के लिए हर वक्त तैयार रहते है। कालेज मे पढाई के घन्टो को छोडकर बाकी सारा समय उनका परोपकार म लगता है। सवेर चाय और मध्याह्न भोजन तो घर मे होना निश्चित है। फिर १२ बजे रात तक उनका घर म पता नही रहता। साईकल भी नही चलाना जानते, सारी यात्रा पैदल ही करते थे। इससे एक लाभ तो उन्हे जरूर होगा कि वह शुक्लाइनजी की तरह कभी डायबटीज के शिकार नहीं हुए। नगरपालिका के नये चुनाव म वह शिक्षा विभाग के अध्यक्ष बना दिय गए— "एक करेला दूसरे नीम पर चढा''। अब भला उनको साँस लेने की फुरसत कहाँ हो सकती थी ? पर मेरे आन पर थोडी बहुत फुरसत उन्हे निकालनी ही पडती थी।

देहरादून से बम्बई के लिए रवाना हुआ। २८ नवम्बर को सवेरे पौ फटत हमारी ट्रेन दिल्ली पहुची। यहा हमे ट्रेन बदलनी थी। दूसरी ट्रेन म बर्थ रिजर्व नही इसलिए जगह मिलन मे सन्देह मालूम हो रहा था, लेकिन फ्रांटियर मेल से कितने ही लोग दिल्ली मे उतरे। मैं जिस डब्बे म बैठा, उसम अमृतसर से आने वाले दो तरुण भी थे। ट्रेन ने यही से लेट होना शुरू किया। मथुरा, भरतपुर, कोटा रतलाम, बडौदा, सूरत से होते जाना था। रास्ते मे करौली और जयपुर के भी इलाके मिले। एक जगह जयपुर के गुप्तजी गाडी पर चढे, हमारा कम्पार्टमेंट पूरी तौर से भर गया। मालव की भूमि पार करत गुजरात म प्रविष्ट होने के कारण कुछ ही देर बाद रात

हो गई। सवेरे बलसार आया। मालूम हुआ ट्रेन दो घंटा लेट है। दो घंटा लेट ही हम बम्बई सेंट्रल स्टेशन पहुंचे। श्री घनश्यामदास पोद्दार को पहले ही पत्र लिख चुका था, उनका आदमी मौजूद था। इसलिए मलाबार हिल पर सेठजी के घर पर पहुंचने में कोई दिक्कत नहीं हुई। आजकल स्वास्थ्य के ख्याल से पोद्दारजी समुद्र के किनारे जुहू में रहते थे मुझे उनके घर पर ही ठहरना था। दो दिन पहले आ गया था, सोचा था इसमें बम्बई के मित्रों से मिलना जुलना हो जाएगा। उस दिन स्नान और भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम किया। बड़े शहरों में एक जगह से दूसरी जगह जाने की बड़ी दिक्कत होती है, पर कार मौजूद थी। मुझे परतन्त्र सवारी में घूमने में एक डर यह भी रहता है कि कहीं कोई घाव न लग जाय। सिद्धान्त के तौर पर तो पहले से ही मानता था कि डायबटीज में घाव या फोड़ा-फुन्सी होना ही उसे बीमारी का रूप देना है।

अमृतसर में घुटना मामूली-सा छिल गया था। जिन्दगी में इस तरह का छिलना कोई बात नहीं समझता था। मसूरी में रहने पर मालूम हुआ, वह सूख गया। यहाँ आकर स्नान करते वक्त भिगाने से परहेज नहीं किया। अब डायबटीज भवानी ने अपना रूप दिखाना शुरू किया। पहले दिन खतरा उतना मालूम भी नहीं हुआ था। उस दिन ३ बजे निकला। "गढ़वाल" लिखने में हाथ लगाया था, इसलिए "केदारखण्ड" और कुछ दूसरी संस्कृत पुस्तकों की आवश्यकता थी। वेंकटेश्वर प्रेस गया। 'वेंकटेश्वर समाचार" के सम्पादक शास्त्रीजी और दूसरे कितने ही अदृष्ट परिचित निकल आए। वेंकटेश्वर प्रेस ने संस्कृत की बड़ी सेवा की है। अपने बचपन में संस्कृत से अपरिचित होते समय पंदाहा में मैंने इस प्रेस का नाम सुना था, जब कि मेरे नाना के पुरोहित ऊधो बाबा के नाती ने कोई पुस्तक यहाँ से वी० पी० द्वारा मँगवाई थी। उसी के आसपास कनैला में आने पर इस प्रेस की छपी कुछ चौताल और दूसरी पुस्तकें अपने घर पर मिलीं, जिन्हें मझले फूफा ने बम्बई से भेजा था। आजकल उसका प्रबन्ध रिसीवर के हाथ में था, जिसके कारण उन्नति रुक गई थी। सारा प्रेस दिखाया गया, 'केदारखण्ड'

भी मिल गया। प्रेस के मालिक तरुण सेठ भी मिले।

वहा से पार्टी के केन्द्रीय आफिस म गए, कुछ परिचित मित्रो से मुलाकात हुई।

अगले दिन ३० नवम्बर को डॉ० हेमचन्द्र जाशी से मिलन गया। आजकल वह यहाँ 'धमयुग" साप्ताहिक का सम्पादन कर रह थे। इलाचन्द्रजी भी यही पर थे। "धमयुग" का जब चालू करना था, तब इसके लिए उनकी योग्यता से लाभ उठाना था, जब इनकी कलम और वग पहेली के कारण "धमयुग" ५० हजार से भी अधिक छपन लगा, तो इनकी जरूरत नही रही, और सेठजी न धत्ता बता दिया। डाग से मिलने गये। वह उस वक्त घर पर ही थ। कितनी ही देर तक बातचीत होती रही। डाग सबसे पुराने तपे हुए मजदूर नेता और मार्क्सवाद के पण्डित ही नही, बल्कि भारतीय इतिहास और सस्कृति के भी गम्भीर विद्वान है। उनके साथ बात करने मे आदमी को आनन्द आता है। कह रह थे हमे पार्टी की नीति बदलनी होगी, बडी गलती की गई है, जिससे पार्टी को बहुत हानि पहुची है।

उसी समय एक चीनी फिल्म का निजी प्रदशन सेन्ट्रल स्टुडियो (तारदेव) मे हो रहा था। एसे फिल्म देखन को बहुत कम ही मिलते ह, जा सिरदद न पैदा करत हा। इस मौके से लाभ उठाय बिना मैं कसे रह सकता था। पास भी मिल गया था। एक चीनी वीर तरुणी का जीवन इसम चित्रित किया गया था। कैसे उसने हँसत-हँसत जापानी आक्रमणकारियो के हाथा अपने प्राण खाय और उससे पहले, कितन साहस के बडे-बडे काम किये, यह उसम दिखाया गया था।

१ दिसम्बर को देखा, बायें घुटन का छिला भाग हरा हो गया है। दवाई लगाई, पानी से पीछे बचाया भी, पर वह ठीक नही हुआ। आज अनुवाद समिति की बैठक थी, इसलिए पहले वहा जाना जरूरी था। समय था इसलिए पहले म्युजियम म डा० मोतीचन्द क पास गया। सिर्फ उनस ही बातचीत हाती रही और म्यूजियम नही देखा। समिति की बठक दा

घंटे तक चली। पं० लक्ष्मण शास्त्री और डा० मंगलदेव शास्त्री के किए हुए अनुवादों को दोहराया गया। डा० मंगलदेव शास्त्री, डा० बाबूराम सक्सेना, सुनीति बाबू और डा० काणे उपस्थित थे। डा० कुन्हन राजा संस्कृत पढ़ाने ईरान चले गए थे इसलिए उनके आने की आशा नहीं थी। अब रोज अपराह्न में समिति की बैठक होने लगी। सोमवार को श्री बालसुब्रह्मण्य अय्यर और महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा भी आये, लेकिन सुनीति बाबू और डा० बाबूराम चले गये। अनुवाद का काम इधर चलता रहा, और इधर मेरे घाव ने अपना रूप दिखाना शुरू किया। तब भी एकाध दिन रोका। "रिपु रुज पावक पाप, इनहिं न गनिय छोट कहि।" की सूक्ति दिमाग में चक्कर काटने लगी, जब डाक्टर की शरण लेना अनिवार्य जान पड़ा। सेठजी के मकान के पास ही उनके डाक्टर थे। उन्होंने मूत्र की परीक्षा करके बतलाया, कि चीनी दो सैकड़ा है रक्तदाब १७० १९० है, जो थोड़ा सा अधिक है। पैरों में हलकी सूजन भी है। आज उन्होंने इन्सुलिन दे दी। अभी तक मैं इन्सुलिन का एकान्त भक्त नहीं हुआ था, उससे बचना चाहता था, वैसे सूई लेने में कोई घबराहट नहीं होती। डाक्टर ने कहा, आवश्यकता हुई, तो कल पेनिसिलिन देंगे, और तब तक के लिए पेनिसिलिन की दस गोलियाँ खाने के लिए भी दीं। सोच रहा था—"जर्वाहत-भार हूँ। जीवन में करणीय से अधिक कर चुका हूँ, इसलिए मृत्यु का जरा भी भय नहीं, अफसोस नहीं। तो भी बुरी मौत मरने की आवश्यकता क्या?" अब पैर पर अपना पूरा अधिकार नहीं था, लेकिन अवलम्ब रखने की उतनी आवश्यकता भी नहीं थी। समिति की बैठक की जगह पर कार से पहुँच अपनी कुर्सी पर जा बैठता।

कोरिया की स्थिति ने अब गम्भीर रूप धारण किया था। अमरिका ३८ अक्षांश को पार कर आगे बढ़, अपने को बड़ा तीसमार खाँ समझता था, लेकिन जब चीनी सैनिकों से पाला पड़ा तो उसकी सेना में भगदड़ मच गई। जान पड़ने लगा कि चाग काई शेक की तरह अमेरिकनों को भी चीनी बहादुर प्रशान्त सागर में फेंक कर दम लेंगे। अमरिका ने पर-

माणु बम इस्तेमाल करने की धमकी दी। धमकी ही नहीं, उसके इस्तेमाल करने के लिए वह तुला दीख पड़ा। पश्चिमी यूरोप के उसके पिट्ठू घबड़ा उठे। रूस के पास भी परमाणु बम था वह अमेरिका को खुला छोड़ नहीं सकता था। रूस के परमाणु बमों के सबसे पहले शिकार इंग्लण्ड और फ्रांस होते और वहां "रहा न काउ कुल रोवनिहारा की नौबत आती, इसलिए एटली यह समझाने के लिए भागे भागे अमेरिका गए, परमाणु बम इस्तेमाल न करें और चीन के साथ सुलह की जाय।

पनिसिलिन और इन्सुलिन दोनों का इन्जेक्शन होने लगा। यहां से चलने के पहले घाव को सूख जाना चाहिए था। पर, डायबेटीज ऐसी बात सुनने के लिए तैयार नहीं थी। बम्बई के कौंसिल भवन में ही हमारी बैठक होती थी म्यूजियम भी वहाँ से बहुत दूर नहीं था। ९ दिसम्बर का सग्रहालय में डा० मोतीचन्दजी से एक घंटे बातें होती रहीं। वहीं पटना के एक क्यूरियो विक्रेता मिल गये। कह रहे थे हमारे पास ४० हजार हस्तलिखित ग्रंथ हैं। हमने और जालानजी ने राजगुरु प० हेमराज की बहुत सी पुस्तकें खरीद ली हैं। राजगुरु ने बड़ी मेहनत से जिन्दगी भर कितनी ही तालपत्र और दूसरी दुर्लभ पुस्तकें जमा की थी। इस तरह का सग्रह मिलना चाहिये था, किसी राष्ट्रीय सग्रहालय या पुस्तकालय को। अब वह इस तरह बँट रहा था। निजी सग्रहों में अनमोल वस्तुओं का सुरक्षित रखना सभव नहीं है, यही ख्याल करके मैंने अपने सग्रह को पटना म्यूजियम और बिहार रिसर्च सोसाइटी को दे दिया था।

आज ही ७९ वर्ष की उमर में श्री अरविन्द घोष के देहान्त की खबर मिली। महर्षि रमन और अरविन्द आध्यात्मिकता के महान् प्रकाश-स्तम्भ थे। मेरी दृष्टि से भले ही वह महान् अन्धकार स्तम्भ रहे हों, पर लाखों उनके भक्त थे। सेठ-सेठानी तथा राजा-रानी तो उन्हें अन्तिम अवतार समझ कर आरती उतारते थे। अफसोस है यह दोनों चल बसे। लेकिन, पूरी उमर पाकर ही, इसलिए किसी को शिकायत करने की गुंजाइश नहीं। दोनों की दिव्य शक्तियों का पिछली चौथाई शताब्दियों से धुँआधार प्रचार हुआ

घट तक चली। प० लक्ष्मण शास्त्री और डा० मगलदेव शास्त्री के किए हुए अनुवादो को दोहराया गया। डा० मगलदेव शास्त्री डा० बाबूराम सक्सेना सुनीति बाबू और डा० काणे उपस्थित थे। डा० कुन्हन राजा सस्कृत पढाने इरान चले गए थे इसलिए उनके आने की आशा नही थी। अब रोज अपराह्न मे समिति की बैठक होने लगी। सोमवार को थी बालसुब्रह्मण्य अय्यर और महामहोपाध्याय गिरधर शर्मा भी आये, लेकिन, सुनीति बाबू और डा० बाबूराम चले गये। अनुवाद का काम इधर चलता रहा, और इधर मेरे घाव ने अपना रूप दिखाना शुरू किया। तब भी एकाध दिन रोका। 'रिपु रुज पावक पाप, इनहिं न गनिय छोट कहि।" की सूक्ति दिमाग मे चक्कर काटने लगी, जब डाक्टर की शरण लेना अनिवार्य जान पडा। सेठजी के मकान के पास ही उनके डाक्टर थे। उन्होंने मूत्र की परीक्षा करके बतलाया, कि चीनी दो सैकडा है, रक्तदाब १७० १६० है, जो थोडा सा अधिक है। पैरो मे हलकी सूजन भी है। आज उन्होने इन्सुलिन दे दी। अभी तक मैं इन्सुलिन का एकान्त भक्त नही हुआ था, उससे बचना चाहता था, बस सूई लेने मे कोइ घबराहट नही होती। डाक्टर ने कहा, आवश्यकता हुई, तो कल पेनिसिलिन देंगे, और तब तक के लिए पेनिसिलिन की दस गोलियाँ खाने के लिए भी दी। सोच रहा था—"अजहित भार हूँ। जीवन मे करणीय से अधिक कर चुका हूँ, इसलिए मृत्यु का जरा भी भय नही, अफसोस नही। तो भी बुरी मौत मरने की आवश्यकता क्या ?" अब पैर पर अपना पूरा अधिकार नही था, लेकिन अवलम्ब रखने की उतनी आवश्यकता भी नही थी। समिति की बैठक की जगह पर कार से पहुँच अपनी कुर्सी पर जा बैठता।

कोरिया की स्थिति ने अब गम्भीर रूप धारण किया था। अमरिका ३८ अक्षाश को पार कर आगे बढ, अपने को बडा तीसमार खाँ समझता था, लेकिन जब चीनी सैनिको से पाला पडा तो उसकी सेना मे भगदड मच गई। जान पडने लगा, कि चाग काइ-शेक की तरह अमरिका को भी चीनी बहादुर प्रशान्त सागर मे फेंक कर दम लेंगे। अमरिका ने पर-

माणु बम इस्तेमाल करने की धमकी दी। धमकी ही नही, उसके इस्तेमाल करने के लिए वह तुला दीख पडा। पश्चिमी यूरोप के उसके पिट्ठू घबडा उठे। रूस के पास भी परमाणु बम था, वह अमेरिका को खुला छोड नही सकता था। रूस के परमाणु बमो के सबसे पहले शिकार इग्लैण्ड और फ्रास होते और वहाँ "रहा न कोउ कुल रावनिहारा" की नौबत आती, इसलिए एटली यह समझाने के लिए भागे भागे अमेरिका गए परमाणु बम इस्तेमाल न करे और चीन के साथ सुलह की जाय।

पेनिसिलिन और इन्सुलिन दोनो का इन्जेक्शन होने लगा। यहाँ से चलने के पहले घाव को सूख जाना चाहिए था। पर, डायबेटीज ऐसी बात सुनने के लिए तैयार नही थी। बम्बई के कौसिल भवन मे ही हमारी बैठक होती थी म्यूजियम भी वहाँ से बहुत दूर नही था। ५ दिसम्बर को सग्रहालय मे डा० मोतीचन्दजी से एक घटे बात होती रही। वही पटना के एक क्यूरियो-विक्रेता मिल गये। कह रहे थे हमारे पास ४० हजार हस्तलिखित ग्रथ हैं। हमने और जालानजी ने राजगुरु प० हेमराज की बहुत सी पुस्तकें खरीद ली है। राजगुरु ने बडी मेहनत से जिन्दगी भर कितनी ही तालपत्र और दूसरी दुर्लभ पुस्तकें जमा की थी। इस तरह का सग्रह मिलना चाहिये था, किसी राष्ट्रीय सग्रहालय या पुस्तकालय को। अब वह इस तरह बँट रहा था। निजी सग्रहो मे अनमोल वस्तुओ का सुरक्षित रखना सभव नही है यही ख्याल करके मैंने अपने सग्रह को पटना म्यूजियम और बिहार रिसर्च सोसाइटी को दे दिया था।

आज ही ७९ वर्ष की उमर मे श्री अरविन्द घोष के देहान्त की खबर मिली। महर्षि रमन और अरविन्द आध्यात्मिकता के महान् प्रकाश स्तम्भ थे। मेरी दृष्टि मे भले ही वह महान् अधकार स्तम्भ रहे हो, पर लाखो उनके भक्त थे। सेठ सेठानी तथा राजा रानी तो उन्हे अतिम अवतार समझ कर आरती उतारते थे। अफसोस है यह दोनो चल बसे। लेकिन, पूरी उमर पाकर ही, इसलिए किसी को शिकायत करने की गुजाइश नही। दोनो की दिव्य शक्तियो का पिछली चौथाई शताब्दियो से धुआधार प्रचार हुआ

था। अरविंद के चेले कहा करते थे, कि उनका शरीर कभी नहीं विकृत होगा, लेकिन दो ही दिन में जब गंध आने लगी, तो जल्दी जल्दी उन्हें बकस में बन्द करके दफना दिया गया। हिंदुओं ने दफनाने की प्रथा बहुत पहले ही छोड़ दी थी, और उसकी जगह जलाने की स्वास्थ्यकर प्रणाली अपनायी थी। पर, चेलों को तो अरविंद की कब्र पुजवानी थी, इसलिए क्यों उसे जलाने लगे? दोनों आध्यात्मिक प्रकाशस्तम्भों में आपस में नहीं बनती थी। कभी एक जगह बैठने का तो उन्हें मौका नहीं मिला, पर मन ही मन समझते थे, कि एक जंगल में दो सिंह नहीं रह सकते। विश्वासियों को घबराने की जरूरत नहीं, अगर उनके पास मूढ़ श्रद्धा मौजूद है तो अवतारपुंज के दूसरे महास्तम्भ खड़े होने में मुश्किल नहीं होगी। देर लगेगी, लेकिन कल्की अवतार आवेंगे जरूर। अरविन्द के मरने से सारी बम्बई पर शोक छा गया, यह कहना गलत है, क्योंकि वह केवल उस वर्ग के पूज्य और परिचित थे जिसकी संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती है। उन लोगों में जरूर शोक छाया हुआ था।

६ दिसम्बर को डा० जगदीशचन्द्र जैन से मिले। फिर अंधेरी में सरदार पृथिवीसिंह से मिलने गया। सरदार आजकल यहाँ नहीं थे, और प्रभा भाभी जी पुत्र विजय के साथ घूमने गई थी इसलिए दोनों से मुलाकात नहीं हो सकी।

७ दिसम्बर को डा० मोतीचन्द और उनके एक पारसी मित्र के साथ ताज होटल मे चाय पीने गया। पारसी सज्जन पीतलों और पीतल की मूर्तियों के संग्राहक तथा उत्साही जिज्ञासु थे। वहाँ से डा० मोतीचन्द दूसरे होटल में ले गये, जहाँ मुर्गमुसल्लम का भोज हुआ। उनके चचा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने समय के समाज से बहुत आगे बढ़े हुए थे, लेकिन मुर्गमुसल्लम का साहस उन्होंने भी कभी नहीं किया होगा। यदि जीते जी यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, तो श्राद्ध का मुर्गमुसल्लम तो मौजूद था। आखिर परमवैष्णव, और नहीं तो "घ्राणम् अर्द्ध भोजनम्" ही सही।

८ दिसम्बर को फिर अंधेरी गए। अब के प्रभा बहिन मिलीं। विजय

की बहिन प्रभा भी ससार म आई थी। वही भोजन हुआ। फिर पिछले कई सालो की बीती बातें सुनी। सरदार का एक घर बम्बई म और एक घर भावनगर म रहता है। प्रभा बहिन बच्चो की शिक्षा का ख्याल करके बम्बई छोडने के लिए तैयार नही।

६ दिसम्बर को अन्तिम बार समिति म तीन चार घटे रहा। भारतीय विद्या भवन मे आज ही भारतीय सस्कृति पर भाषण देना था। मुनि जिनविजयजी समिति के सदस्य होने के कारण वही मिल गये थे, वही इस सभा के सभापति थे। मुनिजी बहुत वर्षों तक भारतीय विद्या भवन के सचालक रहे, उसके प्रतिष्ठाता श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुशीजी थे। मुनिजी भारतीय सस्कृति और विद्या के गम्भीर साधक विद्वान थे। हम दोनो का परिचय भी साधारण नही था। उन्होने "प्रमाण वार्तिकभाष्य" को यहाँ से प्रकाशित करना चाहा था, जिसमे वह सफल नहीं हुए। तिब्बत से एक दूसरी महत्वपूर्ण ताल पोथी हर्षवर्धन शीलादित्य के गुरु गुण प्रभ की महान् कृति "विनयसूत्र" को उतारकर मैं लाया था। जो सारे विनयपिटक का सार था। सूत्तपिटक के बारे मे जो काम वसुबन्धु ने अपने 'अभिधमकोश' के रूप म किया, वही काम विनयपिटक के सम्बन्ध म गुण-प्रभ ने किया था। तिब्बत म पाँच मूल पाठ्य ग्रथो म एक यह भी है। इसके तिब्बती अनुवाद का पता तो लोगो को था पर मूल के मिलने की आशा नही थी। मैं उसे बडी साध के साथ वहाँ से उतारकर लाया था। रूस जाने से पहले विद्या भवन ने उसे छपवाना शुरू किया था। सारी पुस्तक १९४७ मे ही छप चुकी थी, सिर्फ भूमिका के लिखने की जरूरत थी, जिसके लिए मैं व्यग्र था। पर ४७ म छप गई पुस्तक १९५६ मे भी प्रकाश म नही आई। शायद हमारी अगली पीढी को इसे देखने का अवसर मिलेगा। यह दीर्घ सूत्रता मेरे लिए अक्षतव्य थी, लेकिन फडफडाने से क्या होता है? मुनिजी अब बम्बई म रहते भी कम थे। चित्तौड से चार मील पर ऋषि-आश्रम बनाने की धुन म थे, और साथ ही राजस्थान सरकार ने भी अपने अनुसधान प्रतिष्ठान का कार्यभार उन्हे सौप दिया है, इसलिए उन्हे भी क्या

पि दिया जाए ?

आज ही शाम को पोद्दारजी के यहाँ जुहू गये। पाँच वर्ष के लिए जमीन ली थी, जिस पर ५० हजार रुपया खर्च करके बँगला खड़ा कर दिया गया था। साल का दस ही हजार तो हुआ। स्थान हवादार और स्वास्थ्यप्रद है इस कहने की आवश्यकता नहीं। सेठ घनश्यामदास सरल प्रकृति के मितभाषी और मारवाडी सेठों के बहुत से दुर्गुणों से मुक्त पुरुष हैं। इस समय लखनऊ के एक कलाकार तरुण उनके यहाँ ठहरे हुए थे। वह नाक से सितार, शहनाई, वीणा ऐसी सुन्दर बजाते थे, कि असल और नकल में भेद करना मुश्किल था। कई भाषाओं के बोलने में वह गजब का अनुकरण करते थे। इस दिशा में उनकी प्रतिभा गम्भीर कला का रूप ले सकती थी, किन्तु अभी इन चीजों को मामूली कौतूहल साधन तक ही सीमित रखा जाता है। रात को मैं भी वहीं जुहू में रहा। अगले दिन सबेरे उठकर समुद्र तट पर गया जो कुछ ही हाथों पर नीचे तरंगित हो रहा था। पैर अभी ऐसी स्थिति में नहीं था, कि बहुत दूर तक चहलकदमी कर सकता। आस-पास में बिडला, सेठ आनंदीलाल पोद्दार आदि के भी बँगले थे। जमनालाल बजाज ने यहाँ बहुत सी जमीन मिट्टी के मोल खरीद ली थी, जो अब सोने की हो गई थी। चारों ओर बँगले, बँगलियाँ और सौध बनते जा रहे हैं। यहाँ तक बस आ जाने के कारण कम खर्च में आने-जाने का भी लोगों को सुभीता था। मलाबार हिल से यह जगह अधिक ठंडी थी, किन्तु बम्बई में सर्दी की बात करने की जरूरत ही नहीं ... तो माघ-पूस में भी सिनेमा ... में पंखे चलाने पड़ते हैं।

आज पूर्वाह्न में माटुंगा के म... हिन्दी के ... जाना पड़ा। वहाँ तरुण तरुणि... में ... र बतला रहे थे कि तमिलभाषा ... ह्रस्व ... मैंने अपने ... ह्रस्व सस्वर... था, ... र की स... र ... आज भी ... से

वर्धा—गाडियो म अब भी बहुत भीड रहा करती थी, लेकिन मैंने पहले दर्जे की एक बर्थ पहले ही से रिजर्व करा ली थी। हमारे डब्बे मे एक मारवाडी, दो पिता पुत्री कच्छी और मैं चार ही आदमी थे। वे तीनो उडीसा (अगोल) के नेपाल बाबा के पास जा रहे थे। लडका नेपाल उडीसा म ईसा मसीह का अवतार बनकर पैदा हुआ था। अधे जाते और वह एक आख देख लेता, आख मिल जाती। लँगडे लूले जाते और दर्शन मात्र से वह पैरो से दौडने लगते। कोढिया की कचन काया बन जाती निधन मालामाल हो जाते। कौन सी तकलीफ और आफत थी, जिसको नेपाल बाबा के दर्शन मात्र से नही हटाया जा सकता था। कच्छी वृद्ध की लडकी की एक आख म बहुत बडी फूली पडी हुई थी, वैसे वह तरुणी और सर्वांग सुदरी थी। नेपाल बाबा यदि उसकी फूली को हटा देते तो फिर वह किसी मनका स कम नही होती। इस लालसा स वह पिता के साथ जा रही थी। मारवाडी सज्जन भी अपनी किसी गरज के लिए जा रहे थे। सारी ट्रेन म मालूम होता था नेपाल बाबा के भक्तो का कब्जा था। बडी भीड थी। लोग आपस म बात भी कर रहे थे, तो नेपाल बाबा ही की। मैं दिलचस्पी से उनकी बातें सुन रहा था लेकिन अपनी तरफ से कोई श्रद्धा नही प्रकट कर रहा था। ट्रेन दिन ही म रवाना हुई थी। घटा डेढ घटा तक हमारी ओर स नेपाल बाबा की भक्ति के बारे म कुछ भी न निकलते देखकर एक ने स्वय कहा— ऐसे महात्मा का दर्शन भाग्य स मिलता है।" मैंने कहा— "इसम क्या शक?" ट्रेन म तिल रखने की जगह नही, यही इसका प्रमाण था उन्होने कहा— 'आप भी चलिए।" मैंने कहा—"मेरे इतने भाग्य कहा, कि उस दिव्य पुरुष के दर्शन कर सकू।" उन आख के अधो के सामने मैं नेपाल बाबा की ओर स मन हटाने की बात करने की क्यो कोशिश करता।

११ दिसम्बर के सबेरे ८ बजे मैं वर्धा स्टेशन पहुँचा। आनन्दजी और दूसरे मित्र स्टेशन पर मौजूद थे। हिन्दी नगर मे जब भी आता वहा कुछ वृद्धि अवश्य दिखाई पडती। अबकी अतिथि भवन तैयार हो चुका था। एक कुएँ पर बिजली का पम्प भी लग गया था। साहित्यिक योजना के बारे म

दाप दिया जाए ?

आज ही शाम का पौद्दारजी के यहाँ जुहू गये। पाच वप के लिए जमीन मिली थी, जिस पर ५० हजार रुपया खच करके बँगला खड़ा कर दिया गया था। साल का दस ही हजार तो हुआ। स्थान हवादार और स्वास्थ्यप्रद था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। सेठ घनश्यामदास सरल प्रकृति के मितभाषी और मारवाडी सेठो के बहुत से दुगुणो से मुक्त पुरुष है। इस समय लखनऊ के एक कलाकार तरुण उनके यहाँ ठहरे हुए थे। वह नाक से सितार, शहनाई, वीणा ऐसी सुन्दर बजाते थे, कि असल और नक्ल मे भेद करना मुश्किल था। कई भाषाओ के बोलने मे वह गजब का अनुकरण करते थे। इस दिशा मे उनकी प्रतिभा गम्भीर कला का रूप ले सकती था, किन्तु अभी इन चीजो को मामूली कौतूहल साधन तक ही सीमित रखा जाता है। रात को मैं भी वही जुहू मे रहा। अगले दिन सवेरे उठकर समुद्र तट पर गया जो कुछ ही हाथो पर नीचे तरंगित हो रहा था। पर अभी ऐसी स्थिति मे नही था, कि बहुत दूर तक चहलकदमी कर सकता। आस पास मे बिडला, सेठ आनदीलाल पोद्दार आदि के भी बँगले थे। जमनालाल बजाज ने यहाँ बहुत-सी जमीन मिट्टी के मोल खरीद ली थी, जो अब सोने की हो गई थी। चारो ओर बँगले, बँगलिया और सौध बनते जा रहे हैं। यहाँ तक बस आ जाने के कारण कम खच मे आने-जाने का भी लागा का सुभीता था। मलाबार हिल से यह जगह अधिक ठडी थी, किन्तु बम्बई मे सर्दी की बात करने की जरूरत ही नही वहाँ तो माघ-पूस मे भी सिनमा घरो मे पखे चलाने पडते हैं।

आज पूर्वाह्न मे माटुगा के मद्रासी बन्धुओ की हिन्दी कक्षा मे भाषण देने जाना पडा। वहाँ तरुण-तरुणियाँ सैकडो की सख्या मे उपस्थित थे, और बतला रहे थे, कि तमिलभाषी लोग भी हिन्दी के महत्व को समझते हैं। मैंने अपने भाषण मे पल्लव-सस्कृति पर कहते बतलाया था, कि तमिल भूमि की सस्कृति ने जावा और कम्बोज पर कितना प्रभाव डाला था।

आज भोजन के बाद १ बजे से ४ बजे तक अनुवाद समिति मे रहा।

वर्धा—गाडियां मे अब भी बहुत भीड रहा करती थी, लेकिन मैंने पहले दर्जे की एक बथ पहले ही से रिजर्व करा ली थी। हमारे डब्बे में एक मारवाडी, दो पिता पुत्री कच्छी और मैं चार ही आदमी थे। वे तीनों उडीसा (बगाल) के नेपाल बाबा के पास जा रहे थे। लडका नेपाल उडीसा में ईसा मसीह का अवतार बनकर पैदा हुआ था। अंधे जाते और वह एक आंख दिखा लेता, आंख मिल जाती। लंगडे लूले जाते और दर्शन मात्र से वह पैरों से दौडने लगते। कोढियो की कचन काया बन जाती, निर्धन मालामाल हो जाते। कौन सी तकलीफ और आफत थी, जिसको नेपाल बाबा के दर्शन मात्र से नही हटाया जा सकता था। कच्छी वृद्ध की लडकी की एक आंख में बहुत बडी फूली पडी हुई थी, वैसे वह तरुणी और सर्वांग सुन्दरी थी। नेपाल बाबा यदि उसकी फूली को हटा देगे तो फिर वह किसी मेनका से कम नही होती। इस लालसा से वह पिता के साथ जा रही थी। मारवाडी सज्जन भी अपनी किसी गरज के लिए जा रहे थे। सारी ट्रेन में मालूम होता था नेपाल बाबा के भक्तो का कब्जा था। बडी भीड थी। लोग आपस में बात भी कर रहे थे, तो नेपाल बाबा ही की। मै दिलचस्पी से उनकी बाते सुन रहा था, लेकिन अपनी तरफ से कोई श्रद्धा नही प्रकट कर रहा था। ट्रेन दिन ही में रवाना हुई थी। घंटा-डेढ घंटा तक हमारी ओर से नेपाल बाबा की भक्ति के बारे में कुछ भी न निकलते देखकर एक ने स्वयं कहा—'ऐसे महात्मा का दर्शन भाग्य से मिलता है।'' मैने कहा—''इसमें क्या शक ?'' ट्रेन मे तिल रखने की जगह नही, यही इसका प्रमाण था उन्होने कहा— 'आप भी चलिए।'' मैंने कहा—''मेरे इतने भाग्य कहा, कि उस दिव्य पुरुष के दर्शन कर सकू।'' उन आंख के अंधों के सामने मैं नेपाल बाबा की ओर से मन हटाने की बात करने की क्यो कोशिश करता।

११ दिसम्बर को सवेरे ८ बजे मैं वर्धा स्टेशन पहुँचा। आनन्दजी और दूसरे मित्र स्टेशन पर मौजूद थे। हिन्दी नगर में जब भी आता, वहां कुछ वृद्धि अवश्य दिखाई पडती। अबकी अतिथि भवन तैयार हो चुका था। एक कुएँ पर बिजली का पम्प भी लग गया था। साहित्यिक योजना के बारे में

कुछ वातचीत हुई, और कायकर्ताओ के वेतन और दूसरे खच का हिसाव लगाया गया। शाम को टाउन हाल मे वतमान परिस्थिति पर व्याख्यान दिया। विनोदजी का परिचय का काम मिला, और अतिशयोक्ति के लिए उनकी जीभ पर शारदा वठ गई।

१२ दिसम्बर को २ वजे आनन्दजी और विनोदजी के साथ नागपुर गया। वहाँ लडकियो की पाठशाला म पहले भापण देना पडा, फिर नागपुर महाविद्यालय (मॅरिस कालेज) मे छात्रो और अध्यापको के सामने हिन्दी साहित्य और परिभाषा पर वोला। रात को डेढ घटा साहित्यिक गोष्ठी हुई, जिसम यहा के सर्वोच्च अधिकारी तथा नागरिक सम्मिलित हुए। वहुत तरह के प्रश्न पूछे गए, उनम हिन्दी की रुचि को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

१३ दिसम्बर को हम यहाँ से मसूरी को प्रस्थान करना था। घाव का धोना वाधना अब भी वैसे ही चल रहा था, और वह सूखने का नाम नही ले रहा था। दोपहर की गाडी पकडने से पहले राज्यपाल श्री मगलदास पकवासा से मिलना ठीक हुआ था। प० हृषिकेश शर्मा पकवासाजी की सुयोग्य पुत्रवधू के हिन्दी-अध्यापक थे। उनके ही आग्रह पर इसे स्वीकार किया, और पौने ६ वजे राजभवन म पहुँचे। प्रातराश के साथ ही वातचीत भी करनी थी। एक सुशिक्षित सस्कृत शिष्ट देशप्रेमी के अनुसार ही वहा सवाल जवाव हुए। पकवासाजी स्वय भी डायवटीज के मरीज थे। उन्होने अपने तजर्वों को वतलाया, और रूस देखने की वडी इच्छा प्रकट की। उस समय अभी हमारे काग्रेसी नेता रूस से भडकते थे, और आजकल की तरह की आवा जाही की कल्पना भी नही कर सकते थे।

**मसूरी**—राजभवन से स्टेशन आकर गाडी पकडी। फिर अनेक वार चले उसी रास्ते से इटारसी की ओर वढा। भोपाल रास्ते म पडा। अगले दिन (१४ दिसम्बर) का सवेरा आगरा मे हुआ, ११ वजे दिल्ली आई। दिल्ली म उतरना था। घाव की भी देखभाल करनी थी। भैया के स्थानीय मनेजर श्री गौरीलाल चानना स्टेशन पर आये हुए थे। उनके साथ गली म

उनके घर पर गए, जो पुरानी दिल्ली के मोहल्ले म था। यहा आधे हिंदू और आधे मुसलमान रहा करते थे। विभाजन के बाद सारे मुसलमान पाकिस्तान चले गए और उनके घरा म पजाब के शरणार्थी रहन लगे। श्री गौरीलालजी भी उसी तरह अब एक कोठरी म रहते थे। दोपहर का भोजन करके तीन घटा सोता रहा। आगे देहरादून तक न जान सान का मिले या नही, इसलिए पहले ही कमी पूरी कर देना चाहता था। ब्यालू करके ८ बजे फ्रंटियर मेल पर सवार हुआ। जगह पहले ऊपर मिली। एक तो डायबेटीज वाले को पेशाब के लिए उठना पडता है, इसलिए भी ऊपर की सीट अनुकूल नही होती, पर अब ता लँगडा भी हा गया था। दूसरे सज्जन न अपनी सीट हम दे दी। घ व की मरहम पट्टी हुई लेकिन उसम कुछ भी सुधार नही मालूम हाता था।

सहारनपुर तक ही इस ट्रेन से जाना था, जहा रात २ बजे से पहले पहुँच गया। अखबार वाली कार म बैठकर साढे ५ बजे किताबघर पहुचा। वहाँ से सामान उठवाया, और उषाकाल म हो हन क्लिफ" आ गया। देखा, फ्लशवाला ने पाइप बठाने के लिए जमीन खोद ली थी। महादेवजी के दाहिने हाथ म इधर कितने ही दिना से दद था, वह लिखने मे असमथ थे। अब वह चरुन की साच रहे थे। पर, मैंने कहा—"कोई लिपिक आ ही रहा है, इसलिए उसकी चिन्ता न करे। अपनी पट्टी खोली, ता घाव का रुख देखकर जान पडा अस्पताल जाना पडेगा। लेकिन कमला को विशारद की परीक्षा इसी महीने देनी थी। अस्पताल यहा से बहुत दूर लण्ढौर के पास था। वहाँ जाने म न जाने कितना समय लगे, इसलिए तब तक मरहम पट्टी यही करने का निश्चय किया।

आज सरदार वल्लभभाई पटेल का बम्बई म देहान्त हो गया। "कांग्रेस म वही एक आदमी था, जा कुछ करने की क्षमता रखता था। चाह सूझ न भी हो।" रियासतो का एकीकरण सरदार का सबस बडा काम था, और हैदराबाद को ठीक करना उसस भी बडा काम। बारदाली के नेता के ये काम हमेशा स्मरणीय रहगे। बस वे सेठा के सबसे बडे समथक थे, और

अपने रास्ते में किसी रोड़े को फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते थे।

कमला को साथ रहते अब डेढ़ वर्ष से ऊपर हो गया था। उन्हें आगे बढ़ाने में पहला कदम यही हुआ था, कि इस साल वह विशारद में बैठने वाली थीं। उन्हें मेरे साथ और मुझे उनके साथ रहना था। इतने दिनों में हम एक-दूसरे की प्रकृति से काफी परिचित हो चुके थे। स्त्री पुरुष के ऐसे घनिष्ठ सम्बन्ध को अनिश्चित स्थिति में रखना ठीक नहीं था। पुरुषों के राज में स्त्रियों के लिए यह स्थिति और भी असह्य थी। इसलिए १८ दिसम्बर को हमने निश्चय किया, कि दोनों पति पत्नी बन जाएँ। मुझे हिचक सबसे बड़ी आयु की थी। मैं नहीं चाहता था, कि तरुण जीवन को बन्धन में डालूँ। २३ दिसम्बर को उषा—बाबा के साथ डा० सत्यकेतु और शीलाजी ११ बजे आ गए। नागार्जुन के आने की आशा थी, लेकिन अभी वह नहीं आ पाए थे। महादेव भाई साथ ही थे। १२ बजे के करीब डा० सत्यकेतु पुरोहित बने और हम दोनों का ब्याह हो गया। साहित्यिक काम और मेरे स्वास्थ्य के बारे में डेढ़ साल तक जो देखभाल कमला ने की थी, वह बड़ी ही श्लाघनीय थी। डायबटीज का शिकार शरीर हो ही चुका था, इसलिए उसको ठीक से चलाने में भी कमला के हाथ की जरूरत थी। यदि मैं इसे न करता, तो वह हद दर्जे की स्वार्थपरता होती, और कमला के साथ भारी अन्याय भी। अगले दिन (२४ दिसम्बर को) परीक्षा देने के लिए कमला को देहरादून जाना था, जिससे पहले इस काम को कर लेना था।

१६ दिसम्बर को भी पाँव की वही हालत रही। अब इन्सुलिन का इन्जेक्शन खाने के पहले रोज लेने लगा, सिवाजाज की गोलियाँ भी खाई। पाँव से बचाना तथा इन्सुलिन को बराबर लेते रहना है, अब यह साफ दिखलाई देने लगा। जब तक पाँव है तब तक तो इन्सुलिन से पिण्ड नहीं छूटना, लेकिन पीछे के लिए समझता था कि उसे लगातार नहीं लूँगा, भोजन को नियन्त्रित करूँगा। पर यह इतना आसान काम नहीं था। वर्ष के अन्त में ३१ दिसम्बर को डायरी में लिखा—"अभी भी पाँव अच्छा नहीं हो रहा है। कल पाइन्ट हुई, पेनिसिलिन लेना। दो ढाई महीने के करीब यह पाँव मेरे

भी कम, इसलिए वफ के पिघलन का काई सवाल नही था। मैंने ज्यादातर चारपाइ पर बठे वठे "गढवाल" लिसन मे अपना समय विताया। अगले दिन 'प्रथम हिमपात" के नाम से एक छोटा-सा लेख लिखकर "नवयुग" को भेजा। आज वफ पिघलने लगी, लेकिन आकाश से वादल बिल्कुल हटे नही थ, तो भी सूय वीच वीच म झाककर दीखता था। २६ का महादेवीजी देहरादून स आ गये।

हमारे पडौसी लडली परिवार और पूसग परिवार ईसाई एग्लो इण्डियन थे। दोनो के ही साथ हमारा सम्वन्ध वहुत अच्छा था। वडे दिन का पव उनके लिए वैसे ही महत्व रखता था, जसा हमारे लिए हाली दीवाली। चाह हम उसके धार्मिक अश पर विश्वास न रख, पर वचपन से उनक कारण जो मीठे पक्वान खाये ह, परिवार और समाज म जो उल्लास देखा है वह अब भी अपना आकपण पदा किय बिना नही रह सक्ता।

२६ का महादेवजी फिर देहरादून गए। उनसे कह दिया, यदि कमला कलिम्पोग जाना चाह, तो इसी वक्त हो जाएँ। कमला परीक्षा दकर वहा गई भी।

३० दिसम्बर का सर्दी वढ गई थी। प० सुखलालजी ने अपने सम्पा दित हतु-विन्दु की एक प्रति भिजवाई। धमकीर्ति की इस महत्वपूण पुस्तक का मूल सस्कृत नही मिला था। किसी जन भडार मे अचट लिखित इसकी टीका मिली थी, और दुर्वेक मिश्र की उस पर अनुटीका तिब्बत म मैंने लिखा था। प० सुखलालजी ने इन्ह सम्पादित करन का भार लिया। मैंन तिब्बती के आधार पर उसके मूल्य का भी सस्कृत म कर दिया। तीना चीज एक साथ छपी हैं यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई—धमकीर्ति की एक और कृति मूल भाषा म उनक देशभाइया के सामने आ गई।

१९५० का अन्तिम दिन (३१ दिसम्बर) इतवार का पडा। साल भर का लखा जोखा लन पर मालूम हुआ कि इस साल "मधुर स्वप्न" और 'दार्जिलिङ परिचय" प्रकाशित हुए। "कुमाऊँ" लिसकर प्रेस म भेजा था किन्तु १९५६ क अन्तिम पाद म ही उसक छपन को नौवत आई। "आदि

भी कम, इसलिए बर्फ के पिघलने का कोई सवाल नहीं था। मैंने ज्यादातर चारपाई पर बैठे बैठे "गढवाल" लिखने मे अपना समय बिताया। अगले दिन "प्रथम हिमपात" के नाम से एक छोटा-सा लेख लिखकर "नवयुग" को भेजा। आज बर्फ पिघलने लगी, लेकिन आकाश से बादल बिल्कुल हटे नहीं थे, तो भी सूर्य बीच बीच में थाककर दीखता था। २६ को महादेवीजी देहरादून से आ गये।

हमारे पड़ोसी लेडली परिवार और पूसग परिवार ईसाई एंग्लो इण्डियन थे। दोनों के ही साथ हमारा सम्बन्ध बहुत अच्छा था। बड़े दिन का पर्व उनके लिए वैसे ही महत्व रखता था, जैसा हमारे लिए होली दीवाली। चाहे हम उसके धार्मिक अंश पर विश्वास न रखें, पर बचपन से उनके कारण जो मीठे पकवान खाये है, परिवार और समाज में जो उल्लास देखा है, वह अब भी अपना आकर्षण पैदा किये बिना नहीं रह सकता।

२८ को महादेवजी फिर देहरादून गए। उनसे कह दिया, यदि कमला कलिम्पोंग जाना चाहे, तो इसी वक्त हो आएँ। कमला परीक्षा देकर वहाँ गई थी।

३० दिसम्बर को सर्दी बढ गई थी। प० सुखलालजी ने अपने सम्पादित हेतु बिन्दु की एक प्रति भिजवाई। धर्मकीर्ति की इस महत्वपूर्ण पुस्तक का मूल संस्कृत नहीं मिला था। किसी जैन भंडार में अर्चट लिखित इसकी टीका मिली थी, और दुर्वेक मिश्र की उस पर अनुटीका तिब्बत में मैंने लिया था। प० सुखलालजी ने इन्हे सम्पादित करा का भार लिया। मैंने तिब्बती के आधार पर उसके मूल को भी संस्कृत में कर दिया। तीनों चीजें एक साथ छपी हैं, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई—धर्मकीर्ति की एक और कृति मूल भाषा में उनके देशभाइयों के सामने आ गई।

१६५० का अंतिम दिन (३१ दिसम्बर) इतवार को पड़ा। साल भर का लेखा जोखा लेने पर मालूम हुआ कि इस साल "मधुर स्वप्न" और 'दार्जिलिङ परिचय" प्रकाशित हुए। "कुमाऊँ" लिखकर प्रेस में भेजा था किन्तु १६८६ के अन्तिम पाद में ही उसके छपने की नौबत आई। "जापान

भी कम, इसलिए वर्फ के पिघलने का कोई सवाल नही था। मैंने ज्यादातर चारपाई पर बैठे बैठे "गढवाल" लिखने में अपना समय बिताया। अगले दिन 'प्रथम हिमपात" के नाम से एक छोटा सा लेख लिखकर "नवयुग" को भेजा। आज वर्फ पिघलने लगी, लेकिन आकाश से बादल बिल्कुल हटे नही थे तो भी सूर्य बीच बीच में झाककर दीखता था। २६ को महादेवीजी देहरादून से आ गये।

हमारे पडोसी लेडली परिवार और पूसग परिवार ईसाइ एंग्लो इण्डियन थे। दोनो के ही साथ हमारा सम्बन्ध बहुत अच्छा था। बडे दिन का पर्व उनके लिए वैसे ही महत्व रखता था, जैसा हमारे लिए होली-दीवाली। चाहे हम उसके धार्मिक अश पर विश्वास न रखे, पर बचपन से उनके कारण जो मीठे पकवान खाये है, परिवार और समाज में जो उल्लास देखा है वह अब भी अपना आकर्षण पैदा किये बिना नही रह सकता।

२९ को महादेवजी फिर देहरादून गए। उनसे कह दिया, यदि कमला कलिम्पोग जाना चाहे, तो इसी वक्त हो आएँ। कमला परीक्षा देकर वहाँ गई भी।

३० दिसम्बर को सर्दी बढ गई थी। प० सुखलालजी ने अपने सम्पादित हेतु-बिन्दु की एक प्रति भिजवाई। धर्मकीर्ति की इस महत्वपूर्ण पुस्तक का मूल संस्कृत नही मिला था। किसी जैन भंडार में अर्चट लिखित इसकी टीका मिली थी, और दुर्वेक मिश्र की उस पर अनुटीका तिब्बत में मैंने लिखा था। प० सुखलालजी ने इन्हे सम्पादित करने का भार लिया। मैंने तिब्बती के आधार पर उसके मूल्य का भी संस्कृत में कर दिया। तीनो चीजें एक साथ छपी है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई—धर्मकीर्ति की एक और कृति मूल भाषा में उनके देशभाइयो के सामने आ गई।

१९५० का अंतिम दिन (३१ दिसम्बर) इतवार को पडा। साल भर का लेखा जोखा लेने पर मालूम हुआ कि इस साल "मधुर स्वप्न" और 'दार्जिलिङ परिचय" प्रकाशित हुए। 'कुमाऊँ' लिखकर प्रेस में भेजा था किन्तु १९५६ के अंतिम पाद में ही उसके छपने की नौबत आई। "आदि

हिन्दी" की छपाई मे हाथ लगा, और 'गढवाल' के दो सौ पृष्ठ लिखे जा चुके। अपने काम से सन्तोष था। पर अभी सामने ढेर का ढेर काम पडा हुआ था। सबसे बडा काम था 'मध्य एसिया का इतिहास' जिसमे न जाने कितना समय लगेगा। इस साल बाहर न जाने का सकल्प रहते भी कलिम्पाग कलकत्ता, दिल्ली प्रयाग, अमृतसर बम्बई, वर्धा, नागपुर हैदराबाद जाना पडा। शरीर म शक्ति की कमी नहीं मालूम होती थी तो भी घाव विकट रूप ले रहा था, इसकी चिन्ता जरूर थी।

मसूरी मे रहते प्राय ६ महीने हो गए थे। यहा का प्रथम आकर्षण न रहने पर भी वह अच्छी मालूम होती थी। आबोहवा बिल्कुल अनुकूल थी। सर्दी मेरे लिए परेशानी की चीज नही थी, और सफेद सफेद बर्फ को देखने म तो वैसे ही आनन्द मिलता, जसे हरे हरे देवदारो के वन को देखकर। परिचित अधिक बढाना पसन्द नही था, क्योकि उसम समय के अपव्यय का सवाल था, तो भी सहृदय हितबन्धुओ से मिलकर जो आनन्द प्राप्त होता है उससे वचित रहना मैं भी नही पसन्द करता था। "हन क्लिफ" से बाजार की ओर आने-जाने म थोडी सी चढाई पडती थी, जो बिल्कुल मालूम नही होती थी और न हृदय पर उसका किसी तरह का बोझ मालूम होता था। डायबेटीज़ से यद्यपि इस वक्त परेशान था, किन्तु चीनी इतनी नही जा रही थी कि जिसका वजन पर असर पडता।

खेती बारी का तजर्बा अभी नया नया था, और वह भी उस समय का जबकि खेती का मौसम बीत चुका था। घन्टे डेढ घन्टे निकालकर खेत म काम करना मैं चाहता, और करता भी था। कितनी ही साग-सब्जियो से निराश होकर भी हिम्मत छोडनेवाला नही था। बर्फ के दिनो म राई और गोभी डटी रही। बर्फ पिघलते ही उसकी हरी हरी पत्तिया फिर चमकने लगी टमाटर ने सूखकर फिर उठने का नाम नही लिया। लाल मिर्च की भी स्थिति वसी ही दीख पडी। तजर्बे से देखा कि अगर धरती के भीतर इनकी जड को ही मृत न होने दिया जाये तो वसन्त म वही पड फिर पत्ते और अकुर देने लगते है, और सबसे पहले इनमे फल लगते हैं। हर साल

उनकी रक्षा मे हम यथोचित ध्यान नही दे सके, लेकिन तो भी इन्होंने, विशेषकर मिच ने निराश नही किया। १९५० की लगाई एक लाल मिच ना आज भी उसी तरह तैयार है, और हर साल सैकडा फल देती है। कडवी इतनी, कि बडे बडे सूरमाओ के दात खट्टे कर देती है। प्रा० विश्वनाथ शुक्ल बडी डीग हाकते थे। जब घर की एक छोटी सी मिच उनके सामने रख दी गई, तो उन्होने हार मान ली। मिच का बिल्कुल बायकाट तो नही करता पर हमारे घर मे मिच प्रेमियो की कमी नही है। कमला का तो उसके बिना सरता ही नही।

• • •

फ्लैप एक का शेष]

पर अपना मत प्रस्तुत किया गया है, विपरीत विचार वालो के मनो का खण्डन भी है, पर कही भी किसी भी विरोधी के प्रति हल्के शब्दो का प्रयोग नही है वरन उनके गुणो की प्रशसा है। शायद ही कोई गाधीवादी रहा हो जिसने अपने विरोधियो के विषय मे इतने सहानुभूतिपूर्ण ढग से बात कही हो।

उन्होंने लिखा है

विद्या और काल मिलकर लोगो को अधिक उदार बना देते है, मै किसी समय वैरागी था आर्यसमाजी हुआ बौद्ध भिक्षु बना और बुद्ध मे अपार श्रद्धा रखते हुए भी मार्क्स का शिष्य बन गया।"

प्रस्तुत पुस्तक मे आपको उस महान पुरुष मे गतिशील सामूहिक चेतना प्रवाह का अनुभव होगा जिसकी विशालता और सौदर्य से आप अभिभूत हो जाएँगे।